एमएईसी–103
(MAEC – 103)

भारतीय अर्थव्यवस्था
(Indian Economy)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाई पास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी – 263139
फोन नं. 05946 – 261122, 261123
टॉल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946–264232, ई–मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे,
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 एम0 के0 धडोलिया,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा, राजस्थान

प्रो0 एस0 पी0 तिवारी,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
डॉ0 आर0 एम0 एल0 अवध विश्वविद्यालय,
फैजाबाद उ0 प्र0

प्रो0 मधुबाला,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
इंदिरा गॉधी मुक्त विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

प्रो0 आर0 सी0 मिश्र
निदेशक वाणिज्य एवं प्रबन्ध विद्याशाखा,
विशेष आमंत्रित सदस्य
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. राजीव कुमार असिस्टेन्ट प्रोफेसर, महात्मा गॉधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ.प्र.	**1,2,3,4,5**
डॉ. यू. पी. सिंह असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, ई.सी.सी., इलाहाबाद, उ.प्र.	**6,7**
डॉ. अमितेन्द्र सिंह एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**8,9,10**
प्रो. पी.के. घोष प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, उ.प्र.	**11,12,13,14**
डॉ. मोनिका मेहरोत्रा असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, आई.आई.पी.एम. इलाहाबाद, उ.प्र.	**15,16,17**
डॉ. राजेश पाल असिस्टेंट प्रोफेसर अर्थशास्त्र विभाग, महात्मा गॉधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ.प्र.	**18,19,20,21**
प्रो. संदीप दीक्षित प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, प. दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उ.प्र.	**22,23,24,25**
डॉ. जे.सी पाण्डे पूर्व प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, कुमाऊॅ विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड	**26,27,28, 29**

संस्करणः 2017

आई.एस.बी.एन.: 978-93-84632-98-4

प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट): @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशकः कुल सचिव, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल – 263139

email: studies@uou.ac.in

मुद्रकः

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

भारतीय अर्थव्यवस्था
(Indian Economy)

एमएईसी – 103
(MAEC – 103)

विषय–सूची

खण्ड– 1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना (Structure of Indian Economy)	**पृष्ठ संख्या**
इकाई– 1. भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं (Characteristics of Indian Economy)	1–13
इकाई– 2. राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था (National Income and Indian Economy)	13–24
इकाई– 3. जनसंख्या, मानवीय संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था (Population, Human Resources and Indian Economy)	25–39
इकाई– 4. प्राकृतिक संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था (Natural Resources and Indian Economy)	40–51
इकाई– 5. अधो–संरचना और भारतीय अर्थव्यवस्था (Infrastructure and Indian Economy)	52–66
खण्ड– 2. पंचवर्षीय योजना एवं आर्थिक विकास की समस्याएं (Five Year Plan and Problems of Economic Development)	**पृष्ठ संख्या**
इकाई– 6. आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता एवं योजना निर्माण प्रक्रिया (Relevance of Economic Planning and Process of Planning)	67–84
इकाई– 7. आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ (ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना तक) (Achievements of Economic Planning (Till the Eleventh Five Year Plan))	85–108
इकाई– 8. गरीबी (Poverty)	109–130
इकाई– 9. बेरोजगारी (Unemployment)	131–154
इकाई– 10. समानान्तर अर्थव्यवस्था (Parallel Economy)	155–181
खण्ड– 3. भारतीय कृषि–1 (Indian Agriculture-1)	**पृष्ठ संख्या**
इकाई– 11. भारतीय कृषि की प्रकृति एवं महत्व (Nature and Importance of Indian Agriculture)	182–196
इकाई– 12. कृषि आगत (Agricultural Input)	197–218
इकाई– 13. भूमि सुधार एवं नवीन कृषि रणनीति (Land Reforms and New Agricultural Strategies)	219–238

इकाई– 14. कृषि/ग्रामीण वित्त एवं कृषि विपणन 239–251
(Agriculture/Rural Finance and Agricultural Marketing)

खण्ड– 4. भारतीय कृषि–2 (Indian Agriculture-2) पृष्ठ संख्या

इकाई– 15. कृषि मूल्य नीति, खाद्य सहायता और सार्वजनिक वितरण प्रणाली 252–267
(Agricultural Price Policy, Food Subsidy and Public Distribution System)
इकाई– 16. भारतीय कृषि और विश्व व्यापार संगठन 268–280
(Indian Agriculture and World Trade Organization)
इकाई– 17. भारतीय कृषि, आयकर और कृषि श्रम 281–299
(Indian Agriculture, Income Tax and Agricultural Labour)

खण्ड– 5. भारतीय औद्योगिक संरचना (Indian Industrial Structure) पृष्ठ संख्या

इकाई–18. औद्योगिक विकास एवं नीतियाँ 300–321
(Industrial Policy and Liberalization)
इकाई–19. सामाजिक क्षेत्र उद्यम 322–335
(Social Sector Industry)
इकाई– 20. लघु क्षेत्र उद्यम 336–349
(Small Sector Industry)
इकाई– 21. भारी उद्योग एवं औद्योगिक समस्याएं 350–363
(Heavy Industry and Industrial Problems)

खण्ड– 6. राजस्व और मौद्रिक क्षेत्र पृष्ठ संख्या
(Public Finance and Monetary Sector)

इकाई– 22. भारतीय लोक वित्त 364–378
(Indian Public Finance)
इकाई– 23. केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्ध 379–393
(Financial Relation between Center and State)
इकाई– 24. भारतीय मौद्रिक प्रणाली 394–409
(Indian Monetary System)
इकाई– 25. भारतीय मौद्रिक क्षेत्र संरचना 410–423
(Structure of Indian Monetary Sector)

खण्ड– 7. विदेशी व्यापार क्षेत्र (Foreign Trade Sector) पृष्ठ संख्या

इकाई– 26. भारत का विदेशी व्यापार 424–440
(Indian Foreign Trade)
इकाई– 27. भारत का भुगतान संतुलन 441–455
(Indian Balance of Payment)
इकाई– 28. भारत की व्यापार नीति 456–465
(Trade Policy of India)
इकाई– 29. भारत का विदेशी व्यापार एवं विश्व व्यापार संगठन 466–478
(Indian Foreign Trade and World Trade Organization and India)

इकाई 1: भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अर्थव्यवस्था से आशय
1.4 भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना
1.4.1 प्राथमिक क्षेत्र (कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र)
1.4.2 द्वितीयक क्षेत्र (उद्योग क्षेत्र)
1.4.3 तृतीयक क्षेत्र (सेवा क्षेत्र)
1.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन
1.6 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं
1.6.1 परम्परागत विशेषताएं
1.6.2 नवीन विशेषताएं
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह पहली इकाई है । इससे पूर्व आपने भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों को पढ़ा होगा।

भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की एक प्रमुख अर्थव्यवस्था है। इसका स्वरूप अत्यन्त व्यापक है तथा इसकी विविध विशेषताएं है। प्रस्तुत इकाई में भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित इन बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना, स्वरूप, विशेषताओं एवं महत्व को समझ सकेंगें तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का समग्र विश्लेषण कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि अर्थव्यस्था से क्या तात्पर्य है।
- बता सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना किस प्रकार की है और समय के साथ इसमें क्या परिवर्तन आ रहें हैं।
- समझा सकेंगे कि आर्थिक विश्लेषण में भारतीय अर्थव्यवस्था का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण है।
- भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत एवं नवीन विशेषताओं को श्रेणीबद्ध कर सकेंगे।

1.3 अर्थव्यवस्था से आशय

देश के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली आर्थिक गतिविधियों का अध्ययन अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत किया जाता है। वास्तव में, अर्थव्यवस्था एक ऐसा ढ़ांचा है जिसके अन्तर्गत देश की आर्थिक क्रियाओं का संचालन किया जाता है। इसमें सभी क्षेत्रों द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करना, देश के लोगों द्वारा इनका उपभोग करना, लोगों को रोजगार प्रदान करना, निर्यात करना आदि को सम्मिलित किया जाता है।

1.4 भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना

अर्थव्यवस्था की संरचना से आशय एक अर्थव्यवस्था का उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में वितरण से है। देश की अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों जैसे- कृषि, उद्योग, बैंक, बीमा, परिवहन एवं अन्य सेवाओ आदि से सम्बन्धित क्रियाओं का संचालन होता है। भारतीय अर्थव्यवस्था को अध्ययन की दृष्टि से क्रियाओं के आधार पर निम्नलिखित तीन भागों में बांटा जा सकता है:

1.4.1 प्राथमिक क्षेत्र (कृषि एवं सम्बद्व क्षेत्र)

भारतीय अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित कार्यों को सम्मिलित किया जाता है। जैसे- पशुपालन, मछली पालन (मात्स्यिकी), वानिकी आदि।

1.4.2 द्वितीयक क्षेत्र (उद्योग क्षेत्र)

अर्थव्यवस्था के द्वितीयक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के उद्योग (निवेश के आधार पर - लघु, मध्यम एवं वृहद उद्योग; स्वामित्व के आधार पर - सार्वजनिक एवं निजी उद्योग), निर्माण, गैस तथा विद्युत उत्पादन आदि को शामिल किया जाता है।

1.4.3 तृतीयक क्षेत्र (सेवा क्षेत्र)

तृतीयक क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की सेवाओं जैसे- बैंक, बीमा, परिवहन, संचार, व्यापार, होटल, लोकप्रशासन, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएं आदि को सम्मिलित किया जाता है, इसी कारण से इसे सेवा क्षेत्र भी कहा जाता है। यह क्षेत्र अर्थव्यवस्था के प्राथमिक एवं द्वितीयक क्षेत्र के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना को निम्नलिखित चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता हैः

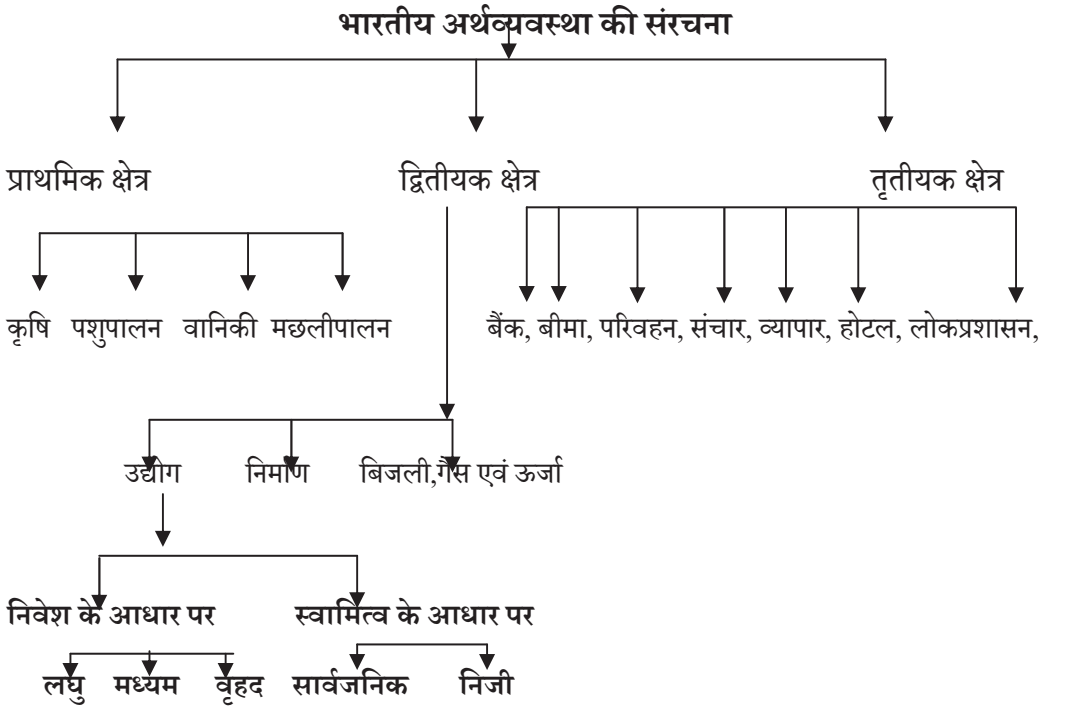

1.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन

जब देश में आर्थिक विकास की प्रक्रिया चलती है तो उसकी अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन आते हैं। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में देश की अधिकांश जनसंख्या प्राथमिक क्षेत्र में कार्य करती रहती है। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था का विकास होने लगता है, वैसे-वैसे जनसंख्या का अनुपात प्राथमिक क्षेत्र में कम तथा द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में बढ़ने लगता है साथ ही राष्ट्रीय आय में द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का योगदान में वृद्धि होती जाती है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् आर्थिक नियोजन के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन आये हैं। इस काल में अर्थव्यवस्था के द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में तेजी से विकास हुआ है। देश की राष्ट्रीय आय में प्राथमिक क्षेत्र के भाग में कमी हुई है जबकि द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र के भाग में बढ़ोत्तरी हुई है। इसे निम्नलिखित तालिका में देखा जा सकता है।

तालिका 1: देश के सकल घरेलू उत्पाद में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान
(प्रतिशत में)

वर्ष	प्राथमिक क्षेत्र	द्वितीयक क्षेत्र	तृतीयक क्षेत्र
1950-51	56-5	13-6	29-9
1960-61	52-3	17-0	30-7
1970-71	45-9	20-4	33-7
1980-81	39-9	22-0	38-1
1990-91	34-0	23-2	42-8
2000-01	26-2	23-5	50-3
2006-07	20-5	24-7	54-8
2007-08	19-8	24-5	55-7

स्रोत: आर्थिक समीक्षा 2008-09

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता के समय देश के सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान अधिक था, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्राथमिक क्षेत्र (कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र) का भाग घटता जा रहा है जबकि द्वितीयक (उद्योग) एवं तृतीयक क्षेत्र (सेवा) का भाग बढ़ता चला जा रहा है। वर्ष 1950-51 से 2007-08 की अवधि में देश के सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान

56.5 प्रतिशत से कम होकर 19.8 प्रतिशत रह गया जबकि इसी अवधि में द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का योगदान क्रमशः 13.6 प्रतिशत एवं 29.9 प्रतिशत से बढ़कर 24.5 प्रतिशत एवं 55.7 प्रतिशत हो गया। यह भारतीय अर्थव्यवस्था में होने वाले संरचनात्मक परिवर्तन को परिलक्षित करता है।

1.6 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

विश्व के विभिन्न देशों में भारत का प्रमुख स्थान है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक एवं जनसंख्या आदि की दृष्टि से यह एक विशिष्ट देश है। क्षेत्रफल के सम्बन्ध में यह प्रजातान्त्रिक देश विश्व का सातवां बड़ा देश है जिसका क्षेत्रफल (32,87,263 वर्ग किलोमीटर) सम्पूर्ण विश्व का 2.42 प्रतिशत है। जनसंख्या की दृष्टि से भी भारत एक विशाल देश है जहां विश्व की 17.5 प्रतिशत (121.02 करोड़) जनसंख्या निवास करती है। भारतीय अर्थव्यवस्था पर दृष्टि डालने पर इसकी अनेक विशेषताएं देखने को मिलती हैं। इन विशेषताओं को दो भागों में बांटा जा सकता है: प्रथम, परम्परागत विशेषताएं एवं द्वितीय, नवीन विशेषताएं। परम्परागत विशेषताओं के अन्तर्गत वे विशेषताएं आतीं हैं जो भारत को विरासत में मिलीं हैं एवं इसके अल्पविकसित स्वरूप को प्रकट करती हैं जबकि नवीन विशेषताओं के अन्तर्गत वे विशेषताएं आतीं हैं जो भारत को तेजी से विकास की ओर अग्रसर राष्ट्र के रूप में स्थापित करती हैं।

1.6.1 परम्परागत विशेषताएं

कृषि की प्रधानता: भारतीय अर्थव्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता है कि यहाँ पर कृषि की प्रधानता है। भारत में कुल कार्यशील जनसंख्या का लगभग 64 प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र में कार्य कर रहा है। देश की राष्ट्रीय आय का 20 प्रतिशत कृषि क्षेत्र से ही आता है। निर्यात में भी इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है। देश के कुल निर्यात में लगभग 10 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र का ही होता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था: भारत की अर्थव्यवस्था कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था है। विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से दूसरे देश भारत में अधिकतर जनसंख्या गांवों में निवासित है। यहाँ की 74.2 करोड़ जनसंख्या (सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या का 72.2 प्रतिशत) 6.41 लाख गांवों में निवास कर रही है जिसका अधिकांश भाग आजीविका हेतु कृषि पर निर्भर है।

प्रति व्यक्ति निम्न आय-स्तर: भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ पर प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत निम्न है। भारत में प्रति व्यक्ति आय लगभग 750 डॉलर है जबकि भारत की तुलना में स्विटजरलैण्ड में प्रति व्यक्ति आय 35,370 डॉलर, अमेरिका में 39,710 डॉलर, स्वीडन में 29,770 डॉलर तथा जर्मनी में 27950 डॉलर है।

पूँजी निर्माण की निम्न दर: किसी भी देश में पूँजी निर्माण की दर पर निर्भर करता है कि वह देश कितनी तेजी से विकास करेगा। भारत में पूँजी निर्माण की दर भी निम्न है, जिसका मुख्य कारण देश में राष्ट्रीय आय कम होने एवं इसका बड़ा भाग उपभोग पर व्यय हो जाने से बचत का कम होना है। वर्ष 2007-08 में भारत में सकल घरेलू बचत की दर जीडीपी का 37.7 प्रतिशत तथा सकल घरेलू पूँजी निर्माण की दर 39.1 प्रतिशत थी।

आर्थिक विषमता: भारत में व्याप्त आर्थिक विषमता अर्थव्यवस्था के समुचित विकास में बाधा उत्पन्न करती है। यद्यपि पंचवर्षीय योजनाओं में समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य स्वीकार किया गया था, तथापि इस दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। देश में 40 प्रतिशत जनसंख्या को राष्ट्रीय आय का मात्र 19.7 प्रतिशत भाग ही मिल पाता है। यहाँ की 21.8 प्रतिशत (मिक्स्ड रिकॉल अवधि के आधार पर) जनसंख्या का गरीबी की रेखा के नीचे निवास करती है जिन्हे आवश्यक पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है।

बेरोजगारी की अधिकता: भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ पर बेरोजगारी की अधिकता है। वर्तमान आँकड़ों पर गौर करें तो पायेंगें कि देश में लगभग 4 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार हैं। यह ऐसे व्यक्ति हैं जो कार्य करने में सक्षम हैं और कार्य करने की इच्छा भी रखते हैं परन्तु उन्हें रोजगार नहीं मिल पाता है। इनकी संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि होती जाती है। भारत में व्याप्त बेरोजगारी के विभिन्न रूपों में अदृश्य बेरोजगारी एवं मौसमी बेरोजगारी प्रमुख है।

जनसंख्या का दबाव: भारत एक विशाल देश है जहाँ की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। जनगणना 2011 के तदर्थ आँकड़ों के अनुसार, 2001-2011 की अवधि में देश की जनसंख्या वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत आंकलित की गयी है। वर्तमान में भारत की कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ है जो विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत निवासित है जबकि उसके पास विश्व क्षेत्रफल का केवल 2.42 प्रतिशत भाग ही है। भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि का प्रमुख कारण जन्मदर (22.22 प्रति हजार) एवं मृत्युदर (6.4 प्रति हजार) में पर्याप्त अन्तर होना भी है। उल्लेखनीय है कि विश्व में भारत की जनसंख्या चीन के पश्चात् दूसरे स्थान पर है।

निम्न औसत आयु: एक देश में लोगों की औसत आयु को विकास का पैमाना माना जाता है। जिस देश में लोग अधिक समय तक जीवित रहते हैं वहाँ माना जाता है कि जनता को आय एवं स्वास्थ्य की अधिक सुविधाएं प्राप्त हैं। भारत में नागरिकों की औसत आयु विकसित देश की तुलना में काफी कम है। भारत में वर्ष 2009 में यह 69.89 वर्ष आंकलित की गयी है, जबकि जापान में 81 वर्ष, स्विटजरलैण्ड में 80 वर्ष तथा अमेरिका एवं ब्रिटेन में 77 वर्ष है।

तकनीकी कौशल एवं पिछड़ेपन की समस्या: भारत में शिक्षा, तकनीकी शिक्षा एवं अन्य आवश्यक सुविधाओं के अभाव के कारण तकनीकी कौशल का अभाव पाया जाता है। साथ ही

उत्पादन इकाईयों में पुरानी विधियों एवं उपकरणों का उपयोग किया जाता है। जिनके परिणामस्वरूप यहाँ उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादकता अपनी क्षमता की तुलना में कम है।

यातायात एवं संचार साधनों की कमी: भारत जैसे विशाल देश में यातायात एवं संचार साधानों का बहुत महत्व है, परन्तु अभी तक यहाँ इन साधनों का उचित विकास नहीं हो पाया है। इन साधनों के अभाव में देश के अनेक भागों में उपलब्ध खनिज पदार्थ अप्रयुक्त स्थिति में हैं।

प्राकृतिक साधनों का अपूर्ण उपयोग: प्राकृतिक साधन विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत में प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा में हैं परन्तु तकनीकी ज्ञान एवं यन्त्रीकरण की कमी के कारण देश में प्राकृतिक साधनों का उचित प्रकार से उपयोग नहीं हो पाया है और यह अप्रयुक्त पड़े हुए हैं।

साक्षरता की निम्न दर: शिक्षा विकास की प्रथम सीढ़ी है। देश में साक्षरता दर एवं विकास की दर में सीधा धनात्मक सम्बन्ध होता है। भारत में साक्षरता की दर अभी भी काफी कम है। जनगणना 2011 के शुरूआती आँकड़ों के अनुसार भारत में साक्षरता की दर 74.04 प्रतिशत है। स्पष्ट है कि देश की एक चौथाई जनसंख्या अभी निरक्षर है।

रूढ़िवादी, भाग्यवादी एवं परम्परावादी समाज: भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता यहाँ का रूढ़िवादी, भाग्यवादी एवं परम्परावादी समाज भी है। भारत में शिक्षा के विस्तार के बाद भी यहाँ के लोग भाग्यवादी एवं रूढ़िवादी हैं। यहाँ के परम्परावादी समाज में विभिन्न प्रकार की सामाजिक प्रथाएं, कुरीतियां एवं अन्धविश्वास (जैसे- बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, स्त्रियों की निम्न दशा, मृत्युभोज आदि) व्याप्त हैं, जिनका अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

1.6.2 नवीन विशेषताएं

नियोजित अर्थव्यवस्था: स्वतन्त्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था थी। ऐसे में देश का तेजी से विकास करने के उद्देश्य से नियोजन को आधार बनाया गया। इसके अन्तर्गत भारत में 1 अप्रैल, 1951 से प्रथम पंचवर्षीय योजना को लागू किया गया। वर्तमान में ग्यारहवीं योजना लागू है जो 2007 से 2012 तक चलेगी। भारत में नियोजन को अपनाने के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के तीनों ही क्षेत्रों- कृषि, उद्योग एवं सेवा- ने विकास किया है और भारतीय अर्थव्यवस्था अल्पविकसित से विकासशील अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो गयी है। इसके कारण गरीबी, बेरोजगारी, जनसंख्या की वृद्धि दर आदि में कमी आई है जबकि आय, उत्पादन, रोजगार एवं बुनियादी सुविधाओं में वृद्धि हुई है। पिछले पांच वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर औसतन 8.2 प्रतिशत रही है जो वर्तमान आर्थिक परिदृश्य में एक सराहनीय उपलब्धि है।

समावेशी विकास की अवधारणा की पालन: भारत की सरकार ने ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) में समावेशी विकास की अवधारणा को स्वीकार कर लिया है। उल्लेखनीय है कि

स्वतन्त्रता के बाद अपनायी गयी विकास प्रक्रिया के कारण देश में हुई आर्थिक प्रगति समावेशी नहीं थी क्योंकि इससे कुछ क्षेत्रों एवं वर्गों का तो तेजी से विकास हुआ परन्तु शेष को विकास का लाभ नहीं मिल पाया, जो देश के समग्र विकास में बाधा उत्पन्न कर रहा था। सरकार ने इस योजना में समावेशी विकास की अवधारणा को अपनाकर विकास के लाभ से वंचित क्षेत्रों एवं वर्गों (जैसे- कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, अवसंरचना क्षेत्र एवं महिला, दलित/पिछड़े, गरीब वर्ग) को विशेष प्राथमिकता दी है जो निश्चित ही भारतीय अर्थव्यवस्था को अधिक सुदृढ़ता प्रदान करेगी।

बुनियादी ढ़ाँचे का विकास: बुनियादी ढ़ांचे की सुदृढ़ता किसी भी विकास की धुरी होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था की एक नवीन विशेषता यह है कि इसने अपने बुनियादी ढ़ाँचे का तेजी से विकास किया है। भारत में जून 1969 में व्यापारिक बैंकों की 8,262 शाखाएं थीं जो जून 2008 में बढ़कर 76,885 हो गई। रेलमार्ग 1950-51 में 53,596 किलोमीटर की तुलना में बढ़कर 63,327 किलोमीटर हो गया है जबकि सड़कों की लम्बाई 4 लाख किलोमीटर से बढ़कर 33.4 लाख किलोमीटर हो गई है। विद्युत उत्पादन 1950-51 में 5 बिलियन किलोवाट से बढ़कर 2009-10 में 771.5 बिलियन किलोवाट हो गया है। ग्रामीण विद्युतीकरण की बात करें तो राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना (आर.जी.जी.वी.वाई) के अन्तर्गत 30 नवम्बर 2010 तक देश के 87,791 गांवों में बिजली दी गई और गरीबी रेखा से नीचे के 135.31 लाख परिवारों को कनेक्शन दिए गए हैं। इसी प्रकार बीमा, कृषि यन्त्रीकरण, शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी तेजी से वृद्धि हुई है।

नवीन उद्योगों की स्थापना: भारतीय अर्थव्यवस्था की एक विशेषता है कि नियोजन के प्रारम्भ हाने से यहाँ पर नये-नये उद्योगों की स्थापना हुई है। इन उद्योगों में ऐसी वस्तुओं का उत्पादन किया जा रहा है जिनका स्वतन्त्रता के समय विदेशों से आयात किया जाता था और भारत में इनके उत्पादन की कल्पना नहीं की जा सकती थी, जैसे- हवाई जहाज, मोटर गाड़ियाँ, पनडुब्बिया,दवाईयां आदि। यह भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रगतिशील स्वरूप को प्रकट करता है।

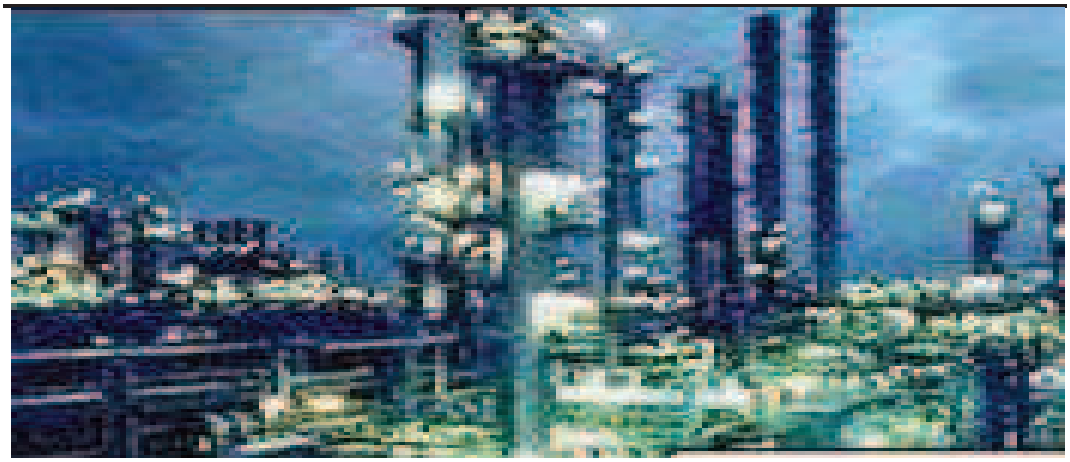

प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि: देश में कुछ वर्षों से प्रति व्यक्ति आय में तेजी से वृद्धि हुई है जो देश के विकास को प्रदर्शित करता है। वर्तमान की कीमतों के आधार पर वर्ष 1950-51 में प्रति व्यक्ति आय 255 रूपये थी जो 1999-2000 में 15,881 रूपये, 2007-08 में 33,283 रूपये तथा वर्ष 2011 में बढ़कर 36,003 रूपये हो गई है।

बचत एवं विनियोग की दर में वृद्धि: भारत में बचत एवं पूँजी निर्माण की दर में भी तेजी आई है। वर्ष 1950-51 में सकल घरेलू बचत की दर एवं विनियोग की दर क्रमशः 8.6 प्रतिशत एवं 8.4 प्रतिशत थी। वर्ष 2007-08 में सकल घरेलू बचत की दर एवं विनियोग की दर बढ़कर क्रमशः 37.7 प्रतिशत एवं 39.1 प्रतिशत हो गई।

समाजवादी समाज की स्थापना: भारतीय अर्थव्यवस्था समाजवादी समाज की स्थापना की ओर अग्रसर है जो इसकी प्रमुख नवीन विशेषता है। यहाँ पर सरकार द्वारा विभिन्न प्रयास किये गये हैं, जैसे- जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, बन्धुआ मजदूर प्रथा का उन्मूलन, भूमि पर कृषक को अधिकार दिलाना, किसानों को ऋण मुक्ति आदि के साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र का विकास एवं सामाजिक सेवाओं का विस्तार। इनके फलस्वरूप देश में आर्थिक विषमता कम हुई है, गरीबों/किसानों के शोषण में कमी आई है और साथ ही देश की जनता को विभिन्न प्रकार की सुविधाएं भी प्राप्त हुई हैं। इस प्रकार, स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था समाजवादी समाज की स्थापना की ओर अग्रसर है।

भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्वव्यापीकरण: भारत की आर्थिक नीति में वर्ष 1991 में अपनाई गई उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण भारत की अर्थव्यवस्था विश्वव्यापीकरण हुआ है। वैश्वीकरण से देश की अर्थव्यवस्था का जुड़ाव विश्व अर्थव्यस्था से हो गया है जबकि उदारीकरण के अन्तर्गत देश में नियमों को उदार बनाया गया है। इन सबके परिणामस्वरूप भारत के उद्योग पहले से अधिक सुदृढ़ हुए हैं, उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिता दे पा रहे हैं, देश के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हुई है,विदेशों से पूँजी का निवेश बढ़ा है तथा साथ ही इससे सेवा क्षेत्र में भी

क्रान्तिकारी परिवर्तन आये हैं। अर्थव्यवस्था का यह विश्वव्यापीकरण देश में रोजगार-सृजन, पूँजी की कमी दूर करना, संसाधनों का उचित उपयोग जैसे सकारात्मक परिवर्तन लाने में सफल हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था यद्यपि कुछ सन्दर्भ में पिछड़ी हुई है परन्तु वर्तमान में देश में चल रही विकास प्रक्रिया से अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक सुधार आया है। इसका जुड़ाव विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं से भी हुआ है। इन सबके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी से विकास की ओर अग्रसर है और इसकी गणना विश्व की प्रमुख अर्थव्यवस्था में हो रही है।

1.7 सारांश

भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की एक महत्वपूर्ण अर्थव्यवस्था है। लगभग 36 खरब 66 अरब अमेरिकी डॉलर के समतुल्य सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के साथ क्रय शक्ति के सन्दर्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था अमेरिका, चीन और जापान के बाद चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक एवं जनसंख्या आदि की दृष्टि से यह एक विशिष्ट देश है। भारतीय अर्थव्यवस्था पर दृष्टि डालने पर इसकी विविध विशेषताएं देखने को मिलती हैं। इन विशेषताओं को दो भागों में बांटा जा सकता है: प्रथम, परम्परागत विशेषताएं एवं द्वितीय, नवीन विशेषताएं। परम्परागत विशेषताएं वे हैं जो भारत को विरासत में मिलीं हैं एवं इसके अल्पविकसित स्वरूप को प्रकट करती हैं, जैसे- कृषि की प्रधानता, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, प्रति व्यक्ति निम्न आय-स्तर, पूँजी निर्माण की निम्न दर, आर्थिक विषमता, बेरोजगारी की अधिकता, जनसंख्या का दबाव, निम्न औसत आयु, तकनीकी कौशल एवं पिछड़ेपन की समस्या, यातायात एवं संचार साधनों की कमी, प्राकृतिक साधनों का अपूर्ण उपयोग, साक्षरता की निम्न दर, रूढ़िवादी, भाग्यवादी एवं परम्परावादी समाज विध्यमान है नवीन विशेषताएं वे विशेषताएं हैं जो भारत को तेजी से विकास की ओर अग्रसर राष्ट्र के रूप में स्थापित करती हैं, जैसे- नियोजित अर्थव्यवस्था, समावेशी विकास की अवधारणा की पालन, बुनियादी ढ़ाँचे का विकास, नवीन उद्योगों की स्थापना, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बचत एवं विनियोग की दर में वृद्धि, समाजवादी समाज की स्थापना आदि। इस इकाई के अध्ययन से आप भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप एवं इसकी विभिन्न विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

1.8 शब्दावली

सकल घरेलू उत्पाद: सकल घरेलू उत्पाद राष्ट्रीय आय लेखांकन का एक रूप है। किसी देश में किसी वर्ष में उत्पादित समस्त अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं के मौद्रिक मूल्य के योग को सकल घरेलू उत्पाद कहा जाता है। इसमें विदेशों से अर्जित आय शामिल नहीं है।

प्रति व्यक्ति आय: प्रति व्यक्ति आय से अर्थ देश के लोगों की औसत आय से है। यह एक देश की राष्ट्रीय आय में उस देश की कुल जनसंख्या का भाग देकर निकाली जाती है। इसके आधार पर उस देश के लागों के जीवन-स्तर का अनुमान लगाया जाता है।

समावेशी विकास: समावेशी विकास से आशय है कि देश की विकास प्रक्रिया में जो क्षेत्र एवं वर्ग छूट गये हैं, उन्हें प्राथमिकता देकर विकास की मुख्यधारा में लाना जिससे सभी क्षेत्रों एवं वर्गों का समान विकास सम्भव हो सके।

वैश्वीकरण: वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं का आपस में जुढ़ाव हो जाता है। इससे विश्व के विभिन्न देशों के बीच वस्तुओं एवं सेवाओं, पूँजी, तकनीक एवं श्रम का निर्बाध प्रवाह होने लगता है।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 01: अर्थव्यवस्था से क्या आशय है ?

उत्तर: अर्थव्यवस्था एक ऐसा ढ़ांचा है जिसके अन्तर्गत देश की आर्थिक क्रियाओं का संचालन किया जाता है।

प्रश्न 02: योजनाकाल में भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में क्या परिवर्तन आये हैं ?

उत्तर: योजनाकाल में अर्थव्यवस्था में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान कम हुआ है जबकि द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का योगदान बढ़ा है।

प्रश्न 03: रिक्त स्थान भरिए।

(क) अध्ययन की दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था को ..... भागों में बांटा जाता है।

(ख) वर्तमान में भारत के सकल घरेलू उत्पाद में सर्वाधिक योगदान ..... क्षेत्र का है।

(ग) भारत की सरकार ने ..... पंचवर्षीय योजना में समावेशी विकास की अवधारणा को स्वीकार किया है।

उत्तर: (क) तीन, (ख) तृतीयक, (ग) ग्यारहवीं।

प्रश्न 04: बहुविकल्पीय प्रश्न।

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत विशेषता है:

(अ) कृषि की प्रधानता, (ब) निम्न प्रति व्यक्ति आय,

(स) जनसंख्या आधिक्य, (द) सभी।

2. भारतीय अर्थव्यवस्था का प्राथमिक क्षेत्र सम्बन्धित है:

(अ) कृषि से, (ब) उद्योग से,

(स) सेवाओं से, (द) किसी से नहीं।

3. जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में स्थान है:

(अ) पहला, (ब) दूसरा,

(स) तीसरा, (द) सातवां।

4. भारत में विश्व की कुल भूमि का -

(अ) 4.24 प्रतिशत, (ब) 6.42 प्रतिशत,

(स) 2.42 प्रतिशत है, (द) इसमें से कोई नहीं।

उत्तर: 1. (द), 2. (अ), 3. (ब), 4. (स)

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Dhar, P.K. (2003) : *Indian Economy Its Growing Dimensions*, Kalyani Publication, Ludhiana.
- दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम, के.पी.एम. (2006): भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चांद एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- मामेरिया, डॉ0 चतुर्भज एवं जैन, डॉ0 एस0सी0 (1995): भारतीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा।
- आर्थिक समीक्षा 2010-11, भारत सरकार।
- जनगणना 2011, भारत सरकार (website:www.censusofindia.com)

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1: भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2: भारतीय अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक परिर्वतन को समझाते हुए इसकी नवीन विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 3: भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना को स्पष्ट करते हुए इसके पिछड़ेपन के कारणों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 4: ''भारतीय अर्थव्यवस्था एक विकासशील अर्थव्यवस्था है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 5: भारतीय अर्थव्यवस्था की मूल विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। आर्थिक नियोजन के फलस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था में क्या मूल परिवर्तन दिखाई देते हैं ?

इकाई 2: राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं परिभाषाएं
2.4 राष्ट्रीय आय की अवधारणाएं
2.5 राष्ट्रीय आय की माप
2.6 राष्ट्रीय आय को मापने में कठिनाईयां
2.7 राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां
2.8 राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था
2.19 सारांश
2.10 शब्दावली
2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से क्या तात्पर्य है? इसकी विभिन्न विशेषताएं क्या हैं?

राष्ट्रीय आय किसी भी देश के विकास की प्रमुख माप होती है। राष्ट्रीय आय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने भिन्न मत प्रकट किये हैं। प्रस्तुत इकाई में राष्ट्रीय आय, इसकी विभिन्न अवधारणाओं, इसकी गणना एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का महत्व से सम्बन्धित बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं, इसकी गणना विधियों आदि के साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था से इसके सम्बन्ध को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि राष्ट्रीय आय से क्या आशय है एवं इसकी विभिन्न अवधारणाएं क्या हैं।
- बता सकेंगे कि राष्ट्रीय आय की गणना कैसे की जाती है और इसमें क्या कठिनाईयां आती हैं।
- बता सकेंगे कि भारत में राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां क्या हैं।
- समझा सकेंगे कि आर्थिक विश्लेषण में राष्ट्रीय आय का अध्ययन क्यों महत्वपूर्ण है।

2.3 राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं परिभाषाएं

राष्ट्रीय आय किसी देश की प्रगति का सूचक है। राष्ट्रीय आय से आशय किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित होने वाली समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य के जोड़ से है जिसे ह्रास को घटाकर एवं विदेशी लाभ को जोड़कर निकाला जाता है। वास्तव में, राष्ट्रीय आय एक दिए हुए समय में किसी अर्थव्यवस्था की उत्पादन शक्ति को मापती है।

राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों के मत भिन्न-भिन्न हैं। राष्ट्रीय आय की परिभाषाएं विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से दी है जो निम्नलिखित हैं:

प्रो. अल्फ्रेड मार्शल के अनुसार, ''देश के प्राकृतिक साधनों पर श्रम और पूँजी द्वारा कार्य करने पर प्रतिवर्ष विभिन्न भौतिक एवं अभौतिक वस्तुओं और सेवाओं का जो उत्पादन होता है उन सभी के शुद्ध योग को देश की वास्तविक वार्षिक आय, आगम या राष्ट्रीय लाभांश कहते हैं।''

प्रो. ए. सी. पीगू के अनुसार, ''राष्ट्रीय आय किसी समाज की वह वास्तविक आय है जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी शामिल है तथा जिसे मुद्रा में मापा जो सके।''

भारतीय राष्ट्रीय आय समिति (1949) के अनुसार, '' राष्ट्रीय आय के प्राक्कलन के लिए किसी अवधि विशेष में उत्पन्न वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा को दुहरी बार गिने बिना मापा जाता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर राष्ट्रीय आय की विशेषताओं को निम्नलिखित रूप से बताया जा सकता है:

- राष्ट्रीय आय वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य का योग है,
- राष्ट्रीय आय किसी एक देश की एक वर्ष की आय है,
- राष्ट्रीय आय में पूँजी की घिसावट को घटाया एवं विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय को जोड़ा जाता है।
- राष्ट्रीय आय में एक साधन को एक बार ही गिना जाता है।
- राष्ट्रीय आय एक माप है जो धन में नापा जाता है।

इस प्रकार, राष्ट्रीय आय के अन्तर्गत कुल उपभोग व्यय (C),, कुल विनियोग (I),, कुल सार्वजनिक व्यय (G), तथा विदेशों से प्राप्त विशुद्ध आय (जो निर्यातों के मूल्य (E), से आयातों के मूल्य (M), को घटाने से प्राप्त होती है) शामिल है। इस प्राप्त राशि में से पूँजी ह्रास को घटा दिया जाता है।

संक्षेप में,राष्ट्रीय आय = C + I + G – D + E - M

2.4 राष्ट्रीय आय की अवधारणाएं

राष्ट्रीय आय की माप करने के लिए विभिन्न अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है। इन अलग-अलग अवधारणाओं का उपयोग इस बात पर निर्भर करता है कि राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का प्रयोग किस उद्देश्य हेतु किया जायेगा। यह अवधारणाएं निम्नलिखित हैं:

राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाएं

1. सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product - GNP) किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित होने वाली समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के बाजार मूल्य पर जोड़ को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है। इसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय भी शामिल होती है।
गणितीय रूप में,

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) = C + I + G + E - M

2. सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product - GDP) जब सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से विदेशों से प्राप्त आय को घटा दिया जाता है तो इस प्राप्त योग मूल्य को सकल घरेलू उत्पाद कहा जाता है।

गणितीय रूप में,

सकल घरेलू उत्पाद (GDP) = GNP - Income from Abroad

3. शुद्ध घरेलू उत्पाद (Net Domestic Product - NDP) शुद्ध घरेलू उत्पाद को सकल घरेलू उत्पाद में से मूल्य ह्रास को घटा कर (अथवा शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में से विदेशों आय को घटा कर) प्राप्त किया जाता है।

गणितीय रूप में,

शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP) = GDP - Depreciation

4. बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product at Market Price - NNP^{MP}) बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद ज्ञात करने के लिए सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से मूल्य ह्रास को घटा दिया जाता है। शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में उत्पादित वस्तुओं के बाजार मूल्य को लिया जाता है जिसमें अप्रत्यक्ष कर एवं सब्सिडी के प्रभाव सम्मिलित हैं अतः इसे बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है)

गणितीय रूप में,

बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP^{MP}) = GNP - Depreciation

5. साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद अथवा राष्ट्रीय आय (Net National Product at Factor Cost - NNP^{FC} or National Income) : जब शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की गणना साधन लागत पर की जाती है तो इसे ही राष्ट्रीय आय कहा जाता है। इसकी गणना बाजार मूल्य पर आंकलित शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में अप्रत्यक्ष करों को घटाकर एवं सब्सिडी को जोड़कर की जाती है। इस प्रकार से ज्ञात मूल्य ही साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद अथवा राष्ट्रीय आय कहलाता है।

गणितीय रूप में,

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद अथवा राष्ट्रीय आय (NNP^{FC} or National Income) = NNP^{MP} - Indirect Taxes + Subsidies

6. वैयक्तिक आय (Disposable Income - DI) : राष्ट्रीय आय की यह अवधारणा देश में क्रय-शक्ति की माप करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वैयक्तिक आय वह आय है जो वास्तव में देश की जनता द्वारा एक वित्तीय वर्ष में प्राप्त की जाती है।

वैयक्तिक आय = राष्ट्रीय आय - निगमों का अवितरित लाभांश - निगम कर - सामाजिक सुरक्षा योजना के लिए किए गए भुगतान + सरकारी हस्तान्तरण भुगतान + व्यापारिक हस्तान्तरण भुगतान

7. व्यय-योग्य वैयक्तिक आय (Disposable Income - DI) :व्यय-योग्य वैयक्तिक आय से तात्पर्य जनता के पास शुद्ध आय से है जिसे जनता व्यय कर सकती है। वैयक्तिक आय में से वैयक्तिक प्रत्यक्ष करों को घटाकर व्यय-योग्य वैयक्तिक आय को ज्ञात किया जाता है।

व्यय - योग्य वैयक्तिक आय = वैयक्तिक आय - वैयक्तिक प्रत्यक्ष कर

2.5 राष्ट्रीय आय की माप

राष्ट्रीय आय को मापने की चार विधियां हैं: (1) उत्पादन गणना विधि (Census of Production Method), (2) आय गणना विधि (Census of Income Method), (3) व्यय गणना विधि (Census of Expenditure Method) तथा (4) सामाजिक लेखांकन विधि (Social Accounting Method)।

राष्ट्रीय आय को मापने की विधियां

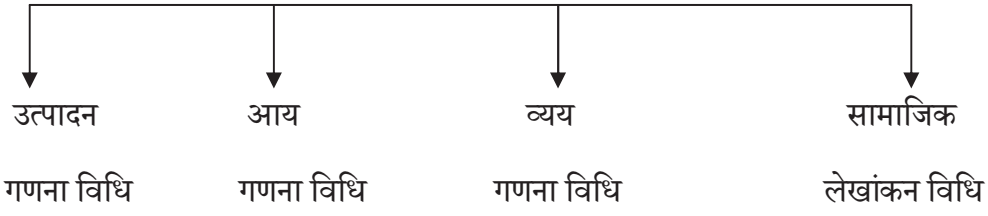

उत्पादन गणना विधि: इस विधि में राष्ट्रीय आय की माप उत्पादन के आधार पर की जाती है। इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को विभिन्न भागों अथवा क्षेत्रों में बाँट लिया जाता है, जैसे- प्राथमिक क्षेत्र (कृषि, पशुपालन, मात्स्यिकी, वानिकी आदि), द्वितीयक क्षेत्र (उद्योग, निर्माण, गैस तथा विद्युत उत्पादन आदि) तथा तृतीयक क्षेत्र (बैंक, बीमा, परिवहन, संचार, व्यापार, होटल, लोकप्रशासन, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएं आदि)। इसके बाद अर्थव्यवस्था के इन भागों एवं क्षेत्रों में एक वर्ष में उत्पादित होने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं का बाजार मूल्य पर योग कर लिया जाता है। इसी योग को राष्ट्रीय आय कहा जाता है।

उत्पादन गणना विधि से राष्ट्रीय आय की माप करने में इस बात को ध्यान में रखना होता है कि एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं की गणना बार-बार न की जाये। इस दुहरी गणना से बचने के लिए मध्यवर्ती पदार्थों के मूल्य को सम्मिलित न करके केवल अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्यों को ही शामिल किया जाता है। शुद्ध राष्ट्रीय आय को ज्ञात करने के लिए उत्पादन के मूल्य ह्रास को घटा दिया जाता है परन्तु विदेशी आय को जोड़ दिया जाता है।

आय गणना विधि: आय गणना विधि में राष्ट्रीय आय की गणना विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत् उत्पादन के साधनों को एक वर्ष में उनकी सेवाओं के बदले में प्राप्त होने प्रतिफल का योग करके की जाती है। इसके लिए आय के विभिन्न वर्ग किये जाते हैं, जैसे- मजदूरी एवं वेतन , व्यक्तियों की किराये की आय, कम्पनियों के लाभ, ब्याज की आय, गैर-कम्पनी व्यवसायों की आय आदि। इन सभी वर्गों को एक वर्ष में प्राप्त होने वाली आय-राशियों को जोड़कर राष्ट्रीय आय ज्ञात की जाती है। आय विधि के प्रयोग का विशेष लाभ है कि इससे देश में विभिन्न वर्गों में आय के वितरण की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इस विधि को अपनाने में विभिन्न बातों का ध्यान रखना चाहिये, जैसे- गैर-उत्पादन कार्यों से सम्बन्धित भुगतान (उदाहरण- वृद्धावस्था पेन्शन, निर्धनों को सहायता भुगतान आदि) को इसमें न जोड़ा जाय, दोहरा मूल्यांकन न किया जाय, मुद्रा में भुगतान न की जाने वाली सेवाओं (उदाहरण- गृहणी की सेवाएं) को सम्मिलित न किया जाय, गैर-कानूनी रूप से प्राप्त आय को शामिल न किया जाय।

व्यय गणना विधि: व्यय गणना विधि को उपभोग बचत विधि भी कहा जाता है। इस विधि में राष्ट्रीय आय की माप करने के लिए देश द्वारा किये जाने वाले व्यय का योग करके उसमें बचत या निवेश की राशियों को जोड़ दिया जाता है। इन सबके योग से जो राशि प्राप्त होती है उसे राष्ट्रीय आय माना जाता है। यह विधि इस तथ्य पर आधारित है कि एक व्यक्ति अपनी कुल आय का कुछ भाग उपभोग पर व्यय करता है तथा शेष बचत (निवेश) करता है। अतः राष्ट्रीय आय कुल उपभोग और कुल बचतों का योग होती है। इस विधि से राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए उपभोक्ताओं की आय तथा उनकी बचत से सम्बन्धित सही आंकड़े उपलब्ध होना आवश्यक है। सामान्यतः सही आंकड़े आसानी से प्राप्त न होने के कारण इस विधि का अधिक उपयोग नहीं किया जाता है।

सामाजिक लेखांकन विधि: राष्ट्रीय आय की माप की सामाजिक लेखांकन विधि का प्रतिपादन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रिचार्ड स्टोन ने किया था। इस विधि से राष्ट्रीय आय की माप के साथ ही देश की सम्पूर्ण आर्थिक संरचना, क्षेत्रीय अन्तर्सम्बन्ध एवं आर्थिक क्रियाओं का विस्तृत ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस विधि में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को पांच भागों में विभाजित किया गया है - अन्तिम उपभोक्ता, उत्पादन संस्थान, वित्तीय संस्थान, बीमा एवं सामाजिक सुरक्षा संस्थान तथा अन्य। इन प्रत्येक भाग के लिए चार प्रकार के खाते रखने होते हैं - संचालन खाता, पूँजी खाता,

संचित खाता एवं चालू खाता। इन सभी वर्गों के विभिन्न खातों का योग करने पर राष्ट्रीय आय प्राप्त हो जाती है। सामाजिक लेखांकन विधि का प्रयोग तभी सम्भव है जब सभी संस्थान, व्यक्ति एवं सरकार आने लेन-देन का सही हिसाब रखें। ऐसा न करने पर इस विधि का प्रयोग सीमित हो जाता है।

भारत जैसे विकासशील देश में राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए उत्पादन गणना विधि एवं आय गणना विधि का सम्मिलित रूप से प्रयोग किया जाता है।

2.6 राष्ट्रीय आय को मापने में कठिनाईयां

राष्ट्रीय आय का प्रत्येक देश के लिए अत्यधिक महत्व है परन्तु इसको मापने में विभिन्न प्रकार की व्यावहारिक कठिनाईयां आती हैं, यह कठिनाईयां निम्नलिखित हैं:

मुद्रा में भुगतान न किया जाना: राष्ट्रीय आय की गणना मुद्रा में की जाती है, परन्तु उत्पादित की जाने वाली अनेक वस्तुएं एवं सेवाएं इस प्रकार की होती हैं जिनका मूल्य मुद्रा में व्यक्त नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक गृहणी द्वारा अपने परिवार के लिए दी गयी सेवाएं, कार के मालिक द्वारा स्वयं कार चलाना आदि। भारत में यह सेवाएं राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं की जाती, जिससे राष्ट्रीय आय के आंकड़े सही प्रतीत नहीं होते।

अमौद्रिक विनिमय: देश में राष्ट्रीय आय का सही अनुमान लगाने के लिए उस देश में अर्थव्यवस्था का संगठित होना एवं वस्तुओं एवं सेवाओं का मुद्रा में विनिमय आवश्यक है। परन्तु भारत में स्थिति भिन्न है। भारत एक ऐसा देश है जहां की अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवासित है और गांव में क्रय-विक्रय में मुद्रा का प्रयोग सीमित मात्रा में होता है। अतः यह ज्ञात करना कठिन है कि कितने उत्पादन का इस प्रकार विनिमय हुआ है। ऐसे में राष्ट्रीय आय का सही अनुमान लगाना कठिन है।

विदेशी कम्पनियों द्वारा देष में उत्पादन करना: एक देश में विदेशी कम्पनियों द्वारा कार्य करने पर यह समस्या आती है कि इन कम्पनियों की आय को किस देश की राष्ट्रीय आय में शामिल किया जाय। सामान्यतः तो विदेशी कम्पनियों की आय उस देश की राष्ट्रीय आय में सम्मिलित की जाती है जिस देश में यह उत्पादन करती हैं, परन्तु व्यवहारिक रूप में यह विदेशी कम्पनियां उपार्जित लाभ को अपने देश में भेजने के लिए प्रयासरत रहती हैं।

स्वयं के उपभोग हेतु रखी गई वस्तुएं: स्वयं के उपभोग हेतु रखी गई वस्तुएं भी राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाई उत्पन्न करती हैं। उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं का एक भाग ऐसा होता है जो विक्रय हेतु बाजार में नहीं जाता है बल्कि इसे उत्पादक अपने उपभोग के लिए रख लेता है। इससे इन वस्तुओं का बाजार मूल्य ज्ञात करने में कठिनाई होती है। कृषि उपज के सम्बन्ध में यह स्थिति अधिक देखने को मिलती है।

सही एवं पर्याप्त आंकड़ों का अभाव: राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए अनेक प्रकार के आंकड़ों की आवश्यकता होती है, जैसे- उत्पादन लागत, बचत, उपभोग व्यय, कार्यशील जनसंख्या, मजदूरी, लाभ आदि। परन्तु, भारत जैसे विशाल एवं विकासशील देश में आंकड़ों का संग्रह अधिक प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा न किये जाने के कारण सही एवं पर्याप्त आंकड़े प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

जनसहयोग की कमी: जनसहयोग की कमी भी राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाई उत्पन्न करती है। राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित आंकड़ों के संग्रह के समय देश के लोगों द्वारा आयकर लगने के भय अथवा सही हिसाब न रखने के कारण सही सूचनाएं नहीं दी जाती हैं जिससे राष्ट्रीय आय के सही आंकड़े प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

मध्यवर्ती एवं अन्तिम पदार्थों का निर्धारण करना कठिन: राष्ट्रीय आय में मध्यवर्ती को शामिल न करके केवल अन्तिम वस्तुओं को ही शामिल किया जाता है। परन्तु, कभी-कभी मध्यवर्ती वस्तु अथवा अन्तिम वस्तु का निर्धारण करना कठिन हो जाता है। अनेक पदार्थ ऐसे होते हैं जो एक रूप में तो मध्यवर्ती है परन्तु दूसरे रूप में अन्तिम वस्तु हैं, जैसे- गैंहू का आटा आदि।

2.7 राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां

भारत में सर्वप्रथम राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने का श्रेय दादाभाई नौरोजी को जाता है। उन्होने 1868 ई. में अपनी पुस्तक **"Poverty and Un-British Rule in India"** में प्रति व्यक्ति आय 20 रूपये बताई थी। बाद में, फिण्डले शिराज ने 1911 में प्रति व्यक्ति आय 49 रूपये, वाडिया एवं जोशी ने 1913-14 में 44.30 रूपये, डॉ. वी. के .आर. वी. राव ने 1925-1929 की अवधि में 76 रूपये प्रति व्यक्ति वार्षिक आय बताई।

स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने देश में राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने के उद्देश्य से 1949 ई. में प्रो. पी. सी. महानोबिस की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय आय समिति का गठन किया जिसमें प्रो. डी. आर. गाडगिल और डॉ वी. के. आर. वी. राव। इस समिति ने अपनी प्रथम रिपोर्ट (1951) में 1948-49 के लिए देश की कुल राष्ट्रीय आय 8,650 करोड़ रूपये तथा प्रति व्यक्ति आय 246.9 रूपये आंकलित की। बाद में, राष्ट्रीय आय के आंकड़ों का संकलन करने के लिए सरकार ने केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन की स्थापना की। इस संगठन ने स्थापना के बाद नियमित रूप से भारत की राष्ट्रीय आय की गणना का कार्य प्रारम्भ किया।

भारत में राष्ट्रीय आय की अद्यतन प्रवृत्तियों अथवा विशेषताओं को निम्नलिखित प्रकार से बताया जा सकता है:

- भारत में शुद्ध राष्ट्रीय आय में निरन्तर वृद्धि हुई है। वर्ष 1950-51 में चालू मूल्यों के आधार पर यह 9,152 करोड़ रूपये थी जो वर्ष 2007-08 में 414 गुना बढ़कर 37,87,596 करोड़ रूपये हो गई है।

- देश में प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई है। वर्ष 1950-51 में चालू मूल्यों के आधार पर प्रति व्यक्ति आय 255 रूपये थी जो वर्ष 2007-08 में 131 गुना बढ़कर 33,283 रूपये हो गई है।
- भारत में राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने की दरों में बहुत अन्तर है। देश में चालू मूल्यों के आधार वर्ष 1950-51 से 2007-08 की अवधि में शुद्ध राष्ट्रीय आय 414 गुना वृद्धि दर्ज की गई जबकि इसी अवधि में प्रति व्यक्ति आय केवल 131 गुना बढ़ी। राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दरों में इस अन्तर का प्रमुख कारण भारत में तेजी से बढ़ती जनसंख्या है।
- स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय आय में अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र का योगदान कम हुआ है जबकि द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का योगदान में वृद्धि हुई है। वर्ष 1950-51 से 2007-08 की अवधि में देश के सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 56.5 प्रतिशत से कम होकर 19.8 प्रतिशत रह गया जबकि इसी अवधि में द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र का योगदान क्रमशः 13.6 प्रतिशत एवं 29.9 प्रतिशत से बढ़कर 24.5 प्रतिशत एवं 55.7 प्रतिशत हो गया है।
- भारत में बचत एवं पूँजी निर्माण की दर में भी तेजी आई है। वर्ष 1950-51 में सकल घरेलू बचत की दर एवं विनियोग की दर क्रमशः 8.6 प्रतिशत एवं 8.4 प्रतिशत थी जो वर्ष 2007-08 में बढ़कर क्रमशः 37.7 प्रतिशत एवं 39.1 प्रतिशत हो गई हैं।

2.8 राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था

भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का अत्यधिक महत्व है। यह देश के विकास का प्रमुख संकेतक है। अर्थव्यवस्था के सभी अंग किसी न किसी रूप में राष्ट्रीय आय का निरन्तर सृजन करते हैं और राष्ट्रीय आय देश की अर्थव्यवस्था का सूचक बनकर सामाजिक आय का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। भारत की अर्थव्यवस्था के लिए राष्ट्रीय आय निम्नलिखित प्रकार से महत्वपूर्ण है:

- राष्ट्रीय आय देश की आर्थिक प्रगति की प्रमुख माप है। इसके आधार पर पता लगाया जा सकता है कि देश किस गति से विकास कर रहा है।
- राष्ट्रीय आय अर्थव्यवस्था का सही एवं विस्तृत चित्र प्रस्तुत करती है। इससे देश में विभिन्न क्षेत्रों, संसाधनों आदि की दशा एवं दिशा का ज्ञान मिलता है।
- राष्ट्रीय आय से देश के विभिन्न वर्गों में आय के वितरण का अनुमान लगाया जा सकता है। इससे प्रति व्यक्ति आय एवं लोगों के जीवन-स्तर का अनुमान मिल सकता है।

- राष्ट्रीय आय के आंकड़ों द्वारा देश में आर्थिक नीतियों का निर्माण किया जाता है जिससे सन्तुलित आर्थिक विकास सम्भव होता है।
- राष्ट्रीय आय के आंकड़ों की सहायता से विभिन्न वर्गों, क्षेत्रों एवं राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

2.9 सारांश

राष्ट्रीय आय किसी देश की प्रगति का सूचक है। यह एक दिए हुए समय में किसी अर्थव्यवस्था की उत्पादन शक्ति को मापती है। प्रो. अल्फ्रेड मार्शल, प्रो. ए. सी. पीगू के साथ ही विभिन्न अर्थशास्त्रियों एवं समितियों ने राष्ट्रीय आय पर अपने-अपने मत दिये हैं। वास्तव में, राष्ट्रीय आय किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित होने वाली समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य का योग है जिसे मूल्य ह्रास को घटाकर एवं विदेशी लाभ को जोड़कर निकाला जाता है। राष्ट्रीय आय को मापने की चार विधियां हैं, जिनमें से भारत में उत्पादन गणना विधि एवं आय गणना विधि का सम्मिलित रूप से प्रयोग किया जाता है। राष्ट्रीय आय को मापने में मुद्रा में भुगतान न किये जाने वाली सेवाएं, अमौद्रिक विनिमय, विदेशी कम्पनियों द्वारा देश में उत्पादन, स्वयं के उपभोग हेतु रखी गई वस्तु, सही एवं पर्याप्त आंकड़ों का अभाव, जनसहयोग की कमी, मध्यवर्ती एवं अन्तिम पदार्थों का निर्धारण आदि से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की व्यावहारिक कठिनाईयां आती हैं, जिन्हे सावधानी अपनाकर दूर किया जा सकता है। वर्तमान में, भारत में राष्ट्रीय आय के बढ़ने की प्रवृत्ति पाई गई है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के तेजी से विकास करने को इंगित करती है।

2.10 शब्दावली

मध्यवर्ती वस्तु: वे उत्पादित वस्तुएं जिनका प्रयोग पुनः तैयार माल बनाने में किया जाता है, मध्यवर्ती वस्तुएं कहलाती हैं। अन्य शब्दों में, मध्यवर्ती वस्तुएं वे हैं जिन्हें एक उत्पादक अन्य फर्मों से खरीदता है जिससे इनका अपने उत्पादन में प्रयोग कर सके। उदाहरण के लिए, डबल रोटी के उत्पादक द्वारा अपने उत्पादन हेतु आटा खरीदना। यहां आटा मध्यवर्ती पदार्थ है।

प्रति व्यक्ति आय: प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय को ही प्रति व्यक्ति आय कहा जाता है। किसी देश की राष्ट्रीय आय को वहां की जनसंख्या से विभाजित करके प्रति व्यक्ति आय ज्ञात की जाती है।

दोहरी गणना: जब एक उत्पादन का मूल्य राष्ट्रीय आय की गणना के समय मध्यवर्ती एवं अन्तिम उत्पादन के रूप में एक से अधिक बार गणना में शामिल कर लिया जाता है तो यह समस्या दोहरी गणना की समस्या कहलाती है।

2.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 01: राष्ट्रीय आय से आप क्या समझते हैं ?

उत्तर: राष्ट्रीय आय से आशय किसी देश में एक वर्ष की अवधि में उत्पादित होने वाली समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य के जोड़ से है जिसे ह्रास को घटाकर एवं विदेशी लाभ को जोड़कर निकाला जाता है।

प्रश्न 02: भारत में राष्ट्रीय आय को मापने हेतु किस विधि का उपयोग किया जाता है?

उत्तर: भारत में राष्ट्रीय आय को मापने हेतु उत्पादन गणना विधि एवं आय गणना विधि का सम्मिलित रूप से प्रयोग किया जाता है।

प्रश्न 03: बहुविकल्पीय प्रश्न।

1. ''राष्ट्रीय आय किसी समाज की वह वास्तविक आय है जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी शामिल है तथा जिसे मुद्रा में मापा जो सके।'' यह परिभाषा है:

(अ) मार्शल की, (ब) पीगू की,

(स) कीन्स की, (द) इनमें से किसी की नहीं।

2. बाजार मूल्य पर आंकलित शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में से अप्रत्यक्ष करों को घटाने एवं सब्सिडी को जोड़ने पर प्राप्त होने वाला मूल्य कहलाता है:

(अ) साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद, (ब) सकल राष्ट्रीय उत्पाद,

(स) बाजार मूल्य पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद, (द) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद।

उत्तर: 1. (ब), 2. (अ)।

प्रश्न 04: रिक्त स्थान भरिए।

(क) भारत में सर्वप्रथम राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने का श्रेय ..... को जाता है।

(ख) ..... ने राष्ट्रीय आय की गणना की सामाजिक लेखांकन विधि का प्रतिपादन किया था।

उत्तर: (क) दादाभाई नौरोजी। (ख) प्रो. रिचार्ड स्टोन।

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Dhar, P.K. (2003) : *Indian Economy Its Growing Dimensions*, Kalyani Publication, Ludhiana.
- Jhingan, M.L. (2009) : *Principles of Economics,* Vrinda Publications (P) Ltd., Delhi.

- Seth, M.L. (2009) : *Principles of Economics,* Laxmi Narain Agarwal, Agraदत्त, रूद्र एवं सुन्दरम, के.पी.एम. (2006): भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चांद एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- सेठी, टी.टी. समष्टि (2010): समष्टि अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- आर्थिक समीक्षा 2010-11, भारत सरकार।

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1: राष्ट्रीय आय का अर्थ बताईये। राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं की व्याख्या करते हुए इनमें अन्तर स्पष्ट डालिए।

प्रश्न 02: राष्ट्रीय आय की गणना की कौन-कौन सी विधियां हैं ? इसकी गणना में क्या कठिनाईयां आती हैं ?

प्रश्न 03: राष्ट्रीय आय की विभिन्न संकल्पनाओं को बताते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 04: स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में राष्ट्रीय आय की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए।

इकाई 3 जनसंख्या, मानवीय संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 जनसंख्या: एक परिचय
3.4 विश्व एवं भारतीय जनसंख्या की प्रवृत्तियां
3.5 भारतीय जनसंख्या के प्रमुख लक्षण
3.5.1 आयु संरचना
3.5.2 लिंग अनुपात
3.5.3 ग्रामीण-शहरी जनसंख्या
3.5.4 साक्षरता अनुपात
3.5.5 जीवन-प्रत्याशा
3.5.6 जन्म दर एवं मृत्यु दर
3.5.7 जनसंख्या घनत्व
3.5.8 जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण
3.6 भारत में जनाधिक्य अथवा जनसंख्या विस्फोट की समस्या
3.6.1 भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण
3.6.2 भारत में जनाधिक्य अथवा जनसंख्या विस्फोट के बुरे प्रभाव
3.6.3 जनसंख्या नियन्त्रण के उपाय
3.7 जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक विकास में सम्बन्ध
3.7.1 जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव
3.7.2 आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव
3.8 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति
3.9 सारांश
3.10 शब्दावली
3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि राष्ट्रीय आय क्या है ?, इसकी गणना कैसे की जाती है ? एवं, भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का क्या महत्व है ?

एक देश में मानवीय संसाधन अर्थात् उपलब्ध जनसंख्या उस देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आर्थिक विकास का प्रतिफल अन्तिम रूप से मानवीय गुणों, उसकी कार्यकुशलता तथा उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। प्रस्तुत इकाई में भारत की जनसंख्या की प्रवृत्तियों, प्रमुख लक्षणों, जनाधिक्य की समस्या/उपाय तथा जनसंख्या का आर्थिक विकास से सम्बन्ध, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति आदि बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियों, इसकी समस्याओं, भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में जनसंख्या के महत्व को समझ सकेंगे तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियां क्या हैं।
- बता सकेंगे कि जनसंख्या वृद्धि की समस्याएं एवं इसके नियन्त्रण के क्या उपाय हैं।
- समझा सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास हेतु मानवीय संसाधन क्यों महत्वपूर्ण हैं।

3.3 जनसंख्या: एक परिचय

विश्व का प्रत्येक देश आर्थिक दृष्टि से उन्नति का आकांक्षी है और देश का आर्थिक विकास मुख्य रूप से दो बातों पर निर्भर करता है: प्रथम, प्राकृतिक संसाधन एवं द्वितीय, मानवीय संसाधन। वास्तविक रूप में आर्थिक विकास में सबसे अधिक योगदान मानवीय संसाधन अर्थात् उस देश में उपलब्ध जनसंख्या का ही होता है। जनसंख्या के सक्रिय सहयोग के बिना आर्थिक उन्नति और विकास के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। प्राकृतिक साधन एवं पूँजी आदि को उत्पादन कार्य में लगाने के लिए मानवीय प्रयत्नों की ही आवश्यकता होती है। मनुष्य अपनी बौद्धिक एवं शारीरिक शक्ति से भौतिक साधनों का शोषण करता है, नवप्रवर्तनों द्वारा उत्पादन प्रक्रिया को विकसित करता है और इस प्रकार आर्थिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है। स्पष्टतः जनसंख्या आर्थिक विकास का साधन ही नहीं वरन् साध्य भी है और यह विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती

है परन्तु वर्तमान समय में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या विश्व की गम्भीरतम समस्याओं में एक प्रमुख समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है।

3.4 विश्व एवं भारतीय जनसंख्या की प्रवृत्तियां

विश्व जनसंख्या: पृथ्वी पर मानव जाति का इतिहास बहुत पुराना है। विद्वानों का मानना है कि इस ग्रह पर मनुष्य का जन्म 20-30 लाख वर्ष पूर्व हुआ था। पृथ्वी पर तब से लेकर सन् 1800 तक मनुष्य जाति की कुल संख्या बढ़कर 01 अरब हो गई। यह संख्या सन् 1930 में बढ़कर 02 अरब, सन् 1960 में 03 अरब, सन् 1975 में 04 अरब और 11 जुलाई 1987 को 05 अरब हो गई। 05 अरब के बिन्दु को प्राप्त करने के कारण ही 11 जुलाई को प्रतिवर्ष 'विश्व जनसंख्या दिवस' के रूप में मनाया जाता है। 12 अक्टूबर 1999 को विश्व की जनसंख्या बढ़कर 06 अरब हो गई। (12 अक्टूबर 1999 के दिन को संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष ने '06 अरब जनसंख्या के दिवस' के रूप में घोषित किया)। इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी पर जनसंख्या को मानव के जन्म से 01 अरब होने में कई लाख वर्ष लगे, 02 अरब होने में 130 वर्ष, 03 अरब होने में 30 वर्ष, 04 अरब होने में 15 वर्ष, 05 अरब होने में 12 वर्ष और 06 अरब होने में भी मात्र 12 वर्षों का समय लगा। संयुक्त राष्ट्र संघ के आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाग के अनुसार वर्ष 2010 में विश्व की कुल अनुमानित जनसंख्या 6.9087 अरब थी। एक अनुमान के अनुसार, सन् 2050 तक यह 9.1 अरब हो जायेगी। इसी अवधि में जहाँ विकसित देशों की जनसंख्या 1.2 अरब के स्तर पर ही बने रहने का आंकलन है, वहीं विकासशील देशों में जनसंख्या का वर्तमान स्तर 5.3 अरब से बढ़कर 7.8 अरब तक पहुँचने का अनुमान है।

उल्लेखनीय है कि विश्व में जनसंख्या के मामले में पांच बड़े देश चीन, भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, इण्डोनेशिया, एवं ब्राजील है जिनकी जनसंख्या क्रमशः 134.10 करोड़, 121.02 करोड़, 30.87 करोड़, 23.76 करोड़ एवं 19.07 करोड़ है।

भारतीय जनसंख्या: भारत में जनगणना का कार्य सर्वप्रथम 1872 में किया गया, परन्तु जनसंख्या की क्रमवार और व्यवस्थित गणना सन् 1881 से की जा रही है। सन् 1891 में भारत की कुल जनसंख्या 23.6 करोड़ थी, जो 1951 में 36.11 करोड़, 1991 में 84.64 करोड़ तथा 2001 में बढ़कर 102.87 करोड़ हो गई। जनगणना 2011 के तदर्थ आँकड़ों के अनुसार, वर्तमान में भारत की कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ है जहां विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत भाग निवासित है जबकि उसके पास विश्व क्षेत्रफल का केवल 2.42 प्रतिशत भाग ही है। 2001-2011 की अवधि में देश की जनसंख्या वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत आंकलित की गयी है। भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि का प्रमुख कारण जन्मदर (22.22 प्रति हजार) एवं मृत्युदर (6.4 प्रति हजार) में पर्याप्त अन्तर होना भी है।

विश्व में, भारत की जनसंख्या चीन के पश्चात् द्वितीय स्थान पर है और यह 1.41 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रही है। सम्भावना है कि सन् 2030 में भारत चीन को पीछे छोड़कर विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जायेगा। एक अनुमान के अनुसार, सन् 2030 में चीन की जनसंख्या 144.6 करोड़ होगी, जबकि उसी समय भारत की जनसंख्या 144.9 करोड़ हो जायेगी। इसके पश्चात् अगले दो दशकों में भारत में जनसंख्या वृद्धि होती रहेगी, वहीं चीन की जनसंख्या में कमी आने की सम्भावना है। सन् 2050 में भारत और चीन की जनसंख्या क्रमशः 159.3 करोड़ तथा 139.2 करोड़ हो जाने और सन् 2050 में ही दोनों की संयुक्त जनंसख्या (298.5 करोड़) विश्व की कुल अनुमानित जनसंख्या का एक तिहाई होने का अनुमान है।

3.5 भारतीय जनसंख्या के प्रमुख लक्षण

भारतीय जनसंख्या से सम्बन्धित प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं:

3.5.1 आयु संरचना:

आयु संरचना से तात्पर्य एक देश में विभिन्न आयु वर्गों में लोगों की संख्या से है। एक देश के लिए आयु संरचना का विशेष महत्व होता है क्योंकि यह देश की आर्थिक, सामाजिक, व्यावसायिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक ढ़ांचे पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। इस संरचना से अनेक जानकारियां प्राप्त होती हैं, जैसे- श्रम करने वाली जनसंख्या, विद्यालय जाने वाले बच्चों की संख्या, विवाह योग्य जनसंख्या, मतदाताओं की संख्या, आश्रितों की संख्या आदि। इन जानकारियों का उपयोग नीति-निर्माण में किया जाता है। सामान्यतः किसी देश की जनसंख्या को तीन बड़े आयु वर्गों में रखा जाता है: 0-14 वर्ष (बाल जनसंख्या का वर्ग), 15-64 वर्ष (प्रौढ़ जनसंख्या का वर्ग) तथा 65 वर्ष से अधिक (वृद्ध जनसंख्या का वर्ग)। वर्ष 2009 में भारत में कुल जनसंख्या का 31.1 प्रतिशत 0-14 वर्ष के आयु-वर्ग में, 63.6 प्रतिशत 15-64 वर्ष के आयु-वर्ग में तथा 5.3 प्रतिशत 65 वर्ष से अधिक के आयु-वर्ग में है।

3.5.2 लिंग अनुपात:

लिंग अनुपात से आशय एक देश की जनसंख्या में पुरूषों के तुलना में स्त्रियों की संख्या है। इसे स्त्री-पुरूष अनुपात भी कहा जाता है। इस अनुपात की गणना में देखा जाता है कि देश की जनसंख्या में 1000 पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या कितनी है। भारत में वर्ष 1901 में लिंग अनुपात 972 था अर्थात् 1000 पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या 972 थी जो 1951 में 946, 1991 में 927, 2001 में 933 तथा वर्ष 2011 में 940 है। जनगणना 2011 के तदर्थ आंकड़ों के अनुसार भारत में कुल 1,21,01,93,422 व्यक्तियों में 62,37,24,248 पुरूष तथा 58,64,69,174 महिलाएं हैं। वर्ष 2001 की तुलना में 2011 में भारत के लिंग अनुपात में 7 अंकों की वृद्धि दर्ज की गई है।

भारत में लिंग अनुपात की विशेषताओं को निम्नलिखित रूप में दर्शाया जा सकता है:

- विश्व के विभिन्न देशों की तुलना भारत में लिंग अनुपात कम है। रूस में यह अनुपात 1167, जापान में 1055, ब्राजील में 1042, श्रीलंका में 1034, संयुक्त राज्य अमेरिका में 1025 तथा सम्पूर्ण विश्व में लिंग अनुपात 984 है।
- भारत के विभिन्न राज्यों में लिंग अनुपात में भारी विषमताएं हैं। भारत में सर्वाधिक लिंग अनुपात वाले तीन राज्य केरल (1084), तमिलनाडु (995) और आन्ध्र प्रदेश (992) हैं जबकि केन्द्र शासित प्रदेशों में पुण्डुचेरी (1038), लक्षद्वीप (946) तथा अण्डमान एण्ड निकोबार (878) सबसे ऊपर हैं। सबसे कम लिंग अनुपात वाले तीन राज्य हरियाणा (877), जम्मू एण्ड कश्मीर (833) और सिक्किम (889) हैं जबकि केन्द्र शासित प्रदेशों में दमन एण्ड द्वीव (618), दादरा एण्ड नागर हवेली (775) तथा चण्डीगढ़ (818) सबसे कम लिंग अनुपात वाले क्षेत्र हैं।

भारत में लिंग अनुपात कम होने के प्रमुख कारण हैं- निर्धनता, निम्न जीवन स्तर, दहेज प्रथा, बाल विवाह, प्रजनन काल में स्त्रियों की अधिक मृत्यु होना, महिलाओं को समाज में कम महत्व देना आदि।

3.5.3 ग्रामीण-शहरी जनसंख्या

एक देश में ग्रामीण एवं शहरी जनसंख्या का अनुपात उसकी आर्थिक प्रगति को दर्शाता है। जिस देश में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या समान होती है, वह देश सन्तुलित आर्थिक-व्यवस्था वाला देश माना जाता है। देश में नगरीय जनसंख्या अधिक होने पर माना जाता है कि उस देश के निवासियों को अधिक सुख-सुविधाएं उपलब्ध हैं तथा ग्रामीण जनसंख्या अधिक होने पर विपरीत स्थिति होती है। जनसंख्या का ग्रामीण तथा शहरी वर्गों में विभाजन, लोगों के निवास-स्थान के आधार पर किया जाता है। ग्रामीण-शहरी जनसंख्या की गणना हेतु नगर क्षेत्र वे माने गये हैं जो निम्नलिखित मानदण्डों को पूरा करते हैं:

(1) वे सभी क्षेत्र जहां नगर निगम, नगर पालिका, छावनी बोर्ड अथवा अधि सूचित नगरीय क्षेत्र हों,

(2) वे क्षेत्र जहां- न्यूनतम जनसंख्या 5000 हो, कार्यशील पुरूष जनसंख्या का न्यूनतम 75 प्रतिशत गैर-कृषि कार्यों में संलग्न हो तथा जनसंख्या का घनत्व न्यूनतम 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो।

जनगणना 2001 के अनुसार, विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से दूसरे देश भारत में कुल जनसंख्या का 72.2 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में निवासित है जबकि 27.78 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों में। भारत में शहरी जनसंख्या का अनुपात बहुत धीमी गति से बढ़ा है। वर्ष 1901 में यह 11.8 प्रतिशत था जो 2001 में 27.78 प्रतिशत हो गया है। भारत में सर्वाधिक नगरीय जनसंख्या दिल्ली (93 प्रतिशत) में है।

3.5.4 साक्षरता अनुपात

शिक्षा को विकास की सीढ़ी, परिवर्तन का माध्यम एवं आशा का अग्रदूत माना जाता है। अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों को समाप्त करने, क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने, महिलाओं के सशक्तिकरण, अल्पसंख्यकों एवं उपेक्षित वर्गों को उचित स्थान प्रदान करने तथा आर्थिक विकास को बढ़ाने में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है। भारत में साक्षरता की दर वर्ष 1951 में मात्र 18.3 प्रतिशत थी जो वर्ष 2001 में बढ़कर 64.83 प्रतिशत हो गई। जनगणना 2011 के तदर्थ आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में भारत की साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है। देश में पुरूष साक्षरता दर वर्ष 2001 में 75.26 प्रतिशत की तुलना में 2011 में बढ़कर 82.14 प्रतिशत हो गई है। इसी प्रकार, महिलाओं की साक्षरता दर वर्ष 2001 में 53.67 प्रतिशत की तुलना में 2011 में बढ़कर 65.46 प्रतिशत हो गई है। देश में शिक्षा सुविधाओं का विकास होने के साथ ही पुरूष-महिला की साक्षरता दर का अन्तर भी कम हुआ है। (तालिका संख्या 1 देखें)। भारत में केरल 93.91 प्रतिशत के साथ सर्वाधिक साक्षरता दर वाला राज्य है जबकि सबसे कम साक्षरता दर बिहार में है जहां यह दर मात्र 63.82 प्रतिशत है।

तालिका 1: भारत में साक्षरता दर (1951-2011)(आंकड़े प्रतिशत में)

वर्ष	व्यक्ति	पुरूष	महिलाएं	पुरूष-महिला साक्षरता दर में अन्तर
1951	18.33	27.16	8.86	18.30
1991	52.21	64.13	39.29	24.84
2001	64.83	75.26	53.67	21.59
2011	74.04	82.14	65.46	16.68

3.5.5 जीवन-प्रत्याशा

जीवन-प्रत्याशा से आशय जीवित रहने की आयु से है। जब देश में एक शिशु जन्म लेता है तो उसके कितने वर्ष तक जीवित रहने की आशा की जाती है, इस जीवित रहने की आशा को ही जीवन-प्रत्याशा अथवा प्रत्याशित आयु अथवा औसत आयु कहा जाता है। देश मे मृत्यु दर के कम होने पर जीवन-प्रत्याशा अधिक होती है जबकि मृत्यु दर के अधिक होने पर जीवन-प्रत्याशा कम होती है। भारत में जीवित रहने की आयु में निरन्तर वृद्धि हुई है परन्तु यह गति बहुत धीमी रही है। देश में लोगों की जीवन-प्रत्याशा 1911 में 22.9 वर्ष थी जो 1951 में 32.1 वर्ष तथा 1991 में बढ़कर 59.9 वर्ष हो गयी। वर्ष 2009 में यह 69.89 वर्ष आंकलित की गई है। इसी वर्ष पुरूषों की जीवन-प्रत्याशा 67.46 वर्ष तथा महिलाओं की 72.61 वर्ष रही। विकसित देशों की तुलना में भी भारत में जीवन-प्रत्याशा कम है। उदाहरण के लिए, जापान में जीवन-प्रत्याशा 81 वर्ष, कनाडा में 79 वर्ष, आस्ट्रेलिया में 78 वर्ष तथा अमेरिका एवं इंग्लैण्ड में 77 वर्ष है।

3.5.6 जन्म दर एवं मृत्यु दर

जन्म दर: जन्म दर से अर्थ एक वर्ष में एक हजार जनसंख्या पर जन्म लेने वाले शिशुओं की कुल संख्या से है। इसे निकालने के लिए निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया जाता है:

$$\text{जन्म दर} = \frac{\text{एक वर्ष में जन्मे जीवित शिशुओं की कुल संख्या}}{\text{उस वर्ष में देश की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

एक देश की जनसंख्या का आकार बहुत हद तक उस देश की जन्म दर पर निर्भर करता है। यदि जन्म दर अधिक है तो जनसंख्या अधिक गति से बढ़ेगी। भारत में 70 के दशक तक जन्म दर में वृद्धि दर्ज की गई थी परन्तु अब इसमें लगातार कमी आ रही है। भारत में 1901-10 में यह 49.2 प्रति हजार थी जो 1951-60 में 41.7 प्रति हजार हो गयी। इसके पश्चात् जनसंख्या के नियोजन पर ध्यान देने के कारण यह वर्ष 1991 में कम होकर 29.5 प्रति हजार हो गयी। वर्तमान में यह 22.22 प्रति हजार है। भारत में जन्म दर के अधिक होने के कारण हैं- बाल विवाह, निर्धनता, विवाह की अनिवार्यता, संयुक्त परिवार प्रणाली, रूढ़िवादिता, मनोरंजन की सुविधाओं का कम होना, ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार नियोजन का पूर्ण रूप से सफल न होना आदि।

मृत्यु दर: मृत्यु दर से आशय एक वर्ष में एक हजार जनसंख्या पर मृत्युओं की संख्या से है। इसे निकालने के लिए निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया जाता है:

$$\text{मृत्यु दर} = \frac{\text{एक वर्ष में मृतकों की कुल संख्या}}{\text{उस वर्ष में देश की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

एक देश की जनसंख्या को जन्म दर के साथ ही मृत्यु दर पर भी महत्वपूर्ण ढ़ंग से प्रभावित करती है। मृत्युदर के अधिक होने की स्थिति में देश के लोग अधिक मृत्यु की क्षतिपूर्ति हेतु जन्म दर को बढ़ा देते हैं, जिससे जनसंख्या में वृद्धि हो जाती है। भारत में विकास प्रक्रिया के कारण मृत्यु दर में कमी आ रही है। 1911-20 की अवधि में यह 47.2 प्रति हजार थी। इसके बाद भारत में मृत्यु दर में निरन्तर गिरावट आयी है। 1941-50 में यह 27.4 थी जो वर्तमान में घटकर 6.4 प्रति हजार हो गयी।

भारत में मृत्यु दर में कमी के कारण हैं- शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार, बीमारियों एवं महामारियों में कमी, अन्धविश्वास में कमी, जीवन स्तर का ऊँचा होना, मनोरंजन के साधनों का विस्तार, महिलाओं की स्थिति में सुधार होना आदि।

3.5.7 जनसंख्या घनत्व

जनसंख्या घनत्व से आशय प्रति वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों की औसत संख्या से है। इसे 'व्यक्ति-भूमि अनुपात' भी कहा जाता है। यह किसी विशेष क्षेत्र में जनसंख्या के

केन्द्रीयकरण को दर्शाने का प्रमुख सूचक है। जनसंख्या घनत्व को निकालने के लिए एक देश की कुल जनसंख्या में उस देश के कुल क्षेत्रफल का भाग दे दिया जाता है। भारत में जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के कारण जनसंख्या घनत्व में भी वृद्धि होती जा रही है। वर्ष 1901 में यह 77 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी था जो 2001 में बढ़कर 325 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी हो गया। जनगणना 2011 के तदर्थ आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में भारत का जनसंख्या घनत्व 382 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी है, जिसमें पिछले दशक की तुलना में प्रति वर्ग किमी 57 व्यक्तियों की वृद्धि हुई है।

उल्लेखनीय है कि भारत में विश्व के कुल क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है जबकि यहां विश्व जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत निवासित है। संयुक्त राज्य अमेरिका में विश्व क्षेत्रफल का 7.2 प्रतिशत तथा विश्व जनसंख्या का मात्र 4.5 प्रतिशत है। विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले कुल दस देशों में जनसंख्या घनत्व के मामले में बांग्लादेश के बाद भारत दूसरे स्थान पर है। भारत में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व बिहार में (1102 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी) तथा सबसे कम अरूणाचल प्रदेश में (17 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी) है; जबकि केन्द्रशासित प्रदेशों में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व दिल्ली में (11297 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी) तथा सबसे कम अण्डमान एण्ड निकोबार में (46 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी) है।

3.5.8 जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण

जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण से अर्थ देश की कुल कार्यशील जनसंख्या का विभिन्न उत्पादन क्रियाओं में वितरण से है अर्थात् इसमें देखा जाता है कि कार्यशील जनसंख्या का कितना भाग जीविकोपार्जन हेतु किस क्षेत्र में संलग्न है। सामान्यतः इस वितरण को अर्थव्यवस्था के तीन भागों- प्राथमिक क्षेत्र (कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र), द्वितीयक क्षेत्र (उद्योग क्षेत्र) एवं तृतीयक क्षेत्र (सेवा क्षेत्र) से सम्बद्ध करके देखा जाता है। कम विकसित देशों में अधिकांश जनसंख्या प्राथमिक क्षेत्र में संलग्न होती है, जबकि विकसित देशों में जनसंख्या द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में अधिक संलग्न रहती है। पिछड़े देशों में विकास होने के साथ ही वहां प्राथमिक क्षेत्र में उत्पादन बढ़ने लगता है जिससे इस क्षेत्र में लगे श्रमिक द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र की ओर जाने लगते हैं।

भारत में 1901 में कार्यशील जनसंख्या का 71.8 प्रतिशत भाग प्राथमिक क्षेत्र में तथा 12.6 प्रतिशत एवं 15.6 प्रतिशत भाग क्रमशः द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में संलग्न था। वर्ष 2011 में प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में संलग्न जनसंख्या का प्रतिशत क्रमशः 64.9, 13.6 एवं 21.5 है। स्पष्ट है कि आर्थिक विकास के साथ ही भारत में जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण में परिवर्तन हुआ है परन्तु इस परिवर्तन की गति बहुत धीमी रही है।

3.6 भारत में जनाधिक्य अथवा जनसंख्या विस्फोट की समस्या

प्राचीन समय में अधिक जनसंख्या को कोई समस्या नहीं माना जाता था वरन् विभिन्न विचारक अधिक जनसंख्या को 'प्रगति एवं सम्पन्नता का सूचक' मानते थे, परन्तु वर्तमान में जनसंख्या की

समस्या मानव की सबसे जटिल समस्या बन गई है। विशेषकर, अल्पविकसित एवं विकासशील देशों के लिए अति जनसंख्या एक गम्भीर समस्या का रूप लेती जा रही है जो इन देशों के समग्र विकास में बाधा उत्पन्न कर रही है। हर्षमैन के अनुसार, 'जनसंख्या का दबाव विकास के लिए एक बेढंगा और निष्ठुर प्रोत्साहन है।' वास्तव में, पूर्व में जनसंख्या का उचित नियन्त्रण एवं नियोजन न होने के कारण ही आज समस्याएँ उग्र रूप ले रहीं हैं। भारत, जो जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में चीन के बाद दूसरा बड़ा देश है, की तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या भी विभिन्न समस्याएं उत्पन्न कर रही है। जनगणना 2011 के तदर्थ आँकड़ों के अनुसार, वर्तमान में भारत की कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ है जो विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत निवासित है जबकि उसके पास विश्व क्षेत्रफल का केवल 2.42 प्रतिशत भाग ही है। 2001-2011 की अवधि में देश की जनसंख्या वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत आंकलित की गयी है। भारत में यह जनाधिक्य (जनसंख्या-विस्फोट) रोजगार, ऊर्जा-पूर्ति, पर्यावरण-प्रदूषण आदि की समस्याओं को बढ़ा रहा है। इतनी तेजी से बढ़ती जनसंख्या का समाधान करने के लिए समुचित और प्रभावशाली व्यवस्था तैयार करना सबसे महत्वपूर्ण चुनौती है।

(नोट: भारत में जनाधिक्य (अथवा जनसंख्या विस्फोट) की समस्या को बताने के लिए यहां पर इसी इकाई के बिन्दु संख्या 3.4 में दिये गये भारतीय जनसंख्या की प्रवृत्तियों से सम्बन्धित आंकड़ों का उपयोग किया जाना चाहिये।)

3.6.1 भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण

पूर्व में बताया चुका है कि भारत में किसी प्रकार से जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:

- ❖ जन्म दर का ऊँचा एवं मृत्यु दर का नीचा होना,
- ❖ जन्म एवं मृत्यु दरों में पर्याप्त अन्तर होना,
- ❖ विवाह योग्य युवा जनसंख्या का अधिक होना,
- ❖ साक्षरता दर की दर कम होना,
- ❖ लोगों का भाग्यवादी एवं अन्धविश्वासी होना,
- ❖ संयुक्त परिवार प्रणाली का चलन में होना,
- ❖ ऊष्ण जलवायु का होना,
- ❖ निर्धनता की अधिकता होना,
- ❖ निरोधक उपायों का सीमित प्रयोग किया जाना,
- ❖ सामाजिक सुरक्षा का अभाव होना,
- ❖ स्त्रियों को निर्णय में भागीदारी न देना,
- ❖ शरणार्थियों का विदेशों से आगमन आदि।

3.6.2 भारत में जनाधिक्य अथवा जनसंख्या विस्फोट के बुरे प्रभाव

देश में जनाधिक्य की स्थिति होने पर इसके विभिन्न बुरे प्रभाव पड़ते हैं, जो निम्नलिखित हैं:

- ❖ मनुष्य की मूलभूत सुविधाओं (भोजन, वस्त्र एवं आवास) की व्यवस्था सम्बन्धी समस्या,
- ❖ कृषि योग्य भूमि में कमी,
- ❖ आवश्यक जल संसाधनों में कमी,
- ❖ ऊर्जा-संकट एवं विद्युतीकरण का अभाव,
- ❖ बेरोजगारी एवं प्रदूषण की समस्या,
- ❖ गरीबी और विषमता में वृद्धि,
- ❖ आश्रितता-अनुपात में वृद्धि
- ❖ उच्च प्रशिक्षित जनसंख्या की उपलब्धता में कमी,
- ❖ अति-नगरीकरण और नगरों की ओर पलायन की समस्याएं,
- ❖ भविष्य में अधिक जनंसख्या हेतु आवश्यक सुविधाओं की अनुपलब्धता,
- ❖ पर्याप्त विकास हेतु आवश्यक पूँजी निर्माण में कमी,
- ❖ कानून और व्यवस्था की समस्या आदि।

3.6.3 जनसंख्या नियन्त्रण के उपाय

भारत में तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या को नियन्त्रित करने एवं इसके स्थिरीकरण हेतु विभिन्न उपाय अपनाये जा सकते हैं:

- ❖ बाल उत्तरजीविता, मातृ स्वास्थ्य एवं गर्भ निरोधक मामलों पर निरन्तर एवं प्रभावी ढ़ंग से ध्यान देना;
- ❖ विभिन्न समुदायों के नेताओं द्वारा इसको सार्वजनिक रूप में समर्थन देना;
- ❖ परिवार कल्याण कार्यक्रम हेतु संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करना;
- ❖ राज्य स्वास्थ्य प्रणाली में कार्यकुशलता एवं जबावदेही लाना;
- ❖ महिलाओं की शिक्षा में वृद्धि करने एवं परिवार तथा समाज में उनकी स्थिति सुधारना;
- ❖ विभिन्न सरकारी, गैर-सरकारी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्वैच्छिक संस्थाओं की सहायता लेना आदि।

3.7 जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक विकास में सम्बन्ध

आज के इस अति गत्यात्मक विश्व में सभी देश विकसित देश बनने की आकांक्षा रखते हैं। भारत भी एक ऐसा ही देश है जो अपने प्रयासों से शीघ्र विकसित राष्ट्र बनना चाहता है। एक देश के विकास में वहां के उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन एवं मानवीय संसाधन अर्थात् जनसंख्या का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इनमें भी मानवीय संसाधन अर्थात् जनसंख्या अधिक महत्वपूर्ण होती है क्योंकि यह उपलब्ध जनसंख्या ही है जो अन्य संसाधनों का उपयोग कर देश के विकास को आगे बढ़ाती है। मनुष्य अपनी बौद्धिक एवं शारीरिक शक्ति से भौतिक साधनों का शोषण करता है, नवप्रवर्तनों द्वारा उत्पादन प्रक्रिया को विकसित करता है और इस प्रकार आर्थिक विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है। रिचर्ड टी. गिल ने भी कहा है कि 'आर्थिक विकास एक यान्त्रिक प्रक्रिया ही नहीं है बल्कि एक मानवीय उद्यम भी है। इसका प्रतिफल अन्तिम रूप से मानवीय गुणों, उसकी कार्यकुशलता तथा उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।' वास्तव में, जनसंख्या वृद्धि एवं आर्थिक विकास में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और यह दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस प्रभाव को दो प्रकार से देखा जा सकता है: प्रथम, जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव तथा द्वितीय, आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव।

3.7.1 जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर प्रभाव

देश में जनसंख्या वृद्धि का आर्थिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यदि जनसंख्या स्थिर गति से बढ़ती है तो यह आर्थिक विकास में सहयोग देती है परन्तु यदि जनसंख्या में तीव्र एवं असन्तुलित वृद्धि होती है तो यह आर्थिक विकास निम्नलिखित प्रकार से प्रभावित करती है:

- ❖ तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पादन वृद्धि का प्रभाव नगण्य हो जाता है।
- ❖ जनसंख्या में अधिक वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति आय में कमी आती है।
- ❖ अधिक जनसंख्या हेतु अधिक उपभोग पर व्यय करने के कारण बचत एवं विनियोग कम हो जाता है।
- ❖ उपभोग पर अधिक व्यय से विकास हेतु आवश्यक पूँजी-निर्माण कम हो जाता है।
- ❖ जनसंख्या वृद्धि के कारण शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास जैसी सुविधाओं में कमी आती है।
- ❖ जनसंख्या बढ़ने से श्रम-शक्ति में वृद्धि होती है परन्तु रोजगार के अवसर उस अनुपात में न बढ़ पाने से बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है।
- ❖ अति जनसंख्या से अपराध जैसी विभिन्न समस्याओं का उदय होता है।
- ❖ जनसंख्या वृद्धि से उत्पादक जनसंख्या पर आश्रितों का भार बढ़ता है।

- ❖ अधिक जनसंख्या से होने वाली समस्याओं के कारण कुशल जनसंख्या अन्य देशों में प्रवास कर जाती है।
- ❖ जनसंख्या में तीव्र वृद्धि से कृषि जोतों का आकार छोटा हो जाता है जिससे खेतों की उत्पादकता घटती है।

3.7.2 आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर प्रभाव

देश में आर्थिक विकास देश की जनसंख्या को भी महत्वपूर्ण ढ़ंग से प्रभावित करता है जो निम्नलिखित हैं:

- ❖ आर्थिक विकास होने से जन्मदर में कमी आती है।
- ❖ विकास के कारण शिक्षा एवं चिकित्सा सुविधाएं बढ़ने से मृत्युदर में कमी आती है।
- ❖ विकास प्रक्रिया से लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है। वे बच्चों को सम्पत्ति न मानकर दायित्व मानने लगते हैं।
- ❖ विकास के कारण लोगों की आय में वृद्धि तथा जीवन स्तर में सुधार होता है जिससे वे छोटे परिवार की ओर आकृषित होते हैं।
- ❖ शिक्षा एवं अन्य सुविधाओं के विकास होने से लड़का एवं लड़की का भेद कम होता है जिससे लोग कम सन्तानोत्पत्ति करते हैं।
- ❖ आर्थिक विकास के प्रभाव से जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी आती है।

3.8 राष्ट्रीय जनसंख्या नीति

जनसंख्या नीति के माध्यम से किसी देश में जनसंख्या का नियोजन किया जाता है। इस नीति में जनसंख्या के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। जनसंख्या नीति के परिमाणात्मक पहलु के अन्तर्गत जनसंख्या के आकार एवं संरचना को देश के राष्ट्रीय साधनों के अनुपात में नियन्त्रित किया जाता है, जबकि गुणात्मक पहलू के अन्तर्गत जनसंख्या के गुणों (जैसे- स्वास्थ्य स्तर, जीवन प्रत्याशा, शिक्षा आदि) में वृद्धि करने का प्रयास किया जाता है। भारत में जनसंख्या नीति प्रारम्भ स्वतन्त्रता के बाद से ही हो गया था परन्तु पूर्व में जनसंख्या को कोई समस्या नहीं मानने के कारण इस नीति पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना के समय जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होने के कारण इस ओर अधिक ध्यान दिया गया। चौथी योजना में तो इस नीति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई जबकि पांचवी योजना में आपातकाल के समय 16 अप्रैल, 1976 को राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की गई। इसमें राज्य सरकारों को जनसंख्या नियन्त्रण हेतु 'अनिवार्य बन्ध्याकरण' का कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया। इस अनिवार्यता

के कारण सरकार का पतन हो गया तथा अगली सरकार ने 1977 में नई जनसंख्या नीति की घोषणा की जिसमें अनिवार्यता के स्थान पर स्वेच्छा के सिद्धान्त को महत्व प्रदान किया गया साथ ही 'परिवार नियोजन कार्यक्रम' का नाम बदलकर 'परिवार कल्याण कार्यक्रम' कर दिया गया। इसके पश्चात् जून 1981 में भी सरकार ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति में संशोधन किया।

नवीन जनसंख्या नीति: 2000

केन्द्र सरकार ने 15 फरवरी, 2000 को नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की। इस नीति में जनसंख्या के परिमाण को राष्ट्रीय साधनों के अनुरूप नियन्त्रित करने एवं जीवन-स्तर में गुणात्मक सुधार लाने के लिए तीन उद्देश्य निश्चित किये गये:

- तात्कालिक उद्देश्य: पर्याप्त मात्रा में गर्भ निरोधक उपायों का विस्तार करने के लिए स्वास्थ्य के बुनियादी ढ़ांचे का विकास करना।
- मध्यमकालीन उद्देश्य: कुल प्रजनन दर को सन् 2010 तक 2.1 के प्रतिस्थापन स्तर तक लाना।
- दीर्घकालीन उद्देश्य: सन् 2045 तक जनसंख्या ऐसे स्तर पर स्थिर करना जो आर्थिक वृद्धि, सामाजिक विस्तार तथा पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से अनुकूल हो।

इस नीति में छोटे परिवार के प्रोत्साहन हेतु विभिन्न प्रेरक उपायों की घोषणा की गई, जिनमें प्रमुख हैं: छोटे परिवार को बढ़ावा देने वाली पंचायतों एवं जिला परिषदों को केन्द्र सरकार द्वारा पुरष्कृत करना, गरीबी रेखा से नीचे के उन परिवारों को 5000 रूपये की स्वास्थ्य बीमा की सुविधा देना जिनके केवल दो बच्चे हैं और उन्होने बन्ध्याकरण करवा लिया है, बाल-विवाह निरोधक अधिनियम तथा प्रसव पूर्व लिंग परीक्षण तकनीकी निरोधक अधिनियम को कड़ाई से लागू किया जाना, गर्भपात सुविधा योजना को मजबूत करना, ग्रामीण क्षेत्रों में बन्ध्याकरण की सुविधा हेतु सहायता देना आदि। इसके साथ ही देश में राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग, राज्य जनसंख्या आयोग एवं योजना आयोग में समन्वय प्रकोष्ठ का गठन भी किया गया है।

3.9 सारांश

जनसंख्या देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। यदि देश में राष्ट्रीय साधन तथा जनसंख्या का एक उचित संयोग हो तो देश तीव्रता से आर्थिक विकास करता है। यदि इस संयोग में असन्तुलन आ जाये अर्थात् जनसंख्या, राष्ट्रीय साधनों की तुलना में तीव्र गति से बढ़े तो देश में विभिन्न प्रकार की सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ जन्म लेने लगती हैं। भारत आज इसी अवस्था में है। यहाँ विभिन्न योजनाओं के माध्यम से आर्थिक संवृद्धि को बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है, परन्तु 1.41 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ती जनसंख्या इन प्रयासों के सकारात्मक प्रभाव को समाप्त

कर रही है। अतिशय जनसंख्या के कारण मनुष्य की मूलभूत सुविधाओं (भोजन, वस्त्र एवं आवास) की व्यवस्था सम्बन्धी समस्या, बेरोजगारी एवं प्रदूषण की समस्या, ऊर्जा-संकट, विद्युतीकरण का अभाव, मन्द विकास गति, कानून और व्यवस्था की समस्या, अति-नगरीकरण और नगरों की ओर पलायन की समस्या बढ़ती जा रही है। इसके परिणामस्वरूप भविष्य में भी अधिक जनंसख्या हेतु आवश्यक सुविधाओं की अनुपलब्धता, कृषि योग्य भूमि में कमी, आवश्यक जल संसाधनों में कमी, पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि, पर्याप्त रोजगार की अनुपलब्धता, गरीबी और विषमता में वृद्धि, उच्च प्रशिक्षित जनसंख्या की उपलब्धता में कमी, प्रति व्यक्ति आय में कमी, पर्याप्त विकास हेतु आवश्यक पूँजी निर्माण में कमी, आश्रितता-अनुपात में वृद्धि जैसी विभिन्न समस्याएँ आवश्यक रूप से उत्पन्न होगीं। देश में स्वतन्त्रता के बाद से ही जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए प्रयास किये जाते रहे हैं परन्तु इसमें अपेक्षित सफलता नहीं मिल पायी है। भारत में नवीन जनसंख्या नीति 2000 के द्वारा तात्कालिक, मध्यमकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्य बनाकर आर्थिक विकास हेतु आवश्यक स्थिर एवं गुणवान जनसंख्या प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

3.10 शब्दावली

कार्यशील जनसंख्या: कुल जनसंख्या में से बाल जनसंख्या (0-14 वर्ष) एवं वृद्ध जनसंख्या (65$ वर्ष) को घटा देने पर जो जनसंख्या शेष रहती है, उसे कार्यशील जनसंख्या अथवा उत्पादक जनसंख्या कहा जाता है।

जनसंख्या-विस्फोट: जनसंख्या-विस्फोट एक ऐसी स्थिति है जिसमें जनसंख्या अत्यधिक तीव्र गति से बढ़ती है जिसे थोड़े समय में नियन्त्रित नहीं जा सकता है। भारत में 70 के दशक में यह स्थिति व्याप्त थी।

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 01: जनसंख्या नीति से आप क्या समझते हैं ?

उत्तर: जनसंख्या नीति में जनसंख्या के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों पहलुओं का अध्ययन किया जाता है।

प्रश्न 02: लिंग अनुपात से क्या आशय है ?

उत्तर: लिंग अनुपात से आशय एक देश की जनसंख्या में पुरूषों के तुलना में स्त्रियों की संख्या है। इसे स्त्री-पुरूष अनुपात भी कहा जाता है।

प्रश्न 03: बहुविकल्पीय प्रश्न।

1. भारत में जनसंख्या घनत्व है:

(अ) 382 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी, (ब) 340 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी,

(स) 329 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी, (द) इनमें से कोई नहीं।

2. भारत में सर्वाधिक लिंग अनुपात वाला राज्य है:

(अ) तमिलनाडु, (ब) केरल,

(स) आन्ध्र प्रदेश, (द) दिल्ली।

उत्तर: 1. (अ), 2. (ब)।

प्रश्न 04: निम्नलिखित कथनों में सत्य/असत्य बताईये।

(क) भारत में नवीन जनसंख्या नीति की घोषणा 15 फरवरी, 2000 को की गई।

(ख) 1976 की जनसंख्या नीति में 'परिवार नियोजन कार्यक्रम' का नाम बदलकर 'परिवार कल्याण कार्यक्रम' कर दिया गया।

(ग) जनसंख्या नीति 2000 का दीर्घकालीन उद्देश्य सन् 2045 तक जनसंख्या को स्थिर अवस्था में लाना है।

उत्तर: (क) सत्य, (ख) असत्य, (ग) सत्य।

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dhar, P.K. (2003): *Indian Economy : Its Growing Dimensions,* Kalyani Publishers, Ludhiana.
2. Dutt, Rudra & Sundram, K.P.M. (2006): *Indian Economy,* S. Chand and Company Ltd., New Delhi.
3. GOI : *Census of India, 2011,* Office of the Registrar General and Census Commissioner, India. (www.censusindia.gov.in).
4. कुमार, वी. (2007): जनांकिकी, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., आगरा।
5. पन्त, जे.सी. (2006): जनांकिकी, विशाल पब्लिशिंग कं., जालन्धर।

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1: 'भारतीय जनसंख्या में तीव्र वृद्धि देश की आर्थिक प्रगति में बाधक है।' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न 02: भारत में जनसंख्या-विस्फोट की समस्या पर एक निबन्ध लिखिए।

प्रश्न 3: भारत में जनसंख्या की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं ? भारत की नवीन जनसंख्या नीति को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 04: 'आर्थिक विकास का प्रतिफल अन्तिम रूप से मानवीय गुणों, उसकी कार्यकुशलता तथा उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।' विवेचना कीजिए।

इकाई - 4 प्राकृतिक संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 प्राकृतिक संसाधनों का अर्थ एवं महत्व
4.4 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण
4.4.1 भूमि संसाधन
4.4.1.1 भारत में भूमि की उपलब्धता
4.4.1.2 भारत में भूमि का उपयोग
4.4.2 वन संसाधन
4.4.2.1 भारत में वन क्षेत्र
4.4.2.2 भारत में वनों का वर्गीकरण
4.4.2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था में वनों का महत्व अथवा लाभ
4.4.3 जल संसाधन
4.4.3.1 भारत में जल संसाधनों के प्रकार एवं जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता
4.4.3.2 जल संसाधनों का महत्व
4.4.4 खनिज संसाधन
4.4.4.1 भारत के प्रमुख खनिज संसाधन
4.4.4.2 भारत में खनिज संसाधनों की क्षेत्रवार उपलब्धता
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय में जनसंख्या की क्या विशेषताएं हैं ? मानवीय संसाधन एवं आर्थिक विकास में क्या सम्बन्ध होता है ?

प्राकृतिक संसाधन एक देश के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन संसाधनों पर मनुष्य अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्भर करता है। प्रस्तुत इकाई में विविध प्रकार के प्राकृतिक संसाधन एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इनके महत्व से सम्बन्धित बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों की भारत में उपलब्धता, इनके उपयोग एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इसके महत्व को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि प्राकृतिक संसाधनों से क्या तात्पर्य है।
- बता सकेंगे कि विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों की देश में क्या स्थिति है।
- समझा सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था हेतु प्राकृतिक संसाधन क्यों महत्वपूर्ण हैं।

4.3 प्राकृतिक संसाधनों का अर्थ एवं महत्व

प्राकृतिक संसाधनों से तात्पर्य उन निशुल्क उपहारों से है जो प्रकृति द्वारा मनुष्य को प्रदान किये गये हैं। प्राकृतिक साधनो में भूमि, मिट्टी, जल, वन, खनिज, समुद्री साधन, जलवायु, वर्षा आदि का समावेश किया जाता है। इन साधनों को मनुष्य अपने प्रयत्नों से उत्पन्न नहीं कर सकता। अन्य शब्दों में, प्राकृतिक संसाधन भौतिक पर्यावरण का वह भाग है जिन पर मनुष्य अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्भर रहता है।

प्राकृतिक संसाधन एक देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्राकृतिक संसाधनों की सामूहिक शक्ति ही देश की अर्थिक प्रगति को निर्धारित करती है। जो देश इन संसाधनों का उपयोग उचित प्रकार से करते हैं वे तीव्र गति से विकास करने में सफल होते हैं जबकि जिन देशों में विभिन्न कारणों से प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग नहीं हो पाता है, वे देश तेजी उन्नति नहीं कर पाते हैं। स्पष्टतः प्राकृतिक संसाधन एक देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. रिचार्ड टी0 गिल का भी मानना है कि ''प्राकृतिक साधनों का आर्थिक विकास को सीमित करने

या प्रोत्साहित करने में निर्णायक महत्व है। आर्थिक विकास के उच्च स्तर पर पहुंचे हुए अमेरिका व कनाडा आदि देश प्राकृतिक साधनों में भी सम्पन्न हैं।'' वास्तव में, विश्व के जिन देशों में प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं, उन देशों में आर्थिक विकास की सम्भावनाएं अधिक तीव्र हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक साधनों का प्रचुर मात्रा में पाया जाना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उनका उचित तकनीक एवं कुशल मानव शक्ति द्वारा उपयोग किया जाना भी आवश्यक है।

4.4 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण

भारत में बहु प्रकार के प्राकृतिक संसाधन पाये जाते हैं। प्राकृतिक संसाधनों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है:

- भूमि संसाधन
- वन संसाधन
- जल संसाधन
- खनिज संसाधन

4.4.1 भूमि संसाधन

प्राकृतिक संसाधनो में भूमि सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मनुष्य एवं समाज का सारा अस्तित्व और विकास इसी पर आश्रित है। देश की विभिन्न आर्थिक क्रियाएं भूमि पर ही संचालित की जाती हैं। एक देश में भूमि की उपलब्धता, उसकी भौगोलिक स्थिति एवं उसका उपयोग बहुत महत्व रखता है।

4.4.1.1 भारत में भूमि की उपलब्धता

भूमि की उपलब्धता के दृष्टिकोण से भारत एक विशाल देश है। इसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण 3,214 किलोमीटर तथा पूर्व से पश्चिम 2,933 किलोमीटर है। इसकी स्थल-सीमा की लम्बाई 15,200 किलोमीटर तथा समुद्र-तट की लम्बाई 6,100 किलोमीटर है। इसका कुल क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है। यह क्षेत्रफल सम्पूर्ण विश्व का 2.42 प्रतिशत है जबकि यहां विश्व की 17.5 प्रतिशत (121.02 करोड़) जनसंख्या निवास करती है। क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का विश्व में सातवाँ स्थान है। भारत का भूमि क्षेत्रफल ब्रिटेन की तुलना में 13 गुना तथा जापान की तुलना में 8 गुना अधिक है। भारत से बड़े छः देश क्रमश: रूस, कनाडा, अमेरिका, चीन, ब्राजील और आस्ट्रेलिया हैं।

4.4.1.2 भारत में भूमि का उपयोग

देश में भूमि के आकार के साथ ही भूमि की संरचना एवं उसका उपयोग भी महत्वपूर्ण होता है। भारत में कुल भैगोलिक क्षेत्रफल के 92.8 प्रतिशत भू-भाग के प्रयोग के प्रयोग सम्बन्धी आँकड़े प्राप्त होते हैं, शेष 7.2 प्रतिशत भू-भाग के विषय में कोई लिखित रिकार्ड उपलब्ध नहीं है। भारत में 3,06.1

मिलियन हेक्टेअर भूमि में से केवल 1,41.2 मिलियन हेक्टेअर भूमि पर ही खेती होती है जो कुल ज्ञात स्रोतों का लगभग 46 प्रतिशत है। 69.0 मिलियन हेक्टेअर भू-भाग पर वन सम्पदा।

भारत में प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि 0.3 हेक्टेअर है जबकि यह आस्ट्रेलिया में 3 हेक्टेअर, कनाडा में 1.9 हेक्टेअर तथा अमेरिका में 0.8 हेक्टेअर है। भारत में प्रति व्यक्ति कृषि भूमि कम होने को प्रमुख कारण यहां पर तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या है। वर्तमान परिस्थितियों में भूमि की कम उपलब्धता एवं बढ़ती जनसंख्या को ध्यान में रखकर अप्रयुक्त भूमि के उपयोग हेतु सिंचाई एवं नवीन तकनीक जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिये तथा साथ ही गैर-कृषि कार्यों (जैसे- सड़क, मकान, पार्क आदि) के लिए भूमि प्रयोग की संरचना में बदलाव लाया जाना चाहिये।

4.4.2 वन संसाधन

प्राकृतिक संसाधनों की श्रृंखला में वन संसाधनों का महत्वपूर्ण स्थान है। वन संसाधन एक राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति होते हैं जो इसके विकास को आगे बढ़ाने में योगदान करते हैं। भारत जैसे विकासशील देशों के लिए तो यह संसाधन विशेष महत्व रखते हैं। वन संसाधनों के महत्व के सम्बन्ध में श्री के0 एम0 मुन्शी ने लिखा है कि 'वृक्षों का अर्थ है जल, जल का अर्थ है रोटी और रोटी से हम जीवित रहते हैं।' पं0 जवाहरलाल नेहरू का कहना है कि 'एक उगता हुआ वृक्ष राष्ट्र की प्रगति का जीवित प्रतीक होता है।' भगवद्गीता में भी लिखा है कि 'वृक्ष हम सब लोगों को जीवन प्रदान करते हैं, इसलिए वृक्षों की रक्षा करनी चाहिए।'

4.4.2.1 भारत में वन क्षेत्र

भारत में वन क्षेत्रफल 6,77,088 वर्ग किलोमीटर है जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 20.6 प्रतिशत है। यह विश्व के कुल वन क्षेत्रफल का 1.7 प्रतिशत बैठता है। देश में वनों का वितरण असमान है। यहां मध्यप्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में वनों का संकेन्द्रण है जबकि बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान जैसे राज्यों में इसका प्रतिशत बहुत कम है। भारत में सर्वाधिक वन क्षेत्र 76,013 वर्ग किमी मध्य प्रदेश में है। अरूणाचल प्रदेश का 67,777 वर्ग किमी के साथ दूसरा तथा छत्तीसगढ़ का 55,863 के साथ तीसरा स्थान है। यदि विश्व स्तर पर वन क्षेत्र की तुलना करें तो पायेंगे कि विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में वन क्षेत्रफल कम है। उदाहरण के लिए, भारत में वन क्षेत्रफल अपने कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का मात्र 20.6 प्रतिशत है जबकि जापान में यह 64.4 प्रतिशत, स्वीडन में 55 प्रतिशत, रूस में 45.2 प्रतिशत तथा अमेरिका में 23 प्रतिशत है।

4.4.2.2 भारत में वनों का वर्गीकरण

भारत में वनों का वर्गीकरण दो आधार पर किया जाता है: प्रथम, सरकारी आधार पर एवं द्वितीय, प्रकृति के आधार पर।

(क) सरकारी आधार पर वनों का वर्गीकरण: भारत में सरकारी आधार पर वनों को तीन श्रेणियों में बांटा जाता है:

(1) आरक्षित वन: यह वन सरकार की सम्पत्ति होते हैं जिनका उपयोग रेगिस्तान की रोकथाम, भूमि का कटाव रोकना, बाढ़ नियन्त्रण करना जैसे राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। इन वनों का

प्रयोग सरकार की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है। वर्तमान में भारत में 54 प्रतिशत वन आरक्षित वन की क्षेणी में हैं।

(2) संरक्षित वन: यह वन भी सरकार के अधीन होते हैं परन्तु सरकार द्वारा कुछ शर्तों के साथ इनके उपयोग का अधिकार खोल दिया जाता है। इस समय भारत में 29 प्रतिशत वन संरक्षित वन की क्षेणी में हैं।

(3) अवर्गीकृत वन: यह वन सामान्यतः व्यवस्थित प्रबन्ध के अन्तर्गत नहीं हैं। ऐसे वनों को सरकार कुछ शुल्क के साथ ठेकेदारों को लकड़ी काटकर बेचने, पशुओं को चराने आदि हेतु दे देती है। वर्तमान में भारत में 17 प्रतिशत वन अवर्गीकृत वन की क्षेणी में हैं।

(ख) प्रकृति के आधार पर वनों का वर्गीकरण: प्रकृति के आधार पर वन छ' प्रकार के होते हैं:

(1) सदाबहार वन: यह वन 200 सेमी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इसीलिए यह सदैव हरे-भरे रहते हैं और सदाबहार वन कहलाते हैं। इन वनों में मुख्य रूप से नारियल, रबड़, बांस, ताड़, चन्दन आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। भारत में यह वन कुल वन क्षेत्रफल के 12 प्रतिशत में फैले हुए हैं।

(2) मानसूनी वन: मानसूनी वन 100 सेमी. से 200 सेमी. तक वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। भारत में यह वन कुल वन क्षेत्रफल के 80 प्रतिशत भाग में फैले हुए हैं जो अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। इन वनों में साल-सागौन, आम, शीशम, चन्दन, सेलम आदि के वृक्ष पाये जाते हैं।

(3) पर्वतीय वन: यह वन पहाड़ों पर पाये जाते हैं। भारत में यह वन मुख्यतः हिमालय के पहाड़ों पर पाये जाते हैं। इन वनों में औषधीय प्रयोग के वृक्ष अधिक होते हैं। इनमें ओक, मैगनेलिया तथा एल्पाइन के वृक्ष प्रमुख हैं।

(4) मरूस्थलीय वन: मरूस्थलीय वन कम वर्षा वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इन वनों में पाये जाने वाले वृक्षों में कांटेदार वृक्ष, बबूल, नीम, बेर, ताड़ आदि के वृक्ष प्रमुख हैं। यह वन मुख्यतः राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दक्षिणी प्रायद्वीप के शुष्क भाग, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र आदि में मिलते हैं।

(5) नदी तट के वन: यह वन नदियों के किनारों पर पाये जाते हैं। इन वनों में इमली, जामुन, शीशम, खेर आदि के वृक्ष पाये जाते हैं।

(6) डेल्टाई वन: यह वन ब्रह्मपुत्र, गंगा एवं गोदावरी नदियों के डेल्टाई क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहां समुद्र का पानी ज्वार के समय आ जाता है। इन वनों में मुख्य रूप से जलाने वाले लकड़ी के वृक्ष होते हैं।

4.4.2.3 भारतीय अर्थव्यवस्था में वनों का महत्व अथवा लाभ

भारत में प्राप्त होने वाले वन अर्थव्यवस्था के लिए अति महत्वपूर्ण एवं लाभदायक हैं। इन वनों के विभिन्न लाभों को दो भागों में बाँटा जा सकता है:

(1) वनों के प्रत्यक्ष लाभ

- ❖ वन बहुमूल्य लकड़ियों के भण्डार हैं। इनसे हमें ईंधन के लिए आवश्यक लकड़ी भी प्राप्त होती है।

- ❖ वन कागज, दियासलाई, कत्था आदि उद्योगों हेतु कच्चा माल उपलब्ध कराते हैं।
- ❖ वनों से सहायक उत्पादन के रूप में रबड़, तारपीन, गोंद, चन्दन, औषधियाँ, लाख आदि प्राप्त होती हैं।
- ❖ सरकार को वनों से राजस्व प्राप्त होता है जिससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।
- ❖ वनों से रोजगार एवं निर्यात में वृद्धि होती है जिससे विदेशी मुद्रा भी प्राप्त होती है।
- ❖ वनों से कृषि हेतु खाद एवं पशुओं हेतु चारा प्राप्त होता है।
- ❖ पशु-पक्षी विहार के लिए अनुकूल स्थान उपलब्ध होता है।

(2) वनों के अप्रत्यक्ष लाभ

- ❖ वन मिट्टी का कटाव एवं तेज हवाओं के वेग को रोकने में सहायक होते हैं।
- ❖ वन वर्षा में सहायक होते हैं। यह हवा में नमीं भी पहुंचाते हैं।
- ❖ वन भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि करते हैं।
- ❖ वन बाढ़ नियन्त्रण में सहायक होते हैं।
- ❖ वन जलवायु को शुद्ध रखते हैं एवं मानव जीवन की रक्षा करते हैं।
- ❖ वन पर्यावरण प्रदूषण को सन्तुलित बनाने में भी उपयोगी हैं।
- ❖ वन रेगिस्तान के प्रसार को रोकते हैं।
- ❖ वनों से प्राकृतिक सौन्दर्य में विस्तार होता है।

4.4.3 जल संसाधन

जल ही जीवन है। जल के बिना मानव, जीव-जन्तु, वनस्पति आदि के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। मानव जीवन के साथ ही अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र जल संसाधन पर ही निर्भर करते हैं। देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के दृष्टिकोण से जल संसाधन अति महत्वपूर्ण होते हैं। भारत में भी जल संसाधन सर्वाधिक महत्व का प्राकृतिक संसाधन है। 32,87,263 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाला विशाल देश भारत जल संसाधन की दृष्टि से भी धनी देश है। भारत में विश्व के धरातलीय क्षेत्र का लगभग 2.42 प्रतिशत, जल संसाधन का 4 प्रतिशत एवं जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत है। जल संसाधनों की दृष्टि से भारत का कनाडा एवं अमेरिका के बाद विश्व में तीसरा स्थान है।

4.4.3.1 भारत में जल संसाधनों के प्रकार एवं जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता

जल संसाधन के प्रकार: भारत में जल संसाधन के दो प्रकार हैं:

(1) भूगर्भ जल संसाधन: यह वह जल है जो भूमि के गर्भ में होता है। यह वर्षा एवं नदी-नालों के द्वारा रिसकर जमीन के अन्दर पहुंच जाता है। इस जल को कुओं, ट्यूबवैलों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में वर्षा अथवा नदियों का पानी नहीं पहुंच पाता है, वहां यह जल बहुत उपयोगी होता है।

(2) सतही जल संसाधन: यह वह जल है जो भूमि की सतह पर पाया जाता है। वर्षा का पानी जब नदियों से प्रवाहित होता है और झीलों तथा जलाशयों में एकत्र होता है तो उसे सतही जल संसाधन कहा जाता है।

जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता: पृथ्वी की सतह का 70 प्रतिशत भाग जलमग्न है परन्तु इसमें से मानव के उपयोग के योग्य जल मात्र 2.5 प्रतिशत ही है। शेष बचा हुआ 97.5 प्रतिशत जल लवणीय (खारा) है जिसका उपयोग मनुष्य द्वारा निजी कार्य अथवा कृषि हेतु नहीं किया जा सकता है। मानवीय उपयोग हेतु उपलब्ध 2.5 प्रतिशत में से भी 1 प्रतिशत बर्फीले स्थानों पर जमा हुआ है और 0.5 प्रतिशत भूमि में नमी के रूप में तथा गहरे जलाशयों में है, जिसका उपयोग विशेष तकनीक के अभाव में सम्भव नहीं है। इस प्रकार, पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल का मात्र 1 प्रतिशत ही मानव के उपयोग हेतु उपलब्ध है।

भारत में भूगर्भ एवं सतही जल के समृद्ध भंडार हैं परन्तु जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के कारण यहां प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता धीरे-धीरे कम होती जा रही है। जल संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार भारत में वर्ष 1901 में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 8,192 घनमीटर थी जो वर्ष 2001 में घटकर 1,869 घनमीटर रह गई है। इसके वर्ष 2025 में घटकर 1,465 घनमीटर तथा वर्ष 2050 में 1,235 घनमीटर रह जाने की सम्भावना है।

4.4.3.2 जल संसाधनों का महत्व

भारत के आर्थिक व सामाजिक विकास में जल संसाधन अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। मानव जीवन, कृषि, उद्योग, जहाजरानी आदि क्षेत्रों में भी जल संसाधनों का विशेष महत्व है। जल संसाधन के महत्व को समझते हुए भारत सरकार के जल संसाधन विकास मंत्रालय ने अपने ई-मैसेज में लिखा है कि भारत में प्राकृतिक संसाधनों प्रचुर एवं विविधपूर्ण भंडार है और जल भी उसमें से एक है। इसका विकास एवं प्रबन्धन कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गरीबी में कमी, पर्यावरणीय और निरन्तर आर्थिक विकास के लिए जल प्रबन्धन महत्पूर्ण है। जल संसाधनों के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा बताया जा सकता है:

कृषि में महत्व: भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जल संसाधन बहुत महत्वपूर्ण हैं। यहां की लगभग 64 प्रतिशत आबादी रोजगार हेतु प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषि के उत्पादन हेतु जल संसाधनों का होना अति आवश्यक है। परन्तु यहां मानसून निश्चित नहीं हैं। देश में प्रायः सूखा

अथवा बाढ़ आने की सम्भावना बनी रहती है। ऐसे में जल का उचित प्रबन्धन एवं जल के अन्य स्रोतों का विकास किया जाना आवश्यक है जिससे कृषि उत्पादकता में वृद्धि सम्भव हो सके।

हरित क्रान्ति में महत्व: हरित क्रान्ति के अन्तर्गत विभिन्न फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए कृषि में यन्त्रीकरण, गहन खेती, बहु-फसली खेती आदि को अपनाया जाता हैं। इन सभी प्रयासों की सफलता हेतु सिंचाई के लिए जल साधनों का समुचित विकास किया जाना आवश्यक है। इस प्रकार, कहा जा सकता है कि हरित क्रान्ति की सफलता हेतु जल संसाधन महत्वपूर्ण हैं।

शक्ति के क्षेत्र में महत्व: वर्तमान दौर में विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करने एवं विभिन्न आधुनिक सुविधाओं का उपभोग करने हेतु शक्ति की आवश्यक होती है। जल एक ऐसा संसाधन है जिसक उपयोग शक्ति के उत्पादन में भी किया जाता है। जल द्वारा शक्ति का उत्पादन करना अन्य शक्ति उत्पादन स्रोतों की तुलना में अधिक सस्ता होता है।भारत में स्वतन्त्रता के बाद से ही नदियों पर बड़े-बड़े बाँध (बहुउद्देशीय नदी परियोजनाएं) बनाकर शक्ति का उत्पादन किया जाता है।

उद्योगों के लिए महत्व: जल-विद्युत शक्ति के उपलब्ध हो जाने से शक्ति-चालित आधुनिक मशीनों, उपकरणों एवं यन्त्रों का प्रयोग सम्भव हुआ है। इससे कुटीर, लघु, एवं वृहद उद्योगों का तेजी से विकास करना सम्भव हुआ है। साथ ही कम समय और लागत में जल-विद्युत शक्ति को हजारों किलोमीटर दूर भेज सकना सम्भव होने के कारण उद्योगों के विकेन्द्रीकरण को प्रोत्साहन मिला है।

आन्तरिक जल परिवहन का विकास: आन्तरिक जल परिवहन के क्षेत्र में भी जल संसाधन का महत्वपूर्ण स्थान है। इस संसाधन के कारण ही देश में जल परिवहन की सुविधाओं का विस्तार सम्भव होता है जिससे आन्तरिक जल परिवहन का विकास होता है।

रोजगार के क्षेत्र में महत्व: जल संसाधन के कारण देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है। जल संसाधन के उचित प्रबन्धन से कृषि उत्पादन बढ़ता है एवं उद्योगों को पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल प्राप्त होता है जिससे उद्योग भी विकास करते हैं। इन सबके परिणामस्वरूप देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है।

4.4.4 खनिज संसाधन

एक देश के आर्थिक विकास हेतु खनिज संसाधन बहुत महत्व रखते हैं। इसके महत्व को दृष्टिगत करते हुए खनिज संसाधनों को आधुनिक सभ्यता के विकास का आधार माना जाता है। खनिज संसाधन विभिन्न उद्योगों का आधार हैं साथ ही यह शक्ति में वृद्धि एवं सुरक्षा में सहायता करते हैं। मनुष्यों को प्राप्त होने वाली विभिन्न वस्तुओं में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से खनिज संसाधनों का ही उपयोग किया जाता है। भारत के भू-गर्भ में तो खनिज पदार्थों का बाहुल्य है। विश्व में अभ्रक के उत्पादन में भारत का एकाधिकार है जबकि मैंगनीज में यह विश्व में तीसरे स्थान पर है।

भारत में उपलब्ध विभिन्न खनिज पदार्थों को इनकी पूर्ति के आधार पर तीन वर्गों में बांट सकते हैं:

1. पर्याप्त पूर्ति वाले खनिज जिनका निर्यात भी किया जाता है जैसे- अभ्रक, मैंगनीज, कच्चा लोहा, मैगनेसाइट आदि।

2. खनिज जिनमें भारत आत्मनिर्भर है जैसे- कोयला, जिप्सम, लाइमस्टोन, लिग्नाइट, बॉक्साइट, क्रोमाइट आदि।

3. अपर्याप्त पूर्ति वाले खनिज जिनका आयात किया जाता है जैसे- खनिज तेल, सीसा, तांबा, जस्ता, गंधक, निकिल, पारा आदि।

4.4.4.1 भारत के प्रमुख खनिज संसाधन

भारत में अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ मिलते हैं। यहां कुछ महत्वपूर्ण खनिज पदार्थों का उल्लेख किया जा रहा है:

अभ्रक: अभ्रक के उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। यहां पर सम्पूर्ण विश्व के 60 प्रतिशत अभ्रक का उत्पादन किया जाता है। इस खनिज का उपयोग बिजली उद्योग में, रेडियो एवं वायरलैस के निर्माण में तथा मोटर एवं इन्जीनियरिंग के लिए किया जाता है। भारत में उत्पादित होने वाले अभ्रक में सर्वाधिक योगदान झारखण्ड राज्य का है।

मैंगनीज: मैंगनीज के उत्पादन में भारत के विश्व में तृतीय स्थान है। यह एक खनिज धातु है जिसे लोहे में मिलाकर इस्पात तैयार किया जाता है। ड्राई बैटरी, ब्लीचिंग पाउडर, फर्श के टाइल,

रासायनिक पदार्थ, रेल के डिब्बे, वायुयान, पानी के जहाज आदि बनाने में इसका उपयोग होता है। मैंगनीज की अधिकांश खानें मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक में हैं।

लोहा: एक देश के औद्योगीकरण एवं आर्थिक विकास के लिए लोहा अति महत्वपूर्ण है। भवनों, मशीनों एवं बांधों के निर्माण, परिवहन साधनों के साथ विभिन्न कार्यों में लोहे का उपयोग किया जाता है। भारत में यह मुख्यतः उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र आदि राज्यों में पाया जाता है।

कोयला: कोयला शक्ति का एक प्रमुख साधन है। इसके उत्पादन में भारत का विश्व में तीसरा स्थान है। वर्तमान में भारत में 264.54 अरब टन कोयले के भंडार है। देश में इसका उपयोग उद्योगों, बिजली, रेल के ईधन आदि के रूप में किया जाता है। झारखण्ड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों में कोयले के भंडार प्रमुख रूप से केन्द्रित हैं।

तांबा: तांबा एक ऐसी धातु है जो प्राचीन काल से ही उपयोगी है। प्राचीन काल मे इसका उपयोग बर्तन सिक्के बनाने में किया जाता था जबकि आधुनिक समय में तांबे का उपयोग टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजनन, मोटर, जनरेटर, बिजली के तार, बल्ब का साकेट आदि बनाने में किया जाता है। भारत में तांबे के भंडार मुख्यतः राजस्थान, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश में हैं।

पेट्रोलियम: वर्तमान वैज्ञानिक युग में पेट्रोलियम पदार्थ बहुत महत्वपूर्ण हैं। उद्योगों, परिवहन के साधनों आदि में इसकी उपलब्धता परम आवश्यक है। भारत में यह असम, गुजरात, नहरकटिया, खम्भात, अंकलेश्वर, डिगबोई, कच्छ, बंगाल की खाड़ी, बाम्बे हाई आदि में पाया जाता है।

4.4.4.2 भारत में खनिज संसाधनों की क्षेत्रवार उपलब्धता

भारत में खनिज पदार्थ बहुतायत मात्रा में हैं परन्तु यह सभी स्थानों पर एक समान रूप से उपलब्ध नहीं हैं। झारखण्ड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ आदि खनिज पदार्थों की दृष्टि से बाहुल्यता वाले राज्य हैं। इनके अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण राज्य आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान, बिहार, तमिलनाडु एवं गुजरात हैं। बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, एवं पश्चिम बंगाल में लोहा, कोयला, अभ्रक, तांबा, बॉक्साइट, मैंगनीज तथा क्रोमाइट; मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश एवं महाराष्ट्र में कोयला, लोहा, मैंगनीज, बॉक्साइट तथा चूना पत्थर; कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु में सोना, लोहा, मैंगनीज, क्रोमाइट तथा तांबा और राजस्थान एवं गुजरात में पेट्रोलियम, अभ्रक, मैंगनीज आदि पाये जाते हैं ।

4.5 सारांश

प्राकृतिक संसाधन, जो प्रकृति द्वारा मनुष्यों को निशुल्क प्राप्त होते हैं, एक देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन संसाधनों की उपलब्धता ही देश की प्रगति को निर्धारित करती है।

जो देश अच्छी तकनीक एवं कुशल मानव शक्ति के सहयोग से प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग करते हैं वे तीव्र गति से विकास करने में सफल होते हैं और जिन देशों में प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग नहीं हो पाता है, वे तेजी उन्नति नहीं कर पाते हैं। भारत में विविध प्रकार के प्राकृतिक संसाधन पाये जाते हैं जैसे- भूमि संसाधन, वन संसाधन, जल संसाधन, खनिज संसाधन आदि। यह संसाधन कृषि कार्यों, सड़क, मकान, पार्क आदि के निर्माण में, विभिन्न उद्योगों में, औषधियों में, खाद एवं पशुओं के चारे में, बाढ़ नियन्त्रण में, मानव जीवन की रक्षा में, पर्यावरण प्रदूषण के सन्तुलन में आदि में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि प्राकृतिक संसाधन भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की सुदृढ़ पृष्ठभूमि तैयार करते हैं।

4.6 शब्दावली

हरित क्रान्ति: कृषि क्षेत्र में उत्पादन तकनीक एवं आगतों मे किये गये परिवर्तन के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में होने वाली वृद्धि को हरित क्रान्ति कहा जाता है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 01: प्राकृतिक संसाधनों से क्या आशय है ?

उत्तर: प्राकृतिक संसाधनों से तात्पर्य उन निशुल्क उपहारों से है जो प्रकृति द्वारा मनुष्य को प्रदान किये गये हैं।

प्रश्न 02: भारत में कौन-कौन से खनिज पाये जाते हैं ?

उत्तर: भारत में अभ्रक, मैंगनीज, कच्चा लोहा, मैगनेसाइट, कोयला, जिप्सम, लाइमस्टोन, लिग्नाइट, बॉक्साइट, क्रोमाइट आदि खनिज पदार्थ पाये जाते हैं।

प्रश्न 03: बहुविकल्पीय प्रश्न।

1. क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का विश्व में स्थान है:

(अ) पहला, (ब) दूसरा,

(स) पांचवा, (द) सातवां।

2. भारत में सर्वाधिक वन क्षेत्र किस राज्य में है:

(अ) अरूणाचल प्रदेश, (ब) मध्य प्रदेश,

(स) उत्तर प्रदेश, (द) इनमें से कोई नहीं ।

उत्तर: 1. (द), 2. (ब)।

प्रश्न 04: रिक्त स्थान भरिए।

(क) पृथ्वी पर उपलब्ध कुल जल का मात्र ..... प्रतिशत ही मानव के उपयोग हेतु उपलब्ध है।

(ख) ..... के उत्पादन में भारत का विश्व में एकाधिकार है।

उत्तर: (क) एक, (ख) अभ्रक।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dhar, P.K. (2003) : *Indian Economy Its Growing Dimensions*, Kalyani Publication, Ludhiana.
2. Fisher, J.I. (1964) : *The Role of Natural Resources in Economic Development : Principles and Patterns,* Eds. H. F. Williamson & J. A. Buttrick.
3. Ministry of Environment and Forest, Government of India.
4. दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम, के.पी.एम. (2006): भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चांद एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
5. आर्थिक समीक्षा 2010-11, भारत सरकार।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1: भारत के आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधनों के महत्व की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 2: वनों के क्या लाभ हैं ? भारत में वनों के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3: 'भारत में जल संसाधन' विषय पर एक निबन्ध लिखिए।

प्रश्न 4: 'खनिज संसाधन आधुनिक सभ्यता के विकास का आधार हैं।' व्याख्या कीजिए।

इकाई 5: अधो-संरचना और भारतीय अर्थव्यवस्था

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अधो-संरचना (अथवा आधारभूत संरचना) का अर्थ एवं महत्व
5.4 अधो-संरचना के प्रकार
5.5 आर्थिक अधो-संरचना के संघटक
5.5.1 शक्ति संसाधन
5.5.1.1 परम्परागत साधन
5.5.1.2 गैर-परम्परागत साधन
5.5.2 परिवहन संसाधन
5.5.2.1 सड़क परिवहन
5.5.2.2 रेल परिवहन
5.5.2.3 जल परिवहन
5.5.2.4 वायु परिवहन
5.5.3 संचार संसाधन
5.5.3.1 डाक सेवा
5.5.3.2 दूरसंचार सेवा
5.5.3.3 इंटरनेट एवं ब्रॉडबैंड सेवा
5.6 सामाजिक अधो-संरचना के संघटक
5.6.1 शिक्षा
5.6.2 स्वास्थ्य
5.6.3 आवास
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह पांचवीं इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों से क्या तात्पर्य है ?, देश में प्राकृतिक संसाधनों की क्या स्थिति है ? तथा, अर्थव्यवस्था के विकास हेतु प्राकृतिक संसाधन क्यों महत्वपूर्ण हैं ?

अधो-संरचना देश के विकास की धुरी होती है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत इकाई में अधो-संरचना, इसके प्रकार एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इसके महत्व से सम्बन्धित बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारत में अधो-संरचना की स्थिति एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इसके महत्व को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- बता सकेंगे कि अधो-संरचना क्या है।
- बता सकेंगे कि अधो-संरचना के प्रकार क्या हैं।
- बता सकेंगे कि आर्थिक एवं सामाजिक अधो-संरचना की देश में क्या स्थिति है।
- समझा सकेंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास हेतु अधो-संरचना क्यों महत्वपूर्ण हैं।

5.3 अधो-संरचना (अथवा आधारभूत संरचना) का अर्थ एवं महत्व

एक देश की प्रगति उसकी उपरि-संरचना अर्थात् कृषि एवं उद्योग के विकास पर निर्भर करती है। कृषि एवं उद्योग क्षेत्र के विकास के लिए ऊर्जा, परिवहन, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास आदि आधारभूत साधनों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। उपरि-संरचना के विकास में काम आने वाले इन साधनों को ही अधो-संरचना अथवा आधारभूत संरचना के अन्तर्गत रखा जाता है।

अधो-संरचना एक देश के विकास की पूर्व-शर्त होती है। जिस देश की अधो-संरचना जितनी सुदृढ़ होती है वह देश उतनी ही तेजी से विकास करने में सफल होता है। विश्व विकास रिपोर्ट के अनुसार, 'अधो-संरचना की पर्याप्तता एक देश की विभिन्न उत्पादन, विस्तृत व्यापार, जनसंख्या वृद्धि को हल करना, गरीबी दूर करना और वातावरणीय स्थितियों को सुधारने में असफलता के साथ, दूसरे देश की सफलता को निर्धारित करने में सहायता करती है।' स्पष्ट है कि एक देश के विकास की दृष्टि से अधो-संरचना की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है।

5.4 अधो-संरचना के प्रकार

अधो-संरचना को दो भागों में बांटा जा सकता है, प्रथम, आर्थिक अधो-संरचना एवं द्वितीय, सामाजिक अधो-संरचना।

आर्थिक अधो-संरचना: आर्थिक अधो-संरचना से तात्पर्य उस ढ़ांचे से है जो कृषि, उद्योग एवं व्यापार क्षेत्र को विभिन्न प्रकार से सहायता देते हैं। जैस- शक्ति संसाधन (कोयला, विद्युत, पेट्रोलियम), परिवहन संसाधन (सड़क, रेल, जल, वायु परिवहन), संचार संसाधन (डाक, दूरसंचार, मोबाइल, फैक्स सेवा) आदि।

सामाजिक अधो-संरचना: सामाजिक अधो-संरचना के अन्तर्गत वे सभी घटक आते हैं जो मानवीय पूँजी निर्माण में सहायक होते हैं। जैसे- शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास आदि।

अधो-संरचना के प्रकारों को निम्नलिखित चित्र द्वारा भी दर्शाया जा सकता है:

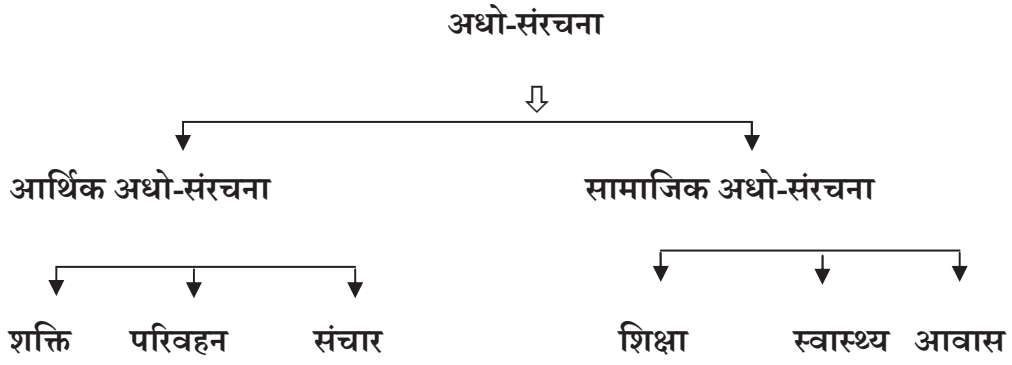

5.5 आर्थिक अधो-संरचना के संघटक

शक्ति संसाधन, परिवहन संसाधन एवं संचार संसाधन आर्थिक अधो-संरचना के तीन महत्वपूर्ण संघटक हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

5.5.1 शक्ति संसाधन

वर्तमान आधुनिक युग में शक्ति के संसाधनों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी पर्याप्त उपलब्धता देश के विकास की गति को तीव्र करती है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों में इन संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। इन सभी कारणों से प्रत्येक देश अपनी योजनाओं में शक्ति संसाधनों को विशेष महत्व देते हैं। शक्ति के संसाधनों को दो भागों में बांटा जा सकता है: प्रथम, परम्परागत साधन एवं द्वितीय, गैर-परम्परागत साधन।

5.5.1.1 परम्परागत साधन

5.5.1.1.1 कोयला: कोयला अति महत्वपूर्ण शक्ति संसाधन है। प्राचीन समय से ही कोयला को ईधन के रूप में प्रमुखता प्राप्त है। इसका उपयोग कारखाने, रेल इन्जन आदि चलाने में किया जाता है।

कोयले से बिजली के सामान तथा कोलतार भी बनाया जाता है। इससे प्राप्त बेंजाल, नेफ्था जैसे रासायनिक पदार्थों से रासायनिक उद्योग चलाये जाते हैं। भारत में कोयले के विशाल भण्डार विद्यमान हैं और इसके उत्पादन में विश्व में भारत का चीन और अमेरिका के बाद तीसरा स्थान है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि भारत वर्तमान दर पर ही कोयले का उत्पादन करता रहा तो वह खानों से एक हजार वर्षों तक कोयला प्राप्त कर सकता है। भारत में कोयला उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा आदि हैं। भारत में कोयले का उत्पादन 1950-51 में 323 लाख टन, 1990-91 में 2,255 लाख टन तथा 2008-09 में 4,933 लाख टन रहा। अप्रैल-नवम्बर, 2010 के दौरान कच्चे कोयले का उत्पादन 319.80 मिलियन टन था। 2009-10 के दौरान भारत में कोयले का आयात और निर्यात क्रमशः 67.744 मी. टन और 2171 मी. टन था।

5.5.1.1.2 विद्युत: विद्युत शक्ति का सर्वाधिक गतिशील साधन है। यह कृषि, उद्योग तथा शहरी-ग्रामीण विकास का एक महत्वपूर्ण घटक है। आधुनिक युग में अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में इसकी आवश्यकता पड़ती है। भारत में विद्युत का उत्पादन सन् 1900 में प्रारम्भ हुआ जबकि पहला पन-बिजलीघर कर्नाटक राज्य के शिवसमुद्रम नामक स्थान पर बनाया गया। देश में पंचवर्षीय योजनाओं में विद्युत उत्पादन क्षमता एवं वास्तविक उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई है। भारत में विद्युत उत्पादन 1950-51 में 5 बिलियन किलोवाट से बढ़कर 2009-10 में 771.5 बिलियन किलोवाट हो गया है। ग्रामीण विद्युतीकरण की बात करें तो राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना के अन्तर्गत 30 नवम्बर 2010 तक देश के 87,791 गांवों में बिजली दी गई और गरीबी रेखा से नीचे के 135.31 लाख परिवारों को कनेक्शन दिए गए हैं। विद्युत के विभिन्न स्रोत हैं जैसे- ताप विद्युत, जल विद्युत तथा आण्विक विद्युत। भारत में कुल विद्युत उत्पादन का 26 प्रतिशत जल विद्युत द्वारा, 71 प्रतिशत ताप विद्युत द्वारा तथा 3 प्रतिशत आण्विक विद्युत द्वारा उत्पादित किया जाता है। देश में कुल विद्युत उत्पादन का 37.6 प्रतिशत उद्योगों में, 21.7 प्रतिशत कृषि में तथा 24.4 प्रतिशत घरेलू क्षेत्र में उपयोग किया जाता है।

5.5.1.1.3 खनिज तेल या पेट्रोलियम: खनिज तेल अथवा पेट्रोलियम आधुनिक समय में बहुत महत्वपूर्ण संसाधन है। उद्योगों, परिवहन के साधनों आदि में इसकी उपलब्धता परम आवश्यक है। भूगर्भ से प्राप्त खनिज तेल का रिफाइनरी में शोधन किया जाता है जिससे पेट्रोल, डीजल, मिट्टी का तेल, चिकनाई वाले पदार्थ प्राप्त होते हैं। भारत में खनिज तेल मुख्यतः असम, त्रिपुरा, मणिपुर, गुजरात, नहरकटिया, खम्भात, अंकलेश्वर, डिगबोई, कच्छ, बंगाल की खाड़ी, बाम्बे हाई आदि में पाया जाता है। देश में खनिज तेल अथवा पेट्रोलियम का उत्पादन एवं तेल शोधन क्षमता में वृद्धि हो रही है। चालू वित्तीय वर्ष के दौरान (2010-11) कच्चे तेल के उत्पादन का अनुमान 37.96 मिलियन मीट्रिक टन लगाया गया है जो 2009-10 के दौरान कच्चे तेल के 33.69 मि. मी. टन उत्पादन की अपेक्षा 12.67 प्रतिशत अधिक है। यहां घरेलू तेल शोधन क्षमता 2009-10 में 177.97 मिलियन मीट्रिक टन थी। इसके 1 अप्रैल, 2011 तक बढ़कर 185.40 एमएमटी तथा 2011-12 के

अन्त तक 238.96 एमएमटी हो जाने की सम्भावना है। वर्तमान में भारत में 19 तेल शोधक कारखाने हैं। उल्लेखनीय है कि देश में उत्पादित खनिज तेल से यहां की केवल 30 प्रतिशत आवश्यकता ही पूरी हो पाती है, शेष 70 प्रतिशत खनिज तेल का विदेशों से आयात किया जाता है।

5.5.1.2 गैर-परम्परागत साधन

5.5.1.2.1 परमाणु शक्ति: आधुनिक युग में परमाणु शक्ति ने विकास की गति को तेज करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में परमाणु शक्ति के विकास एवं प्रोत्साहन का श्रेय डॉ. हामी जहाँगीर भाभा को है जिनके प्रयासों से फलस्वरूप 1945 में 'टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान' की स्थापना की गई। डॉ. भाभा की मृत्यु के पश्चात् इस संस्थान का नाम 'भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र' कर दिया गया। आज देश में कई परमाणु विद्युत केन्द्र हैं जैसे तारापुर परमाणु केन्द्र (महाराष्ट्र), रावतभाटा परमाणु शक्ति केन्द्र (राजस्थान), कल्पक्कम परमाणु केन्द्र (तमिलनाडु), नरौरा परमाणु शक्ति केन्द्र (उत्तर प्रदेश), काकरपार परमाणु शक्ति केन्द्र (गुजरात), कैगा परमाणु केन्द्र (कर्नाटक)।

5.5.1.2.2 सौर ऊर्जा: सौर ऊर्जा शक्ति का एक ऐसा साधन है जो कभी समाप्त नहीं होगा। इसमें सूर्य की गर्मी को रोककर उसे शक्ति के रूप में लाया जाता है। इससे प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 20 मेगावाट सौर बिजली का उत्पादन किया जा सकता है। भारत में प्रथम सौर ऊर्जा बिजलीघर लद्दाख के छोंग्लेश्वर नामक गांव में स्थापित किया गया है जिससे 20 शैय्या वाले एक अस्पताल तथा एक बड़े किचन को बिजली दी जाती है। सौर ऊर्जा को दो माध्यमों से प्रयोग में लाया जाता है-सौर तापीय माध्यम एवं सौर फोटोवोल्टेइक माध्यम। देश में अनुसंधान एवं विकास के आधार पर सैलों और पैनलों के निर्माण के लिए प्रौद्योगिकी का विकास एवं व्यवसायीकरण किया गया है।

5.5.1.2.3 पवन ऊर्जा: वायु को भी शक्ति के रूप में उपयोग में लाया जाता है। भारत में 45,000 मेगावाट पवन ऊर्जा उत्पन्न करने की क्षमता है परन्तु अभी तक 14,775 मेगावाट का ही उपयोग किया गया है। पवन ऊर्जा उत्पन्न करने वाले देशों में विश्व में भारत का जर्मनी, अमेरिका एवं स्पेन के बाद चौथा स्थान है।

5.5.2 परिवहन संसाधन

परिवहन संसाधनों से आशय आवागमन के सस्ते एवं सुगम साधनों से है। किसी भी देश के आर्थिक विकास में परिवहन के साधनों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इससे कृषि का विकास होता है, नये उद्योग स्थपित होते हैं, व्यापार का विस्तार होता है, मूल्यों में स्थिरता आती है तथा सरकार की आय भी बढ़ती है। परिवहन संसाधनों को चार भागों में बांटा जा सकता है: सड़क परिवहन, रेल परिवहन, जल परिवहन तथा वायु परिवहन।

5.5.2.1 सड़क परिवहन: सड़कें परिवहन प्रणाली का महत्वपूर्ण अंग हैं। यह गांवों, शहरों, बाजारों, कस्बों, प्रशासनिक सांस्कृतिक और औद्योगिक केन्द्रों आदि को आपस में जोड़ती हैं। इसमें रोजगार-सृजन की भी सम्भावनाएं हैं। यह बैलगाड़ी, स्कूटर, मोटरसाईकिल कार, बस आदि के उपयोग को

सरल बनाती हैं। भारत में प्राचीन समय से ही सड़कों का महत्व रहा है। यहां पर ईसा से 3500 वर्ष पूर्व भी सड़कें थी। मुगल शासकों एवं अंग्रेजों ने भी सड़कों की विशेष ध्यान दिया था। देश में सड़कों के विकास हेतु निरन्तर प्रयास किये जाते रहे हैं। दिसम्बर 1943 में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों के इन्जीनियरों का नागपुर में सम्मेलन हुआ जिसमें सड़कों के विकास के लिए एक दस-वर्षीय योजना बनायी गयी जिसे 'नागपुर योजना' के नाम से जाना जाता है। इस योजना में 448 करोड़ रूपये की लागत से 4 लाख मील लम्बी सड़कें बनाने का प्रावधान था। स्वतन्त्र भारत में नियोजन के प्रारम्भ होने पर सड़कों ने उल्लेखनीय प्रगति हुई। 1950-51 में यहां कुल 4 लाख किलोमीटर सड़कें थीं जो वर्तमान में 33.4 लाख किलोमीटर हो गयी हैं। 25 दिसम्बर, 2000 को केन्द्र सरकार ने प्रधानमन्त्री सड़क योजना का शुरूआत की जिसमें एक हजार की जनसंख्या वाले सभी गांवों को अगले तीन वर्षों में तथा 500 की जनसंख्या वाले हर गांवों को 7 वर्षों को में पक्की सड़कों से जोड़ना है। नागपुर सम्मेलन में भारतीय सड़कों का वर्गीकरण किया गया जो आज भी मान्य है। इसके अनुसार सड़कें चार प्रकार की हैं, राष्ट्रीय राजमार्ग अथवा राष्ट्रीय सड़कें, राज्य राजमार्ग अथवा राज्य की सड़कें, जिला मार्ग अथवा जिले की सड़कें तथा ग्रामीण सड़कें।

5.5.2.2 रेल परिवहन: रेल भारत में परिवहन का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह कृषि एवं उद्योगों के विकास, श्रम की गतिशीलता, निर्यात वृद्धि, पर्यटन के प्रोत्साहन में सहायक है। देश में प्रथम रेल 16 अप्रैल, 1853 को बम्बई से थाणे तक चली थी। तब से लेकर आज तक रेल सेवा में बहुत प्रगति हुई है। मुख्यतः नियोजन-प्रक्रिया में रेल सेवा के विकास में तेजी आई है। वर्ष 1950-51 में रेलमार्ग 53,596 किलोमीटर था जो वर्तमान में बढ़कर 63,327 किलोमीटर हो गया है। इस अवधि में विद्युत रेलमार्ग भी 388 किलोमीटर से बढ़कर 17,786 किलोमीटर हो गया है। वर्तमान में भारतीय रेल एशिया की सबसे बड़ी तथा विश्व की दूसरी बड़ी रेल प्रणाली है। भारतीय रेलवे का कम्प्यूटीकृत यात्री आरक्षण सिस्टम विश्व में यात्री आरक्षण नेटवर्क में सबसे बड़ा है, जो 8,074 टर्मिनलों से 2,222 स्थलों पर उपलब्ध है। औसतन, पीआरएस के माध्यम से प्रतिमाह 4.28 करोड़ यात्री बुक होते हैं जिससे प्रतिमाह औसतन 1,722.01 करोड़ रुपए की आय होती है। भारतीय रेलवे ने डाक घरों के माध्यम से पीआरएस सुविधाओं को मुहैया कराने के लिए भारतीय डाक से बद्धता की है और 112 ऐसे डाक घरों पर यह कार्य हो रहा है। वर्तमान में भारत में 16 रेलवे जोन तथा इन जोन के अन्तर्गत कुल 66 डिवीजन हैं।

5.5.2.3 जल परिवहन: परिवहन के विभिन्न साधनों में जल परिवहन बहुत प्राचीन साधन है। विकास की उस अवस्था में भी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय यातायात का महत्वपूर्ण साधन था जब रेल सहित परिवहन के अन्य साधनों का विकास भी नहीं हुआ था। जल परिवहन के दो प्रकार हैं: आन्तरिक जल परिवहन एवं सामुद्रिक या जहाजरानी परिवहन।

आन्तरिक जल परिवहन: आन्तरिक जल परिवहन के अन्तर्गत देश के आन्तरिक भागों में नदियों एवं नहरों द्वारा किये जाने वाले परिवहन को सम्मिलित किया जाता है। वर्तमान में भारत में 7,516

किलोमीटर लम्बे परिवहन योग्य मार्ग हैं। साथ ही यहां 4,300 किलोमीटर लम्बी नहरें हैं जिसमें से केवल 900 किमी. लम्बी नहरों का उपयोग किया जाता है। असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, केरल जैसे राज्यों के लिए आन्तरिक जल परिवहन का विशेष महत्व है। देश में आन्तरिक जल परिवहन के प्रमुख मार्ग हैं: गंगा, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, कृष्णा आदि नदियां तथा इनकी सहायक नहरें। आन्तरिक जल परिवहन के विकास सम्बन्धी नीति का निर्धारण 'केन्द्रीय अन्तर्देशीय जल परिवहन बोर्ड' करता है।

सामुद्रिक या जहाजरानी परिवहन: सामुद्रिक या जहाजरानी परिवहन में समुद्र के माध्यम से देश के बाहर सामान एवं यात्री लाने-ले जाने के साधनों को शामिल किया जाता है। भारत में प्राचीन समय से ही सामुद्रिक परिवहन महत्वपूर्ण साधन रहा है। इसी कारण, भारत के व्यापारिक सम्बन्ध एशिया के देशों के साथ ही यूरोप के देशों से भी थे। भारत में आधुनिक सामुद्रिक परिवहन के विकास का शुभारम्भ 1854 में 'ब्रिटिश इण्डिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी' की स्थापना के साथ हुआ। परन्तु, इसका वास्तविक आरम्भ 1919 में माना जाता है जब ब्रिटिश जहाजी एकाधिकार का मुकाबला करने के लिए 'सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी' की स्थापना की गई। भारत में नियोजन काल में सामुद्रिक या जहाजरानी परिवहन का तेजी से विकास हुआ। प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय देश में जहाजरानी की क्षमता 3.7 लाख जी.आर.टी. थी तथा जहाजों की संख्या 94 थी जो वर्तमान में बढ़कर क्रमशः 82.9 लाख जी.आर.टी. तथा 707 हो गयी है। भारतीय जहाजरानी का विश्व में 20वां तथा एशिया में दूसरा स्थान है।

5.5.2.2 वायु परिवहन: परिवहन के विभिन्न साधनों में वायु परिवहन आधुनिक युग का नवीनतम् एवं क्रान्तिकारी साधन है। इसके माध्यम से मनुष्य हजारों किलोमीटर की दूरी कुछ ही घण्टों में पूरी कर लेता है। यह देश के व्यावसायिक विस्तार में, कृषि के विकास में, सुरक्षा एवं शान्ति में, भौगोलिक बाधाओं से मुक्ति दिलाने एवं पर्यटन उद्योग के प्रोत्साहन में सहायक है। भारत में प्रायोगिक उड़ानें 1919 में प्रारम्भ हुई थी परन्तु आधुनिक वायु परिवहन का शुभारम्भ 1927 में 'नागरिक उड्डयन विभाग' की स्थापना के साथ हुआ था। 1929 में ब्रिटेन, हॉलैण्ड तथा फ्रांस की 'साम्राज्य वायु सेवा' के विमान भारत में आने-जाने लगे। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद वायु परिवहन का वास्तविक विकास प्रारम्भ हुआ। 1953 में सरकार ने वायु सेवा का राष्ट्रीयकरण कर दिया और आठ कम्पनियों का काम अपने हाथ में ले लिया। इसके फलस्वरूप 'भारतीय विमान निगम' तथा 'अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय विमान निगम' नामक दो निगमों की स्थापना हुई। 26 जनवरी, 1981 से तीसरी सेवा 'वायुदूत' के नाम से प्रारम्भ की गई। बाद में सार्वजनिक क्षेत्र की इण्डियन एयरलाइन्स और एयर इण्डिया का विलय कर 'द नेशनल एविएशन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड' बनायी गई। यह विलयित कम्पनी 'एयर इण्डिया' के नाम से ही सेवा उपलब्ध कराएगी। इसके साथ ही भारत में निजी क्षेत्र की जेट एयरवेज, सहारा एयरलाइन्स, डक्कन एविएशन, स्पाइस जेट, किंगफिशर एयरलाइन्स आदि हैं। इस समय देश में 127 हवाई अड्डे हैं जिनमें 15 अन्तर्राष्ट्रीय

हवाई अड्डे हैं। इन हवाई अड्डों का प्रबन्धन 'भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण' करता है। नागर विमानन क्षेत्र में यात्री परिवहन एवं माल ढुलाई को देखें तो पायेंगे कि जनवरी-दिसम्बर, 2010 के दौरान अनुसूचित घरेलू यात्री परिवहन 51.53 मिलियन था जो 2009 की तदनुरूप अवधि के दौरान 43.3 मिलियन यात्री परिवहन के मुकाबले 19 प्रतिशत वृद्धि दर्शाता है। विमानों द्वारा ढोए गए घरेलू माल में भी 2009 में 3.4 मिलियन टन के मुकाबले 2010 में 4.7 मिलियन टन की ढुलाई की गई जो 30 प्रतिशत की वृद्धि दर दर्ज कराता है।

5.5.3 संचार संसाधन

आधुनिक समय में देश के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए विकसित संचार संसाधनों का विशेष महत्व है। संचार संसाधनों के अन्तर्गत वे साधन आते हैं जिनके द्वारा बहुत कम समय में सूचनाओं को आदान-प्रदान किया जा सकते हैं। इसमें डाक सेवा, दूरसंचार सेवा, मोबाइल फोन सेवा, इंटरनेट एवं ब्रॉडबैंड सेवा, फैक्स सेवा आदि शामिल हैं। भारत में जन-सामान्य हेतु संचार सेवा का आरम्भ 1837 में हुआ। भारत में संचार संसाधनों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

5.5.3.1 डाक सेवा: डाक सेवा संचार का प्रमुख साधन है। इस सेवा के द्वारा देश के विभिन्न भाग एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। डाकघरों के माध्यम से एक व्यक्ति अपना समाचार एवं सामान अन्य स्थानों पर भेज सकता है। अपने पत्र अथवा छोटे-छोटे सामान को शीघ्रता से भेजने के लिए डाकघर थोड़ी अधिक दर पर स्पीड पोस्ट, एक्सप्रेस पार्सल सेवा आदि सेवाएं प्रदान करता है। बड़े शहरों को विशेष सुविधा देने के लिए भारत मे डाक को कई प्रकार बांटा गया है, जैसे- राजधानी चैनल, मैट्रो चैनल, ग्रीन चैनल, व्यापारिक चैनल, बल्क मेल चैनल, पीरिओडिकल चैनल आदि। भारत में डाक व्यवस्था को विकसित करने का उद्देश्य संचार सुविधाएं बढ़ाने के साथ ही ग्रामीण विकास, रोजगार, छोटी बचतों और ग्रामीण उद्योगों के विकास करना भी है। स्वतन्त्रता के बाद देश में डाक सेवा का तेजी से विकास हुआ है। स्वतन्त्रता के समय यहां 23,344 डाकघर थे, जो वर्तमान में बढ़कर 1,54,979 हो चुकी है जिसके चलते भारतीय डाक विश्व में सबसे बड़ा डाक नेटवर्क है। 31 मार्च, 2010 की स्थिति के अनुसार इन कुल डाकघरों में से 1,39,182 ग्रामीण क्षेत्रों में और 15,797 शहरी क्षेत्रों में थे। औसत आधार पर प्रत्येक डाकघर 7,176 व्यक्तियों का काम करता है और लगभग 21.21 वर्ग किमी क्षेत्र को कवर करता है। जहां विभागीय डाकघर खोलना सभव नहीं है, वहां ऐसे स्थानों की डाक संबंधी सेवाओं की मांग को देखते हुए भारतीय डाक ने अभी तक 1,082 फ्रेंचाईजी आऊटलेटों की शुरुआत की है।

5.5.3.2 दूरसंचार सेवा: दूरसंचार सेवा सूचना संप्रेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। देश में दूरसंचार सेवाएं टेलीफोन एवं टेलीग्राफ के आविष्कार के तुरन्त बाद ही प्रारम्भ हो गयी थीं। सबसे पहले 1851 में तार सेवा कोलकाता से डायमण्ड हार्बर के लिए शुरू हुई। सर्वप्रथम टेलीफोन सेवाएं कोलकाता में 1881-82 में शुरू हुई तथा पहला स्वचालित टेलीफोन एक्सचेंज 1913-14 में

शिमला में स्थापित किया गया। स्वतन्त्रता के बाद इस सेवा ने तेजी से प्रगति की। भारत में दूरसंचार क्षेत्र के सेवा प्रदान करने वाले दो विभाग 'दूरसंचार सेवा विभाग' तथा 'दूरसंचार प्रचालन विभाग' का निगमीकरण कर दिया गया है। अब 'भारत संचार निगम लिमिटेड' नाम की एक सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी ने 1 अक्टूबर, 2000 में दोनों विभागों के सेवा प्रदान करने वाली क्रियाकलापों अपने हाथ में ले लिए हैं। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत दूरसंचार क्षेत्र में एक क्रांति आई है। यहां टेलीफोन ग्राहकों की संख्या 2004 में केवल 76.54 मिलियन थी जो नवम्बर 2010 के अंत में बढ़कर 764.77 मिलियन हो गई। बेतार टेलीफोन कनेक्शनों ने इस वृद्धि में योगदान किया है। इनकी संख्या मार्च 2004 में 35.62 मिलियन से बढ़कर नवम्बर 2010 के अंत में 729.58 मिलियन के स्तर पर पहुंच गई है। वायर लाइन में गिरावट देखी गई और यह 2004 में 40.92 मिलियन से कम होकर नवम्बर 2010 में 35.19 मिलियन रह गई। निजी क्षेत्रों की बढ़ती भागीदारी के चलते कुल टेलीफोन कनेक्शनों में निजी क्षेत्रों का हिस्सा 1999 में 5 प्रतिशत से बढ़कर नवम्बर 2010 में 84.5 प्रतिशत हो गया है। टेलीफोन घनत्व, जो दूरसंचार के फैलाव का एक महत्वपूर्ण संकेतक है, में निरन्तर सुधार हुआ है। यह मार्च 2004 में 7.02 प्रतिशत से बढ़कर नवम्बर 2010 में 64.34 प्रतिशत हो गया है। ग्रामीण एवं शहरी टेलीफोन घनत्व मार्च 2004 में क्रमशः 1.57 प्रतिशत एवं 20.74 प्रतिशत था जो नवम्बर अंत 2010 में बढ़कर क्रमशः 30.18 प्रतिशत एवं 143.95 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच गया है।

5.5.3.3 इंटरनेट एवं ब्रॉडबैंड सेवा: इंटरनेट, जिसे सूचना प्रौद्योगिकी की जीवनरेखा कहा जाता है, एक अत्याधुनिक डिवाइस है जिसका उद्भव एवं विकास 1969 में अमरीका के प्रतिरक्षा विभाग के मुख्यालय पेंटागन स्थित एडवांस रिसर्च प्रोजेक्शन एजेंसी की संकल्पना से हुआ। इंटरनेट इंटरनेशनल नेटवर्क का ही संक्षिप्त नाम है। विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का आदान-प्रदान शीघ्रता से कर लेने के कारण इसे 'इंफॉर्मेशन सुपर हाईवे' भी कहा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इंटरनेट शब्द 1994 में प्रचलन में आया और भारत में इसकी शुरूआत 1995 में हुई। सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते आधार एवं नियोजन में इसकी भूमिका के कारण भारत सरकार ने 15 अक्टूबर, 1999 को इसके लिए एक अलग मंत्रालय का गठन किया।

वर्तमान में, इंटरनेट सेवा को तीव्रतर और बहुआयामी रूप प्रदान करने में तीव्र गति की इंटरनेट सेवा, जिसे ब्रॉडबैंड सेवा कहा जाता है, की शुरूआत भी देश में हो चुकी है। यह एक अत्यधिक विकसित तकनीकी है जिससे आंकड़े, तस्वीरें तथा संदेश भेजना अब और भी अधिक आसान हो गया है। इस तकनीक में आवाज, डाटा ट्रांसमिशन तथा वीडियो सुविधाएं एक साथ उपलब्ध हो जाती हैं। देश में 'ब्रॉडबैंड ग्राहकों की संख्या ब्रॉडबैंड ग्राहकों की संख्या मार्च 2010 में 8.77 मिलियन से बढ़कर नवम्बर, 2010 तक लगभग 10.71 मिलियन हो गई। ब्रॉडबैंड नीति में वर्ष 2010 तक 20 मिलियन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। ब्रॉडबैंड सेवाएं देने की सबसे लोकप्रिय प्रौद्योगिकी इस समय डिजीटल सब्सक्राइबर लूप है और कुल ब्रॉडबैंड कनेक्शनों के 86 प्रतिशत कनेक्शन इसी

प्रौद्योगिकी पर आधारित हैं। अब तीसरी पीढ़ी के नेटवर्क आने से उपभोक्ता सही अर्थों में ब्रॉडबैंड रफ्तार का अनुभव पा सकते हैं। उम्मीद है कि ब्रॉडबैंड से विभिन्न क्षेत्रों में नये-नये लाभ मिलेंगे। यह शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और दक्षता विकास में बढ़िया सेवाएं देने का प्रभावशाली माध्यम बन सकता है।

5.6 सामाजिक अधो-संरचना के संघटक

शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आवास सामाजिक अधो-संरचना के तीन महत्वपूर्ण संघटक हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

5.6.1 शिक्षा

शिक्षा एवं विकास में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। शिक्षा को विकास की सीढ़ी, परिवर्तन का माध्यम एवं आशा का अग्रदूत माना जाता है। अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों को समाप्त करने, क्षेत्रीय असंतुलन को दूर करने, महिलाओं के सशक्तिकरण, अल्पसंख्यकों एवं उपेक्षित वर्गों को उचित स्थान प्रदान करने तथा आर्थिक विकास को बढ़ाने में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है। भारत में साक्षरता की दर वर्ष 1951 में मात्र 18.3 प्रतिशत थी जो वर्ष 2001 में बढ़कर 64.83 प्रतिशत हो गई। जनगणना 2011 के तदर्थ आंकड़ों के अनुसार वर्तमान में भारत की साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है। देश में पुरूष साक्षरता दर वर्ष 2001 में 75.26 प्रतिशत की तुलना में 2011 में बढ़कर 82.14 प्रतिशत हो गई है। इसी प्रकार, महिलाओं की साक्षरता दर वर्ष 2001 में 53.67 प्रतिशत की तुलना में 2011 में बढ़कर 65.46 प्रतिशत हो गई है। देश में शिक्षा सुविधाओं का विकास होने के साथ ही पुरूष-महिला की साक्षरता दर का अन्तर भी कम हुआ है। भारत में केरल 93.91 प्रतिशत के साथ सर्वाधिक साक्षरता दर वाला राज्य है जबकि सबसे कम साक्षरता दर बिहार में है जहां यह दर मात्र 63.82 प्रतिशत है।

शिक्षा हेतु सरकारी प्रयास: सरकार द्वारा हाल के वर्षों में शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु अनेक प्रयास किए गए हैं। निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा अधिनियम, 2009 (आरटीई अधिनियम) के तहत 6 से 14 वर्ष के बीच की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया है। सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत सितम्बर, 2010 तक प्राप्त उपलब्धियों में 3,09,727 नए विद्यालयों का खोला जाना, 2,54,935 विद्यालय भवनों का निर्माण 11,66,868 अतिरिक्त कक्षाओं का निर्माण 1,90,961 पेयजल सुविधाएं, 3,47,857 शौचालयों का निर्माण, 8.70 करोड़ बच्चों को पाठ्य पुस्तकों की निःशुल्क आपूर्ति तथा 11.13 लाख अध्यापकों की नियुक्ति शामिल है। सर्व शिक्षा अभियान के हस्तक्षेप के कारण स्कूलों से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या में भारी कमी आई है। एक स्वतंत्र अध्ययन में कहा गया है कि स्कूल से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या 2005 की 134.6 लाख से कम होकर 2009 में 81.5 लाख रह गई है। विद्यालयों में 5 वर्ष के बच्चों के नामांकन में वृद्धि हुई है। राष्ट्रीय स्तर पर विद्यालयों में नामांकित 5 वर्ष के बच्चों का प्रतिशत 2009 के 54.6 प्रतिशत से बढ़कर 2010 में 62.8 प्रतिशत हो गया है। सबसे अध्कि वृद्धि कर्नाटक में देखी गई है। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और असम जैसे कई अन्य राज्यों में 2009

और 2010 के बीच 5 वर्ष के बच्चों के नामांकन में काफी वृद्धि हुई। उच्च शिक्षा, जो 21वीं सदी के ज्ञान आधारित समाज के निर्माण के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है, हेतु विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के सामान्य विकास के लिए कार्यक्रम, महिलाओं के लिए हॉस्टलों के निर्माण हेतु विशेष अनुदान, छात्रों के लिए छात्रवृत्तियां, यह सुनिश्चित करने के लिए कि अपनी गरीबी के कारण कोई व्यावसायिक शिक्षा से वंचित न हो, व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए शैक्षिक ऋणों पर ब्याज सब्सिडी प्रदान करने की स्कीम और उच्चतर एवं तकनीकी शिक्षा में अध्यापन प्रतिभा को आकर्षित करने और उसे कायम रखने के लिए हस्तक्षेप करना उच्चतर शिक्षा में सरकार की महत्वपूर्ण नीतिगत पहलें हैं। विदित है कि वर्तमान में भारत में विश्वविद्यालयों की संख्या लगभग 350 है।

5.6.2 स्वास्थ्य

स्वास्थ्य एक पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक स्वस्थता की स्थिति है। स्वस्थ व्यक्ति ही देश के सर्वांगीण विकास में योगदान कर सकता है। आर्थिक विकास की उच्च दर प्राप्त करने के लिए शिक्षा के साथ ही स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्राथमिक स्तर पर किया गया निवेश सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में स्वास्थ्य सेवाओं का तेजी से विकास हुआ है। इसके प्रभाव को विभिन्न स्वास्थ्य संसूचकों पर देखा जा सकता है। (तालिका संख्या 1 देखें)।

तालिका 1: भारत में चुनिन्दा स्वास्थ्य संसूचक

क्र.सं	प्राचल	1981	1991	मौजूदा स्तर
1.	जन्म दर (प्रति 1000 जनसंख्या)	33.9	29.5	22.22
2.	मृत्यु दर (प्रति 1000 जनसंख्या)	12.5	9.8	6.4
3.	कुल प्रजनन दर (प्रति महिला)	4.5	3.6	2.6 (2008)
4.	मातृत्व मृत्यु दर (प्रति 1000 जीवित जन्म)	--	--	254(2004-06)
5.	शिशु मृत्यु दर (प्रति 1000 जीवित जन्म)	110	80	50 (2009)
6.	बाल (0-4 वर्ष) मृत्यु दर (प्रति 1000 बच्चे)	41.2	26.5	15.2 (2008)
	बालक			49
	बालिका			52
7.	जन्म पर जीवन प्रत्याशा	(1981-85)	(1989-93)	(2009)
	कुल	55.4	59.4	69.89
	पुरूष	55.4	59.0	67.46
	महिला	55.7	59.7	72.61

जीवन प्रत्याशा में निरन्तर सुधार: देश में विकास होने के साथ ही लोगों की जन्म पर जीवन प्रत्याशा में निरन्तर सुधार हुआ है। 1981-85 की अवधि में यह 55.4 वर्ष थी जो (1989-93) में

59.4 वर्ष तथा 2009 में 69.89 वर्ष आंकलित की गई है। इसी वर्ष पुरूषों की जीवन-प्रत्याशा 67.46 वर्ष तथा महिलाओं की 72.61 वर्ष रही।

जन्म एवं मृत्यु दर में कमी: भारत में जन्म दर 1981 में यह 33.9 प्रति हजार, 1991 में 29.5 प्रति हजार तथा वर्तमान में कम होकर 22.22 प्रति हजार हो गयी है। इसी प्रकार मृत्यु दर 1981 में 12.5 प्रति हजार थी जो 1991 में 9.8 प्रति हजार तथा वर्तमान में घटकर 6.4 प्रति हजार हो गयी है।

स्वास्थ्य सुधार हेतु सरकारी प्रयास: विगत छह दशकों में प्राथमिक, द्वितीय और तृतीय स्तरों पर लोगों की स्वास्थ्य सबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए बड़ी संख्या में स्वास्थ्य संस्थाएं स्थापित की गई हैं। देश में स्तरीय सुव्यवस्थित लोक स्वास्थ्य अवसंरचना विकसित की गई है, जिसमें संपूर्ण ग्रामीण एवं उप-शहरी क्षेत्रों में फैले हुए सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और उप-केन्द्रों के साथ-साथ बहु प्रकार की विशेषताओं से युक्त अस्पताल व मेडिकल कालेज शामिल हैं। मौजूदा स्वास्थ्य अवसंरचना में अन्तर को पूरा करने तथा सुलभ, वहनीय और साम्यिक स्वास्थ्य सेवा मुहैया कराने के उद्देश्य से भारत सरकार ने राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एन.आर.एच.एम.), प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना जननी सुरक्षा योजना, आशा जैसे कई कार्यक्रम और योजनाएं शुरू की हैं। एन.आर.एच.एम. के तहत 1572 विशेषज्ञ, 8284 एम.बी.बी.एस. डॉक्टर, 53,552 सहायक नर्स, दाइयां, 18,272 पराचिकित्सक संविदा आधार पर नियोजित किए गए हैं। स्वास्थ्य सेवाओं को 24 घंटे चालू रखने हेतु कुल 16,338 अतिरिक्त प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और अन्य उप-जिला सुविधाएं 24 घंटे उपलब्ध हैं। अन्य कार्यक्रमों जैसे संशोधित राष्ट्रीय टीबी नियंत्रण कार्यक्रम, राष्ट्रीय वैक्टर जनित रोग नियंत्रण, राष्ट्रीय दृष्टिहीनता नियंत्रण कार्यक्रम और राष्ट्रीय कुष्ठ रोग निवारण कार्यक्रम को भी सुदृढ़ किया गया है और इन्हें समयबद्ध एवं अधिक केन्द्रीभूत ढंग से कार्यान्वित किया जा रहा है।

स्वास्थ्य सुधार हेतु प्रयासों के प्रभाव: स्वास्थ्य सुधार हेतु किये गये प्रयासों में देश को सफलता मिली है। जननी सुरक्षा योजना में पिछले तीन वर्षों के दौरान तेजी से प्रगति हुई है जिसके अंतर्गत वर्ष 2009-10 में लाभार्थियों की संख्या 100.78 लाख तक पहुॅच गई। राष्ट्रीय स्तर पर प्रौढ़ एच आई वी विस्तार वर्ष 2000 में 0.41 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2009 में 0.31 प्रतिशत हो गया है। पिछले एक दशक में नए वार्षिक एच आई वी संक्रमणों में 50 प्रतिशत से अधिक कमी हुई है और ये वर्ष 2000 में 2.7 लाख से वर्ष 2009 में 1.2 लाख रह गए हैं। देश में विकास के साथ ही जन्म दर, मृत्यु दर, कुल प्रजनन दर, मातृत्व मृत्यु दर, शिशु मृत्यु दर, बाल मृत्यु दर आदि में कमी आई है।

5.6.3 आवास

आवास से तात्पर्य व्यक्तियों के लिए ऐसे आरामदायक आश्रय से है जहां उनके परिवार के सदस्य सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें। सामान्यतः आवास की व्यवस्था वहां होनी चाहिये जहां शिक्षा, चिकित्सा, खेलकूद, मनोरंजन, शुद्ध वायु, जल एवं प्रकाश की उचित व्यवस्था हो। भोजन और वस्त्र

के साथ आवास मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता है। यह व्यक्ति के जीवन को आरामदायक, स्वस्थ और स्तरीय बनाता है तथा उसके रहन-सहन के स्तर की गुणवत्ता में वृद्धि करता है। भारत में आवास से सम्बन्धित दो पहलुओं को देखा जाता है- प्रथम, परिमाणात्मक पहलू तथा द्वितीय, गुणात्मक पहलू।

परिमाणात्मक पहलू के अन्तर्गत आवास की मांग एवं उसकी उपलब्धता को देखा जाता है। भारत में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है परन्तु उस गति से आवास की उपलब्धता नहीं बढ़ रही है जिससे यहां आवास की कमी बनी हुई है। आवास की कमी के कारण कुछ परिवार एक मकान में साझे रूप में रहते हैं जबकि कुछ परिवार रैन-बसेरा अथवा फुटपाथ पर रहने को मजबूर हैं। भारत में सन् 1961 में कुल 55 लाख आवासों की कमी थी। 1991 में यह कमी घटकर 38 लाख रह गई। देश में कुल आवासों में पक्के आवासों के प्रतिशत में वृद्धि हुई है। यह 1971-2001 की जनगणना अवधि में शहरी क्षेत्रों में 64 प्रतिशत से बढ़कर 73 प्रतिशत एवं ग्रामीण क्षेत्रों में 18 प्रतिशत से बढ़कर 31 प्रतिशत हो गया। इसके बाद भी आज देश में आवास की समस्या एक गम्भीर समस्या है। यहां लगभग 2 करोड़ लोग बेघर हैं साथ ही नगरीय जनसंख्या का 20 प्रतिशत भाग गन्दी बस्तियों में रहता है।

गुणात्मक पहलू के अन्तर्गत आवास की गुणवत्ता एवं विभिन्न सुविधाओं को देखा जाता है। भारत में अनेक परिवार ऐसे हैं जो बिना पक्की छत वाले मकानों में रहते हैं। इन मकानों में पीने का पानी, स्नानगृह तथा शौचालय जैसी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। भारत में आवास की समस्या के समाधान के लिए शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न योजनाएं चलायी जा रही हैं, जैसे- अम्बेडकर वाल्मीकि आवास योजना, इन्दिरा आवास योजना, स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण आवास वित्त योजना, प्रधानमन्त्री ग्रामोदय योजना आदि। ग्रामीण क्षेत्रों में अवसंरचना और मूलभूत सुविधाओं के निर्माण के लिए 2005-06 में प्रारंभ किए गए भारत निर्माण कार्यक्रम के छह घटकों में ग्रामीण आवास एक प्रमुख घटक है।

सरकार 'जवाहरलाल नेहरु राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन' के अन्तर्गत आवास विकास के लिए शहरों को वित्तीय सहायता प्रदान करता है तथा सभी आवासीय परियोजनाओं (सार्वजनिक एवं निजी एजेंसियां दोनों) में कम से कम 20 से 25 प्रतिशत भूमि आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों/निम्न आय वाले समूहों के लिए निर्धारित किया गया है। इसमें 8 फरवरी, 2011 तक 1.5 मिलियन से अधिक आवास संस्वीकृत किए गए हैं। सरकार ने आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए कम से कम 25 प्रतिशत के साथ आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग/निम्न आय वर्ग/मध्यम वर्ग के लिए 10 लाख मकानों के निर्माण के लिए 5000 करोड़ के परिव्यय से 'भागीदारी में सस्ते आवास स्कीम' प्रारंभ की है। सरकार ने एक स्कीम, राजीव आवास योजना के माध्यम से स्लम मुक्त भारत की परिकल्पना की घोषणा की है।

5.7 सारांश

देश के समग्र विकास के लिए अधो-संरचना का विकसित अवस्था में होना आवश्यक है। वास्तव में, अधो-संरचना एक देश के विकास की पूर्व-शर्त होती है। अधो-संरचना को दो भागों में बांटा जा सकता है, प्रथम, आर्थिक अधो-संरचना एवं द्वितीय, सामाजिक अधो-संरचना। आर्थिक अधो-संरचना के अन्तर्गत शक्ति संसाधन (कोयला, विद्युत, पेट्रोलियम), परिवहन संसाधन (सड़क, रेल, जल, वायु परिवहन), संचार संसाधन (डाक, दूरसंचार, मोबाइल, फैक्स सेवा) आदि आते हैं जबकि सामाजिक अधो-संरचना के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास आदि घटक आते हैं। भारत में स्वतन्त्रता के बाद से ही पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से अधो-संरचना के विकास हेतु अधिक मात्रा में व्यय किया जा रहा है। परन्तु, इसके बावजूद अधो-संरचना के सम्बन्ध में समस्या रही हैं कि देश में तीव्र विकास हेतु मांग के अनुरूप बुनियादी सुविधाओं का विकास नहीं हो सका है तथा इनका विकास ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में ही अधिक हुआ है जिससे शहरी क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की समस्याएं बढ़ गयी हैं। देश में अधो-संरचना के विकास को अधिक प्राथमिकता देने तथा शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में इसको समान रूप से विकसित करने पर यह अर्थव्यवस्था के सर्वांगींण विकास में कारगर योगदान दे सकती है।

5.8 शब्दावली

इंटरनेट: इंटरनेट इंटरनेशनल नेटवर्क का संक्षिप्त नाम है। एक अत्याधुनिक डिवाइस है जिसके माध्यम से विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का आदान-प्रदान शीघ्रता देश-विदेश में किया जा सकता है।

जीवन-प्रत्याशा: जीवन-प्रत्याशा से आशय जीवित रहने की आयु से है। इसे प्रत्याशित आयु अथवा औसत आयु भी कहा जाता है।

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 01: शक्ति के कौन-कौन से साधन हैं ?

उत्तर: शक्ति के प्रमख साधन कोयला, विद्युत, खनिज तेल या पेट्रोलियम, परमाणु शक्ति, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आदि हैं।

प्रश्न 02: जल परिवहन के प्रकार बताईये।

उत्तर: जल परिवहन के दो प्रकार हैं- आन्तरिक जल परिवहन एवं सामुद्रिक या जहाजरानी परिवहन।

प्रश्न 03: रिक्त स्थान भरिए।

(1) भारत में इंटरनेट की शुरूआत ..... में हुई।

(2) कोयले के उत्पादन में भारत का विश्व में ..... स्थान है।

(3) भारत में पहला पन-बिजलीघर कर्नाटक राज्य के ..... नामक स्थान पर बनाया गया।

(4) भारत में परमाणु शक्ति के विकास एवं प्रोत्साहन का श्रेय ..... को है।

(5) देश में प्रथम रेल ..... को बम्बई से थाणे तक चली थी।

(6) भारत में हवाई अड्डों का प्रबन्धन ..... करता है।

(7) भारत में पहला स्वचालित टेलीफोन एक्सचेंज 1913-14 में ..... में स्थापित किया गया।

(8) भारत में ..... सर्वाधिक साक्षरता दर वाला राज्य है।

(9) वर्तमान में भारत में जन्म दर तथा मृत्यु दर क्रमशः ..... है।

(10) वर्ष 2011 में भारत में महिलाओं की साक्षरता दर ..... प्रतिशत है।

उत्तर: (1) 1995, (2) तीसरा, (3) शिवसमुद्रम, (4) डॉ. हामी जहाँगीर भाभा, (5) 16 अप्रैल, 1853, (6) भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण, (7) शिमला, (8) केरल, (9) 22.22 प्रति हजार तथा 6.4 प्रति हजार, (10) 65.46।

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Dhar, P.K. (2003) : *Indian Economy Its Growing Dimensions*, Kalyani Publication, Ludhiana.
- दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम, के.पी.एम. (2006): भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चांद एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- मामेरिया, डॉ0 चतुर्भज एवं जैन, डॉ0 एस0सी0 (1995): भारतीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा।
- आर्थिक समीक्षा 2010-11, भारत सरकार।
- जनगणना 20011,भारतसरकार(website:www.censusofindia.com)

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1: अधो-संरचना से आप क्या समझते हैं ? भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में अधो-संरचना की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 2: आर्थिक अधो-संरचना को स्पष्ट करते हुए इसके संघटकों का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3: भारत में शक्ति संसाधनों के विकास पर एक निबन्ध लिखिए।

प्रश्न 4: सामाजिक अधो-संरचना से क्या अभिप्राय है ? भारत में सामाजिक अधो-संरचना की प्रगति का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई-6 आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता एवं योजना निर्माण प्रक्रिया

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 आर्थिक नियोजन का अर्थ
6.4 आर्थिक नियोजन का महत्व एवं प्रासंगिकता
6.5 भारत में आर्थिक नियोजन
6.6 योजना निर्माण की प्रक्रिया
6.7 भारत में नियोजन की विशेषताएँ
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.12 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
6.13 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था के खण्ड-दो ''पंचवर्षीय योजना एवं आर्थिक विकास की समस्याएँ'' से सम्बन्धित यह पहली इकाई है। इससे पहले खण्ड-एक के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना तथा उसकी विशेषताओं के संदर्भ में बता सकते हैं।

प्रस्तुत इकाई में आर्थिक नियोजन तथा इसकी प्रासंगिकता के बारे में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही भारत में योजना निर्माण की प्रक्रिया तथा उसकी विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारत में नियोजन की विशेषताओं, उसकी प्रासंगिकता तथा योजना निर्माण की प्रक्रिया के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- आर्थिक नियोजन के अर्थ को समझ सकेंगे।
- भारत में आर्थिक नियोजन के ढाँचे तथा उसकी विशेषताओं को जान सकेंगे।
- योजना निर्माण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।

6.3 आर्थिक नियोजन का अर्थ

वर्तमान युग में आर्थिक नियोजन आर्थिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका है। विशेषकर अल्पविकसित देशों की विभिन्न आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को हल करने में आर्थिक नियोजन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। हालांकि अर्थशास्त्रियों में आर्थिक नियोजन की संकल्पना के सम्बन्ध में सहमति नहीं है और फिर भी विभिन्न देशों में आर्थिक नियोजन का स्वरूप अलग-अलग रहा है। जिन अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विकास राज्य द्वारा संचालित एवं नियंत्रित शक्तियों के माध्यम से होता है उसे नियोजन या समाजवादी अर्थव्यवस्था कहते हैं। जबकि बाजार या कीमत तंत्र द्वारा संचालित आर्थिक विकास को 'अनियोजित या पूँजीवादी अर्थव्यवस्था' कहते हैं।

जब सरकार द्वारा देश के आर्थिक संसाधनों का आंकलन कर, उसका उपयोग किन्हीं पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को एक निश्चित समय में प्राप्त करने के लिए तार्किक ढंग से किया जाता है तो इसे आर्थिक नियोजन कहते हैं। आर्थिक नियोजन एक तकनीक है जिसके माध्यम से राज्य अर्थव्यवस्था के प्रमुख साधनों को प्राप्त करने, उसका प्रयोग करने तथा उसके विकास करने से संबंधित निर्णयों तथा नीतियों

को, एक निश्चित समयावधि में अपने पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयोग में ले आता है।

कुछ अर्थशास्त्री सरकारी हस्तक्षेप को ही नियोजन मानते हैं, परन्तु बिना नियोजन के भी बाजार तंत्र में सरकारी हस्तक्षेप हो सकता है। प्रो0 डी0आर0 गाडगिल के अनुसार, ''आर्थिक विकास के लिए आयोजन का अर्थ है योजना प्राधिकरण, जो अधिकांश अवस्थाओं में राज्य की सरकार ही होती है, के द्वारा आर्थिक क्रिया का वाह्य निदेशन या नियमन करना।'' एम0डी0 डिकिन्सन के अनुसार, ''आर्थिक नियोजन प्रमुख आर्थिक निर्णयों का निर्माण है जिसमें सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में विस्तृत सर्वेक्षण के आधार पर, एक निर्धारक सत्ता द्वारा सोच-विचार कर, यह निर्णय किया जाता है कि क्या एवं कितना उत्पादन किया जाएगा और उनका वितरण किसको होगा।''

इस प्रकार नियोजन निश्चित संसाधनों के द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने की एक सुविचारित तकनीक है, जिसके अंतर्गत एक निश्चित समयावधि और क्षेत्र के लिए योजना बनायी जाती है। चूंकि नियोजन के अंतर्गत उद्देश्य और संसाधन सुनिश्चित होते हैं, इसलिए पूँजीवादी या बाजार अर्थव्यवस्था की तरह योजनागत कार्यकलाप स्वतः प्रवर्तित नहीं होते हैं, बल्कि योजना प्राधिकारी द्वारा उनका नियंत्रण तथा नियमन किया जाता है।

6.4 आर्थिक नियोजन का महत्व एवं प्रासंगिकता

अनेक कारणों से नियोजन, विशेषकर अल्प विकसित देशों के, विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

6.4.1 बाजार तंत्र की कमजोरियाँ

बाजार तंत्र की सीमाओं तथा कमियों को देखते हुए आर्थिक नियोजन आवश्यक हो जाता है। विशेषकर ऐसे देश में जहां जनसंख्या में बड़े तबके की क्रयशक्ति क्षमता कामी कम हो, लोग गरीब हों तथा अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा गैर-मौद्रिक हो। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में नियोजन के जरिए संसाधनों का अधिसंख्य गरीब व कम आय वाली जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति में प्रयोग सम्भव हो पाता है। यहां आयोजन बाजार तंत्र की कमियों व सीमाओं को कम करके उसे मजबूत करता है और उसमें सुधार लाता है।

6.4.2 संतुलित विकास की आवश्यकता

अर्थव्यवस्था के संतुलित विकास के लिए नियोजन आवश्यक है। बाजार तंत्र सिर्फ लाभ वाले क्षेत्रों में अधिक निवेश करता है जिससे अर्थव्यवस्था का असंतुलित विकास होता है तथा उत्पादन का वितरण भी काफी असमान होता है। नियोजन के माध्यम से राज्य दुर्लभ संसाधनों का उपयोग राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप अर्थव्यवस्था के संतुलित विकास के लिए करता है।

अल्प विकसित देशों में आर्थिक विकास के लिए आवश्यक विभिन्न कारकों तथा क्षेत्रों का समन्वय नियोजन के द्वारा ही सम्भव है।

6.4.3 आधारिक संरचना का विकास

विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में आवश्यक मात्रा में संसाधन जुटाने तथा आर्थिक व सामाजिक आधारिक संरचना का निर्माण करने में नियोजन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परिवहन, सिंचाई, ऊर्जा, बंदरगाह जैसी आर्थिक आधारिक सुविधाओं के विकास के बिना औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्र की तीव्र सम्भव नहीं है। इसी प्रकार शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य इत्यादि सामाजिक आधारिक संरचना का विकास भी तीव्र आर्थिक के लिए अनिवार्य है। आधारिक संरचना का विकास सामाजिक हित से जुड़ा हो न कि व्यक्तिगत लाभ से। इसलिए नियोजन द्वारा इसका विकास अर्थव्यवस्था में संतुलित व न्यायोचित विकास सुनिश्चित कर सकता है।

6.4.4 सामाजिक न्याय की आवश्यकता

बाजार तंत्र में उद्यमी उन आर्थिक गतिविधियों में संसाधनों को लगाता है जो शीघ्र और अधिक लाभ दे सकें। इसलिए वे अधिक आय वर्ग के लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उपयोग वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। वस्तुतः बाजार की शक्तियाँ इस प्रकार कार्य करती हैं कि आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण होता जाता है तथा समाज में आर्थिक विषमताएं बढ़ती जाती हैं। स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था का न्यायोचित विकास बाजार तंत्र के जरिए सम्भव नहीं है।

आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना आर्थिक नियोजन का एक प्रमुख उद्देश्य होता है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में आय व धन की विषमताओं को कम करने, बेरोजगारी तथा प्रछन्न बेरोजगारी दूर करने और गरीबी को समाप्त करने में नियोजन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत में सामाजिक न्याय की दृष्टि रोजगार सृजन करने वाले तथा गरीबी निवारण कार्यक्रमों का विशेष महत्व रहा है।

6.4.5 उत्पादन तकनीकी

अल्पविकसित देशों में आर्थिक नियोजन का महत्व उत्पादन की तकनीकी की समस्या से भी जुड़ा है। एक और नियोजित अर्थव्यवस्था में उद्यमी अपने लाभ को अधिकतम करने की प्रक्रिया में अत्यधिक पूँजी प्रधान तकनीकों का प्रयोग करते हैं। इसलिए बेरोजगारी की समस्या और गंभीर होती जाती है। वस्तुतः बाजार तंत्र रोजगारविहीन संवृद्धि को ही बढ़ावा देता है। विशेषकर अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में, जहां पूँजी की कमी तथा श्रम की अधिकता होती है, श्रम प्रधान तकनीकों के उपयोग को बढ़ावा देने में नियोजन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। देश में मानवीय संसाधनों का उचित इस्तेमाल तभी सम्भव है जब वैज्ञानिक ढंग से, नियोजन के माध्यम से मानव शक्ति का उपयोग किया जाए।

6.4.6 संसाधनों का न्यायोचित आवंटन

अल्पविकसित देशों में संसाधनों की कमी होती है। बाजार तंत्र संसाधनों का विभिन्न उपयोगों में आवंटन निजी लाभ के आधार पर करता है, जिससे विलासिता की अनावश्यक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ता है। नियोजन के माध्यम से सामाजिक लाभ को ध्यान में रखकर संसाधनों का आवंटन किया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संदर्भ में दीर्घकालिक विकास के लिए संसाधनों का न्यायोचित तथा अनुकूलतम आवंटन नियोजन के माध्यम से संभव हो जाता है।

6.4.7 स्थिरता के साथ आर्थिक विकास

विकास के साथ-साथ कीमत वृद्धि पर नियंत्रण के लिए आर्थिक नियोजन आवश्यक है। बाजार तंत्र में व्यापार चक्रों के उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने के लिए नियोजन की भूमिका महत्वपूर्ण है। अनियोजित अर्थव्यवस्था में विभिन्न वर्गों तथा क्षेत्रों के उत्पादन सम्बन्धी निर्णयों व नीतियों को एक साथ समन्वित करने की व्यवस्था न होने से अर्थव्यवस्था में स्थायित्व नहीं होता।

6.4.8 संसाधनों की व्यवस्था

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मूलतः अधिक मांग या उपभोग पर आधारित होता है परन्तु अल्पविकसित देशों में आय कम होने के कारण मांग व उपभोग के साथ-साथ बचत का स्तर भी निम्न होता है। इन अर्थव्यवस्थाओं में बचत बढ़ाकर निवेश बढ़ाने के लिए मांग तथा उपभोग पर नियंत्रण जरूरी है जो कि नियोजन के माध्यम से ही सम्भव है। नियोजन के माध्यम से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर मांग तथा उपभोग के नियंत्रण तथा नियमन के द्वारा संसाधनों का गतिशीलन इन अर्थव्यवस्थाओं के आर्थिक विकास का आधार है।

6.4.9 अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास को प्रारम्भ तथा तीव्र करना

अल्पविकसित देशों में गरीबी के दुष्चक्र को समाप्त करने तथा आर्थिक विकास की प्रक्रिया शुरु करने और उसे तीव्र करने में नियोजन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन अर्थव्यवस्थाओं में स्वतः विकास सम्भव नहीं है। इसलिए विकास की प्रक्रिया को शुरु करने के लिए संसाधनों के गतिशीलन से लेकर आधारिक संरचना के निर्माण तक नियोजन की भूमिका उल्लेखनीय हो जाती है। इससे विकास का एक वातावरण बनता है और निजी निवेश भी प्रोत्साहित होता है। जिससे आगे चलकर विकास की गति भी तेज होती है।

6.4.10 अल्पविकसित देशों की विशिष्ट दशाएँ

विभिन्न अल्पविकसित देशों की अपनी विशिष्ट दशाओं तथा समस्याओं के कारण सरकारी हस्तक्षेप तथा आर्थिक नियोजन आवश्यक हो जाता है। इन देशों का सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा आर्थिक ढांचा इस तरह का होता है तथा इनकी समस्याएं इतनी व्यापक होती हैं कि बिना नियोजन के इस अर्थव्यवस्थाओं की आधारभूत समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता है। यही नहीं, आर्थिक विकास के तेज होने की दशा में भी सामाजिक न्याय के साथ सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के तेज तथा स्थायित्वपूर्ण विकास के लिए नियोजन के द्वारा अर्थव्यवस्था का पथ-प्रदर्शन, निर्देशन, नियमन तथा नियंत्रण अत्यंत आवश्यक व अनिवार्य है।

अभ्यास प्रश्न - 1

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आर्थिक नियोजन से क्या अभिप्राय है?
2. भारत में आर्थिक नियोजन का स्वरूप क्या है?

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. मिश्रित अर्थव्यवस्था क्या है?
2. बाजार तंत्र से क्या तात्पर्य है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से क्या नियोजन के लिए आवश्यक नहीं है?

   (क)पूर्व निर्धारित उद्देश्य (ख) निश्चित समयावधि

   (ग) कीमत तंत्र (घ) निश्चित संसाधन

2. भारत में आर्थिक नियोजन निम्नलिखित ढांचे में लागू किया गया: -

   (क) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (ख) मिश्रित अर्थव्यवस्था

   (ग) समाजवादी अर्थव्यवस्था (घ) साम्यवादीअर्थव्यवस्था

6.5 सारांशत:

नियोजन समस्याओं के तार्किक समाधान तथा साधनों व साध्यों को समन्वित करने का प्रयास है। साथ ही योजना के पूर्ण होने की निश्चित समयावधि तथा क्रियान्वयन हेतु क्षेत्र का निश्चित किया जाना भी आवश्यक है।

भारत में आर्थिक नियोजन के अंतर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं और अर्थव्यवस्था के विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों के लिए संसाधनों को आवंटित किया जाता है। भारत में योजनावधि पांच वर्ष की होती है तथा योजना का फैलाव पूरे देश में होता है।

भारत में आर्थिक नियोजन को मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढांचे में लागू किया गया है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों का सहअस्तित्व होता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था अनिवार्य रूप से एक नियोजित अर्थव्यवस्था ही होती है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र का संचालन योजना के निश्चित प्राथमिकताओं के अनुरूप, निश्चित सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। साथ ही सरकार विभिन्न उपायों के माध्यम से राजकोषीय मौद्रिक नीतियों तथा प्रत्यक्ष नियंत्रणों-निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित, नियंत्रित तथा नियमित करती है जिससे कि वे योजनागत उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकें। भारत में मोटे तौर पर, बाजार तंत्र तथा आर्थिक नियोजन की भूमिकाएं परस्पर पूरक ही रही हैं।

6.5.1 भारत में आर्थिक नियोजन की आवश्यकता

लम्बे औपनिवेशिक शासन के पश्चात जब 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिली तो अर्थव्यवस्था औपनिवेशिक शोषण के कारण गतिहीन थी तथा अल्पविकास के कारण यहां बेरोजगारी, गरीबी, असमानता जैसी अनेकों आर्थिक समस्याएं मौजूद थीं। आर्थिक पिछड़ेपन के इस दुष्चक्र से

निकलना बाजार तंत्र के भरोसे सम्भव नहीं था। भारत के प्रमुख उद्योगपतियों द्वारा तैयार 'बाम्बे योजना' में भी आर्थिक नियोजन की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। आधारिक संरचना के निर्माण, पूँजीगत तथा भारी आधारभूत उद्योगों की स्थापना आदि में राज्य द्वारा नियोजन के माध्यम से पहल आवश्यक था।

विकास की प्रारम्भिक अवस्था में देश में उपलब्ध संसाधनों की पर्याप्त जानकारी तथा उसका उचित प्रयोग करने के लिए आयोजन आवश्यक था। निवेश के लिए आवश्यक जानकारी तथा आंकड़ों के अभाव के साथ-साथ उद्यमिता तथा कुशल प्रबन्धन का भी अभाव था। इन अभावों को नियोजित निवेश के जरिए विकास की प्रक्रिया शुरु करके ही दूर किया जा सकता था।

स्वतंत्रता के समय देश विभाजन से अत्यन्त अनेक गम्भीर समस्याओं से निपटने के लिए भी नियोजन आवश्यक था। नियोजन से देश की मूल आर्थिक समस्याओं के समाधान का सहायक उपकरण माना गया। आर्थिक विकास की गति को तेज करने, उत्पादन तथा निवेश की मात्रा को बढ़ाने, जनसंख्या नियंत्रण इत्यादि के अतिरिक्त विदेशी व्यापार बढ़ाने जैसे अनेक समस्याओं के लिए नियोजन आवश्यक समझा गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय ही देश में नियोजित विकास के लिए पहले से ही थोड़ा-बहुत अनुकूल वातावरण का निर्माण हो चुका था। भारत संभवतः पहले अल्पविकसित प्रजातान्त्रिक देश था जिसने आर्थिक विकास के लिए नियोजन का रास्ता चुना। देश में बाजार तंत्र और आर्थिक नियोजन की भूमिकाएं परस्पर पूरक रहीं हैं।

6.5.2 आर्थिक सुधारों के दौर में नियोजन की प्रासंगिकता

1991 में उदारीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत होने के बाद से सरकार ने नियोजन में सरकारी क्रियाकलापों में कटौती की है तथा निजी क्षेत्र की भूमिका का तेजी से विस्तार हुआ है। परन्तु नियोजन का महत्व अब भी बना हुआ है। आज विविध प्रकार की आर्थिक क्रियाआंे को संचालित तथा उन्हें समन्वित करने के लिए नियोजन जरूरी है। बाजार तंत्र की अनिवार्य अपूर्णताओं तथा कमियों से बचाकर अर्थव्यवस्था में तेज तथा स्थायित्व के साथ विकास करने के लिए नियोजन व राज्य की भूमिका आज भी महत्वपूर्ण है। सार्वजनिक तथा मेरिट वस्तुएं उपलब्ध कराने में राज्य की जिम्मेदारी आज कहीं और अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है। उदारीकरण के दौर में बढ़ती विषमताओं को कम करके सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने तथा गरीबी को कम करने मेंे नियोजन की भूमिका आज कहीं अधिक प्रासंगिक है।

6.5.3 भारत में आर्थिक नियोजन की पृष्ठभूमि

भारत में स्वतंत्रता के समय, नेताओं तथा नीति निर्माताओं के लिए नियोजन की अवधारणा नयी नहीं थी। 1934 में एम0 विश्वेसरैया की पुस्तक ''प्लान्ड इकोनॉमी फॉर इण्डिया'' में भारत के नियोजित विकास हेतु एक 10 वर्षीय आयोजन का प्रस्ताव था। 1938 में जवाहरलाल नेहरू की

अध्यक्षता में कांग्रेस द्वारा 'राष्ट्रीय नियोजन समिति' गठित की गयी थी। इस समिति ने आयोजन के लिए सामग्री एकत्र करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। देश के प्रमुख आठ उद्योगपतियों ने 1943 में 'ए प्लान फॉर इकोनॉमिक डेवलेपमेंट फॉर इण्डिया' नामक शीर्षक से एक योजना तैयार की, जिसे 'बाम्बे प्लान' कहा जाता है। स्पष्ट था कि भारत के उद्योगपतियों ने भी आर्थिक नियोजन की आवश्कता को स्वीकार किया।

स्वतंत्रता के पूर्व कई अन्य व्यक्तियों द्वारा भी विकास योजनाएं प्रस्तुत की गयीं। साम्यवादी दल के नेता श्री एम0एन0 राय द्वारा अप्रैल, 1944 में 10 वर्षीय 'पीपुल्स प्लान' प्रकाशित की गयी। इसी समय श्रीमननारायण ने गांधी जी के विचारों पर आधारित 'गांधियन प्लान' प्रस्तुत की। उपरोक्त योजनाएं विभिन्न विचारधाराओं को परिलक्षित करती थी। इनमें से कोई भी योजना औपचारिक या आधिकारिक नहीं थी। इन सभी का उद्देश्य देश या आर्थिक विकास नियोजन के द्वारा किया जाए।

अगस्त 1944 में भारत सरकार ने आयोजन एवं विकास विभाग स्थापित किया और उसकी जिम्मेदारी सर ए0 दलाल को सौंपी। इस विभाग ने अर्थव्यवस्था के पुर्ननिर्माण के लिए एक अल्पकालीन योजना तथा देश के आर्थिक विकास के लिए दीर्घकालीन योजना बनाई। स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरत बाद नवम्बर 1947 में आखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने आर्थिक प्रोग्राम समिति की स्थापना की जिसके अध्यक्ष पं0 जवाहरलाल नेहरू थे। सितम्बर 1946 में देश में अन्तरिम सरकार की स्थापना की गयी और उसके तुरन्त बाद ही श्री के0सी0 नियोगी की अध्यक्षता में एक सलाहकार योजना बोर्ड की स्थापना की गयी जिसने अपना प्रतिवेदन दिसम्बर 1946 में प्रस्तुत किया और सिफारिश की कि देश में नियोजन आवश्यक है। अतः एक स्थायी एवं स्वतंत्र योजना आयोग एवं सलाहकार समिति की स्थापना की जाए।

6.5.3.1 योजना आयोग

स्वतंत्रता के बाद नवम्बर, 1947 में कांग्रेस ने पं0 जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में आर्थिक कार्यक्रम समिति की नियुक्ति की जिसने अपना प्रतिवेदन जनवरी, 1948 में प्रस्तुत किया, जिसमें एक स्थायी योजना आयोग के स्थापना की सिफारिश की गयी। भारत सरकार के 15 मार्च, 1950 के एक संकल्प के द्वारा योजना आयोग की स्थापना की गयी।

योजना आयोग की सरकार के लिए सलाहकारी भूमिका होती है। प्रधानमंत्री इसके पदेन अध्यक्ष होते हैं। आयोग का उद्देश्य देश के संसाधनों का प्रभावी दोहन करके दीर्घकालिक सामाजिक तथा आर्थिक विकास के लिए योजनाओं का प्रस्ताव करना है। इसे देश के समस्त संसाधनों का मूल्यांकन करके, कमी वाले संसाधनों को बढ़ा करके, संसाधनों के अत्यधिक प्रभावी और संतुलित उपयोग के लिए योजनाएं बनाने और प्राथमिकताएं निश्चित करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी। भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951 में आरम्भ की गयी।

योजना आयोग राष्ट्रीय विकास परिषद के व्यापक मार्ग निर्देशन के अंर्तगत कार्य करता है। यह मानव विकास तथा आर्थिक विकास के अतिमहत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिए नीति तैयार करने हेतु व्यापक

दृष्टिकोण पैदा करने के लिए एकीकृत भूमिका निभाता है। आयोग इस बात पर भी जोर देता है कि देश के सीमित संसाधनों का उपयोग इस प्रकार हो कि उससे देश का उत्पादन अधिकतम हो सके। आयोग के उपाध्यक्ष और पूर्वकालिक सदस्य के संगठित निकाय के रूप में पंचवर्षीय योजनाओं, वार्षिक योजनाओं, राज्य योजनाओं, निगरानी योजनाओं और स्कीमों को तैयार करने के लिए विषय प्रयोगों का परामर्श और मार्ग निर्देश देते हैं। आयोग अनेक प्रभागों के माध्यम से कार्य करता है। प्रत्येक प्रभाग एक वरिष्ठ अधिकारी के अधीन होता है।

6.5.3.2 राष्ट्रीय विकास परिषद

समय-समय पर योजनाओं की कार्यविधि के विभिन्न पक्षों की पुनरीक्षा के लिए भारत सरकार द्वारा अगस्त 1952 के प्रस्ताव के अनुरूप राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना की गयी। भारत के प्रधानमंत्री, सभी राज्यों के मुख्यमंत्री तथा योजना के सदस्य इसके सदस्य हैं। परिषद का मुख्य कार्य योजना आयोग द्वारा तैयार की गयी योजनाओं पर विचार विमर्श करना और उसकी स्वीकृति देना है। परिषद की स्वीकृति के बाद ही योजना के मसौदे को संसद के समक्ष उसकी स्वीकृति के लिए रखा जाता है।

6.6 योजना निर्माण की प्रक्रिया

सफल आर्थिक नियोजन के लिए निम्नलिखित चीजें आवश्यक हैं

1-योजना प्राधिकरण

सफल नियोजन के लिए राज्य द्वारा स्थापित एक योजना आयोग होना आवश्यक है जो कि संसाधनों के सर्वेक्षण, उद्देश्यों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण, योजना, रणनीति इत्यादि कार्य करता है।

2-संसाधनों का सर्वेक्षण तथा आवश्यक आंकड़ों का संग्रहण

संसाधनों का सर्वेक्षण उचित आयोजन के लिए जरूरी है। देश में उपलब्ध समस्त भौतिक मानवीय तथा पूँजीगत संसाधनों का विश्वसनीय आंकड़ा योजना प्राधिकरण के पास होना आवश्यक है क्योंकि संसाधनों की उपलब्धता ही अंततः योजना के आकार का निर्धारण करती है।

3-उद्देश्यों का निर्धारण

नियोजन में स्पष्ट रूप से परिभाषित उद्देश्यों का निर्धारण होता है, जिसकी प्राप्ति के लिए नियोजन के अंतर्गत प्रयास किए जाते हैं। विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए योजना प्राधिकरण योजना में विभिन्न क्षेत्रों के लिए लक्ष्यों तथा प्राथमिकताओं का भी निर्धारण करता है।

6.6.1 भारत में योजना निर्माण की प्रक्रिया

भारत में पंचवर्षीय योजनाएं आर्थिक विकास तथा संवृद्धि के आयामों का निर्धारण करती है तथा समष्टि आर्थिक दरों के लिए लक्ष्यों का निर्धारण करती है। इस प्रकार योजनाएं निवेश के कार्यक्रमों तथा गतिविधियों के जरिए देश की अर्थव्यवस्था को वांछित दिशा में ले जाने का प्रयास करती हैं। भारतीय नियोजन प्रक्रिया देश में उपलब्ध निवेश योग्य संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग पर जोर देती है। इस प्रक्रिया में सम्मिलित है -

1. विकास के लिए रणनीतियों तथा सहायक नीतियों का वर्णन
2. आर्थिक संवृद्धि के लिए समष्टि चरों के संबंध में लक्ष्य निर्धारण तथा इसकी क्षेत्रीय प्रवृत्तियां
3. राज्य तथा केन्द्र के बीच तथा विभिन्न क्षेत्रीय गतिविधियों के लिए संसाधनों का आवंटन और बजटीय सहायता का आवंटन
4. विकास प्रक्रिया पर प्रभाव डालने के लिए लागू किए जाने वाले सार्वजनिक क्षेत्र की योजनाओं/प्रोजेक्ट/स्कीमों पर विचार

उपरोक्त योजना प्रक्रिया में एक बड़ा क्षेत्र सम्मिलित है और इसमें सरकार के अंदर तथा बाहर विभिन्न संस्थाओं तथा संगठनों को सम्मिलित किया जाता है जैसे-केन्द्रीय मंत्रालय, भारतीय रिजर्व बैंक, राज्य सरकार, जमीनी तथा निचले स्तर पर कार्य करने वाला प्रशासन और राजनीतिक नेतृत्व।

पंचवर्षीय योजना के निर्माण की शुरुआत दृष्टिकोण पत्र तैयार करने से होती है। योजना आयोग विभिन्न व्यक्तियों, संगठनों और सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों से विचार विमर्श के बाद दृष्टिकोण पत्र तैयार करता है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना में पहले की योजनाओं की अपेक्षा कहां अधिक व्यापक परामर्श किया गया है, जिसमें अनेकों संगठनों व व्याक्तियों ने विभिन्न संचार माध्यमों से भाग लिया। इसके बाद योजना आयोग इस दृष्टिकोण पत्र को राष्ट्रीय विकास परिषद के पास विचार तथा स्वीकृत के लिए भेजता है। राष्ट्रीय विकास परिषद की स्वीकृति के बाद दृष्टिकोण पत्र को राज्य सरकार तथा केन्द्रीय मंत्रालयों को वितरित कर दिया जाता है। योजना निर्माण के दौरान जुड़े संगठनों जैसे भारतीय रिजर्व बैंक को भी इसे वितरित किया जाता है।

राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा स्वीकृत दृष्टिकोण पत्र में रखे मानकों के आधार पर, केन्द्रीय मंत्रालय और राज्य अपनी संबंधित योजनाएं तैयार करते हैं। इसके लिए बड़ी संख्या में स्टीयरिंग कमेटी/कार्यदल बनाए जाते हैं जिसमें संबंधित मंत्रालयों के प्रतिनिधि, चुने हुए विद्वान, राज्य सरकारें, निजी क्षेत्र, गैर सरकारी संगठन इत्यादि होते हैं। इन समितियों तथा कार्य दलों की रिपोर्ट के आधार पर राज्य तथा केन्द्रीय मंत्रालय अपने विस्तृत योजनाओं तथा कार्यक्रमों के साथ अपना प्रस्ताव ले आते हैं। योजना आयोग केन्द्र तथा राज्य योजनाओं के इन योजनाओं तथा कार्यक्रमों की समीक्षा करता है और एक विस्तृत योजना तैयार करता है।

राष्ट्रीय योजना में केन्द्रीय योजना, जो कि केन्द्रीय सरकार तैयार करती है तथा राज्य योजना, जो कि राज्य सरकार द्वारा तैयार की जाती है, होती है। योजना आयोग केन्द्रीय तथा राज्य योजनाओं को एकीकृत कर राष्ट्रीय योजना का निर्माण करता है और इसके लिए वह विभिन्न स्तरों पर बहसों व समीक्षाओं की प्रक्रिया का सहारा लेता है। इसके तहत योजना आयोग राष्ट्रीय संसाधनों के आकार का अनुमान करता है, भुगतान संतुलन की स्थिति का आंकलन कर, बाह्य संसाधनों का अनुमान करता है, आयातों व निर्यातों तथा विदेशी पूँजी के प्रवाह का अनुमान करता है और वृद्धि मान पूँजी उत्पादन अनुपात का आकलन करता है।

उपरोक्त तथ्यों के आलोक में पंचवर्षीय योजना प्रपत्र, योजना आयोग द्वारा तैयार किया जाता है जिसमें योजना के उद्देश्यों, योजना का विस्तृत विवरण, विकास परिदृश्य, समष्टि आर्थिक आयाम, नीतिगत ढांचा, वित्तीयन का तरीका तथा क्षेत्रगत नीतियों का ब्यौरा होता है। तब योजना आयोग अंतिम योजना प्रपत्र राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष विचार तथा स्वीकृत के लिए प्रस्तुत करता है। पंचवर्षीय योजनाओं को वार्षिक योजनाओं के जरिए लागू किया जाता है। वार्षिक योजनाओं में राज्य तथा केन्द्र के बीच संसाधनों के आवंटन का विस्तृत विवरण होता है और सरकार की विभिन्न क्षेत्र की गतिविधियों का भी ब्यौरा होता है। साथ ही इसमें बजटीय संसाधनों का आवंटन तथा सार्वजनिक क्षेत्र के प्रोजेक्ट, कार्यक्रमों तथा स्कीमों का विस्तृत विचार किया जाता है। सरकारी व्यय की स्वीकृति वार्षिक बजट से प्रभावित होती है जो कि प्रतिवर्ष संसद द्वारा पास की जाती है। वार्षिक बजट में सरकार के संसाधनों तथा व्यय का आवंटन पंचवर्षीय योजनाओं को ध्यान में रखते हुए होता है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. योजना आयोग का क्या कार्य है?
2. स्वतंत्रता के समय नियोजित विकास का रास्ता अपनाए जाए के समर्थन में तर्क प्रस्तुत कीजिए।

2. अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. योजना आयोग की स्थापना कब हुई?
2. योजना आयोग का अध्यक्ष कौन होता है?
3. राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना वर्ष क्या है?
4. 'बाम्बे प्लान' किसके द्वारा प्रस्तुत किया गया था?

3. सत्य/असत्य का चुनाव कीजिए

1. योजना आयोग की भूमिका सलाहकारी होती है।
2. राष्ट्रीय विकास परिषद की स्वीकृति के बाद ही कोई योजना संसद में पेश की जाती है।
3. श्रीमननारायण ने स्वतंत्रता से पहले गांधीवादी विचारों पर आधारित 'गांधियन प्लान' प्रस्तुत किया।
4. 'ए प्लान फॉर इकोनॉमिक डेवलपमेंट फॉर इण्डिया' को 'पीपुल्स प्लान' भी कहा जाता है।
5. गरीबी तथा बेरोजगारी जैसी अनेक आर्थिक समस्याओं से निपटने में आर्थिक नियोजन आवश्यक है।

6.7 भारत में आर्थिक नियोजन की प्रमुख विशेषताएँ

भारत में नियोजन को सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के उपकरण के रूप में लागू किया गया। नियोजन का विशेष महत्व भारत में इसलिए था क्योंकि नियोजन का कार्य एक लोकतांत्रिक और संघीय प्रणाली के दायरे में किया जाने वाला था। नियोजन अत्मनिर्भरता, आर्थिक स्वाधीनता और सामाजिक न्याय के प्राप्ति के लिए भारत के संघर्ष में पर्याय बन गया। लोकतांत्रिक ढांचे के अंतर्गत 'समाजवादी ढंग के समाज' के स्थापना का सपना हमारे नीति निर्माताओं ने देखा था। इसीलिए मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत 'लोकतांत्रिक समाजवाद' की स्थापना के लिए भारत ने आर्थिक नियोजन का रास्ता चुना। इसीलिए यह नियोजन समाजवादी देशों के आदेशात्मक नियोजन से भिन्न था, दूसरी तरफ पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के विपरीत निजी क्षेत्र तथा बाजार तंत्र पर नियंत्रण और नियमन के लिए अनेक उपाय भी किए गए।

भारतीय नियोजन की प्रमुख विशेषाताएं निम्नलिखित हैं:

6.7.1 सांकेतिक आयोजन

भारतीय नियोजन का स्वरूप सांकेतिक या निर्देशात्मक है। ऐसा मिश्रित अर्थव्यवस्था जिसमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र दोनों का सहअस्तित्व है, की प्रणाली के कारण है। यह विभिन्न आर्थिक एजेण्टों को उन उद्देश्यों से अवगत कराती है जिसे प्राप्त करने का प्रयास करना है। साथ ही उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त तथा उपलब्ध साधनों का भी बोध करती है। योजना में उस समयावधि का भी उल्लेख किया जाता है जिसके भीतर वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति की जानी है।

इस प्रकार भारतीय नियोजन के अंतर्गत किसी भी कार्य के लिए अनिवार्यता का तत्व निहित नहीं होता है। भारतीय योजनाएं उन क्षेत्रों के लिए भी लक्ष्यों को निर्धारित करती हैं जिन पर सरकार का कोई नियंत्रण नहीं होता है। सरकार निजी क्षेत्र को विभिन्न प्रकार की प्रोत्साहनात्मक कार्यवाही द्वारा सुविधाएं प्रदान करती हैं और आधारिक संरचना का सृजन करती है। सरकार निजी क्षेत्र को स्पष्ट आदेश न देकर केवल उनके कार्यदशा और कार्य पद्धति के प्रति संकेत करती है। यद्यपि कुछ आर्थिक क्रियाओं पर नियमन और नियंत्रण की व्यवस्था होती है परन्तु समान्यतया निजी क्षेत्र पर नियंत्रण काफी कम होते हैं।

6.7.2 राज्य की भूमिका

उदारीकरण के शुरुआत से पूर्व सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी। नियोजन की शुरुआत में सार्वजनिक क्षेत्र को ''नियंत्रणकारी ऊँचाई'' पर पहुँचाने की बात कही गयी, जहां से यह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को नियंत्रित व नियमित कर सके।

आयोजनागत विकास की प्रारम्भिक अवस्था में राज्य से यह अपेक्षा की गयी कि वह अपने न्यूनतम अपेक्षित कार्यों यथा, सामाजिक तथा आर्थिक आधारिक संरचना का प्रावधान, से आगे जाकर अर्थव्यवस्था में 'सक्रिय' हस्तक्षेप करेगा और निम्नलिखित तरीकों से बाजार तंत्र को नियमित तथा नियंत्रित करेगा -

- आक्रामक राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों के द्वारा,
- बिना प्रत्यक्षरूप से उत्पादन गतिविधियों में आग लिए बाजार में हस्तक्षेप के द्वारा,
- सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम से प्रत्यक्षतः उत्पादक आर्थिक गतिविधियों में आग लेकर, अर्थात उत्पादन के संसाधनों पर अपने स्वामित्व के विस्तार के द्वारा।

इसका मुख्य मन्तव्य यह था कि सरकार निजी क्षेत्र की आर्थिक गतिविधियों की गति, साथ ही उसकी संरचना को नियंत्रित करके अपने सामाजिक न्याय के उद्देश्य को प्राप्त कर सके। परन्तु उदारीकरण के दौर में आयोजन बाजारोंन्मुख हो गया है। अब सरकार भी अधिकतर निर्णय बाजार के नियमों के अनुसार ही लेती है। निजी क्षेत्र के छूट का काफी विस्तार हुआ है और सार्वजनिक क्षेत्र में हिस्से में लगातार कटौती की गयी है। राज्य की भूमिका कम होने के साथ साथ आयोजन की व्याप्ति और तकनीकी में बदलाव आया है। इसके बावजूद आज भी सभी राजनीतिक दल सामाजिक आर्थिक विकास के एक वांछित और आवश्यक साधन के रूप में नियोजन की धारणा से प्रतिबद्ध हैं।

6.7.3 व्यापक योजनाएँ:

भारतीय नियोजन अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को अपने अन्दर समाहित करने का प्रयास करता है। इस अर्थ में इसकी व्यापकता काफी महत्वपूर्ण है। इसमें कृषि, उद्योग तथा सेवा क्षेत्र, सभी से संबंधित आर्थिक गतिविधियों के सम्बन्ध में लक्ष्य निर्धारण किए जाते हैं तथा सम्बन्धित नीतियाँ बनायी जाती हैं। इस दृष्टि से इसका स्वरूप कुछ-कुछ समाजवादी नियोजन से मिलता है।

6.7.4 विकेन्द्रिक आयोजन:

भारत में योजनाओं को बनाने एवं उसके क्रियान्वयन में व्यापक विकेन्द्रीकरण है। इस विकेन्द्रित स्वरूप के कारण केन्द्र व राज्यों के अतिरिक्त विभिन्न संगठनों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ व्यापक स्तर पर लोगों की भागीदारी योजनाओं में होती है। विभिन्न विषयों और क्षेत्रों से सम्बन्धित विशेषज्ञों की एजेन्सियाँ जो योजनाएँ तैयार करती हैं, उन पर जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से विचार-विनिमय करती हैं और अपना मत देती हैं।

आयोजन तंत्र में केन्द्रीय स्तर पर योजना आयोग, राज्य स्तर पर योजना विभाग और स्थानीय स्तर पर नगर निगम और ग्राम पंचायत सम्मिलित हैं। इस प्रक्रिया में गैर सरकारी संगठन भी भाग लेते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय विकास परिषद जिसमें केन्द्र तथा राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं, इन योजनाओं

की जांच करती है और आवश्यक संशोधन करती है। विशेषकर हाल के वर्षों में योजना का विकेन्द्रित स्वरूप और स्पष्टता के साथ सामने आया है।

6.7.5 भौतिक आयोजन:

नियोजन के प्रारम्भ में हमारे नीति निर्माताओं का यह मानना था कि जो कुछ भौतिक दृष्टि से संभव है वह वित्तीय दृष्टि से भी सम्भव होगा। इसलिए योजनाओं में वित्तीय नियोजन की जगह भौतिक नियोजन को अधिक महत्व दिया गया। अर्थात योजना के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संसाधनों का आवंटन श्रम, पदार्थ, ऊर्जा आदि के रूप में किया गया न कि वित्तीय साधनों के रूप में। इससे नियोजन के दौरान वित्तीय मोर्चे पर परेशानियों का सामना करना पड़ा।

6.7.6 विकासोन्मुख आयोजन:

भारतीय योजनाएं अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता बढ़ाकर लोगों में रहन-सहन के स्तर को सुधारने पर जोर देती हैं। आर्थिक एवं सामाजिक आधारिक संरचना के निर्माण तथा पूँजीगत वस्तु उद्योगों के विकास में योजनाओं की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। प्रत्येक योजना के अत्यधिक पूँजीनिर्माण पर जोर दिया जाता रहा है जिससे अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो। हाल के वर्षों में इस प्रवृत्ति में थोड़ा अन्तर दिखाई देता है।

6.7.7 सामाजिक आयोजन

भारतीय नियोजन का स्वरूप समाजिक है। यहां योजनाओं पर राजनीतिक वातावरण के प्रभावित करने वाले कारकों का प्रभाव बड़े ही स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। सरकारी नीतियाँ विभिन्न दबाव समूहों के हितों को ध्यान में रखकर बनाई जाती रही हैं जिससे प्रायः योजना की वास्तविक उपलब्धि, उसके निर्धारित उद्देश्यों से भिन्न रही है।

6.7.8 सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक संवृद्धि

अर्थव्यवस्था में उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ बेरोजगारी, गरीबी तथा असमानताओं में कमी, भारतीय नियोजन की प्रमुख विशेषता रही है। प्रारम्भिक योजनाओं में, हालांकि संवृद्धि पर विशेष जोर रहा, लेकिन 'रिसन-प्रभाव' की असफलता के कारण बाद में रोजगार सृजन से सम्बन्धित अनेक कार्यक्रम चालू किए गए और गरीबी उन्मूलन पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया।

6.7.9 आंकड़ों की अविश्वसनीयता

भारत में आंकड़ों की गुणवत्ता अच्छी नहीं है। पर्याप्त विश्वसनीय आंकड़ों के अभाव में नियोजन की सफलता अटकलबाजी मात्र हो जाती है। आंकड़ों के संकलन और विश्लेषण में अधिक समय लगने से भी उनका महत्व कम हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न-3

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सांकेतिक नियोजन क्या है?
2. सामाजिक न्याय के साथ संवृद्धि से आप क्या समझते हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन भारतीय नियोजन की विशेषता नहीं है
   (क) निर्देशात्मक नियोजन (ख) आदेशात्मक नियोजन
   (ग) विकेन्द्रित नियोजन (घ) भौतिक नियोजन
2. भारतीय नियोजन है
   (क) केन्द्रिकृत नियोजन (ख) पूँजीवादी नियोजन
   (ग) मिश्रित अर्थव्यवस्था नियोजन (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

6.8 सारांश

समानता के साथ विकास की उच्च संवृद्धि दरों को प्राप्त करने के लिए, मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढांचे में भारत ने आर्थिक नियोजन का रास्ता चुना। नियोजन आत्मनिर्भरता, आर्थिक स्वाधीनता तथा समाजिक न्याय की प्राप्ति का एक प्रभावी उपकरण रहा है। एक ऐसे देश में जहां सीमित संसाधनों ने लोगों की विश्वास आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करनी हो, वहां संसाधनों का, समाज के बड़े तबके की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सामाजिक हित के लिए अनुकूलतम आवंटन आर्थिक नियोजन के माध्यम से ही सम्भव है। भारत में स्वतंत्रता के बाद गरीबी, बेरोजगारी, आत्म विकास जैसी अनेक समस्याओं से जूझ रहा गतिहीन अर्थव्यवस्था को विकास के रास्ते पर आगे बढ़ाने के लिए आर्थिक नियोजन की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद के व्यापक निर्देशन में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए महत्वपूर्ण नीतियाँ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है।

भारत में आर्थिक नियोजन का कार्य एक लोकतांत्रिक और संघीय प्रणाली के दायरे में रहा है जहां निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का सहअस्तित्व है। यहां नियोजन का स्वरूप निर्देशात्मक रहा है। नियोजन के प्रारम्भिक वर्षों में जहां सार्वजनिक क्षेत्र को अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी गयी थी वहां हाल के दो दशकों से निजी क्षेत्र का महत्व बढ़ा है। भारतीय योजना में काफी व्यापक तथा विकासोन्मुख रही हैं। यहां वित्तीय आयोजन की अपेक्षा भौतिक आयोजन पर अधिक जोर रहा है। साथ ही कमोवेश योजना निर्माण तथा क्रियान्वयन में विकेन्द्रत स्वरूप की रही है।

6.9 शब्दावली

आर्थिक नियोजन -नियोजन निश्चित संसाधनों के द्वारा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने की एक सुविचारित क्रिया है, जिसके अंतर्गत एक निश्चित समयावधि और क्षेत्र के लिए योजना बनायी जाती है, जिसमें देश के उद्देश्यों और उन्हें प्राप्त करने के साधनों का उल्लेख होता है तथा इसका नियंत्रण व नियमन राज्य द्वारा किया जाता है।

बाजार तंत्र -ऐसी प्रणाली जिसमें सारे आर्थिक निर्णय कीमत तंत्र अर्थात् मांग और पूर्ति की शक्तियों के द्वारा लिए जाते हैं।

मिश्रित अर्थव्यवस्था -ऐसी आर्थिक प्रणाली जिसमें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों मिलकर कार्य करते हों और दोनों का सहअस्तित्व हो।

सांकेतिक या निर्देशात्मक नियोजन -जब नियोजन का स्वरूप अप्रत्यक्ष होता है और सरकार सिर्फ उस दिशा की रूपरेखा प्रस्तुत करती हो, जिस ओर अर्थव्यवस्था को ले जाना है। लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यह उपयुक्त साधनों पर भी प्रकाश डालती है। उद्देश्य प्राप्ति के साधन प्रेरकों और प्रोत्साहनों (धनात्मक तथा ऋणात्मक) के रूप में होते हैं। जो आर्थिक एजेण्टों को उद्देश्यों के अनुरूप व्यवहार करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं और अवांछनीय दिशा की ओर बढ़ने की दशा में हतोत्साहित करते हैं। निर्देशात्मक नियोजन में संवृद्धि का प्रेरणा स्रोत और आधार नीतिक्षेत्र होता है। योजनाओं में किसी भी कार्य के लिए कोई अपरिहार्यता या अनिवार्यता नहीं होती। इसे प्रेरणा द्वारा आयोजन भी कहा जाता है।

भौतिक नियोजन -जब योजना के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संसाधनों का आवंटन श्रम, पदार्थ, ऊर्जा आदि रूप में होता है तो उसे भौतिक आयोजन कहते हैं।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

बहुविकल्पीय प्रश्न

1.ग 2. ख

अभ्यास प्रश्न - 2

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1.15 मार्च, 1950, 2. प्रधानमंत्री, 3.अगस्त 1952, 4.शीर्ष आठ उद्योगपतियों द्वारा

सत्य/असत्य

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

अभ्यास प्रश्न - 3

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ख, 2. ग

6.11 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

3. Bimal Jalan, India's Economic Policy, Viking, New Delhi, 1996
4. Bimal Jalan, The India's Economy: Problems and Prospects, Viking, New Delhi, 1992.
5. Govt. of India, Planning Commission, IInd, Five Year Plan, Delhi, 1956
6. Govt. of India, Planning Commission, Reference Material 2010, Notes On The Functioning Of Various Divisions, New Delhi
7. Terance J. Byres, The Indian Economy Major Debates Since Independence, Oxford University Press, Delhi, 1998
8. Uma Kapila and Raj Kapila, Indian Economy since indepencence Academic foundatian, 2009, New Delhi.
9. M.L. Jhingan, The Economics of Development and Planning, Vrinds, 2006.
10. S.K. Mishra and V.K. Puri, Economics of Development and Planning, Himalaya Publishing House, 2008.
11. D.R. Gadgil, "Planning without a Policy frame", in Charan D. Vidawa (ed), Some Problems of India's Economic Policy (New Delhi, 1977)
12. Ashok Rukoa, Planning in India : An Evaluation in Terms of its Models, Eonomic & Political weekly, April 27, 1985

6.12 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ:

1. Vaidya Nathan, The Indian Economy Crisis, Response and Prospects, Orient Longman Ltd. Hyderabad, 1995.
2. S.K. Mishra and V.K. Puri, Indian Economy, Himalaya Publishing House, 2008.
3. Ruddar Dutt and L.P.M. Sundaram, Indian Economy. S. Chand and Company Ltd. 2008.
4. Indian Economy, A.N. Agrawal, Wishwa Prakashan Ltd. New Delhi, 2008

5. J.N. Bhagwati and S. Chakrawarty, Contibution to Indian Economic Analysis - A survey (Bombay 1971)
6. डा0 बद्री विशाल त्रिपाठी, भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल, इलाहाबाद 2004।
7. डा0 एस0के0 मिश्रा तथा डा0 वी0के0 पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया प्रकाशन, दिल्ली 2009।
8. डा0 रुद्र दत्त तथा डा0 के0पी0एम0 सुन्दरम्, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द प्रकाशन,दिल्ली 2009।

6,13 निबंधात्मक प्रश्न

1. आर्थिक नियोजन क्या है? अल्पविकसित देशों में नियोजन की आवश्यकता एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. भारत में आर्थिक नियोजन की पृष्ठभूमि तथा योजना निर्माण प्रक्रिया पर एक निबन्ध लिखिए।
3. भारत के आर्थिक नियोजन की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई-7 आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ (ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना तक)

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 भारत में आर्थिक नियोजन के उद्देश्य
7.4 आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ
7.5 आर्थिक नियोजन का मूल्यांकन
7.6 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.11 उपयोगी/सहायक ग्रंथ
7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था के खण्ड दो ''पंचवर्षीय योजना एवं आर्थिक विकास की समस्याएँ'' से संबंधित यह दूसरी इकाई है। इस खण्ड की पहली इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप आर्थिक नियोजन की विशेषताओं, उसकी प्रासंगिकता तथा योजना निर्माण की प्रक्रिया के संबंध में बता सकते हैं।

भारत में अब तक दस पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी हो चुकी हैं तथा ग्यारहवीं योजना चल रही है। प्रस्तुत इकाई में भारत में अब तक की पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य तथा उपलब्धियों पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप भारत में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियों के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप

- भारत में आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों को जान सकेंगे।
- भारत में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- नियोजन का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना तथा उसकी मध्यावधि समीक्षा को जान सकेंगे।

7.3 आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

किसी भी नियोजन का उद्देश्य देश, काल और परिस्थिति पर निर्भर करता है। भारतीय योजनाओं में भी देश की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुरूप उद्देश्य का निर्धारण किया गया, फिर भी भारतीय संविधान के नीति निर्देशन सिद्धान्तों के अनुरूप भारतीय आर्थिक नियोजन के दीर्घकालिक उद्देश्य काफी स्पष्ट हैं। अलग-अलग योजनाओं में निर्धारित उद्देश्यों में भिन्नता होने के बावजूद ये दीर्घकालिक उद्देश्य प्रत्येक योजना के मूल में रहे हैं।

7.3.1 आर्थिक संवृद्धि- भारत की सभी पंचवर्षीय योजनाओं का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यस्था के सभी क्षेत्रों के विकास के द्वारा आर्थिक संवृद्धि की दर को तेज करना रहा है। जिससे राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय में तीव्र हो सके। प्रारम्भिक योजनाओं में इस मान्यता के साथ संवृद्धि दर को तेज करने के प्रयास किए गए कि इसका लाभ रिस-रिसकर समाज के निचले, कमजोर और उपेक्षित तबके तक पहुंचेगा और गरीबी दूर होगी तथा आम लोगों के जीवन के रहन-सहन के स्तर में सुधार होगा। परन्तु

वास्तव में ऐसा नहीं हुआ और गरीबी, बेरोजगारी तथा आर्थिक असमानता में कमी नहीं आयी। क्योंकि संवृद्धि अर्थात उत्पादन वृद्धि के लाभ समान के ऊँचे अर्थात सम्पन्न तबके तक ही सीमित रहे।

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के स्वरूप तथा उनके अंतर्गत निर्धारित उद्देश्यों और साधनों के विभिन्न क्षेत्रों के बीच आवंटन से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि योजनाओं ने उत्पादन वृद्धि पर ही अधिक ध्यान दिया। योजनाओं की सफलता और असफलता का मूल्यांकन भी आर्थिक संवृद्धि की दर से ही किया जाता रहा है। योजनाओं में संवृद्धि का उद्देश्य इतना महत्वपूर्ण रहा है कि उसकी संरचना पर ध्यान नहीं दिया गया। इसीलिए बढ़ती गरीबी और असमानता के लिए 1970 के बाद 'गरीबी हटाओ' तथा 'सामाजिक न्याय के साथ विकास' का नारा देना पड़ा।

7.3.2 पूर्ण रोजगार- रोजगार के अवसरों को बढ़ाकर बेरोजगारों को रोजगार उपलब्ध कराना तथा अल्प रोजगार वालों को पूरा रोजगार दिलाना, जिससे गरीबी दूर हो सके, योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य रहा है। यद्यपि सभी पंचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक नियोजन का एक प्रमुख उद्देश्य रोजगार में वृद्धि रही है। परन्तु किसी भी योजना में इसे मुख्य उद्देश्य के रूप में प्राथमिकता नहीं दी गयी। अनेक अर्थशास्त्रियों का मत है कि भारत में कोई रोजगार युक्ति रहीं ही नहीं है। प्रारम्भ में यह मान लिया गया कि निवेश में वृद्धि से रोजगार में राष्ट्रीय आय में साथ-साथ वृद्धि होगी।

पहली बार जनता सरकार द्वारा तैयार की गयी छठी योजना (1978-83) में रोजगार को संवृद्धि के ऊपर प्राथमिकता देते हुए मुख्य उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया गया, परन्तु वास्तविक छठी योजना (1980-85) में पुनः रोजगार एक गौण उद्देश्य के रूप में ही सामने आया। सातवीं और फिर आठवीं पंचवर्षीय योजना में रोजगार को प्राथमिकता दी गयी, परन्तु विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार सृजन के लिए किसी स्पष्ट रोजगार युक्ति का अभाव रहा। उदारीकरण के बाद के वर्षों में रोजगार सृजन मुख्यतः अर्थव्यवस्था कीर्तन संवृद्धि व विकास से जुड़ा है जो कि मुख्यतः बाजार अर्थव्यवस्था पर निर्भर है। सरकार ने विभिन्न रोजगार सृजन योजनाओं के माध्यम से अकुशल रोजगार सृजित करने का प्रयास किया है परन्तु बढ़ती श्रमशक्ति को देखते हुए ये अपर्याप्त है।

7.3.3 गरीबी निवारण- सामाजिक न्याय सुनिश्चित कर 'समाजवादी ढंग के समान' ही स्थापना की ओर प्रयास योजनाओं का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। गरीबी और आर्थिक असमानताओं में कमी अल्प सामाजिक न्याय की मांग है।

प्रारम्भ में 'रिसन प्रभाव' की परिकल्पना के कारण योजनाकारों ने गरीबी निवाकरण को आर्थिक नियोजन का उद्देश्य नहीं माना। परन्तु संवृद्धि के लाभ गरीबों तक नहीं पहुंचने के कारण पहली बार पांचवी पंचवर्षीय योजना में गरीबी हटाने की बात कही गयी और गरीबी निवारण सम्बन्धी कार्यक्रमों की शुरुआत हुई। आगे की योजनाओं में इस तरह के कार्यक्रमों की व्यापकता बढ़ी और समय-समय

पर नये कार्यक्रम भी चालू किए गए। परन्तु आयोजन के छः दशक बाद भी लगभग एक तिहाई से अधिक जनसंख्या (योजना आयोग द्वारा गठित तेन्दुलकर समिति के अनुसार 2004-05 में 37.2%) गरीबी रेखा के नीचे है।

7.3.4 आर्थिक समानताओं में कमी- सामाजिक न्याय का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू आर्थिक असमानताओं में कमी करना है। यद्यपि विभिन्न योजनाओं में, विशेषकर प्रारम्भिक योजनाओं में, असमानताओं में कमी का उल्लेख किया गया है। परन्तु किसी भी योजना का यह मुख्य उद्देश्य नहीं रहा। किसी भी पंचवर्षीय योजना में देश में आय व सम्पत्ति की असमानताओं के अनुमान नहीं दिए गए हैं। इसका प्रमुख कारण 'रिसन प्रभाव' की परिकल्पना थी। आय व सम्पत्ति की असमानताओं को कम करने के लिए भी तेज आर्थिक संवृद्धि जरूरी समझा गया। पांचवीं पंचवर्षीय योजना के बाद गरीबी निवारण के उद्देश्यों में कुछ प्राथमिकता दी गयी परन्तु असमानताओं में कमी के उद्देश्य को नजरअंदाज किया गया। उदारीकरण की नीति के पश्चात् तो आर्थिक नीतियों में इस उद्देश्य की चर्चा करना भी बेमानी है। आय व धन का संकेन्द्रण आज कहीं अधिक तेजी से बढ़ता जा रहा है।

7.3.5 आत्मनिर्भरता- भारत में आर्थिक नियोजन का उद्देश्य तेज आर्थिक विकास के साथ-साथ आत्मनिर्भरता के उद्देश्य को प्राप्त करना रहा है। परन्तु आत्मनिर्भरता का लक्ष्य बदलता रहा है। यह आत्मनिर्भरता खद्यान्नो और मशीने तथा अन्य उपकरणों के साथ-साथ विदेशी सहायता के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण रहा है। पहली बार तीसरी पंचवर्षीय योजना में विदेशी सहायता से मुक्ति के रूप में आत्म निर्भरता का स्पष्ट उल्लेख किया गया। बाद की योजनाओं में खाद्यान्न उत्पादक से लेकर विभिन्न प्रकार के उपकरणों, मशीनों व पूँजीगत साधनों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। आत्मनिर्भरता को योजना आयोग ने बाद की योजना में प्रावैगिक अर्थों में प्रयुक्त किया। इस बात पर जोर दिया गया कि हमारे निर्यात इतने अधिक हों कि हम अपनी आयात जरूरतों तथा विदेशी लक्ष्यों से सम्बन्धित दायित्वों को पूरा कर सकें। इस उद्देश्य की प्राप्ति में भारत को काफी हद तक सफलता भी मिली। हरित क्रांति की सफलता तथा एक मजबूत व विविधीकृत औद्योगिक तथा पूँजीगत आधार इसका प्रमाण है।

7.3.6 आधुनिकीकरण- आर्थिक नियोजन का एक प्रमुख उद्देश्य अर्थव्यवस्था को आधुनिक रूप देना है। अर्थात् अर्थव्यवस्था में इस प्रकार के संरचनात्मक एवं संस्थागत परिवर्तन लाए जाएं कि अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर एवं प्रगतिशील बन सके। आयोजकों ने हमेशा ही आर्थिक विकास के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा वैज्ञानिक मनोवृत्ति को महत्वपूर्ण माना। परन्तु छठीं पंचवर्षीय योजना से पहले कभी भी आधुनिकीकरण को नियोजन के लक्ष्य के रूप में नहीं रखा गया। छठीं योजना में आधुनिकीकरण, आर्थिक क्रिया के रूप में अनेक ढांचागत और संस्थागत परिवर्तनों की ओर इशारा करता है। सावतीं योजना से आधुनिकीकरण का प्रयोग मुख्य रूप से प्रौद्योगिकी में

परिवर्तन के संदर्भ में किया गया। हालांकि सिर्फ इस अर्थ में उन्नत पूँजी प्रधान तकनीक से अनेकों श्रमिक बेरोजगार हो सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न - 1

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नियोजन में आत्म निर्भरता के उद्देश्य से क्या तात्पर्य रहा है?
2. भारत में आर्थिक संवृद्धि के उद्देश्य की महत्ता पर प्रकाश डालिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नियोजन के किन्ही चार प्रमुख उद्देश्यों के नाम बताइए।
2. सामाजिक न्याय से क्या तात्पर्य है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन-सा उद्देश्य भारतीय नियोजन का दीर्घकालिक उद्देश्य नहीं रहा है

   (क) आर्थिक संवृद्धि (ख) आत्मनिर्भरता

   (ग) कीमतों का नियंत्रण (घ) पूर्ण-रोजगार

2. 'रिसन प्रभाव' से तात्पर्य है:-

   (क) गरीबी पर सीधा प्रहार (ख) सिंचाई सुविधाओं में विस्तार

   (ग) उत्पादन वृद्धि का लाभ रिस-रिसकर समाज के निम्न तबके तक पहुँचना (घ)अर्थव्यवस्था से पूँजी का रिसाव

7.4 नियोजन की उपलब्धियाँ

भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन की अनेक कठिनाइयाँ व सीमाएं रही हैं। हमारी योजनाएं एकदम युक्तियुक्त भले ही नहीं रही हों और इसका निष्पादन लक्ष्य से कम रहा हो फिर भी नियोजन की उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण रही हैं। नियोजन में निर्धारित उद्देश्यों तथा लक्ष्यों की प्राप्ति में योजनाओं की उपलब्धियाँ निम्नलिखित रही हैं।

7.4.1 संवृद्धि प्रक्रिया की शुरुआत- 1951 में नियोजन की शुरुआत के बाद नियोजन अवधि में औसत वार्षिक संवृद्धि दर लगभग 4.5% रही है, जो कि औपनिवेशिक शासन काल के 20वीं

सदी के पहले लगभग 50 वर्षों (1901 से 1946) की संवृद्धि दर, 1.2%, से कहीं अधिक है। पूरे नियोजन अवधि में प्रति व्यक्ति आय में लगभग 1.8% वार्षिक दर से वृद्धि हुई। जबकि स्वतंत्रता पूर्व इसमें वृद्धि नगण्य थी। उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता के बाद नियोजन के माध्यम से गतिहीन अर्थव्यवस्था में उत्पादन बढ़ाने के महत्वपूर्ण प्रयास हुए। नियोजन के प्रारिम्भक दशकों में संवृद्धि दर कम रहने के बावजूद विकास प्रक्रिया को शुरु करने तथा एक मजबूत आर्थिक ढांचा खड़ा करने में सहायता मिली। इसी कारण पहले तीन दशकों में अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर 3.5% थी, जिसे 'हिन्दू वृद्धि दर' कहा गया, परन्तु बाद के वर्षों में (1980-81 से 2009-10) यह दर बढ़कर 5.5% से अधिक हो गयी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना एक सफल योजना थी जिसमें उत्पादन की वृद्धि दरें, लक्ष्यों की अपेक्षा अधिक रहीं- राष्ट्रीय तथा प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि दरें क्रमशः 2.1% तथा 0.9% के लक्ष्य के विपरीत 4.4% तथा 1.8% वार्षिक रहीं। दूसरी योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि 4% की रही जबकि प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि 2% वार्षिक थी। तीसरी योजना में वृद्धि-दर मात्र 2.6% थी, जबकि लक्ष्य 6% वार्षिक का था। इसलिए प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि मात्र 0.5% थी। भारत तथा चीन से दो युद्धों तथा 1965-66 के भीषण अकाल के कारण तीसरी योजना बुरी तरह असफल रही थी। इस कारण चौथी योजना तीन वर्ष देर से शुरु हो पायी। 1966 से 1969 के बीच तीन वार्षिक योजनाएं प्रस्तुत की गयीं। चौथी योजना के 5.7% के लक्ष्य के विपरीत वास्तविक संवृद्धि दर मात्र 3.1% वार्षिक थी। पांचवी योजना में निष्पादन थोड़ा बेहतर रहा और संवृद्धि दर 4.9% वार्षिक रही (संशोधित लक्ष्य 4.4%) छठी तथा सातवीं योजना में संवृद्धि दर क्रमशः 5.7% तथा 6.0% वार्षिक थी। स्पष्ट है कि पांचवीं योजना से राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि थोड़ी प्रभावशाली दिखती है।

1990-91 तथा 1991-92 में राजनीतिक उथल-पुथल और खाड़ी संकट के कारण तेज संवृद्धि दर रह पाना संभव नहीं हुआ, इन दोनों वर्षों में संवृद्धि दर क्रमशः 5.2% तथा 0.9% थी। आठवीं पंचवर्षीय योजना में 5.6% के लक्ष्य के विपरीत वास्तविक संवृद्धि दर 6.8% थी। हालांकि नवीं पंचवर्षीय योजना में यह कम होकर 5.4% हो गयी (लक्ष्य 6.5%)। लेकिन दसवीं योजना काफी बेहतर रही, जबकि संवृद्धि दर अब तक की किसी भी योजना से अधिक 7.8% वार्षिक थी (लक्ष्य 8.0%)। ग्यारहवीं योजना के पहले चार वर्षों में संवृद्धि दर औसतन 8.2 प्रतिशत थी।

7.4.2 कृषि क्षेत्र में प्रगति- कृषि एवं संवद्धि परियोजनाओं पर नियोजन काल में कुल व्यय कुल योजना परिव्यय का औसतन 23 से 24% रहा है। इससे नियोजन काल में कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। प्रारम्भिक वर्षों में कृषि आधीन क्षेत्र में विस्तार के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई जबकि बाद के दशकों में (हरित क्रांति के बाद) उत्पादन वृद्धि प्रति हेक्टेयर उत्पादन वृद्धि का परिणाम थी। 1950-51 से 2010-11 के बीच खाद्यान्न उत्पादन 2.5% से अधिक की वार्षिक दर से बढ़ा। कुल

खाद्यान्न उत्पादन जो कि 1950-51 में 51 मिलियन टन था, 2010-11 में बढ़कर 241.56 मिलियन टन हो गया।

हरित क्रांति से पहले की तीन पंचवर्षीय योजनाओं तथा वार्षिक योजनाओं (1951-52 से 1967-68) में कृषि तथा संबंधित क्षेत्र की संवृद्धि दर 2.5% थी, जबकि चौथी व पांचवीं योजना (1968-69 से 1980-81), जो कि हरित क्रांति का काल रहा, के दौरान 2.4% रही। 1981-82 से 1990-91 के बीच (छठी व सातवीं योजना) कृषि व संबद्ध क्षेत्र की संवृद्धि दर 3.5% थी। 1991-92 से 1996-97 की अवधि में यह दर 3.7% थी। नवीं तथा दसवीं पंचवर्षीय योजना (1997-98 से 2006-07) के दौरान यह मात्र 2.55 थी। गेंहूँ के उत्पादन में वृद्धि उल्लेखनीय रही है जो कि 1950-51 के 7 मिलियन टन से बढ़कर 2010-11 में लगभग 86 मिलियन टन हो गया। इसी प्रकार चावल का उत्पादन इस दौरान 21 मिलियन टन से बढ़कर 95.32 मिलियन टन हो गया। गैर-खाद्यान्न फसलों में आलू के उत्पादन में आश्चर्यजनक थी। आलू का उत्पादन 1950-51 में 2 मिलियन टन से बढ़कर 2008-09 में 34.4 मिलियन टन हो गया। गन्ने का उत्पादन 1950-51 में 57 मिलियन टन से बढ़कर 2010-11 में 339 मिलियन टन हो गया। इसी दौरान तिलहनों का उत्पादन 5 मिलियन टन से 31 मिलियन टन तथा कपास का उत्पादन 3 मिलियन बेल्स से 33.4 मिलियन बेल्स हो गया।

योजना के दौरान दालों तथा मोटे अनाजों का उत्पादन संतोषजनक नहीं रहा। दालों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता जो कि 1956-57 में 72 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन थी, घटकर 2005-06 में 33 ग्राम हो गयी। तिलहनों की भी लगातार बढ़ती मांग को उत्पादन की वृद्धि पूरा न कर सकी तथा खाद्य तेलों के आयात में वृद्धि हुई। फिर भी सीमित भूमि सुधारों ने भी कृषि के विकास में एक महत्वपूर्ण वातावरण तैयार किया। 1965 के बाद नयी कृषि युक्ति के प्रयोग से न सिर्फ कृषि उत्पादन बढ़ा बल्कि एक बड़े क्षेत्र में खेती की तकनीक तथा उससे सम्बन्धित सोच में भी बदलाव हुआ।

7.4.3 औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि- प्रथम तीन योजनाओं में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि काफी प्रभावशाली थी जोकि क्रमशः 5.7, 7.2 तथा 9.0% थी। परन्तु 1966 से 1975 के दौरान यह वृद्धि मात्र 3.75 रह गयी। हालांकि 1976 में वृद्धि 10.6% थी, 1976-77 से 1980-81 के बीच भी औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर मात्र 3.3% वार्षिक थी। परन्तु 1980-81 से 1990-91 के बीच यह बढ़कर 7.6% वार्षिक हो गयी। 1991-92 तथा 1992-93 में औद्योगिक उत्पादन 1.0% से भी कम की दर से बढ़ा। हालांकि आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंतिम चार वर्षों (1993-94 से 1996-97) यह 8.6% वार्षिक हो गयी। नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-98 से 2001-02) में औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर कम होकर 5.5% रह गयी। परन्तु दसवीं योजना में बढ़कर यह 8.2% हो गयी हालांकि यह 10% के लक्ष्य से कम थी।

1957 के पश्चात औद्योकीकरण की प्रगति भारतीय नियोजन का प्रमुख लक्ष्य रही है। योजना काल में बिजली, परिवहन व संचार जैसी बुनियादी सेवाओं के विकास के लिए काफी प्रयास

किए गए। साथ ही भारी तथा पूँजीगत वस्तु उद्योगों में निवेश पर भी विशेष ध्यान दिया गया। इससे भारत का औद्योगिक आधार काफी मजबूत हुआ और एक विविधिकृत औद्योगिक ढांचे का निर्माण हुआ। 1956 में औद्योगिक नीति प्रस्ताव के आधीन देश में इंजीनियरिंग वस्तुओं, लोहा व इस्पात, धातु व धातु आधारित वस्तुओं, मशीनरी इत्यादि का देश में उत्पादन तेजी से बढ़ा 1980 के दशक में रसायन, पेट्रो, रसायन तथा संबद्ध उद्योगों का भी तेजी से विकास हुआ। साथ ही 1980 के बाद से टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में भी तेज वृद्धि आयी है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद में उद्योग का हिस्सा जो कि 1950-51 में 15.1% था 2009-10 में लगभग 26% हो गया।

7.4.4 बचत व निवेश दरों में वृद्धि-नियोजन काल में सकल घरेलू बचत तथा निवेश में निरन्तर वृद्धि दर्ज हुई है। सकल घरेलू उत्पाद (जी0डी0पी0) के प्रतिशत के रूप में सकल घरेलू बचत जो कि 1950-51 में 8.6% थी, बढ़कर 1960-61 में 17.94, 1970-71 में 14.2 प्रतिशत तथा 1980-81 में 18.5% हो गयी, जबकि इन्हीं वर्षों में निवेश दरें क्रमशः 8.4% 14%, 15.1% तथा 19.9% थीं। पांचवीं योजना के अंतिम तीन वर्षों में बचत दर, पूँजी निर्माण दर से ऊँची थी। छठीं व सातवीं योजना में बचत तथा निवेश दरों में वृद्धि हुई। 1989-90 में बचत दर 21.8% तथा निवेश दर 24.3% हो गयी। आर्थिक सुधारों के बाद की अवधि में इसमें और तेज वृद्धि हुई। बचत दर जो कि 1996-97 में 22.7% थी 2006-07 में बढ़कर 36.5% हो गयी, जबकि निवेश दर 24 प्रतिशत से बढ़कर 36.9 प्रतिशत हो गयी।

7.4.5 आधारिक संरचना का विकास - परिवहन, ऊर्जा, संचार तथा सिंचाई के विकास के लिए योजनाओं के दौरान नियोजित ढंग से विशेष प्रयास किए गए। यद्यपि निर्धारित लक्ष्य नहीं प्राप्त किए जा सके लेकिन आधारिक संरचना के विकास से ही संवृद्धि दर को तेज करने में मदद मिली। 1950-51 में कुल सिंचाई संभाव्यता 2.26 करोड़ हेक्टेयर से बढ़कर 2006-07 में 10.28 करोड़ हेक्टेयर हो गयी। बिजली की कुल उत्पादन क्षमता 1951 में 2300 मेगावाट से बढ़कर जुलाई 2009 के अंत तक 1,50,574 मेगावाट हो गयी। सड़कों की लम्बाई 2.44 लाख किमी से बढ़कर 33.2 लाख किमी हो गयी।

7.4.6 सामाजिक ऊपरी पूँजी संरचना का विकास -शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास में भी नियोजन की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। देश में प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर सकल नामांकन का अनुपात 96% तक पहुंच चुका है, यद्यपि कक्षा 1 से 8 के बीच पढ़ाई छोड़ने वालों का प्रतिशत 51% है? जो कि काफी अधिक है। यद्यपि वांछित दर से शिक्षा का विकास नहीं हुआ है फिर भी आयोजन काल में शिक्षण संस्थानों, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। साक्षरता दर जो कि 1951 में 18.3% थी, बढ़कर 2007 में 66% हो गयी। उच्च शिक्षा के ढांचागत विकास में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। 2005-06 में देश में 378 विश्वविद्यालय और 18064 महाविद्यालय थे, जिनमें 110 लाख विद्यार्थी नामांकित थे।

योजनाकाल में स्वास्थ्य सुविधाओं का भी विकास हुआ है। भारत में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा जो कि 1950-51 में 32 वर्ष थी, बढ़कर 2000-01 में 65 वर्ष हो गयी। योजनाकाल में अस्पतालों में बिस्तरों की संख्या 8 गुना से अधिक हो गयी। डाक्टरों की संख्या लगभग 62 हजार से बढ़कर 9 लाख हो गयी।

7.4.7 सार्वजनिक क्षेत्र का विकास - आर्थिक संवृद्धि को तेज करने में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका बड़ी अहम रही है। इसने न सिर्फ अर्थव्यवस्था में नियंत्रणकारी ऊँचाई हासिल की बल्कि आधारिक संरचना के निर्माण, भारी तथा पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन, वित्तीय संस्थाओं निर्माण व विकास, छोटी बचतों के एकत्रण आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आर्थिक नियोजन की अवधि में कुल निवेश का लगभग 40% निवेश सार्वजनिक क्षेत्र में किया गया।

7.4.8 निर्यात का विविधीकरण तथा आयात प्रतिस्थापन - औद्योगिकीकरण की नीति के परिणामस्वरूप भारत के निर्यातों में लगभग 3/4 हिस्सा विर्निमित वस्तुओं का हो गया जो कि स्वतंत्रता के समय एक चौथाई से भी काफी कम था। चरणबद्ध तरीके से नियोजन के दौरान अपनायी गयी आयात प्रतिस्थापन की नीति ने देश को अनेक उपभोक्ता वस्तुओं तथा पूँजीगत वस्तुओं के मामले में काफी हद तक आत्मनिर्भर बनाया।

7.4.9 अर्थव्यवस्था में संस्थागत पवितर्तन - योजनावधि में अनेक संरचनात्मक एवं संस्थागत परिवर्तन हुए हैं जिससे अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण हुआ है तथा यह विकास की ओर अग्रसर हुई है। राष्ट्रीय आय की संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं और इसमें कृषि का हिस्सा कम होकर 56% से 14% हो गया है जबकि उद्योग और सेवा क्षेत्र का हिस्सा बढ़ा है। श्रम के व्यवसायिक वितरण में भी थोड़ा सा परिवर्तन हुआ है और कृषि पर आधारित श्रम शक्ति 52% रह गयी है, हालांकि यह काफी अधिक है। आधुनिक तकनीक का प्रयोग करने वाले उद्योगों तथा सेवा क्षेत्रों की संख्या में तेज वृद्धि हुई है। कृषि क्षेत्र में भी नयी तकनीकी का प्रयोग बढ़ा है। बैंकिग तथा वित्तीय प्रणाली के ढांचे में हाल के वर्षों में महत्वपूर्ण बदलाव हुआ है तथा अर्थव्यवस्था का मौद्रीकरण बढ़ा है। निर्यातों तथा आयातों की संरचना में भी महत्वपूर्ण संरचनात्मक बदलाव हुए हैं।

अभ्यास प्रश्न - 2

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नियोजन के दौरान उत्पादन की संरचना में किस प्रकार के परिवर्तन हुए ?
2. 1991 के बाद आर्थिक संवृद्धि दर की प्रवृत्ति क्या रही है ?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. किस योजना में संवृद्धि दर सर्वाधिक थी?
   (क) छठवीं (ख) आठवीं (ग) नवीं (घ) दसवीं

2. दालों की प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता नियोजन काल में:-
   (क) बढ़ी है (ख) घटी है (ग) स्थिर रही है

7.5 आर्थिक नियोजन का मूल्यांकन

भारत में नियोजन का एक ठोस आर्थिक आधार है। दुर्लभ संसाधनों और विपुल आवश्यकताओं की स्थिति में आवश्यक है कि संसाधनों, और खासकर सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधनों, के आवंटन में विकास के उद्देश्य और प्राथमिकताएं प्रतिविंबत हों। इन संसाधनों के लिए आपस में टकरानेवाली तथा प्रतियोगी क्षेत्रीय मांगे भी सामने आती हैं। इस कारण यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि इन संसाधनों का आवंटन राज्यों के साथ विचार-विमर्श की प्रक्रिया को संस्थागत रूप देने और परस्पर विरोधी हितों और आपस में टकरानेवाली मांगों में संतुलन स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई है।

भारत में नियोजन की उपलब्धियाँ काफी महत्वपूर्ण रही हैं। लेकिन नियोजन की युक्ति की अनेक कमियों के आधार पर इसकी आलोचना की जाती रही है। साथ ही योजनाओं का कार्यान्वयन भी बेहतर नहीं रहा है।

7.5.1 नियोजन रणनीति -भारतीय नियोजन का एक स्पष्ट नीतिगत ढांचा नहीं है इसीलिए राज्य प्रायः गलत दिशाओं में प्रयास करता रहा और अपने निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में योजनाएं असफल रहीं। इससे एक तरफ राज्य के हस्तक्षेप की गुणवत्ता में गिरावट आयी, दूसरी ओर अर्थव्यवस्था बिना राज्य के हस्तक्षेप के अपना काम करती रही। किसी ठोस और स्पष्ट रणनीति के न होने के कारण राज्य निजी क्षेत्र को राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप ढालने में असफल रहा तथा निजी क्षेत्र ने इन प्राथमिकताओं का उल्लंघन करके आयोजन प्रक्रिया को एक हद तक विकृत किया।

प्रारम्भिक योजनाओं में भारी उद्योगों में निवेश के लिए अत्यधिक पूँजी की आवश्यकता थी, परन्तु वित्तीय साधनों के गतिशीलन के लिए कोई ठोस वित्तीय नीति नहीं बनाई गयी। घरेलू स्तर पर संसाधनों को इकट्ठा करने या उपभोग को नियंत्रित करने जैसे तार्किक व स्थायी नीति न अपनने के कारण ऋण तथा घाटे की वित्त व्यवस्था पर सरकार की निर्भरता बढ़ी। जिससे अर्थव्यवस्था में कीमतों में तेज वृद्धि हुई और योजना प्रक्रिया में अनेक दिक्कतों का सामना करना पड़ा। प्रारम्भिक योजनाओं में निर्यात के प्रति उदासीनता के चलते विदेशी साधनों से संसाधनों को जुटाने के प्रति भी राज्य के प्रयास तदर्थ नीति के रूप में ही रहे।

निवेश दर में वृद्धि को ही आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण कारक माना गया तथा अन्य महत्वपूर्ण तत्वों जैसे बेहतर प्रबन्धन, मानवीय पूँजी की गुणवत्ता, उत्पादन की संरचना, निवेश की संरचना, उचित व प्रभावी क्रियान्वयन इत्यादि पर ध्यान नहीं दिया गया। निवेश की संरचना पर ध्यान न देने के

कारण 1965 के बाद औद्योगिक क्षेत्र में निवेश धनी आय वर्ग की उपभोग के उत्पादन के लिए अधिक किया गया तथा मूलभूत व पूँजीगत उद्योगों की वृद्धि दर अपेक्षाकृत कम रही।

'रिसन प्रभाव' के ठीक से कार्य करने की मान्यता के कारण प्रारम्भिक योजनाओं में रोजगार बढ़ाने, गरीबी दूर करने आय व धन की असमानताओं में कमी करने की किसी ठोस नीति का स्पष्ट अभाव दिखता है। यह मान लिया गया कि आर्थिक संवृद्धि अर्थात् उत्पादन वृद्धि से रोजगार बढ़ेगा और संवृद्धि का लाभ समाज के निचले तबके तक पहुंचेगा, जिससे गरीबी और असमानता में कमी आएगी। लेकिन संवृद्धि के अनुपात में रोजगार नहीं बढ़ा तथा संवृद्धि के लाभ समान के थोड़े से उच्च वर्ग को ही ज्यादा हुआ तथा असमानताएं बढ़ी। श्रम को आसानी से उपलब्ध मानते हुए इसे नियोजन के माडलों में महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया।

7.5.2 नियोजन के उद्देश्य -नियोजन का मूल तत्व यह होना चाहिए कि निर्धारित उद्देश्यों तथा उपलब्ध संसाधनों में सामंजस्य हो। भारत में जिन मुख्य उद्देश्यों का विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में उल्लेख किया गया है उनको हासिल करना काफी मुश्किल है, क्योंकि उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए संसाधनों का उचित आकलन न होने से योजना का कार्यान्वयन दोषपूर्ण रहा। चूंकि संसाधनों का आकलन, उद्देश्यानुसार नहीं किया गया इसलिए निर्धारित उद्देश्यों की संख्या भी काफी अधिक रही।

विभिन्न उद्देश्यों के बीच परस्पर विरोध तथा असंगति को देखते हुए भी इसे हासिल करना मुश्किल था। भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन को जिस रूप में लागू किया गया उसमें हमेशा ही आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक समानता के उद्देश्यों में टकराव होता रहा है। परन्तु सभी पंचवर्षीय योजनाओं में अंततः आर्थिक संवृद्धि को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हुए, अन्य सभी महत्वपूर्ण उद्देश्यों को संवृद्धि के भरोसे छोड़ दिया जाता रहा है। योजनाओं में उद्देश्यों की लम्बी सूचियां हैं। इससे स्पष्ट है कि योजनाओं में उद्देश्य निर्धारण को कितनी कम गम्भीरता से लिया जाता है। आर्थिक संवृद्धि पर सरकार का ध्यान इतना अधिक है कि उत्पादन की संरचना रोजगार संवृद्धि, सामाजिक न्याय, रोजगार सृजन तथा गरीबी निवारण जैसे उद्देश्यों के प्रति योजना की प्रतिबद्धता बिल्कुल दिखाई नहीं देती है।

योजनाओं का प्रयास उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित करने से अधिक रहा है और इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक नीतियों या कार्यक्रमों के संकेत देने से उतना नहीं रहा। संवृद्धि के लक्ष्यों और अंतःक्षेत्रीय संतुलनों के प्रति आवश्यकता से अधिक ध्यान दिया गया है जबकि इससे संबंधित निर्णयों के लिए प्रारंभिक आंकड़े तक उपलब्ध नहीं हैं उदाहरण के लिए, पिछली योजनाओं में दिए गए पूँजी निर्गत अनुपातों, बचत के अनुपातों तथा मांग सापेक्षताओं के प्रक्षेपण बहुत अधिक अवास्तविक सिद्ध हुए हैं। उत्पादन और निवेश के लक्ष्यों का निर्धारण आगत-निर्गत संबंधों पर अपर्याप्त और अविश्वसनीय आंकड़ों तथा व्यवहार-प्रतिमानों संबंधी अनुमानित मान्यताओं के आधार पर किया जाता रहा है। आयोजना के मॉडलों के विकास में तकनीकी परिष्कार तो बढ़ा है,

लेकिन आंकड़ा-आधार कमजोर हुआ है। योजनाओं में वादे भी बढ़ा-चढ़ा कर किए जाते रहे हैं और सीमित संसाधनों को अनेक कार्यक्रमों के लिए थोड़ी-थोड़ी राशियों में आवंटित किया जाता रहा है। इससे किसी एक (जैसे, साक्षरता के) क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हो पायी।

आयोजना से बेहतर परिणाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि योजनाओं में समूची अर्थव्यवस्था के लिए निवेश की विस्तृत आयोजना प्रस्तुत करने का प्रयास न किया जाए। किसी मिश्रित अर्थव्यवस्था में जहां एक बड़ा असंगठित, अवित्तीय और आंतरिक क्षेत्र मौजूद हो, यह व्यावहारिक है ही नहीं। जो भी हो, यह काम आज कारगर ढंग से नहीं किया जा रहा है।

हमारी योजनाओं ने समूची अर्थव्यवस्था के लिए निवेश की आयोजना प्रस्तुत करने की दिशा में अतिशय प्रयास किए हैं लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र की आयोजना के लिए बहुत कम प्रयास किया है। वर्तमान में, हालांकि प्रत्येक योजना में क्षेत्रवार लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है मगर सही अर्थों में दीर्घकालिक निवेश की आयोजना का काम बहुत कम होता है। नतीजा यह होता है कि वास्तविक निवेश के निर्णय क्षेत्रीय और अन्य दबावों के अंतर्गत अलग-अलग वर्षों में अलग-अलग मामालें के लिए अलग-अलग लिए जाते हैं। यह विभिन्न क्षेत्रों के निवेश के बीच पर्याप्त असंतुलन, क्रियान्वयन में विलंब, संसाधनों के बारे में अतिशय वचनबद्धता और परियोजनाओं के लिए धन की कमी का कारण बना है।

7.5.3 कृषि क्षेत्र तथा ग्रामीण उद्योगों की उपेक्षा -नियोजन के दौरान भारी तथा पंजीगत उद्योगों को इतना अधिक महत्व दिया गया कि कृषि तथा ग्रामीण उद्योगों की उपेक्षा की गयी। इसीलिए स्थानीय कच्चे माल तथा मानव शक्ति का बेहतर इस्तेमाल नहीं हो सका और बेरोजगारी में वृद्धि हुई। लघु व ग्रामीण उद्योगों की उपेक्षा के कारण आयोजन प्रक्रिया उत्पादन को तो बढ़ाने में काफी हद तक सफल रही पर यह उत्पादन वृद्धि रोजगारोन्मुख नहीं हो सकी। इससे निर्धनता तथा क्षेत्रीय और अंर्तवैयक्तिक असमानताएं भी बढ़ीं।

कृषि क्षेत्र में संस्थागत सुधारों की गति भी योजनावधि के दौरान अत्यंत धीमी रही है। भूमि सुधारों की सीमित सफलता ने न सिर्फ कृषि उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा को कमजोर किया है बल्कि प्रगतिशील कृषि के विकास का मार्ग भी अवरुद्ध किया है। लघु व सीमांत कृषकों तक संस्थागत साख की पहुंच अभी भी काफी असंतोषजनक है। विपणन सुविधाओं का अभाव भी कृषि तथा लघु व ग्रामीण उद्योगों के विकास में एक बड़ी बाधा रहा है।

7.5.4 व्यापक गरीबी - आयोजन का मूल उद्देश्य देश के सभी नागरिकों को न्यूनतम जीवन स्तर की व्यवस्था करना है। परन्तु आयोजन के लगभग 6 दशकों बाद भी जनसंख्या का एक बड़ा तबका निरपेक्ष रूप से गरीब है और अपनी न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है। लकड़वाड़ा समिति के अनुसार 1973-74 में जनसंख्या का लगभग 55 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे

था जो कि कम होकर भी 1978-78 में 39.3 प्रतिशत था। योजना आयोग द्वारा गठित तेन्दुलकर समिति के अनुसार 2004-05 में 37.2 प्रतिशत जनसंख्या। गरीबी रेखा के नीचे थी- 41.8 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या तथा 25.7 प्रतिशत शहरी जनसंख्या गरीबी के ये आंकड़े आयोजन की कार्य प्रणाली और उसकी सफलता पर गम्भीर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। वास्तव में नियोजन देश में पोषणीय रोजगार के सृजन में असफल रहा है।

7.5.5 रोजगार में धीमी वृद्धि - कृषि व लघु तथा कुटीर उद्योगों की उपेक्षा तथा बड़े उद्योगों में पूँजी प्रधान तकनीकी के प्रयोग से रोजगार में वृद्धि धीमी हुई और बेरोजगारी बढ़ी। 1951 से 1969 के बीच फैक्ट्री उत्पादन में 7 प्रतिशत वार्षिक दर से वृद्धि हुई जबकि रोजगार की वृद्धि दर मात्र 3 प्रतिशत वार्षिक थी। 1961 से 1979 के बीच फैक्ट्री क्षेत्र में निवेश 139 प्रतिशत और उत्पादन 161 प्रतिशत बढ़ा जबकि रोजगार मात्र 71 प्रतिशत ही बढ़ा। 1983 से 1999-2000 के बीच रोजगार लोच में भारी कमी आयी। 1983 से 1993-94 के बीच रोजगार लोच 0.52 थी जो कि 1993-94 से 1999-2000 के बीच 0.16 रह गई। अतः जहां 1983 से 1993-94 के बीच रोजगार विस्तार की वार्षिक दर 2.7 प्रतिशत थी, वहीं 1993-94 से 1999-2000 के बीच 1.07 प्रतिशत वार्षिक हो गयी। स्पष्ट है कि रोजगारोन्मुख रणनीति के अभाव के कारण योजनाएं पर्याप्त रोजगार सृजन में असफल रही हैं।

7.5.6 आय व धन की असमानताओं में वृद्धि- नियोजन काल में आय तथा धन की असमानताओं में निरन्तर वृद्धि हुई है। जनसंख्या के लगभग 40 प्रतिशत हिस्से की आर्थिक स्थिति अवरुद्ध रही है। थोड़े से उच्च आय वर्ग के हाथों में आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण बढ़ा है। आर्थिक सुधारों के काल में असमानताओं में वृद्धि और अधिक तेज हुई है। घरेलू पारिवारिक व्यय में सबसे धनी 10 प्रतिशत जनसंख्या का हिस्सा जो कि 1989-90 में 27.1 प्रतिशत था, बढ़कर 2004-05 में 31.1 प्रतिशत से 45.3 प्रतिशत हो गया। अर्जुन सेन गुप्ता समिति के अनुसार 2006 में भारत की 78 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिदिन का व्यय रु0 20 से कम था। स्पष्टतः संवृद्धि का लाभ समाज के एक विशिष्ट वर्ग को ही हुआ है। इस वर्ग ने अवैध तरीके से भी आय प्राप्त करके अपनी आर्थिक शक्ति मजबूत की है। 1960 के दशक में काले धन की अनुमानित मात्रा सकल घरेलू उत्पाद की 7 प्रतिशत थी जो कि बढ़कर 1981 में 20 प्रतिशत, 1990-91 में 35 प्रतिशत तथा 1995-96 में 40 प्रतिशत हो गयी। काले धन की इस समानान्तर अर्थ व्यवस्था ने गैर आवश्यक उपभोग वस्तुओं के उपभोग को बढ़ाया है।

7.5.7 कार्यान्वयन की विफलता - योजनाओं को लागू करने की जिम्मेदारी पूरी तरह से प्रशासन की मानकर उस पर विचार नहीं किया गया। कार्यान्वयन के आयोजन के अभाव से योजनाओं की प्रभाविता काफी कम हो गयी। भ्रष्ट तथा अकुशल प्रशासन ने राज्य के हस्तक्षेप तथा

योजनाओं की गुणवत्ता में काफी कमी लायी। व्यष्टि स्तर पर आंकड़ों के अभाव तथा राज्य व जिला स्तर पर नियोजन की उचित व्यवस्था न होने के कारण क्रियान्वयन का संकट और बढ़ा।

7.5.8 नियोजन के उद्देश्यों तथा आर्थिक नीतियों में सामंजस्य का अभाव - हमारी आयोजना प्रणाली समय के साथ-साथ इस प्रकार विकसित हुई है कि योजना की प्राथमिकताओं और उन प्राथमिकताओं के लिए बनी समष्टि आर्थिक नीतियों के बीच तालमेल का अभाव उसका एक प्रमुख दोष बन गया है। ये तकनीकें सोवियत संघ में विकसित निर्देशमूलक आयोजना प्रणाली से ली गयी थीं। ये तकनीकें एक ऐसी अर्थव्यवस्था में निवेश का मार्गदर्शन करने के लिए अनुपयुक्त सिद्ध हुई हैं जिसका एक बड़ा निजी भाग निजी स्वामित्व में है और जहां राजनीतिक और न्यायिक प्रणालियां उपभोक्ताओं और उद्यमियों के लिए चयन की अपेक्षतया अधिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करती हैं। नियंत्रण और नियमन की यह प्रणाली मूलतः दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान की गयी व्यवस्थाओं से उत्पन्न हुई है। यह निवेश का 'वांछित' दिशाओं में मार्गदर्शन करने की अपेक्षा प्रतियोगिता को रोकने और एक नाकारा आयात प्रतिस्थापन को प्रोत्साहित करने में अधिक सफल रही है। अर्थव्यवस्था में काले धन तथा तस्करी की वृद्धि का नतीजा यह हुआ है कि अर्थव्यवस्था में प्रभावी उपभोक्ता मांग के अनुरूप और आय की संवृद्धि के स्वरूप का योजना की प्राथमिकताओं से कोई खास संबंध नहीं रहा। इसका एक स्पष्ट उदाहरण यह है कि भारत स्वचालित वाहनों के उत्पादन में पर्याप्त आत्मनिर्भर माना जा सकता है जिसका योजनाओं की प्राथमिकताओं में कोई स्थान नहीं है जबकि वह उर्वरकों और खाद्य तेलों का बहुत बड़ा आयातक है यद्यपि ये दोनों वस्तुएं योजनाओं में अत्यधिक प्राथमिकता पाती रही हैं।

समष्टिगत आर्थिक नीतियों, खासकर प्रशुल्क और राजकोषीय नीतियों, तथा योजनाओं के अंतःक्षेत्रीय लक्ष्यों के बीच जो क्षीण संबंध हैं, उसके फलस्वरूप औद्योगिक संरचना में महत्वपूर्ण विसंगतियां पैदा हो गयी हैं। मिसाल के लिए, आज व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है पूँजीगत माल, अन्य अभियांत्रिकी उद्योगों, परिवतन के उपरणों आदि के धातु आधारित क्षेत्रों के बड़े हिस्से को बहुत कम या नकारात्मक संरक्षण मिला है। ऐसा इसके बावजूद है कि योजनाओं में पूँजीगत माल के उत्पादन को हमेशा ही उच्चतम प्राथमिकता दी जाती रही है। दूसरी ओर, रसायन-आधारित उद्योगों को दिए गए संरक्षण की दरें बहुत अधिक नहीं हैं। नतीजा यह हुआ है कि पिछले 15 वर्षों में रसायन आधारित उद्योगों में अच्छी संवृद्धि देखी गयी है जबकि अभियांत्रिकी क्षेत्र की संवृद्धि कम रही है। इस प्रकार की विसंगत राजकोषीय संरचना का एक और नतीजा यह है कि अभियांत्रिकी उद्योगों जैसे श्रम प्रधान उद्योगों के साथ भेदभाव हुआ है जबकि पेट्रोरसायन जैसे पूँजी प्रधान उद्योगों को बहुत अधिक संरक्षण मिलता है। धातु-आधारित उद्योगों के विरुद्ध पूर्वग्रह के कारण पश्चिमी क्षेत्र की तुलना में पूर्वी क्षेत्र की उपेक्षा हुई है-उल्लेखनीय है कि रसायन और पेट्रोरसायन उद्योग इसी पश्चिमी क्षेत्र में आधारित है।

भारत में नियोजन आर्थिक तथा सामाजिक आधारिक संरचना के निर्माण तथा मजबूत औद्योगिक ढांचे के निर्माण में एक हद सफल रहा है परन्तु नियोजन की मूल विफलता इस बात में निहित है कि इसके महत्वपूर्ण उद्देश्य आज भी उतने ही अप्राप्य हैं जितना कि नियोजन की शुरुआत में थे। वस्तुतः सामाजिक न्याय के साथ विकास के अपने लक्ष्य से नियोजन और दूर हटा है। जैसा कि गरीबी, बेरोजगारी तथा असमानता के बढ़े स्तर को देखकर स्पष्ट है।

भारत में आर्थिक नियोजन बाजार तंत्र की असफलताओं को दूर कर विकास की गति को तेज करने तथा उसके लाभ को समान रूप से समाज के सभी वर्गों में वितरित करने के लिए अपनाया गया था। परन्तु नियोजन की मूल विफलताओं से यह स्पष्ट हो गया कि राज्य भी बाजार तंत्र की तरह अनेक उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल हो सकता है। राज्य के हस्तक्षेप की गुणवत्ता खराब होने से संसाधनों का कुशल आवंटन नहीं हो सका।

7.6 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012)

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की शुरुआत 1 अप्रैल, 2007 को हुई। योजना में अधिक तीव्र और ज्यादा समावेशी संवृद्धि (Faster and more indusive growth) पर जोर दिया गया है। दसवीं योजना में प्राप्त 7.8 प्रतिशत की संवृद्धि दर के विरुद्ध योजना में संवृद्धि दर का लक्ष्य 9 प्रतिशत वार्षिक रखा गया है तथा यह भी कहा गया है कि इस संवृद्धि के लाभ व्यापक आधार का होना चाहिए तथा इससे सभी को समान अवसर मिलने चाहिए।

योजना के अनुसार उसकी समावेशी संवृद्धि की युक्ति परंपरागत युक्ति नहीं है जिसमें समावेश के तत्व शामिल भर कर लिए गए हैं अपितु यह एक ऐसी युक्ति है जिसमें एक ऐसी विशिष्ट प्रकार की संवृद्धि प्रक्रिया को प्राप्त करने का प्रयास किया जाएगा जो समावेशी हो तथा दीर्घकाल तक सभी के लिए लाभप्रद सिद्ध हो सके। यह आवश्यक है कि यह युक्ति मजबूत समष्टि आर्थिक नीतियों पर आधारित हो जो तीव्र संवृद्धि की समष्टि आर्थिक पूर्व-शर्तों की स्थापित कर सकें तथा इस संवृद्धि के मुख्य प्रेरकों को और शक्ति प्रदान कर सकें। इसमें इस प्रकार की सेक्टर विशिष्ट नीतियां भी शामिल होनी चाहिए जो यह सुनिश्चित कर सकें कि संवृद्धि का जो ढांचा तैयार हो रहा है वह समावेशन के उद्देश्य को उसके संपूर्ण आयामों में प्राप्त कर सकें।

इस व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार, ग्यारहवीं योजना में जो विकास युक्ति अपनाई गई है उसके मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं:

1. तेज आर्थिक संवृद्धि (9 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर पर) जो गरीबी को कम कर सके तथा रोजगार अवसरों का सृजन कर सके।
2. स्वास्थ्य तथा शिक्षा के क्षेत्र में (खासतौर पर गरीबों के लिए) अनिवार्य सुविधाओं की उपलब्धि।

3. सभी को विकास के समान अवसर।
4. शिक्षा तथा कौशल विकास के माध्यम से शक्तिकरण।
5. रोजगार अवसरों में वृद्धि (राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना जिसका आधार होगा)।
6. पर्यावरण की दीर्घकालीन सुरक्षा।
7. स्त्री शक्ति को मान्यता।
8. बेहतर अभिशासन।

7.6.1 ग्यारहवीं योजना के पालनीय लक्ष्य

अधिक तीव्र व समावेशी संवृद्धि की युक्ति के अधीन ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय स्तर पर 27 पालनीय लक्ष्यों की बात की गई है जिसमें से 13 पालनीय लक्ष्यों का व्यक्तिगत राज्यों के स्तर पर विभाजन किया जा सकता है। इन अत्यन्त महत्वाकांक्षी लक्ष्यों के चुनाव को योजना में इन शब्दों में उचित ठहराया गया है, ''निस्सन्देह ये लक्ष्य महत्वाकांक्षी हैं परन्तु ऊँचे लक्ष्य रखना और उन्हें प्राप्त न कर पाना, कम लक्ष्यों से संतोष कर लेने से बेहतर है।''

राष्ट्रीय स्तर पर 27 पालनीय लक्ष्यों को 6 मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है:

(1) आय तथा गरीबी (2) शिक्षा, (3) स्वास्थ्य, (4) स्त्रियां तथा बच्चे, (5) आधारिक संरचना, तथा (6) पर्यावरण।

इन वर्गों में रखे गए लक्ष्य निम्नलिखित हैं:

1- आय तथा गरीबी

- ग्यारहवी योजना की अवधि में सकल घरेलू उत्पाद में औसतन 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की संवृद्धि दर
- कृषि से सकल घरेलू उत्पाद में औसतन 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की संवृद्धि दर
- 5 करोड़ 80 लाख नए रोजगार अवसरों का सृजन
- शिक्षित वर्ग में बेरोजगारी को 5 प्रतिशत से कम स्तर तक लाना
- अकुशल श्रमिकों को वास्तविक मजदूरी दर में 27 प्रतिशत वृद्धि
- गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में 10 प्रतिशत बिन्दु की गिरावट।

2- शिक्षा

- प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या जो 2003-04 में 52.2 प्रतिशत थी, उसे 2011-12 तक 20 प्रतिशत तक ले जाना;

- अच्छी गुणात्मक शिक्षा उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से प्रारंभिक स्कूलों में शिक्षण उपलब्धियों के लिए न्यूनतम मानक स्तर निश्चित करना;
- 2011-12 तक 7 वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों के लिए साक्षरता दर को 85 प्रतिशत तक पहुंचाना;
- 2011-12 तक पुरुषों व स्त्रियों में साक्षरता अंतराल को 10 प्रतिशत बिन्दु तक ले जाना;
- उच्च शिक्षा में जाने वाले प्रत्येक दस्ते या समूह के प्रतिशत को मौजूदा 10 प्रतिशत से बढ़ा कर 2011-12 तक 15 प्रतिशत तक पहुंचाना।

3- स्वास्थ्य

- ग्यारहवीं योजना के अन्त तक शिशु मृत्यु दर को 28 तथा मातृ मृत्यु दर को 1,000 जीवित जन्मों पर 1 तक ले जाना;
- ग्यारहवीं योजना के अन्त तक कुल जनक्षमता दर को 2.1 तक ले जाना;
- सभी लोगों को 2009 तक स्वच्छ निर्मल पेय जल उपलब्ध कराना;
- ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक 0-3 आयु वर्ग के बच्चों के लिए कुपोषण को मौजूदा स्तर से आधे स्तर तक ले जाना;
- ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक स्त्रियों एवं बालिकाओं में खून की कमी की व्यापकता को मौजूदा स्तर से आधे स्तर तक ले आना।

4- स्त्रियां तथा बच्चे

- 0-6 वर्ष की आयु के बच्चों में लिंग अनुपात को 2011-12 तक 935 तथा 2016-17 तक 950 तक पहुंचाना;
- यह सुनिश्चित करना करना कि सभी सरकारी योजनाओं में कम से कम 33 प्रतिशत लाभ भोगी स्त्रियां तथा बालिकाएं हो;
- यह सुनिश्चित करना कि सभी बच्चों को सुरक्षित बचपन मिले तथा उन पर काम करने की कोई मजबूरी न हो।

5- आधारिक संरचना

- 2009 तक सभी गांवों तथा गरीबी रेखा से नीचे रह रहे परिवारों को बिजली का कनेक्शन तथा योजना के अन्त तक पूरी तरह से बिजली उपलब्ध कराना;
- 2009 तक 1000 से अधिक आबादी वाली सभी बस्तियों को वर्ष भर काम करने वाली सड़कों से जोड़ना तथा2015 तक सभी महत्वपूर्ण बस्तियों को सड़कों से जोड़ना;
- 2012 तक प्रत्येक गांव में टेलिफोन सुविधाएं तथा ब्राडबैंड सुविधाएं उपलब्ध कराना;

- सभी को 2012 तक रहने की जगह उपलब्ध कराना तथा ग्रामीण निर्धनों के लिए मकान बनाने की प्रक्रिया तेज करना ताकि 2016-17 तक सभी ग्रामीण निर्धनों को मकान मिल सके।

6- पर्यावरण

- वनों तथा पेड़ों के अधीन क्षेत्र में 5 प्रतिशत बिन्दु की वृद्धि करना;
- 2011-12 तक सभी नगरों में विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित स्वच्छ वायु के मानदंड प्राप्त करना;
- नदियों के जल को स्वच्छ बनाने के दृष्टिकोण से सभी अपशिष्ट नगरीय जल के शुद्धिकरण की व्यवस्था करना;
- 2016-17 तक ऊर्जा की दक्षता में 20 प्रतिशत बिन्दु के बराबर वृद्धि करना।

ग्यारहवीं योजना में 'अधिक तीव्र' तथा अधिक समवेशी विकास के जरिए एक ऐसी विकास प्रक्रिया की शुरुआत करने की बात कही गयी है जिससे सभी लोगों की जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो सके, विशेष कर गरीबों, अनुसूचित जातियों व जनजातियों, अन्य पिछड़ी जातियों एवं स्त्रियों की जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो।

7.6.3 समष्टि आर्थिक ढांचा - ग्यारहवीं योजना में पूरी अर्थव्यवस्था में 9 प्रतिशत की संवृद्धि दर प्राप्त करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में निम्नलिखित लक्ष्य प्रस्तावित हैं: कृषि 4 प्रतिशत प्रति वर्ष, उद्योग 10-11 प्रतिशत प्रतिवर्ष तथा सेवा क्षेत्र 9 से 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष।

योजना का आकार यानि कुल परिव्यय 36,44,718 करोड़ रुपये है। (2006-07 की कीमतों पर) इसमें केन्द्रीय योजना का परिव्यय 21,56,571 करोड़ रुपए तथा राज्य व केन्द्र शासित प्रदेशों का परिव्यय 14,88,147 करोड़ रुपए है। कुल परिव्यय का 30.24 प्रतिशत सामाजिक सेवाओं, 23.43 प्रतिशत ऊर्जा, 15.71 प्रतिशत परिवहन, 18.49 प्रतिशत कृषि (ग्रामीण विकास, विशिष्ट कार्यक्रम, सिंचाई व बाढ़ नियंत्रण तथा कृषि व संबद्ध क्षेत्र सम्मिलित) तथा 4.21 प्रतिशत उद्योग पर व्यय किया जाएगा।

योजना में निवेश दर सकल घरेलू उतपाद के प्रतिशत के रूप में 36.72 प्रतिशत, घरेलू बचत दर 34.84 प्रतिशत तथा चालू खाते का घाटा 1.88 प्रतिशत रहने का लक्ष्य है। योजना में वृद्धिमान पूँजी उत्पादन 4.1 प्रतिशत रखने का अनुमान है।

ग्यारहवीं योजना में अनुमान है कि श्रमशक्ति 2006-07 में 43 करोड़ 40 लाख से बढ़कर 2011-12 में 48 करोड़ 37 लाख हो जाएगी अर्थात् उसमें 4 करोड़ 47 लाख की वृद्धि होगी। जबकि योजना के दौरान 5 करोड़ 80 लाख रोजगार अवसरों का सृजन होगा। इस प्रकार अनुमान है

कि बेरोजगारी दर 2006-07 में 8.36 प्रतिशत से कम होकर 2011-12 में 4.83 प्रतिशत रह जाएगी। विनिर्माण क्षेत्र में 4 प्रतिशत, निर्माण गतिविधियों में 8.2 प्रतिशत तथा परिवहन एवं संचार में 7.6 प्रतिशत की दर से रोजगार सृजन की संभावना है। जबकि कृषि क्षेत्र योजना में कोई अतिरिक्त रोजगार अवसर पैदा नहीं कर पाएगा।

7.6.4 मध्यावधि समीक्षा

1- ग्यारहवीं योजना में 9 प्रतिशत वार्षिक संवृद्धि दर का लक्ष्य रखा गया है। 2007-08 में संवृद्धि दर 9 प्रतिशत से अधिक थी, परन्तु वैश्विक वित्तीय संकट ने 2008-09 में इसमें रुकावट पैदा की और यह 6.7 प्रतिशत हो गयी। 2009-10 में संवृद्धि दर 7.4 प्रतिशत थी, जबकि इस वर्ष कृषि वृद्धि दर मात्र 0.2 प्रतिशत थी। घरेलू बचत दर 2007-08 में 36.4 प्रतिशत थी जो कि कम होकर 2008-09 में 32.5 प्रतिशत हो गयी। इसी अवधि में सकल निवेश 37.7 प्रतिशत से गिरकर 34.9 प्रतिशत हो गया। हालांकि 2009-10 में बचत व निवेश दरों में वृद्धि हुई।

2- ग्यारहवीं योजना में कृषि संवृद्धि दर को दसवीं योजना के 2.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 4 प्रतिशत करने का लक्ष्य है। पहले दो वर्षों में कृषि की वृद्धि दर 3.2 प्रतिशत वार्षिक थी परन्तु 2009-10 में सूखे के कारण यह कम होकर 0.2 प्रतिशत हो गयी। 2010-11 में कृषि उत्पादन में रिकार्ड वृद्धि हुई है और यह लगभग 11 प्रतिशत बढ़ा है। इससे यह आशा बंधती है कि कृषि उत्पादन के 4 प्रतिशत लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

3- विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि दर दसवीं योजना में औसत 9.3 प्रतिशत थी। 11वीं योजना के प्रथम वर्ष यह बढ़कर 10.3 प्रतिशत हो गयी परन्तु 2008-09 में 3.2 प्रतिशत हो गयी, परन्तु पुनः 2009-10 में 10.8 प्रतिशत हो गयी। 2010-11 में यूरोप संकट तथा मंदी के चलते विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि में तेज गिरावट आयी है। इसलिए 11वीं योजना विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि दर के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होगी, इसमें संदेह है। ऐसे में 9 प्रतिशत संवृद्धि का लक्ष्य भी पाना कठिन है।

4- गरीबी में कमी योजना का एक प्रमुख लक्ष्य रहा है जिसे समावेशिता के संदर्भ में महत्वपूर्ण माना गया है। परन्तु 2004-05 के बाद गरीबी के आंकड़े उपलब्ध नहीं है मध्यावधि समीक्षा में कहा गया है कि संवृद्धि के विभिन्न राज्यों के बीच बेहतर बंटवारे, कृषि निष्पादन में सुधार, मनरेगा तथा भारत निर्माण जैसे कार्यक्रमों की शुरुआत से 11वीं योजना में गरीबी में महत्वपूर्ण रूप से कमी आयेगी। ग्यारहवीं योजना के प्रथम वर्ष में प्रारम्भ किए मनरेगा (महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी कार्यक्रम) से रोजगार की मात्रा में 3 गुनी वृद्धि की प्रत्याशा है। इससे न्यूनतम रोजगार सुरक्षा बढ़ी है। हालांकि यह गरीबी का दीर्घकालिक हल नहीं हो सकता। ग्यारहवीं योजना में 2 प्रतिशतांक प्रति वर्ष की दर से कमी प्राप्त करने का अधिक महत्वकांक्षी लक्ष्य रखा गया था। वर्ष 2009-10 के संबंध में नवीनतम एनएसएस सर्वेक्षण का इस्तेमाल करते हुए प्रारम्भिक अनुमानों से पता चलता है कि गरीबी

के अन्तर्गत आबादी की प्रतिशतता में पहले की अपेक्षा कुछ अधिक तीव्र गति से कमी आई, 2004-05 से 2009-10 तक की पांच वर्षीय अवधि के दौरान लगभग 1 प्रतिशतांक प्रति वर्ष। 2009-10 के बाद से, जो एक सूखा वर्ष था तथा उस वर्ष गरीबी में अस्थाई रूप से वृद्धि हुई, कमी की अन्तर्निहित दर सम्भवतः एक प्रतिशतांक प्रति वर्ष से अधिक है।

5- सर्व शिक्षा अभियान तथा मिड-डे भोजन योजना से प्राथमिक शिक्षा में काफी विस्तार हुआ है। नामांकन अनुपात में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है जोकि 2002 में 87 प्रतिशत से बढ़कर 2008 में 99 प्रतिशत हो गया। हालांकि ड्राप आउट दरें अभी ऊंची हैं। 43 प्रतिशत बच्चों ने प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं। प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता काफी असंतोषजनक है। कक्षा 5 के 38 प्रतिशत बच्चे कक्षा-2 की पाठ्यपुस्तक नहीं पढ़ पाते तथा 37 प्रतिशत साधारण भागफल में प्रश्न नहीं हल कर पाते, ऐसा 2009 में हुए एक सर्वे की रिपोर्ट में कहा गया है।

6- ग्यारहवीं योजना में स्वास्थ्य पर सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में कुल व्यय का 1 प्रतिशत से बढ़ाकर लगभग 2 से 3 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार के लिए विशेष प्रयास किए गए हैं। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (भ्त्भ्छ) के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में भौतिक आधारिक संरचना का विस्तार हुआ है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना की शुरुआत हुई है जिससे गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों को भी लाभ होगा।

7- आधारिक संरचना विशेषकर ऊर्जा तथा परिवहन को मजबूत बनाने के लिए योजना में इस क्षेत्र में निवेश में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है और प्रथम तीन वर्षों में आधारिक संरचना में हुआ निवेश योजना के लक्ष्य के अनुरूप है। हालांकि सार्वजनिक क्षेत्र के निवेश में काफी कमी आयी है। परन्तु निजी निवेश तेजी से बढ़ा है। ग्यारहवीं योजना के दौरान अर्थव्यवस्था में औसतन लगभग 8.2 प्रतिशत का विकास होने की सम्भावना है जो 9.0 प्रतिशत के मूल लक्ष्य से कम है किन्तु दसवीं योजना में प्राप्त 7.8 प्रतिशत के मुकाबले तीव्र है। इसका अर्थ इस अवधि में प्रति व्यक्ति जीडीपी में लगभग 35 प्रतिशत की वृद्धि है। इसकी वजह से सरकारी राजस्व में भी केन्द्र और राज्य दोनों में पर्याप्त वृद्धि हुई है जिससे समावेशिता के उद्देश्य से कार्यक्रमों के लिए संसाधनों में पर्याप्त रूप से बढ़ोत्तरी हुई है।

8- ग्यारहवीं योजना हुए विकास की एक महत्वपूर्ण विशेषता, जो समावेशिता के लिए प्रासंगिक है, यह है कि आर्थिक विकास की ऊंची दरें राज्यों के बीच पहले की अपेक्षा और अधिक व्यापक रूप से विभाजित हैं यद्यपि अधिकांश राज्यों ने विकास की लगातार ऊंची दरें प्रदर्शित की हैं तथापि अनेक आर्थिक रूप से कमजोर राज्यों ने अपनी विकास दरों में सुधार प्रदर्शित किया है। उनमें बिहार, उड़ीसा, असम, राजस्थान, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उत्तराखण्ड और कुछ सीमा तक उत्तर प्रदेश सम्मिलित है। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार किसी भी राज्य ने ग्यारहवीं योजना अवधि के दौरान 6 प्रतिशत से कम की औसत जीडीपी वृद्धि प्रदर्शित नहीं की है।

9- 2007 से 2010 के दौरान औसत वास्तविक मजदूरी दरों में अखिल भारत स्तर पर 16 प्रतिशत की वृद्धि हुई। आन्ध्र प्रदेश में (42 प्रतिशत) और उड़ीसा में (33 प्रतिशत) यह वृद्धि तीव्र्र थी। बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में तीन वर्षों की अवधि के दौरान वास्तविक कृषि मजदूरी क्रमशः 19 और 20 प्रतिशत बढ़ गई।

7.7 सारांश

भारतीय योजनाओं में आर्थिक संवृद्धि बढ़ाने पर मुख्य जोर दिया जाता है। परन्तु योजनाओं के दीर्घकालीन बुनियादी लक्ष्य रोजगार आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक न्याय भी रहे हैं। योजनाओं के कुछ सुनिश्चित उद्देश्य रहे हैं जो कि एक दूसरे से जुड़े रहे हैं। यह भी सही है कि उद्देश्यों की संख्या काफी अधिक रही है और विभिन्न उद्देश्यों के बीच परस्पर असंगति और विरोध भी रहा है।

योजनाओं की उपलब्धियाँ तथा मूल विफलताओं पर नजर डालने पर एक मिश्रित तस्वीर उभरती है हालांकि उपलब्धियां, विफलताओं से कम हैं। नियोजन प्रक्रिया ने देश में सामाजिक एवं आर्थिक आधारिक संरचना के निर्माण तथा भारी व मूल उद्योगों के विकास को प्रोन्नत कर औद्योगिक आधार स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। परन्तु यह गरीबी दूर करने, बेरोजगारी कम करने तथा सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने में असफल रही हैं। आर्थिक संवृद्धि के लाभ उच्च तथा समृद्ध वर्ग को ही अधिक हुआ है। नियोजन की युक्ति में अनेक कमियां रही हैं और एक स्पष्ट नीतिगत ढांचे की कमी रही है तथा योजनाओं का क्रियान्वयन भी काफी असंतोषजनक रहा है। उदारीकरण व निजीकरण के काल में हाल के वर्षों में नियोजन के महत्व में उल्लेखनीय कमी आयी है। लेकिन आधारिक संरचना के निर्माण तथा सामाजिक न्याय के लिए नियोजन की आवश्यकता आज कहीं अधिक प्रासंगिक दिखती है।

अभ्यास प्रश्न - 3

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में नियोजन की रणनीति की संक्षेप में समीक्षा कीजिए।
2. सामाजिक न्याय की प्राप्ति में योजनाएं कहां तक सफल रही हैं?

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. बारहवीं पंचवर्षीय योजना कब शुरु होगी।
2. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य क्या है?

सत्य/असत्य

1. भारतीय नियोजन में सभी उद्देश्यों को अंततः संवृद्धि के भरोसे छोड़ दिया गया।
2. भारतीय नियोजन में किसी वित्तीय युक्ति का अभाव रहा है।
3. भारतीय नियोजन में किसी स्पष्ट रोजगार युक्ति का अभाव रहा है।

4. नियोजन काल में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के अनुपात में वृद्धि हुई है।
5. नियोजन अपने सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रहा है।
6. नियोजन काल में आर्थिक असमानताओं में वृद्धि हुई है।
7. योजनाओं का कार्यान्वयन काफी प्रभावी रहा है।

7.8 शब्दावली

आर्थिक संवृद्धि --आर्थिक संवृद्धि से तात्पर्य सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से है। संवृद्धि दर सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि की दर है। मोटे तौर पर राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर को भी आर्थिक संवृद्धि की दर के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

सामाजिक न्याय -- सामाजिक न्याय से तात्पर्य आय तथा धन की विषमताओं में कमी लाना है तथा गरीबी दूर करना है।

आत्म निर्भरता -- संकुचित अर्थों में आत्मनिर्भरता से तात्पर्य है सभी वस्तुओं के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो जाना या फिर विदेशी सहायता में कमी या उससे पूरी तरह से मुक्ति। परन्तु प्रावैगिक अर्थ में इसका अर्थ है अपने निर्यातों में वृद्धि से इतनी विदेशी मुद्रा अर्जित करना जिससे कि आयातों की कीमत चुका सकें।

संरचनात्मक परिवर्तन -- राष्ट्रीय आय तथा उत्पादन की संरचना अर्थात अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के राष्ट्रीय आय में योगदान में परिवर्तन, श्रमशक्ति के व्यवसायिक वितरण में परितर्वन तथा अर्थव्यवस्था में संस्थागत परिवर्तनों को संरचनात्मक परिवर्तन कहते हैं। अर्थव्यवस्था में प्रत्येक क्षेत्र में पुरानी संस्थाओं की जगह नयी संस्थाओं का उदय तथा विकास संरचनात्मक परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण हैं।

आधारिक संरचना -- आधारिक संरचना से तात्पर्य मूलभूत ढांचे से है, जो कि सभी आर्थिक गतिविधियों का आधार है, चाहे वह कृषि से संबंधित हो, उद्योग से या फिर अन्य क्षेत्र से। आधारिक संरचना औद्योगिक व कृषि उत्पादन, घरेलू व विदेशी व्यापार और वाणिज्य के प्रमुख क्षेत्रों में सहयोगी सेवाएं उपलब्ध कराती हैं। जैसे, सड़क, रेल, बंदरगाह, बांध, ऊर्जा, दूरसंचार, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, पेयजल, बैंक, बीमा व अन्य वित्तीय संस्थाएं आदि। इनमें से कुछ सुविधाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन पर पड़ता है, जबकि कुछ अन्य अर्थव्यवस्था के सामाजिक क्षेत्रकों के निर्माण में अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करते हैं। प्रायः आधारिक संरचना को, आर्थिक तथा सामाजिक, दो श्रेणियों में बांटा जाता है। ऊर्जा, परिवहन, संचार, सिंचाई, आर्थिक आधारिक संरचना के अंतर्गत आते हैं। जबकि शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास सामाजिक आधारिक संरचना की श्रेणी में आते हैं।

रिसन प्रभाव -- आर्थिक संवृद्धि या उत्पादन वृद्धि का लाभ रिस रिसकर समाज के निचले तबके तक पहुंचना रिसन प्रभाव कहलाता है।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

बहुविकल्पीय प्रश्न

1.ग 2.ग

अभ्यास प्रश्न - 2

बहुविकल्पीय प्रश्न

1.घ 2.ख

अभ्यास प्रश्न - 3

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

1. 01.04.2012, 2. अधिक तीव्र और ज्यादा समावेशी संवृद्धि

सत्य/असत्य

1. सत्य, 2. सत्य,3. सत्य, 4. असत्य,5. असत्य, 6.सत्य , 7. असत्य

7.10 संदर्भ-ग्रन्थ सूची

1. Bimal Jalan, India's Economic Crisis-The way Ahead, Oxford University, Press, Delhi, 1991.
2. Bimal Jalan, The India's Economy : Problems and Prospects, Viking, New Delhi, 1992.
3. Govt. of India, Planning Commission, Reference Material 2010, Notes On The Functioning Of Various Divisions, New Delhi
4. Terance J. Byres, The Indian Economy Major Debates Since Independence, Oxford University Press, Delhi, 1998
5. Subhamoy Chakravarty, Department Planning - The Indian Exercise, Oxford, University Press, Delhi, 1987.
6. Uma Kapila and Raj Kapila, Indian Economy since indepencence Academic foundatian, 2009, New Delhi.
7. Government of India, Planning Commission, Eleventh Five Year Plan 2007-12 (New Delhi, 2008), Volume I , II & III

8. Government of India, Planning Commission, Mid-Terms, Appraisal, Eleventh Five year Plan-2007-12

7.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

1. Vaidya Nathan, The Indian Economy Crisis, Response and Prospects, Orient Longman Ltd. Hyderabad, 1995.
2. S.K. Mishra and V.K. Puri, Indian Economy, Himalaya Publishing House, 2008.
3. Ruddar Dutt and L.P.M. Sundaram, Indian Economy. S. Chand and Company Ltd. 2008.
4. Indian Economy, A.N. Agrawal, Wishwa Prakashan Ltd. New Delhi, 2008
5. डा0 बद्री विशाल त्रिपाठी, भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल, इलाहाबाद 2004।
6. डा0 एस0के0 मिश्रा तथा डा0 वी0के0 पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया प्रकाशन, दिल्ली 2009।
7. डा0 रुद्र दत्त तथा डा0 के0पी0एम0 सुन्दरम्, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द प्रकाशन,दिल्ली 2009।

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय नियोजन के मुख्य उद्देश्यों की समीक्षा कीजिए।
2. नियोजन की मुख्य उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।
3. भारत में नियोजन की सफलता का मूल्यांकन कीजिए।
4. ''एक उदारीकृत व्यवस्था में नियोजन की प्रासंगिकता कहीं अधिक है'',विवेचना कीजिए।
5. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 8 गरीबी

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 गरीबी: आशय
8.4 गरीबी का परिमाण
8.5 गरीबी की माप
8.6 भारत में गरीबी का अनुमान
8,7 राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी का परिदृश्य
8.8 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ और कार्यक्रम
8.9 गरीबी निवारण की रणनीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन
8.10गरीबी निवारण के उपाय
8.11 सांराश
8.12 शब्दावली
8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.15 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
8.16 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से सम्बन्धित यह छठी इकाई है। इससे पहले की इकाइयों में आप प्रदेश अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

गरीबी से आशय उस सामाजिक अवस्था से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से भी वंचित रहता है। गरीबी की माप के लिए सामान्यतः सापेक्षित प्रतिमान एवं निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है। भारत में गरीबी की माप कैलोरी मानक के अनुसार की जाती है। गरीबी निवारण के लिए अनेक कार्यक्रम योजना काल में लागू किए गए परन्तु आशानुसार सफलता नहीं प्राप्त हुई।इस सन्दर्भ में और उपाय एवं नीतियों में परिवर्तन की आवश्यकता हैं, प्रस्तुत इकाई में इसकी विस्तार से चर्चा की गयी है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप गरीबी आशय एवं परिदृश्य को जान पायेगें। भारत गरीबी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।आप इससे जुड़ी सरकार द्धारा गरीबी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सकेंगे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- गरीबी आशय परिदृश्य एवं परिमाण को जान सकेंगें ।
- भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी के परिदृश्य का वर्णन कर सकेंगे।
- भारत गरीबी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।
- सरकार द्धारा गरीबी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सके

8.3 गरीबी: आशय

भारतवर्ष में गरीबी की समस्या का विश्लेषण करने से पूर्व अर्थव्यवस्था की संरचना एवं स्वरूप को समझना अति आवश्यक है। प्रारम्भ में जब अंग्रेजों ने भारत में आधिपत्य स्थापित किया तो उन्होंने देश की सम्पत्ति तथा संसाधनों का पूरी तरह से विदोहन का प्रयास किया जो उनके निहित स्वार्थों के पक्ष में था। उन्होने भारतीय शासकों जमीदारों एवं सामान्य जनता तथा व्यापारियों से जबरदस्ती वसूली की वहीं दूसरी ओर भारतीय कारीगरों, नील की खेती करने वाले किसानों और व्यापारियों का शोषण भी किया तथा भारत में उपलब्ध अतिरेक को ब्रिटेन ले जाकर अपने देश की समृद्धि हासिल की।

भारत में ब्रिटिश राज्य के पूर्णतया स्थापित हो जाने के बाद प्रचलित प्रत्यक्ष लूट की प्रणाली के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी शोषण की प्रणाली उभर कर सामने आयी।

1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसे विरासत में मिली एक पंगु अर्थव्यवस्था जिसमें गरीबी की जड़े बरगद के वृक्ष के समान पनप चुकी थी। सरकार के सामने समस्या थी कि कैसे अर्थव्यवस्था को गरीबी के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाये भारत में आर्थिक विकास की इन समस्याओं को हल करने लिए बाजार व्यवस्था के साथ नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना। और 1951 से पहली पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ किया। अब तक दस पंचवर्षीय योजना पूर्ण हो चुकी हैं और ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना चल रही है। एक लम्बी अवधि के अन्तराल के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन आए।

जब समाज का एक भाग न्यूनतम जीवन स्तर से भी नीचे जीवन यापन के लिए विवश होते है तो यह स्थिति गरीबी की स्थिति कहलाती है। विश्व के सभी देशों में गरीबी को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। परन्तु इन सबका आधार न्यूनतम या अच्छे जीवन स्तर की कल्पना है। यद्यपि गरीबी को कई दृष्टिकोण से परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है। एक दृष्टिकोण में गरीबी को आधारिक सुविधाओं यथा भोजन, आवास, शिक्षा तथा चिकित्सा से सम्बद्व कर परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। आय के स्तर पर विचार किए बिना यदि किसी परिवार में इस आधारिक सुविधाओ की कमी रहती है तो उस परिवार को गरीब माना जाता है। इस दृष्टिकोण का सबसे बडा दोष यह है, कि इसमें वे भी परिवार गरीबी की सूची में सम्मिलित कर लिए जाते है जिनकी आय अधिक है परन्तु अपनी बुनियादी आवश्यकताओं पर व्यय नहीं करते है। और दूसरी ओर वे परिवार सम्मिलित नहीं होते है जिनकी आय तो नगण्य है परन्तु वे ऋण, पूर्व बचत को कम करके रिश्तेदारों और मित्रों से सहायता लेकर अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। एक दूसरे दृष्टिकोण में एक परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं का आकलन तथा फिर एक आधार वर्ष की कीमत के आधार पर अपेक्षित आय में रुपांतरित कर दिया जाता है। भारत में इसी दृष्टिकोण के आधार पर गरीबी को परिभाषित किया जाता है। विभिन्न विद्वानो ने गरीबी को निम्न प्रकार परिभाषित किया है-

राउन्ट्री ने गरीबी को परिभाषित करते हुये लिखा है कि "गरीबी जीवन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये किये गये न्यूनतम व्यय से सम्बन्धित है, जिसमें भोजन, कपड़ा, मकान, घर का किराया, ईंधन आदि सभी आवश्यक वस्तुओं की कीमत शामिल है।"

दो अध्येताओं, शाहीन रफी खान और डैमियन किल्लेन ने गरीबी की स्थिति को बहुत स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है। इनके अनुसार गरीबी भूख है, गरीबी बीमार होना है और डॉक्टर को न दिखा पाने की विवषता है। यह स्कूल में न जा पाने और निरक्षर रह जाने का नाम है। गरीबी बेरोजगारी व अपने भविष्य के प्रति भय है। यह अपने बच्चे को उस बीमारी से मरते हुये देखने की स्थिति है जो अस्वच्छ पानी पीने से होती है। गरीबी शक्ति प्रतिनिधित्व और स्वतन्त्रता की हीनता का नाम है।

एस0 महेन्द्र देव ने गरीबी को बहुआयामी तथ्य के संदर्भ में लिया है। इनके अनुसार गरीबी केवल आय व उपभोग के स्तर से ही सम्बन्धित नहीं वरन् स्वास्थ्य व शिक्षा का भी गरीबी की अवधारणा में विचार करना चाहिये।

प्रो0 अर्मत्य सेन के अनुसार, गरीबी निरपेक्ष वंचित की तुलना में सापेक्षिक अभाव को बताती है। सेन का मानना है कि सामान्यतः भुखमरी गरीबी को ही दर्शाती है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि व्यापक रूप में गरीबी होने पर भुखमरी भी गम्भीर अवस्था में हो।

बाईसब्रान्ड के अनुसार गरीबी मुख्यतः अपर्याप्त भोजन, कपड़ा और रहने की समस्या से सम्बन्धित है।

इस प्रकार गरीबी की धारणा एक बहुआयामी तथ्य है। यह केवल आय व उपभोग स्तर से ही सम्बन्धित नहीं वरन् स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास व उचित रहन-सहन के स्तर से वंचित रहने की स्थिति से भी सम्बन्धित है।

8.4 गरीबी की माप

गरीबी की माप के लिए सामान्यतः दो प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता हैः

सापेक्षित प्रतिमान: गरीबी के सापेक्षित माप के अर्न्तगत देश की जनसंख्या की सम्पत्ति उपभोग अथवा आय स्तर के आधार पर विभिन्न क्रमिक वर्गो में विभक्त किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त वर्गों को सम्पति, आय, उपभोग के बढ़ते या घटते हुए स्तरो के आधार पर क्रमबद्व किया जाता है। तत्पश्चात उच्चतम 5 प्रतिशत या 10 प्रतिशत निवासियों के अंश से की जाती है। सापेक्षित प्रतिमान के आधार पर प्राप्त जानकारी गरीबी की अपेक्षा आय, सम्पत्ति तथा उपभोग के वितरण में व्याप्त विषमता का बेहतर चित्रण करती है। इसकी सीमा यह है कि इसके द्वारा गरीबी की माप करने पर विकसित देशों में भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग गरीबी की श्रेणी में आयेगा। यद्यपि उन देशो के गरीबों के रहन सहन का स्तर विकासशील देशों के गरीबों की तुलना में अधिक बेहतर होगा। वस्तुतः यह प्रणाली गरीबी की वास्तविक माप का चित्रण नहीं करके आर्थिक विषमता का चित्रण करती है। यही कारण है कि भारत में गरीबी की माप इस विधि से नहीं की जाती है।

निरपेक्ष प्रतिमान: गरीबी माप की इस विधि के अर्न्तगत गरीबी की माप के लिए देश में विद्यमान एक न्यूनतम उपभोग स्तर को जीवन यापन की अनिवार्य आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित किया जाता है। न्यूनतम उपभोग स्तर से कम उपभोग करने वाले व्यक्ति को गरीबो की श्रेणी में रखा जाता है। भारत में इस न्यूनतम उपभोग स्तर को गरीबी रेखा की संज्ञा दी गयी है। गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए जीवन यापन हेतु अनिवार्य आवश्यक वस्तुओं की न्यूनतम मात्रा को पोषकता की न्यूनतम मात्रा के आधार पर ज्ञात किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भौतिक मात्राओं की कीमत से गुणा करके मुद्रा के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। प्राप्त मौद्रिक मान प्रति व्यक्ति न्यूनतम उपभोग

व्यय को प्रदर्शित करता है। यही न्यूनतम उपभोग व्यय गरीबी रेखा को व्यक्त करता है। ज्ञातव्य है कि गरीबी की माप के लिए निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग सर्वप्रथम खाद्य एवं कृषि संगठन के प्रथम महानिदेशक ब्याएड आर ने 1945 में किया तथा इसके आधार पर गरीबी की माप करने के लिए क्षुधा रेखा की संकल्पना का प्रतिपादन किया। यही संकल्पना विश्व के सभी देशों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

भारत में गरीबी की माप करने के लिए निरपेक्ष प्रतिमान का ही प्रयोग किया जा रहा है। इसी प्रतिमान के आधार पर निर्धारित किए गये न्यूनतम उपभोग व्यय को गरीबी रेखा की संज्ञा दी जाती है। इस विधि के माध्यम से गरीबी की माप करने की विधि को हेड काउंट रेशियो भी कहा जाता है।

8.5 गरीबी का परिमाण

भारत में गरीबी के परिमाण का अनुमान लगाने के लिये समुचित एवं संतोषजनक आँकड़ों का अभाव है। इसका कारण यह है कि इस देश में आय के वितरण से सम्बन्धित आँकड़ों का प्रायः उचित संकलन नहीं हो पाता। परन्तु राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के विभिन्न दौर में सर्वेक्षण के आधार पर जनसंख्या के विभिन्न वर्गों द्वारा निजी उपभोग पर व्यय के संतोषजनक आँकड़े उपलब्ध हुये हैं। परन्तु गरीबी की परिभाषा पर मतभेद और अध्ययन की रीतियों के अन्तर के कारण बर्धन, मिन्हास, पी0डी0 ओझा तथा दांडेकर व नीलकंठ रथ आदि अर्थशास्त्री गरीबी की व्यापकता के सम्बन्ध में एक दूसरे से भिन्न निष्कर्षों पर पहुँचे हैं।

पी0डी0 ओझा के अनुमान: ओझा का मत है कि वे सभी व्यक्ति जिन्हें अपने आहार से प्रतिदिन 1,800 कैलोरी की प्राप्ति नहीं होती, गरीब माने जा सकते हैं। 1960-61 में प्रचलित मूल्यों के आधार पर भोजन के उपर्युक्त स्तर के अनुरूप प्रति व्यक्ति उपभोग 15-18 रू0 प्रति माह होना चाहिये।इस आधार पर ओझा के अनुसार 1960-61 में 52 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या तथा इसी वर्ष शहरी क्षेत्रों में 56 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी के स्तर से नीचे थी।

दांडेकर एवं रथ के अनुमान: इन्होंने राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा प्रदत्त आँकड़ों का प्रयोग किया है। वे 1968-69 में ग्रामीण क्षेत्रों में उन परिवारों को गरीबी के स्तर के नीचे मानते हैं जिनकी वार्षिक आय 324 रूपये से कम थी। इस श्रेणी में आने वाले लोग समस्त ग्रामीण जनसंख्या के 40 प्रतिशत थे। शहरी क्षेत्र के लिये उन्होंने गरीबी का स्तर प्रति व्यक्ति 486 रूपये वार्षिक आय पर निर्धारित किया। इस आधार पर 1968-69 में शहरी क्षेत्र में 50 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति गरीबी के स्तर से नीचे थे।

वी0एम0 दांडेकर तथा नीलकंठ रथ ने राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वक्षण द्वारा उपलबध आँकड़ों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि 1960-61 से 1968-69 के मध्य उपभोग पर व्यय में औसत 4.8 प्रतिशत वृद्धि हुई है। 1960-61 से 1967-68 तक सात वर्षों में उपभोग पर औसतन वृद्धि 3.9

प्रतिशत रही। इसी अवधि में जहाँ गांवों में उपभोग व्यय 3.4 प्रतिशत बढ़ा, शहर में औसत वृद्धि दर 2.4 प्रतिशत थी। दांडेकर और रथ के ही शब्दों में विकास के लाभ प्रधानतः उच्च, मध्यम तथा सम्पन्न वर्गों के लोगों तक ही जो जनसंख्या के 40 प्रतिशत हैं, सीमित रहे हैं। जबकि सात वर्षों में राष्ट्रीय उपभोग के औसत स्तर में 3.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहाँ ग्रामीण लोगों में सर्वोच्च 40 प्रतिशत, लोगों के उपभोग के स्तर में 4.4 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या में ऊपर के 40 प्रतिशत लोगों के उपभोग में 4.8 प्रतिशत वृद्धि हुई। गांवों में मध्यम, निम्न मध्यम तथा गरीब श्रेणियों के लोगों के प्रति व्यक्ति उपभोग में अपेक्षाकृत थोड़ा सुधार हुआ और सबसे गरीब 5 प्रतिशत व्यक्तियों के प्रति व्यक्ति उपभोग में थोड़ी कमी हुई है। शहरी क्षेत्र में स्थिति अधिक गंभीर है। शहरी जनसंख्या के सबसे नीचे के 40 प्रतिशत व्यक्तियों के औसत प्रति व्यक्ति उपभोग में कमी हुई और सबसे गरीब 10 प्रतिशत जनसंख्या का उपभोग का स्तर 15 से 20 प्रतिशत गिर गया। विकास के लाभों का इस प्रकार का असमान वितरण, अंततः आर्थिक असमानता को बढ़ाता है और धनी तथा गरीब के बीच खाई चौड़ी करता है।

प्रणव के0 वर्धन के अनुमान: बर्धन ने कृषि में नवीन नीति के वितरण पर प्रभाव का अध्ययन किया है। उनके अनुसार वर्तमान शताब्दी के सातवें दशक के अन्त में भारत की लगभग 54 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या न्यूनतम स्वीकार्य जीवन स्तर के नीचे थी। बर्धन ने गरीबी की रेखा 1960-61 के मूल्यों के आधार पर प्रति व्यक्ति 15 रूपये मासिक निजी उपभोग के स्तर के अनुरूप स्वीकार की है। 1967-68 और 1968-69 में प्रचलित कीमतों के आधार पर इन वर्षों में गरीबी की रेखा क्रमशः 30.0 और 29.4 रू0 प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग के अनुरूप होगी। बर्धन के अनुमान के अनुसार इस वर्ष गरीबी की रेखा के नीचे आने वाले ग्रामीणों की संख्या 23 करोड़ थी, जो तत्कालीन ग्रामीण जनसंख्या की 54 प्रतिशत थी।

बी0 एस0 मिन्हास के अनुमान: मिन्हास का विचार है कि 1960-61 के मूल्यों के आधार पर 200 रू0 वार्षिक के प्रति व्यक्ति निजी उपभोग द्वारा ग्रामीण परिवारों के लिये न्यूनतम जीवन स्तर को प्राप्त कर सकना संभव होगा। ''शहरी और ग्राम्य दोनों ही क्षेत्रों को मिलाकर देखने पर सारे देश के लिये सरकारी विशेषज्ञ समिति न्यूनतम जीवन स्तर के लिये 240 रू0 वार्षिक प्रति व्यक्ति निजी उपभोग की राशि इससे कम ही होनी चाहिये और मिन्हास इसे 200 रू0 मान लेते हैं।

डॉ0 कोस्टा ने अपने अनुमान में गरीबी के तीन स्तर बताये हैं, अर्थात् अतिदीन, दीन और गरीब। उनके अनुमान के अनुसार 1963-64 में 6.2 करोड़ व्यक्ति अतिदीन जीवन व्यतीत करते थे। 10.4 करोड़ दीन और 16.2 करोड़ व्यक्ति गरीबी का जीवन व्यतीत करते थे। अतिदीनता का जीवन गुजारने वाले लोगों का अनुपात 13.2 प्रतिशत था और गरीबी में रहने वालों का 34.9 प्रतिशत था।

एम0 एस0 आहलूवालिया ने भी गरीबी के अनुमान प्रस्तुत किये। 1956-57 में ग्रामीण जनता का 54.1 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा था। गरीब जनता का यह अनुमान

1960-61 में 38.9 प्रतिशत ही रहा गया। इसके बाद 1967-68 तक गरीबों की संख्या में वृद्धि हुई। 1967-68 के बाद इस गरीबी अनुपात में कमी आयी और 1973-74 में यह गरीबी अनुपात ग्रामीण जनसंख्या का 46.1 प्रतिशत रह गया।

देश में गरीबी अनुपात के ताजा आँकड़े योजना आयोग ने मार्च 2007 में जारी किये हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन ने गरीबी की स्थिति के आंकलन के लिये 2004-05 के अपने सर्वेक्षण में दो तरह की प्रश्नावली का प्रयोग किया है। जिसमें प्रथम 30 दिन के यूनीफार्म रिकॉल पीरियड उपभोग व्यय व दूसरा 365 दिन के संदर्भ वाले मिक्स्ड रिकॉल पीरियड पर आधारित था। इन दोनों ही आधारों पर गरीबी अनुपात अलग-अलग आँकलित किया गया है। न्त्च् आधारित ऑकलन में देश में गरीबों की संख्या 2004-05 में 30.7 करोड़ बतायी गयी है, जबकि डण्त्ण्च्ण् आँकड़ों में यह 23.85 करोड़ है जिसमें ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में गरीबों की कुल संख्या क्रमशः 17.03 करोड़ व 6.82 करोड़ आँकलित है। इससे पूर्व 1999-2000 के आँकड़ों में देश के गरीबों की कुल संख्या (गरीबी रेखा से नीचे कुल जनसंख्या) 26.02 करोड़ (ग्रामीण क्षेत्रों में 19.32 करोड़ व शहरी क्षेत्रों में 6.7 करोड़) थी।

हमारे देश में गरीबी के माप हेतु गरीबी रेखा के निर्धारण करने का प्रयास सर्वप्रथम सरकार द्धारा गठित एक विशेषज्ञ दल द्धारा 1961 में किया गया। इस विशेषज्ञ दल ने 1960-61 की कीमतों पर 240 रु0 वार्षिक या 20 रू0 मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय को गरीबी रेखा माना था। इस विशेषज्ञ दल ने न्यूनतम उपभोग व्यय में शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर किए जाने वाले व्यय का भार को नहीं लिया क्योंकि इनको सरकार स्वंय वहन करती है। उक्त विशेषज्ञ दल ने यह भी कहा था कि बाद के वर्षो के लिए गरीबी रेखा का अनुमान कीमत वृद्धि से उक्त राशि को समायोजित कर प्राप्त किया जा सकता है। इसी आधार पर समय-समय पर विशेषज्ञो ने गरीबी रेखा तथा गरीबी के स्तर का अनुमान लगाया गया है। 1973-74 में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता को ध्यान में रखकर ग्रामीण क्षेत्र के लिए 49-1 रू0 तथा नगरीय क्षेत्र में 56-6 रू0 मासिक व्यय से कम को गरीबी रेखा माना गया। बाद में इसमें संशोधित करके 1984-85 की कीमतों पर ग्रामीण क्षेत्रों में 107 रू0 तथा नगरीय क्षेत्रों में 122 रू0 मासिक व्यय को गरीबी रेखा की संज्ञा दी गयी। 2004-05 में इसमें पुन; संशोधित करके प्रतिव्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में 356-00 रू0 और शहरी क्षेत्रों में 538-6 रू0 मासिक व्यय को गरीबी रेखा की संज्ञा दी गयी। इससे स्पष्ट है कि हमारे देश में गरीबी रेखा का निर्धारण भौतिक अतिजीवन की संकल्पना के आधार पर किया गया है।

योजना आयोग द्वारा आंकलित गरीबो की संख्या को लेकर विवाद बना रहता है। 1993-94 में योजना आयोग ने प्रसिद्व अर्थविद डी0 टी0 लकड़वाला की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञ दल द्वारा योजना आयोग के पूर्व आँकडों को अविश्वसनीय बताते हुए गरीबी की माप के लिए वैकल्पिक फार्मूले का उपयोग करने का सुझाव दिया। जिसके अंतर्गत शहरी गरीबी के आंकलन के लिए औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक एवं ग्रामीण क्षेत्रो में इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कृषि श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक को आधार बनाया। 11 मार्च 1997 को योजना आयोग की

पूर्ण बैठक में गरीबी रेखा की माप के लिए लकड़वाला फार्मूले को स्वीकार कर लिया गया। इस न्यूनतम उपभोग के लिए आवश्यक आय के विषय पर अर्थशास्त्री एकमत नहीं है। 7वें वित्त आयोग ने एक नयी वर्द्धित गरीबी रेखा की अवधारणा की संकल्पना का प्रतिपादन किया। इस वर्द्धित गरीबी रेखा के निर्धारण में मासिक वैयक्तिक उपभोग व्यय में सरकार द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, समाज कल्याण आदि पर किए जाने वाले प्रति व्यक्ति मासिक व्यय की राशि भी जोड़ दिया। इस प्रकार प्राप्त हुई धनराशि को वर्द्धित गरीबी रेखा का नाम दिया गया। वर्द्धित गरीबी रेखा पूरे देश के लिए समान नहीं होगा बल्कि इसका निर्धारण प्रत्येक राज्य के लिए अलग-अलग होगा। इस कारण योजना आयोग द्वारा गरीबी रेखा निर्धारण के सम्बन्ध एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की जिसमें आहार सम्बन्धी जरुरतों को ध्यान में रखा गया है। इस अवधारणा के अनुसार "जिनको ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से पोषक शक्ति नहीं प्राप्त होती है उनको गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है।"

जो व्यापक गरीबी की स्थिति को बताता है। जिसका विद्यमान होना चिन्ता का विषय है। इसी अवधारणा पर आधारित योजना आयोग राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण एवं विश्व बैंक द्वारा उपभोग व्यय से सम्बन्धित जो जानकारी उपलब्ध है उसके आधार पर शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी के अनुमापन का प्रयास किया गया।

8,6 भारत में गरीबी का अनुमान

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के विभिन्न दौर पर किए गये सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों से सामान्य गरीबी का विश्लेषण तालिका 8.1 एवं 8.2 के आधार पर करते हैं तो गरीबी के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष पाया गया- समग्र गरीबी का अनुपात 1993-94 से 2004-05 की अवधि के दौरान 36.0 प्रतिशत से कम होकर 27.5 प्रतिशत हो गया अर्थात् इसमें 8.50 प्रतिशत की कमी हुई जो इसके पूर्व की अवधि 1983-84 से 1993-94 के बीच भी 44.5 प्रतिशत से कम होकर 36.0 प्रतिशत अर्थात् इसमें भी

तालिका 8.1
समग्र देश में विभिन्न वर्षो में गरीबी का अनुमान
(वर्ष 1983-84 से 2004-05)

वर्ष	समग्र भारत	ग्रामीण	शहरी
1973-74	54.9	56.4	49.0
1983-84	44.50	45.70	40.80
1993-94	36.0	37.30	32.40
2004-05	27.5	28.30	25.70

स्रोत: राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

ग्राफ संख्या- 8.1

भारत में गरीबी का अनुमान (वर्ष 1983-84 से 2004-05)

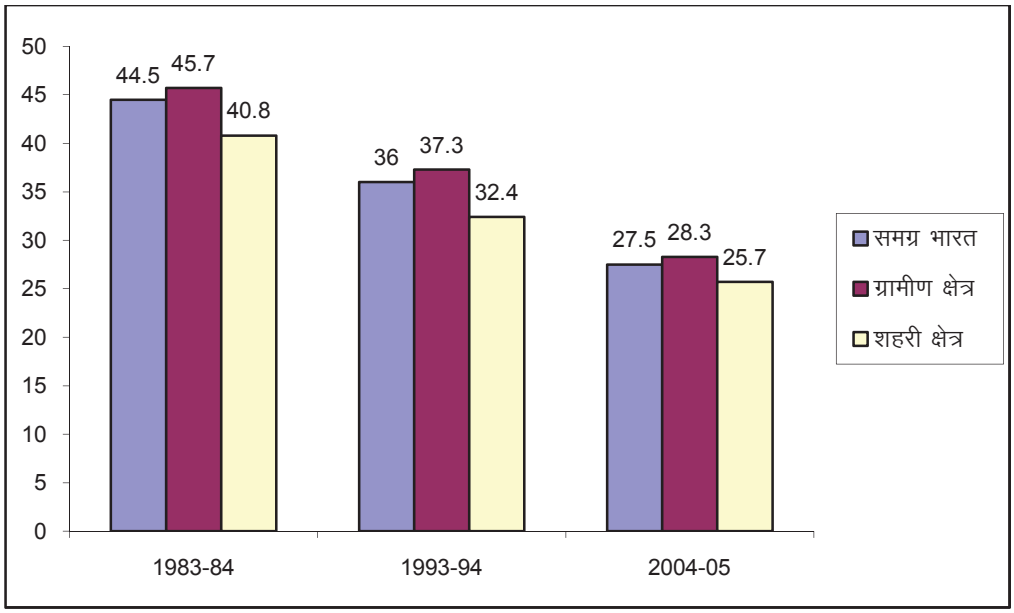

8.5 प्रतिशत की कमी हुई। शहरी क्षेत्र में यह अनुपात 1983-84 से 1993-94 की अवधि में 40.8 प्रतिशत से कम होकर 32.4 प्रतिशत अर्थात् 8.4 प्रतिशत की कमी जो वर्ष 1993-94 से 2004-05 में 32.4 प्रतिशत से कम होकर 25.7 प्रतिशत अर्थात् इसमें 6.7 प्रतिशत की कमी हुई। ग्रामीण क्षेत्र में यह अनुपात 1983-84 से 1993-94 की अवधि में 45.7 प्रतिशत से कम होकर 37.3 प्रतिशत अर्थात् 8.4 प्रतिशत की कमी हुई वर्ष 1993-94 से 2004-05 में 37.3 प्रतिशत से कम होकर 28.3 प्रतिशत अर्थात् 9.0 प्रतिशत की कमी हुई। इसके साथ, शहरों में 8.1 करोड़ गरीब रहते थे जो कुल गरीबों का 26.8 प्रतिशत और ग्राम क्षेत्रों में 22.1 करोड़ गरीब रहते थे जो कुल गरीबों का 73.2 प्रतिशत है देश में गरीबों की कुल संख्या 30.2 करोड़ थी।

तालिका 8.2

गरीबी में परिवर्तन (वर्ष 1973 से 2005) प्रतिशत में दस वार्षिक वार्षिक

वर्ष	समग्र भारत	ग्रामीण	शहरी	समग्र भारत	ग्रामीण	शहरी
1973-83	10.40	10.70	8.20	1.00	1.10	0.80
1983-94	8.50	8.40	8.40	0.83	0.81	0.87
1994-2005	8.50	9.00	6.90	0.78	0.80	0.59

स्रोत: राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

इन आँकड़ों के विश्लेषण (तालिका 8.2) से यह निश्चित होता है वर्ष 1984-94 में समग्र भारत में गरीबी में कमी की दर जहाँ 0.83 प्रतिशत वार्षिक थी। वह वर्ष 1994से 2005 में कुछ मात्रा में घट

कर 0.78 प्रतिशत वार्षिक हो गई। उन्हीं वर्षों में ग्रामीण क्षेत्र में 0.81 प्रतिशत से घटकर 0.80 प्रतिशत वार्षिक हो गई। वहीं शहरी क्षेत्र में 0.87 प्रतिशत से घटकर 0.59 प्रतिशत वार्षिक रह गई।

8,7 राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी का परिदृश्य

राज्यों के सम्बन्ध में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण से प्राप्त आँकडों का विश्लेषण करें तो वर्ष 1993-94 से 2004-05 कें युग में बड़े चुनौती युक्त परिणाम प्राप्त हुए। 61वें दौंर में गरीबी रेखा का अनुमापन समग्र भारत के आधार पर प्रति व्यक्ति मासिक व्यय ग्रामीण क्षेत्रों में 358.03 रुपये और शहरी क्षेत्रों में 540.40 रुपये के आधार पर किया गया। और राज्यों के सन्दर्भ में यह अलग-अलग है जैसा तालिका 8.3 में दिया है।

तालिका 8.3 विभिन्न राज्यों में निर्धारित गरीबी रेखा (2004-05)

राज्य	ग्रामीण	शहरी
आन्ध्र प्रदेश	292.95	544.30
असम	387.64	378.38
बिहार	356.36	461.70
गुजरात	353.93	540.80
हरियाणा	414.76	504.20
हिमाचल प्रदेश	394.20	504.20
जम्मू व कश्मीर	391.26	504.20
कर्नाटक	324.17	603.50
केरल	429.07	562.00
मध्य प्रदेश	324.48	569.00
महाराष्ट्र	362.25	664.50
उड़ीसा	325.65	544.00
पंजाब	410.38	456.10
राजस्थान	374.57	531.10
तमिलनाडू	351.86	551.70
उत्तर प्रदेश	369.76	487.10
पश्चिम बंगाल	382.82	446.10
सम्पूर्ण भारत	358.03	540.40

स्रोतराष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन :

राज्यों के सन्दर्भ में गरीबी के ज्ञात तथ्यों का तालिका 8.4 के के आधार पर विश्लेषण करते है तो निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते है।

तालिका 8.4विभिन्न राज्यों में गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या

(वर्ष 1993-94 से 2004-05)

राज्य	ग्रामीण		शहरी		कुल	प्रतिशत
	1993-94	2004-05	1993-94	2004-05	1993-94	2004-05
जम्मूकश्मीर	30.3	4.6	9.2	7.9	25.2	5.4
पंजाब	11.9	9.1	11.4	7.1	11.8	8.4
हिमाचल प्रदेश	30.3	10.7	9.2	3.4	28.4	10.0
हरियाणा	28.0	13.6	16.4	15.1	25.1	14.0
दिल्ली	1.9	6.9	16.0	13.2	14.7	14.7
केरल	25.8	13.2	24.5	20.2	25.4	15.0
आन्ध्र प्रदेश	15.9	11.2	38.3	28.0	22.2	15.8
गुजरात	22.2	19.1	27.9	13.0	24.2	16.8
असम	45.0	22.3	7.7	3.3	40.9	19.7
राजस्थान	26.5	18.7	30.5	32.9	27.4	22.1
तमिलनाडु	32.5	22.8	39.8	22.2	35.0	22.5
प0 बंगाल	40.8	28.6	22.4	14.8	35.7	24.7
कर्नाटक	29.9	20.8	40.1	32.6	33.2	25.0
महाराष्ट्र	37.9	29.6	35.2	32.2	36.9	30.7
उ0 प्र0	42.3	33.4	35.4	30.6	40.9	32.8
म0 प्र0	40.6	36.9	48.4	42.1	42.5	38.3
बिहार	58.2	42.1	34.5	34.6	55.00	41.4
उड़ीसा	49.7	46.8	41.6	44.3	48.6	46.4
उत्तराखण्ड	....	40.8	.....	36.5	.....	39.6
सम्पूर्ण भारत	37.3	28.3	32.4	25.7	36.00	27.5

स्रोत योजना आयोग एवं राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण :

- गुजरात और तमिलनाडु ऐसे राज्य थे जहाँ 1993-94 में ग्रामीण गरीबी शहरी गरीबी से कम थी, परन्तु वर्ष 1993 से 2004 में शहरी गरीबी में विशेष कमी हुई उस रुप में ग्रामीण गरीबी नहीं घटी।
- अनेक सम्पन्न राज्यों में शहरी गरीबी में जिस अनुपात में कमी हुई उस अनुपात में ग्रामीण गरीबी में कमी नहीं हुई जैसे आन्ध्रप्रदेश में ग्रामीण गरीबी में कमी 4.7 प्रतिशत की हुई जबकि शहरी गरीबी में 10 प्रतिशत की कमी हुई। गुजरात में ग्रामीण में 3.1 प्रतिशत और शहरी गरीबी में 14.9 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई और तमिलनाडु में ग्रामीण गरीबी में 9.7 प्रतिशत की एवं शहरी गरीबी में 17.6 प्रतिशत की कमी हुई।
- दिल्ली ऐसा प्रदेश रहा जहाँ ग्रामीण गरीबी 1.9 प्रतिशत से बढ़कर 6.9 प्रतिशत हो गई।
- जम्मू कश्मीर,पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, केरल, असम, राजस्थान, प0 बंगाल एवं कर्नाटक में ग्रामीण गरीबी में विशेष सुधार हुआ।
- हिमाचल प्रदेश (5.8), आन्ध्र प्रदेश (10.3), गुजरात(14.9), तमिलनाडु (17.6), पं0 बंगाल (7.6), कर्नाटक (7.5) आदि सम्पन्न राज्यो में शहरी गरीबी में दस प्रतिशत से अधिक या उससे थोडी कम की कमी हुई।
- गरीबी का सर्वाधिक प्रतिशत उड़ीसा में 46.4 प्रतिशत था और सबसे कम अनुपात जम्मू और कश्मीर में 5.4 प्रतिशत था।
- महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और उत्तराखण्ड में गरीबी अनुपात 30 प्रतिशत से अधिक था। जबकि झारखण्ड, छत्तीसगढ, बिहार और उड़ीसा में गरीबी अनुपात 40 प्रतिशत से अधिक रहा। और दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और जम्मू और कश्मीर ऐसे राज्य थे जहाँ गरीबी अनुपात 15 प्रतिशत से भी कम है।

8.8 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ और कार्यक्रम

भारतीय संविधान और पंचवर्षीय योजनाओं में सामाजिक न्याय को सरकार की रण नितियों का प्राथमिक उद्देश्य माना है। **प्रथम येजना (1951-56)** में ही यह विचार व्यक्त किया गया था कि आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन की अतः प्रेरणा का उदय गरीबी और आय, संपत्ति तथा अवसरों की असमानताओं से होता है। और माना गया आर्थिक विकास की प्रक्रिया के बढ़ने के साथ रिसाव सिद्धान्त प्रभावी हो जायेगा एवं गरीबी और आय, सम्पत्ति की असमानता में कमी आएगी। **दूसरी योजना (1956-61)** में भी कहा गया है, "आर्थिक विकास के अधिकाधिक लाभ समाज के

अपेक्षाकृत कम भाग्यशाली वर्गो तक पहुँचना चाहिए"। प्राय सरकार के सभी नीति विषयक प्रपत्रों में गरीबी निवारण और अपनाई जाने वाली रणनीतियों की चर्चा हुई है। इस सन्दर्भ में सरकार गरीबी निवारण के लिए लि-आयामी नीति अपनाई। प्रथम संवृद्धि आधारित जो प्रथम, दूसरी एवं तीसरी योजना में रही जो राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में तीव्र वृद्धि का प्रभाव धीरे2 गरीबी वर्ग तक पहुँचने पर आधारित था। जिसमें चुने क्षेत्रों का तीव्र औद्योगिक विकास हो एवं **तीसरी योजना (1961-66)** में लागू हरित क्रान्ति से कृषि का पूर्ण काया-कल्प कर समाज के अधिक पिछड़े वर्गो को लाभान्वित करना था। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में बहुत वृद्धि न हो सकी एवं साथ ही धनी एवं गरीबी की खाई और बढ़ गई। हरित क्रान्ति ने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के बीच खाई को और चौड़ा किया। जबकि भूमि के पुर्नवितरण की इच्छा तथा योग्यता का अभाव था। इस तरह **चौथी योजना (1969-74)** तक गरीबी के निवारण हेतु प्रत्यक्ष कार्यवाही की जगह अप्रत्यक्ष नीति का सहारा लिया जाता रहा।

पाँचवी योजना (1974-1979) में प्रथम बार गरीबी से मुक्ती को मुख्य उद्देश्य माना गया। योजना के अर्न्तगत गरीबी निवारण, स्वालम्बन की प्राप्ति, आय की विषमताओं में कमी और गरीबों के उपभोग स्तर में वृद्धि के मुख्य लक्ष्य नियत किए थे। **छठी योजना (1980-85)** में भी गरीबी निवारण को महत्ता प्रदान की गई। विकास कार्यक्रमो में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की सामाजिक आर्थिक अन्तसंरचना को सुदृढ़ करने, ग्रामीण गरीबी का निवारण एवं क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने के लिए विशिष्ट कार्यक्रम संचालित किए।

इसी तरह **सातवीं योजना (1985-90)** में खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि,रोजगार अवसरों में वृद्धि, आधुनिकीकरण, स्वालम्बन व सामाजिक न्याय के आधारभूत सिद्धान्त के आधारभूत सिद्धान्त के आधार पर उत्पादकता में वृद्धि आने पर बल दिया गया जिससे गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार सम्भव हो इसी रणनीति के तहत गरीबी से सन्दर्भित अनेक कार्यक्रम चलाये गयें।

आठवीं योजना (1992-97) में नियोजित विकास हेतु 'मानव विकास' को मुख्य रूप से ध्यान की स्थितियों में गिरावट की ओर ध्यान देते हुए न्याय संगत सामाजिक स्थिति के पुनरूस्थापन पर जोर दिया गया। यह सुनिश्चित यिा गया कि योजना के केन्द्र में, आम लोगों की आवश्यकताएँ व उनका जीवन स्तर सुधार का लक्ष्य रहे। इसके लिए काम के अधिकार, ग्रामीण विकास की अनिर्वायता, विकेन्द्रीकरण व एकीकृत क्षेत्र आयोजना, कृषि का विकास, शहरी गरीबी व बेरोजगारी का निवारण व सामाजिक विकास शिक्षा व स्वास्थ्य के स्तर में परिवर्तन, खाद्य व सामाजिक सुरक्षा का बेहतर स्थिति व जनसंख्या नियत्रंण की रणनीति प्रस्तावित की गयी।

नवीं योजना (1997-2002) में उन योजना को प्राथमिकता के आधार पर लागू किया गया जों कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी गयी जिससें गरीबी का निवारण हो सके। इसके साथ ही योजना हेतु र्निदिष्ट स्कीमों में श्रम गहन होने पर जोर दिया गया जो दीर्घकालीन धारणीय लाभ प्रदान

कर सके। योजना काल में आरम्भ किये गये आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के द्वारा जो संरचनात्मक सुधार लागू हुए उनका ध्येय भी गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार करना ही था।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) के दौरान तीव्र वृद्धि के साथ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के माध्यम से गरीबी में बड़ी कमी का लक्ष्य रख गया। योजना में 8 प्रतिशत वार्षिक विकास का लक्ष्य रखा गया। इसके साथ प्राथमिक शिक्षा व साक्षरता में वृद्धि करना, स्वास्थय सुविधाओं के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई। परन्तु जहाँ वृद्धि दर 7.6 प्रतिशत प्राप्त हुई लेकिन गरीबी निवारण कार्यक्रमों में उतनी सफलता नहीं प्राप्त हुई जितनी आशा थी।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2002-12) में समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के साथ शुरू की गई है। जिसमें गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार के अनेक दीर्घकालीन कार्यक्रमों को लगू किया गया है और इसे इस प्रकार क्रियान्वित किया जाना है कि आर्थिक व सामाजिक विकास में राज्यों के बीच अन्तर समाप्त हो जाए।

गरीबी निवारक कार्यक्रम- गरीबी को समाप्त करने के लिए सरकार अनेक गरीबी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए है जिससे लोगो की आय का सृजन हो। इसमें से अधिकांश कार्यक्रम भौतिक सम्पदा के निर्माण जैसे- ग्रामीण आधारिक संरचना के अन्तर्गत सड़क, पीने का पानी की सुविधाओं, सीवरेज आदि से जुड़े है जबकि अन्य को स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहित करना तथा व्यापार प्रारम्भ करने हेतु सहायता प्रदान करना है। स्वयं सहायता समूह भी लोगों के सतत् विकास हेतु प्रयत्नशील है। गरीबी निवारक कार्यक्रम निम्न है-

अस्थायी रोजगार सृजित करने वाले कार्यक्रम- जवाहर रोजगार योजना (जे0आर0वाई0), जवाहर समृद्धि योजना, दस लाख कुआं योजना, रोजगार गारंटी योजना, काम के बदले आनाज, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन0आर0ई0पी0), भूमिहीन ग्रामीण रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (एन0आर0ई0जी0पी0), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना अधिनियम (2005)।

सतत् रोजगार एवं आय सृजित कार्यक्रम- स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, स्वयंसिद्धा प्रोजेक्ट, संयुक्त वन प्रबन्धन कार्यक्रम, स्वयं सहायता समूह, ग्रामीण वन प्रबन्धन कमेटी, सूक्ष्म वित्त एवं प्रबन्धन द्वारा लाभार्थी का व्यापक आर्थिक सुधार।

जीविका की लागत कम करने वाले कार्यक्रम - सार्वजनिक वितरण प्रणाली, स्वजल धारा (ग्रामीण क्षेत्र में पीने के पानी की सुनिश्चितता करना), इन्दिरा आवास योजना।

इनमें से मुख्य कार्यक्रमों का विवरण निम्न है-

गरीबी निवारक कार्यक्रम

कार्यक्रम	वर्ष	उद्देश्य
सघन कृषि जिला कार्यक्रम (IADP)	1960-61	कृषकों को बीज, उर्वरक, औजार और ऋण उपलब्ध करना।
साख अधिकरण योजना (CAS)	1995	RBI की चयनात्मक साख नीति की एक योजना
बहु फसली कार्यक्रम	1966-67	कृषि उत्पादन में वृद्धि करना
विभेदीकृत ब्याजदर योजना	1972	समाज के कमजोर वर्गो को रियायती दर 4 प्रतिशत पर ऋण उपलब्ध कराना।
ग्रामीण रोजगार के लिए नकद योजना	1972- 74	ग्रामीण विकास हेतु
मरूभूमि विकास कार्यक्रम	1977-78	मरूभूमि विस्तार प्रक्रिया नियंत्रण एवं पर्यावरण सन्तुलन
काम के बदले अनाज कार्यक्रम	1977-78	विकास प्रक्रियाओं के काम हेतु खाद्यान्न देना।
अन्तोदय कार्यक्रम	1977-78	राजस्थान में गांव के सबसे गरीब परिवारों को स्वाबलम्बी बनाना।
ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु ग्रामीण प्रशिक्षण कार्यक्रम (TRYSEM)	15अगस्त 1979	युवा वर्ग की बेरोजगारी को दूर करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम
समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP)	12 अक्टूबर 1980	ग्रामीण निर्धन परिवारों को स्वरोजगार हेतु ऋण उपलब्ध कराना।
राष्ट्रीय ग्राम्य रोजगार कार्यक्रम	1980	ग्रामीण निर्धनों को लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना
ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बाल विकास(NREP)	1982	BPL ग्रामीण परिवारों की महिलाओं को कार्यक्रम स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।
ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी	15 अगस्त	भूमिहीन कृषकों व श्रमिकों को रोजगार

कार्यक्रम (RLEGP)	1983	उपलब्ध कराने हेतु।
इन्दिरा आवास योजना	1985-86	ग्रामीण क्षेत्रों में गृह निमार्ण हेतु।
शहरी निर्धनों हेतु स्वरोजगार कार्यक्रम	1986	स्वरोजगार हेतु वित्तीय एवं तकनीकी मद्द
सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण	1988	ग्रामीण क्षेत्रों के लिए नई साख नीति।
प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम	1988	ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में शिक्षा विस्तार
नेहरू रोजगार योजना	अक्टूबर 1989	नगरीय बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु।
जवाहर रोजगार योजना	अप्रैल 1989	ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु।
कृषि एवं ग्रामीण ऋण राहत योजना	1990	ग्रामीण कुशल श्रमिकों, कारीगरों बुनकरों को 10000रु0 तक ब्याज मुक्त ऋण देना।
शहरी सूक्ष्म उद्यम योजना	1990	शहरी लघु उद्यमियों को वित्तीय सहायता।
शहरी सवेतन रोजगार योजना	1990	एक लाख से कम जनसंख्या वाली शहरी बस्तियों में गरीबों के लिए मूल सुविधा की व्यवस्था करके मजदूरी रोजगार प्रदान करना।
शहरी आवास एवं आश्रय सुधार योजना	1990	1 लाख से 20 लाख की जनसंख्या वाली शहरी बस्तियों में आश्रय उन्नयन के माध्यम से रोजगार प्रदान करना।
रोजगार आश्वासन योजना	1993-94	रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।
राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम	1995	विभिन्न योजनाओं द्वारा लोगों को सहायता।
संगम योजना	1996	विकलांगों के कल्याण हेतु।
कस्तूरबा गाँधी शिक्षा योजना	15 अगस्त 1997	नीची महिला साक्षरता वाले जिलों में बालिका विद्यालय की स्थापना।

स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना	1 दिसम्बर 1997	शहरी क्षेत्रों में लाभ प्रद रोजगार उपलब्ध कराना।
जवाहर ग्राम समृद्धि योजना	1अप्रैल, 1999	ग्रामीण निर्धनों का जीवन सुधारना और लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना।
अन्नपूर्णा योजना	19 मार्च1999	वृद्ध नागरिकों को निःशुल्क अनाज
स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना	1अप्रैल, 1999	सामूहिक प्रयास पर बल। सहायता प्राप्त गरीब व्यक्ति को 3 वर्ष में BPL के ऊपर लाना।
प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना	2000	गाँवों का समग्र विकास।
अन्तोदय योजना	2000	बी.पी.एल .पारिवारिक सर्वाधिक गरीबों को अनाज उपलब्ध कराना।
आश्रय बीमा योजना	जून 2001	रोजगार छूटे कर्मचारियों को सुरक्षा कवच प्रदान करना ।
सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना	25 सितम्बर 2001	ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का सृजन
बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना	2001, दिसम्बर	शहरी स्लम आबादी को स्वच्छ आवास उपलब्ध कराने हेतु।
सर्वशिक्षा अभियान	2000-01	6-14 वर्ष के सभी बच्चों को 2010 तक निःशुल्क एवं आठवीं तक की प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना ।
खाद्यान्न बैंक योजना	2001	घोषित ग्राम पंचायत स्तर पर खाद्यान्न बैंक की स्थापना।
प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना	25 दिसम्बर 2000	गाँवों को सडक से जोड़ना।
हरियाली योजना	27 जनवरी 2003	ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्षारोपण को प्रोत्साहन।
जवाहर लाल नेहरू नेशनल अरबन	3 दिसम्बर 2005	शहरी अवस्थापना विकास रिनुअल मिशन

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ अभियान	12अप्रैल 2005	प्राथमिक स्वास्थय सुरक्षा को सुदृढ़ करना।
भारत निर्माण योजना	16 दिसम्बर 2005	ग्रामीण अवसथापना सर्वागीण तथा व्यापक विकास योजना।
नेशनल रूरल लिमलीहुड मिशन	2009-10	SGRY का नया नाम
राजीव आवास योजना	2009-10	स्लमुक्ति से सम्बन्धित
प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना	2009-10	अनुसूचित जाति बहुल ग्राम विकास योजना।
महिला किसान सशक्ति करण योजना	2010-11	ग्रामीण किसान महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु
महात्मागांधी नेशनल रूरल एम्प्ल्वायमेंट गारन्टी प्रोग्राम (मनरेगा)	2अक्टूबर 2009 मूलतः 2.2.2006	ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार का अधिकार देना

8.9 गरीबी निवारण की रणनीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन

भारतीय योजनाकारों की आरम्भ से ही यह धारणा थी कि आर्थिक विकास प्रक्रिया के द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी जिसका प्रभाव रिसाव द्वारा नीचे तक स्वंय ही पहुँच जायेगा। जिसके साथ प्रगितिशील करारोपण तथा सार्वजनिक व्यय का कल्याणकारी स्वरूप गरीबी में कमी लायेगा। परन्तु गरीबी निवारण की यह धारणा सफल न हो सकी। इस सन्दर्भ में गरीबी निवारण कार्यक्रम का पूरा ध्यान अतिरिक्त आय के सृजन पर केन्द्रित रहा है। परिवार कल्याण, पैष्टिक आहार, सामाजिक सुरक्षा तथा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया गया है।इन कार्यक्रमों में अपाहिज, बीमार तथा उत्पादक रूप से काम करने के अयोग्य लोगों के लिए कुछ नहीं किया गया है।जनसंख्या के लगातार छोटा होता जा रहा है, स्वरोजगार उद्यमों पर या मजदूरों के रोजगार कार्यक्रमों पर निर्भरता सही नहीं है।

वर्ष 1965-66 के बाद नई कृषि क्रान्ति के आने से गुणात्मक परिवर्तन हुआ। अब कृषि उत्पादन में वृद्धि और अधिक भूमि के कारण नहीं बल्कि गहन खेती के कारण होने लगी। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ऐसे परिर्वतन हुए जो गरीबों के लिए हितकर नहीं थे। जैसे मशीनों द्वारा श्रम का प्रतिस्थापन फलस्वरूप रोजगार के अवसर नहीं बढ़ सके। बड़े भूस्वामियों ने छोटे-छोटे काश्तकारों से बटाँई खेती लेकर स्वय कृषि कार्य करना शुरू कर दिया। बड़े कृषकों की आय बढ़ने एवं मँहगी कृषि आगत से साधन-विहीन सीमांत व छोटे कृषकों की आय घटने से स्थानीय दस्तकारों व कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुओं की माँग गिरी और लोग ज्यादा गरीब हो गए।

जबकि आवश्यकता इस बात पर ध्यान देने की है कि गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे विभिन्न लोगों के आय स्तरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

8.10 गरीबी निवारण के उपाय

गरीबी की समस्या को दूर करने के लिए उन दशाओं को सुधारना आवश्यक है जिनके कारण गरीबी उत्पन्न होती है। जिस लिए एक बहुपक्षीय कूटनीति बहुत जरूरी है। इसके प्रमुख पक्ष निम्न है-

1. आर्थिक विकास दर को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए, विशेष रूप से सभी क्षेत्रों के मध्य का संतुलन बनाया जाए।

2. कृषि विकास एवं गरीबी के मध्य प्रत्यक्ष सह-सम्बन्ध दिखाई देता है। जिन राज्यों में कृषि क्षेत्र की संवृद्धि दर तेज पायी गई वहाँ गरीबी में कम देखी गई। हरित क्रान्ति का प्रभाव जैसे-जैसे सीमान्त एवं छोटे कृषकों तक पहुँचा गरीबी में कमी हुई। अतः कृषि विकास की नवीन रणनीति, लघु व सीमान्त कृषिकों तथा ऐसे भूमि क्षेत्रों को भी ध्यान में रखना है, जहाँ भूमि उपज न्यून है।

3. गरीबी के निवारण हेतु ग्रामीण एवं लघु कुटीर उद्योगों एवं ग्रमीण हस्तशिल्प का विकास किया जाना चाहिए। इस हेतु ग्रामीण औद्योगिकरण को बढ़ावा देते हुए ग्राम स्तर पर लघु कुटीर उद्योगों को स्थापित करने के लिए अधिक प्रयास करने होगें तथा इन्हें संसाधन, वित्त व बाजार की समस्त सुविधाँए प्रदान करनी होगी। लघु उद्योगों में नवीन शोध को बढ़ावा देकर अत्पादित वस्तु की गुणवत्ता को बढ़ाना होगा।

4. एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम गरीबी निवारण की अधिक सुस्पष्ट एवं महत्वपूर्ण नीति है। इसके द्वारा उत्पादकता वृद्धि ग्रामीण जनसंख्या के जीवन-स्तर में सुधार एवं स्वालम्बन युक्त विकास किया जाना सम्भव होगा। जिस परिप्रेक्ष्य में श्रम गहन कृषि विकास, कृषि आधारित लघु एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की स्थापना, एवं कार्यक्रमों के निर्माण में ग्राम जन की भागीदारी सुनिश्चित करना होगा।

5. जन संख्या की तीव्र वृद्धि ने विकास को प्रभावहीन कर दिया। राष्ट्रीय आय में नगण्य वृद्धि हुई। इस हेतु एक प्रभावी नीति के निर्माण एवं क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

6. आय एवं धन के वितरण में असमान्ता को कम करने हेतु तीव्र कदम उठाने चाहिए। प्रगतिशील करारोपण के माध्यम से वितरण में समानता लाने का प्रयास किया जाए। भूमि एवं शहरी सम्पत्ति की अधिकता सीमा का निर्धारण कर अतिरिक्त को जनकल्याण के कार्यो में लगाया जाना चाहिए।

7. बचत, निवेश और पूँजी-निर्माण को तीव्र प्रोत्साहन हेतु प्रभावी कदम उठाने चाहिए। बचत को प्रोत्साहन कर उन्हे उत्पादक कार्यो में लगाया जाना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में छोटी-छोटी बचतों को एकत्रीकरण के साथ ही विदेशी प्रत्यक्ष पूँजी को भी आकर्षित करना आवश्यक है।

8. आधार भूत आवश्यकताएं जो गरीबी के मूल कारण से जुड़ी है, प्रभावी आय आवश्यक है। इस सन्दर्भ में प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधा, सड़क, बिजली, आवास एवं विद्युतीकरण के कार्यक्रमों को तीव्रता से लागू कर गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार सम्भव है।

9. क्षेत्रीय असमानता को दूर करने एवं सीमान्त प्रदेशों में प्रेरित प्रवास रूपी कार्यक्रम आरम्भ करने चाहिए। जैसा कि ब्राजील, चीन, मलेशिया जैसे देशो में महज जनसंख्या प्रदेशों से भूमी पर जनसंख्या का दबाव कम करने के लिए सीमान्त प्रदेशों में प्रवास को प्रेरित करने का व बसाव की विधि को अपनाया एवं सफलता पायी।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में ..... प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते है।
2. गरीबी रेखा की पुर्न परिभाषा हेतु ..... की अध्यक्षता में समिति गठित की गयी है।
3. गरीबी की माप के लिए सामान्यतः..... का प्रयोग किया जाता है
4. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना 1 जनवरी .....से प्रारम्भ हुई थी।
5. निर्धनता रेखा मापने का कैलोरी मापदण्ड ..... द्वारा दिया गया है।
6. शहरी गरीबी के आंकलन के लिए ..... को आधार बनाया।
7. ग्रामीण गरीबी के आंकलन के लिए .....को आधार बनाया।
8. भारत में गरीबी की माप .....प्रतिमान विधि से की जाती है।

लघु प्रश्न

1.गरीबी का परिमाण से क्या आशय है।

2.भारत में गरीबी के परिमाण का अनुमान किस विधि से करते है।

3.सापेक्ष एवे निरपेक्ष गरीबी किसे कहते है?

4.राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना अधिनियम की प्रमुख दो विशेषता बताइए।

8.11 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या गरीबी है। 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसे विरासत में मिली एक पंगु अर्थव्यवस्था जिसमें गरीबी की जड़े बरगद के वृक्ष के समान पनप चुकी थी। अर्थव्यवस्था को गरीबी के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाए नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना।गरीबी की माप के लिए सामान्यतः दो प्रतिमानों सापेक्षित प्रतिमान और निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है।7वें वित्त आयोग ने एक नयी वर्द्धित गरीबी रेखा की अवधारणा की संकल्पना का प्रतिपादन किया।योजना आयोग द्वारा गरीबी रेखा निर्धारण के सम्बन्ध एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की जिसमें आहार सम्बन्धी जरुरतों को ध्यान में रखा गया है। इस अवधारणा के अनुसार जिनको ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में

2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से पोषक शक्ति नहीं प्राप्त होती है उनको गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है। गरीबी को समाप्त करने के लिए सरकार अनेक गरीबी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए है जिससे लोगो की आय का सृजन हो। यद्यपि सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से रोजगार के नवीन अवसर पैदा करने तथा युवाओं की आय में सकारात्मक वृद्धि करने के प्रयास कर रही है। तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या गरीबी के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

8.12 शब्दावली

बी0पी0एल0- गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगो को कहते है।

गरीबी का दुश्चक्र- अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास में व्यवधान डालने वाली उन समस्यओं एवं बाधाओं से है जो इन देशों के गरीबी के 'कारण व परिणाम के रूप में' वृत्ताकार आकार में घटित होती रहती है।

प्रति व्यक्ति आय - राष्ट्रीय आय में कुल जनसंख्या का भाग देने पर प्रति व्यक्ति आय प्राप्त होती है।

मानव विकास सूचकांक - विकास के तुलनात्मक अध्ययन हेतु मानव विकास रिपोर्ट में संयुक्त राष्ट्र के विकास कार्यक्रम द्वारा (यू.एन.डी.पी.) द्वारा मानव विकास सूचकांक का निर्माण किया गया। इस सूचकांक को जीवन प्रत्याशा, शैक्षिक योग्यता तथा क्रय शक्ति आधारित प्रति व्यक्ति आय को शामिल करके निर्मित किया गया है एवं वर्तमान समय में यह विकास का महत्वपूर्ण पैमाना है।

महिला सशक्तिकरण - महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं यके आर्थिक सामाजिक उत्थान के साथ-साथ राजनैतिक चेतना के ऐसे विकास है जहां महिला समाज के हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता तथा समाना पूर्वक योगदान कर सके एवं प्रत्येक स्तर पर निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी निभा सके।

ग्रामीण विकास - ग्रामीण स्तर पर सभी को बुनियादी सुविधायें उपलब्ध कराते हुये ग्रामीण जीवन स्तर सुधार करने की प्रक्रिया को ग्रामीण विकास कहते है।

क्रय शक्ति - खरीदने की क्षमता को कहते है।

8.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 39.6 2. प्रो0 सुरेश तेन्दुलकर 3. दो प्रतिमानों 4.1999 5. योजना आयोग 6.औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक 7. कृषि श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक 8. निरपेक्ष

6.14 संदर्भ ग्रन्थ

1. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
2. Datt Ruddar (1997) Economic Reforms in India (A Unit).
3. Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation
4. Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
5. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
6. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

8.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली ।

8.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1.भारत में गरीबी की समस्या का स्वरूप है? नियोजन काल में लागू किए गये प्रमुख कार्यक्रमों के आधार पर विश्लेषण कीजिए।

2.गरीबी की प्रकृति एवं कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।

3.गरीबी किसी भी समाज के लिए अभिशाप है?इस समस्या को हल करने के लिए आप नियोजन में परिवर्तन हेतु क्या सुझाव देगें।

4.किसी देश के अविकसित रहने के लिए गरीबी किस रूप में जिम्मेदार है?इसे कैसे दूर कर सकते है।

5.किसी देश के अविकसित रहने के लिए गरीबी किस रूप में जिम्मेदार है?क्या इस दिशा में मानवीय नियोजन प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

इकाई 9 बेरोजगारी

इकाई की संरचना

9.1 उद्देश्य
9.2 प्रस्तावना
9.3 बेरोजगारीः आशय
9.4 बेरोजगारी के प्रकार
9.5 बेरोजगारी के कारण
9.6 भारत में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण
9.7 राज्यों में रोजगार का परिदृश्य
9.8 बेरोजगारी दूर करने के सुझाव
9.9 बेरोजगारी निवारण के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार नीति
9.10 बेरोजगारी को दूर करने के सरकारी कार्यक्रम
9.11 सांराश
9.12 शब्दावली
9.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.15 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
9.16 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से सम्बन्धित यह छठी इकाई है। इससे पहले की इकाइयों में आप अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

अर्थव्यवस्था चाहे विकसित हो अथवा अल्प विकसित बेरोजगारी एक सामान्य बात है। बेरोजगारी कुशल एवं अकुशल दोनो श्रेणी के श्रमिकों के मध्य पाई जाती है। आर्थिक दृष्टि से देखे तो यह उत्पादन के एक महत्वपूर्ण संसाधन की बर्वादी है। बेराजगारी ऐसी स्थिति का निर्माण करती है जहाँ व्यक्ति का सर्वाधिक नैतिक पतन हो जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बेरोजगारी को सामान्य दृष्टि से समझा सकेंगे। आप यह भी समझा सकेंगे कि बेरोजगारी के क्या कारण, इसके प्रमुख प्रकार एवं इसके दोष और देश में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण कर सकेगें है। आप इससे जुड़ी नीतियों एवं कार्यक्रमों को भी जान सकेंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ❖ बेरोजगारी आशय परिदृश्य एवं परिमाण को जान सकेंगें ।
- ❖ भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में बेरोजगारी के परिदृश्य का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ भारत बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ सरकार द्धारा बेरोजगारी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सकेंगे।

9.3 बेरोजगारी का आशय

अर्थव्यवस्था चाहे विकसित हो अथवा अल्प विकसित बेरोजगारी एक सामान्य बात है। बेरोजगारी कुशल एवं अकुशल दोनो श्रेणी के श्रमिकों के मध्य पाई जाती है। आर्थिक दृष्टि से देखे तो यह उत्पादन के एक महत्वपूर्ण संसाधन की बर्वादी है। बेराजगारी ऐसी स्थिति का निर्माण करती है जहाँ व्यक्ति का सर्वाधिक नैतिक पतन हो जाता है।

बेरोजगारी भारत की एक ज्वलन्त समस्या है जिसकी जड़ गहरी पहुंच चुकी है। आज इसका स्परूप दीर्धता की ओर बढ़ता चला जा रहा है। भारत में ही बेकारी नहीं अपितु बेकारी की समस्या विश्वव्यापी है। सामान्यतया जब एक व्यक्ति को अपने जीवन निर्वाह के लिए कोई कार्य नहीं मिलता है तो उस व्यक्ति को बेरोजगार और इस समस्या को बेराजगारी कहते है। दूसरे शब्दों में जब कोई

व्यक्ति कार्य करने का इच्छुक है और वह शारीरिक रुप से कार्य करने में समर्थ भी है लेकिन कोई कार्य नहीं मिलता जिससे की वह अपनी जीविका का निर्वाहन कर सके तो इस प्रकार की समस्या बेरोजगारी की समस्या कहलाती है। हम बेरोजगार जनसंख्या के उस बढ़े भाग को नहीं कहते हैं जो काम के लिए नहीं मिलते जैसे विधार्थी बढ़े उम्र के व्यक्ति घरेलू कार्यो में लगी महिलायें आदि। जैसा प्रो0 पीगू ने कहा है "एक व्यक्ति तभी ही बेरोजगार कहलाता है। जबकि उसके पास कार्य नहीं हो और वह रोजगार पाने का इच्छुक हो।"

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रकाशन के मुताबिक बेरोजगार शब्द में वे सब व्यक्ति शामिल किये जाने चाहिये जो एक दिये हुए दिन में काम की तलाश में और रोजगार में नहीं लगे हुए हैं किन्तु यदि कोई रोजगार दिया जाय तो काम में लग सकतें है।

समस्या को परिभाषित करने के लिए यह आवश्यक है कि आवश्यकता और साधन के बारे में विस्तृत विवेचन किया जाये। बेरोजगारी के सन्दर्भ में जब हम दृष्टिपात करते है तो पाते है कि रोजगार के अवसरों और रोजगार के साधनों के संख्यात्मक मान में भी बहुत बढ़ा अन्तर है यही अन्तर बेरोजगारी चिन्तन के लिए हमें विवश करता है।

बेरोजगारी मूलरुप से गलत आर्थिक नियोजन का परिणाम है। व्यक्ति जहां संसार में एक मुंह के साथ आता है वही श्रम हेतु दो हाथ भी लाता है। जब तक इन हाथों को श्रम के साधन प्राप्त नहीं होते तब तक अर्थव्यवस्था को पूर्ण नियोजित अर्थव्यवस्था नहीं माना जा सकता है।

गाँधी जी का इस संन्दर्भ में विचार सम्पत्ति व्यक्तिगत नहीं होनी चाहिए उत्पत्ति के साधनों पर नियंत्रण होना चाहिए समाज में उपस्थित विभिन्न आर्थिक तत्व को नियोजित ढ़ंग से कुटीर और लघु उद्योगो को प्रश्रय देना चाहिए।

9.4 बेरोजगारी के प्रकार

भारत में बेरोजगारी की समस्या ने कई रूप ले लिया हैं, जो निम्नवत है -

- प्रच्छन्न बेरोजगारी, बेरोजगारी का वह स्वरूप है जो प्रत्यक्ष रूप में दिखायी नहीं देता और छुपा रहता है भारत में इस प्रकार की बेरोजगारी कृषि में पायी जाती है। जिसमें आवश्यकता से अधिक व्यक्ति लगे हुए हैं। यदि इनमें से कुछ व्यक्तियों को खेती के कार्यों से अलग कर दिया जाता है तो उत्पादन में कोई अन्तर नहीं पड़ता हैं। इसका अर्थ यही है कि इस प्रकार के व्यक्तियो द्धारा उत्पादन में कोई योगदान नहीं दिया जाता है। ऐसे व्यक्ति प्रच्छन्न बेरोजगारी के अर्न्तगत आते है।
- जब किसी व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं मिलता है या पूरा कार्य नहीं मिलता है। तो इसे अल्प रोजगार कहते हैं। जैसे एक इंजीनियरिग की डिग्री प्राप्त व्यक्ति

लिपिक या श्रमिक के रूप में कार्य करता हैं तो इसे अल्प रोजगार कहते हैं ऐसे व्यक्ति कार्य करता हुआ दिखायी तो देता परन्तु इसकी पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं होता है।

- जब व्यक्ति कार्य के योग्य है और वह कार्य करना चाहते है लेकिन उन्हें कार्य नहीं मिलता है तो ऐसी स्थिति को खुली बेरोजगारी कहते है। भारत में इस प्रकार की बेरोजगारी व्याप्त है यहाँ लाखों व्यक्ति ऐसे है जो शिक्षित है तकनीकी योग्यता प्राप्त है लेकिन उनको काम करने का अवसर नहीं मिल रहा हैं।
- मौसमी बेरोजगारी इस प्रकार की बेरोजगारी वर्ष के कुछ समय में ही होती है भारत में यह कृषि में पायी जाती हैं। जब खेती की जुताई एवं बुआई का मौसम होता है तो कृषि उद्योग में दिन रात कार्य होता है। इसी प्रकार जब कटाई का समय होता है तो फिर कृषि में कार्य होता है। लेकिन बीच के समय में इतना काम नहीं होता है। अत; इस प्रकार के समय में श्रमिकों को काम नहीं मिलता है। इस बेरोजगारी को मौसमी बेरोजगारी कहते है।
- शिक्षित बेरोजगारी खुली बेरोजगारी का ही एक रूप है। इसमें शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार होते हैं। शिक्षित बेरोजगारी में कुछ व्यक्ति अल्प रोजगार की स्थिति में होते है। जिन्हें रोजगार मिला हुआ होता है लेकिन वह उनकी शिक्षा के अनुरूप नहीं होता है। भारत में भी इस प्रकार की बेरोजगारी भी पायी जाती है।
- बेरोजगारी का स्वरूप देश के शहरी तथा ग्रामीण दोनो क्षेत्रो में विद्यमान है। शहरी बेरोजगारी दो प्रकार की है प्रथम शिक्षित लोगो की बेरोजगारी तथा द्वितीय औद्योगिक मजदूरों और शारीरिक श्रम करने वाले लोगो की बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी मुख्य रुप से तीन प्रकार की है प्रथम मौसमी बेरोजगारी, द्वितीय प्रच्छन्न या छिपी हुई बेरोजगारी और तृतीय प्रत्यक्ष बेरोजगारी।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार बेराजगारी के तीन परिकल्पनाएँ की जाती है-

1. **चिरकालिक बेरोजगारी या सामान्य स्थिति:** यह बेरोजगार व्यक्तियो की संख्या के रुप में माप है जो पूरे वर्ष के दौरान बेरोजगार हो। इसी कारण इस बेरोजगारी को खुली बेरोजगारी के रुप में जाना जाता है।
2. **साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी:** इसे भी व्यक्तियों की संख्या के आधार पर मापन किया जाता है अर्थात ऐसे व्यक्ति जिन्हे सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान एक घंटे का भी रोजगार नहीं मिला हो।
3. **दैनिक स्थिति बेरोजगारी:** इसे व्यक्ति दिनों या व्यक्ति वर्षो के रुप में मापन करते है। अर्थात वे व्यक्ति जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान या एक दिन या कुछ दिन रोजगार प्राप्त न हुआ हो। यह बेरोजगारी की व्यापक माप है। जिसमें सामान्य स्थिति बेरोजगारी और अल्परोजगार दोनो शामिल होते है।

9.5 बेरोजगारी के कारण

देश में बेरोजगारी के लिए बहुत से कारण जिम्मेंवार होते है इन्हें हम आन्तरिक और बाहरी कारणों में बाँट सकते आन्तरिक कारण श्रमिकों के स्वभाव, शारीरिक, मानसिक व नैतिक कमियों से सम्बन्धित होते है। प्राय; एक व्यक्ति अपनी इच्छा के बावजूद अपनी शारीरिक मानसिक कमजोरियों दोषपूर्ण शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि के कारण काम पाने में असमर्थ रहता है। इन परिस्थितियों में बेरोजगारी आन्तरिक कारणों का नतीजा होती है। बेरोजगारी के बाहरी कारण भी बहुत से होते हैं। श्रम बाजार में चक्रीय उतार चढ़ाव हो रहा है। मंदी के दिनों में व्यावसायिक क्रियायें एक न्यूनतम स्तर पर होती है और बेरोजगारी बढ़ती है। किन्तु दूसरी ओर तेजी के दौरान व्यावसायिक क्रियाओं का विस्तार होता है और इस समय बेकारी की मात्रा घटने लगती हैं। मंदी और तेजी की ऐसी अवधियॉ विभिन्न कारणों से होती है जिन्हें व्यापार चक्रों के सिद्धान्तों द्धारा स्पष्ट किया जाता हैं। उद्योग में विवेकीकरण की योजनाओं को अपनाया जाना बेरोजगारी को उत्पन्न करता है। इसके अलावा कुछ व्यवसाय व आर्थिक क्रियायें स्वभाव से मौसमी होती है। जैसे बिल्डिग निर्माण या कृषि। अन्त में आकस्मिक श्रम पद्धति भी जिसके अर्न्तगत श्रमिकों को कुछ कार्यों पर सिर्फ व्यवसायिक व्यवस्था के समय ही स्थाई रूप में लगाया जाता है दूसरे समय ऐसे श्रमिकों के लिए बेकारी पैदा कर दी जाती है।

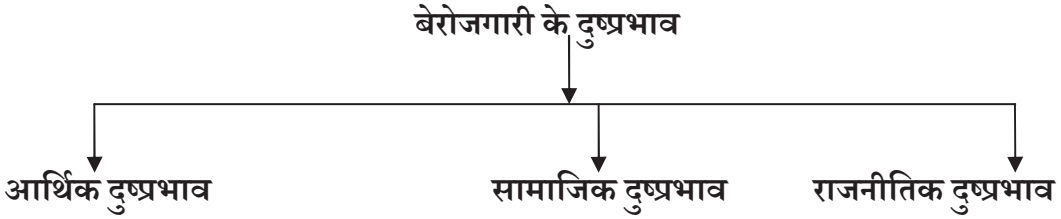

मोटे तौर से बेरोजगारी के कारणों की व्याख्या के संबंन्ध में **तीन सैद्धान्तिक विचार धाराएँ** पायी जाती है।

1. **पहली विचारधारा** के मुताबिक बेकारी निर्बाध सिद्धान्त अर्थात स्वतंत्र प्रतियोगिता तथा स्वतंत्र व्यापार से डिग जाने का दण्ड होती है।
2. **दूसरी विचारधारा** के मुताबिक बेकारी व्यापार चक्रों के कारणों की जटिलताओं के कारण पैदा होती है। इसे चक्रीये बेकारी के रूप में देखा जाता है।
3. **तीसरी विचारधारा** के मुताबिक बेकारी प्रभावी मांग की कमी उपभोग पर किये जाने वाले पूँजीगत व्यय की कमी या निवेश की कमी या दोनों ही के कारण पैदा होती है।

बेरोजगारी के दोष बहुत अधिक है। राष्ट्र के लिए बेरोजगारी समस्या एक गम्भीर समस्या है क्योंकि खाली मस्तिष्क शैतान का घर हैं। काल मार्क्स के मुताबिक कार्य मानवीय अस्तित्व के लिए मूल शर्त है। व्यापक बेरोजगारी एक ऐसी बुराई है जो गम्भीर आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक खतरों से भरी है। तकलीफ निराशा और असंतोष पैदा करके बेरोजगारी राजनीति और सामाजिक जीवन को कडुवा बनाती है तथा सुरक्षा को ठेस पहुंचाती है। पेट की आग को बुझाने के लिए व्यक्ति कुछ भी कार्य कर सकता है। यदि उनको सही रूप से व्यवसाय नहीं मिलेगा जिससे वह अपने अनुकूल जीवन यापन कर सके तो निश्चित रूप से ही वह गलत कार्यों को करने के लिए प्रेरित होगें जिन्हें करना वह स्वंय भी उचित नहीं समझते किन्तु करना पड़ता है क्योंकि मरता क्या न करता।

बेरोजगारी से व्यक्ति में यह भावना आती है कि वह समाज के लिए गैर जरूरी है। वह परिवार में अपने को बोझ समझने लगता है। इसी कारण से वह अपराधी तक बन सकता है। किसी देश में निष्क्रिय मानव व्यक्ति का मतलब उत्पादन एवं आय का उस स्तर से नीचा होना है जिस पर कि वे सभी श्रमिकों को काम पर नहीं लगा सकते है। मानवीय दृष्टिकोण से इस बेरोजगारी का गम्भीर परिणाम व्यक्ति का स्वंय का नुकसान है। इसमें धीरे-धीरे व्यक्ति की कार्य क्षमता ह्रास होता है। उसकी इस शक्ति को यदि उचित रूप में काम में लिया जाये तो यह राष्ट्र के लिए उन्नति समृद्धि एवं सम्पन्नता का साधन बन सकती है।

जिस देश में बेरोजगारी होती है उस देश में नयी-नयी सामाजिक समस्यायें जैसे चोरी, डकैती, बेईमानी, अनैतिकता, शराबखोरी, जुआ-बाजी आदि पैदा हो जाती है। जिससे सामाजिक सुरक्षा को खतरा पैदा हो जाता है शांति और सुरक्षा की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिस पर सरकार को भारी व्यय करना पड़ता है। वर्तमान आतंकवाद की समस्या भी मेंरी समझ में किसी न किसी रूप में बेरोजगारी का ही एक परिणाम है।

बेरोजगारी की समस्या देश में राजनीतिक अस्थिरता पैदा करती है। क्योंकि बेकार व्यक्ति हर समय राजनीति उखाड़-पछाड़ में लगे रहते हैं। आज राजनीति से जुड़े हुए बहुत व्यक्ति ऐसे हैं जो किसी न किसी रूप में समाज में अपराधी रहे हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि दबाव और शक्ति से कानून को अपने हाथ में लेना चाहते हैं।

देश में व्याप्त दीर्घस्थायी बेरोजगारी और अल्प-रोजगार की समस्या के लिए निम्न घटक उत्तरदायी है-जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि दर फलस्वरूप श्रम शक्ति में तीव्र वृद्धि दर-जनांकिकीय दृष्टि से हम इतनी तेजी से आगे बढ़ रहे है कि प्रगति और परिवर्तनों के बावजूद हम आर्थिक दृश्टि से ठहरे हुए जान पड़ते है। नियोजन काल में राज्य की जनसंख्या तथा इसके फलस्वरूप श्रम-शक्ति कई गुना बढ गयी है। बढ़ती हुई श्रम-शक्ति के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर उपलब्ध न कराये जाने के कारण बेराजगारी की मात्रा बढ़ती गई है।

1. **अनुप्रयुक्त शिक्षा प्रणाली एवं कार्य के प्रति संकुचित दृष्टिकोण-** देश में प्रचलित शिक्षा प्रणाली के कारण शिक्षित युवक नौकरी पाने की इच्छा रखते हुए भी शारीरिक श्रम वाले रोजगार से दूर भागते है। सरकार अभी तक शिक्षा प्रणाली को आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं ढाल सकी है परिणामस्वरूप करोड़ों शिक्षित युवक और युवतियां रोजगार की तालाश में घूमते-फिर रहे है।
2. **कुटीर उद्योगों का पतन-** श्रम गहन होने के कारण इन उद्योगों का रोजगार की दृष्टि से विशेष महत्व है। आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत पूँजी गहन बड़े उद्योगों की स्थापना पर विशेष बल दिये जाने के कारण कुटीर और लघु उद्योगों का वांछनीय विकास नहीं हो पाया है। फलतः राज्य में गरीबी और बेरोजगारी की समस्या निरन्तर गम्भीर होती चली गई है।
3. **कृषि की मानसून पर अधिक निर्भरता एवं सिचाई साधनों का अभाव-** निर्धनता के उन्मूलन, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में स्थायित्व तथा घरेलू बाजार के विस्तार की दृश्टि से कृषि के महत्व को जानते हुए तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार की आवश्यकता बार-बार स्वीकार करते हुए भी नियोजन काल में कृषि क्षेत्र को कुल निवेश योग्य साधनों में से उचित हिस्सा नहीं दिया गया है। फलतः गांवों से शहरों की ओर श्रम शक्ति के पलायन की प्रवृत्ति जोर पकड़ती गई तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अदृश्य बेरोजगारी की समस्या गहन होती चली गई।
4. **उत्पादन साधनों का असमान वितरण-** भूमि और पूँजी जैसे उत्पादन साधनों का अत्यधिक असमान वितरण, आर्थिक विषमता और बेरोजगारी की समस्या के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरादायी है। 20 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या खेतिहर श्रमिकों के रूप में निर्धनता, शोषण, कुपोषण और अल्प रोजगार से ग्रस्त है। उत्तराखण्ड में 70 प्रतिशत किसानों की जोतें अनार्थिक आकार (एक हेक्टेयर से कम) की हैं जिन्हें सम्पूर्ण वर्ष में 5-6 महीने निष्क्रिय रहना पड़ता है। दूसरी ओर बहुत थोड़ी पूँजी वाले इस राज्य में उपलब्ध पूँजी गिने-चुने हाथों में केन्द्रित है। साधन सम्पन्न व्यक्तियों की स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण विभिन्न व्यवसायों में श्रम की बचत करने वाल गहन तकनीक का उपयोग किया जा रहा है।
5. अविकसित सामाजिक दशाएं- देश की दोषपूर्ण सामाजिक संस्थाएं (जाति-प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली, छुआछूत, बाल-विवाह, प्रदा पर्था आदि) बेरोजगारी की समस्या को उग्र बनाने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायक हुई है। जनसाधारण की निरक्षरता, अन्धविश्वास और भाग्यवादिता ने भी युवकों को निष्क्रिय बनाये रखने में सहयोग दिया है। श्रम शक्ति का असन्तुलित व्यावसायिक वितरण, व्यावसायिक शिक्षण एवं शिक्षण सुविधाओं की अपर्याप्तता, श्रम शक्ति में गतिशीलता का अभाव आदि कारणों ने भी बेरोजगारी और बेरोजगार की समस्या को गम्भीर बना दिया है।
6. **पर्याप्त तकनीकी प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव** - आज अधिकांश शिक्षा ऐसी दी जाती है कि केवल सैद्धान्तिक ज्ञान तक ही सीमित है और जिसका जीवन में अधिक

उपयोग नहीं है। बी0ए0, एम0ए0 करने के बाद भी लड़को को यह भी पता नही हो पता है कि अब उसे क्या करना है। तकनीकी शिक्षा के पूर्ण अभाव के कारण वह अपना कोई छोटा-मोटा व्यवसाय भी नहीं कर सकता।

7. **पूँजी निर्माण की धीमी गति-** बेरोजगारी में वृद्धि होने के कारण प्रतिव्यक्ति आय बहुत कम होती जा रही है, परिणामस्वरूप बचत एवं विनियोग की दर में भी कमी हो रही है। इससे पूँजी निर्माण की गति बहुत धीमी हो गयी है जिसका प्रभाव उद्योग, व्यापार एवं अन्य सेवाओं पर पड़ रहा है और उनका विस्तार नही हो पा रहा है। इस चक्र के प्रभाव से बेरोजगारी की संख्या में और अधिक वृद्धि हो रही है।
8. **स्वरोजगार के प्रति उपेक्षा -** देश में शिक्षित बेरोजगारी बढ़ने के मूल में यह कारण निहित है कि प्रत्येक युवा अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद नौकरी की तालाश में जुट जाता है। उसमें स्वयं का व्यवसाय करने की भावना का अभाव रहता है, परिणामस्वरूप बेरोजगारों की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि होती जा रही है।
9. **अन्य कारण-** बड़ी संख्या में शरणार्थी आगमन, समयबद्ध रोजगार नीति एवं कार्यक्रमों का अभाव, लघु एवं कुटीर उद्योगों का पतन और उनके पुर्नविकास की धीमी गति और आर्थिक सुधारों नीतियों का रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव।

   बेरोजगारी के खराब असर बराबर बढ़ते जा रहे हैं। इसीलिए विलयम बेवरिज ने लिखा है कि बेरोजगार रखने के स्थान पर लोगों को गड्ढे खुदवाकार वापस भरने के लिए नियुक्त करना ज्यादा अच्छा है।

   सार रुप में हमारे देश की बेरोजगारी का कारण उसकी संरचनात्मक अवस्था में निहित है। जो कृषि के अल्प विकास उद्योगो का असंतुलित विकास सेवा क्षेत्र के संकुचित आकार के श्रम की माँग में है जो और रोजगार के अवसर सीमित कर देते है। लोग विद्यमान मजदूरी दर पर कार्य करने को तत्पर है परन्तु फिर भी कार्य की अनुउपलब्धता के कारण वह बेरोजगार है।

9.6 भारत में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण

देश में रोजगार और बेरोजगारी के संबध में अनुमान लगाने के लिए अधिकांशत वर्तमान दैनिक स्थिति के आधार का प्रयोग किया गया है। दैनिक स्थिति पर आधारित अनुमान बेरोजगारी की समेंकित दर है जिसमें समीक्षा वर्ष के दौरान एक दिन के आधार पर बेरोजगारी का औसत स्तर का उल्लेख किया गया है। दैनिक स्थिति के आधार पर रोजगार और बेरोजगारी के अनुमान दर्शाते है जैसा कि तालिका 9.1 में दिया गया है कि वर्ष 1983-1993 के काल में लगभग 74.50 मिलियन कार्य के अवसरों का सृजन हुआ वही वर्ष में 1993 से 2004-05 में लगभग 71 मिलियन कार्य के अवसरों का सृजन हुआ वह भी 1999-2000 से 2004-05 में 46 मिलियन कार्य के अवसरो का

तालिका 9.1 रोजगार और बेरोजगारी मिलियन मानव वर्षो में (वर्ष 1982 से 2004-05)
(दैनिक स्थिति के आधार के अनुसार(

	मिलियन में			वृद्धि प्रतिवर्ष (प्रतिशत)		
	1982	1993-94	2004-05	1983 से 1993-94	1993-94 1999-00	1999-00 2004-05
जनसंख्या	718.10	893.68	1092.83	2.11	1.98	1.69
श्रमबल	263.82	334.20	419.65	2.28	1.47	2.84
कार्यबल	239.49	313.93	384.91	2.61	1.25	2.62
बेरोजगारी दर (प्रतिशत)	9.22	6.06	8.28			
बेरोजगारो की संख्या	24.34	20.27	34.74			

स्रोतराष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण एवं योजना आयोग :

ग्राफ संख्या 9.1 रोजगार और बेरोजगारों की संख्या (वर्ष 1982 से 2004-05)

दैनिक स्थिति के आधार पर

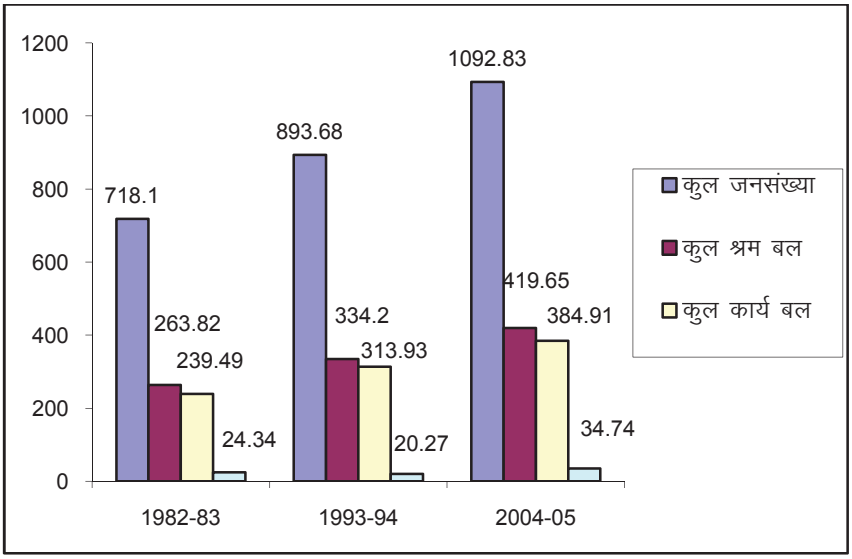

सृजन हुआ। रोजगार में वृद्धि इन्हीं वर्षो मे 1.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़कर 2.62 प्रतिशत प्रतिवर्ष प्राप्त हुई। परन्तु बेरोजगारी दर 1983 के 9.22 प्रतिशत से गिरकर 1993-94 में 6.06 प्रतिशत हुई थी। वह 2004-05 में बढकर 8.28 प्रतिशत हो गई परन्तु बेरोजगारों की संख्या इन्हीं वर्षो में 24.34 मिलियन से गिरकर 20.27 मिलियन थी वह भी बढ़कर 34.74 मिलियन हो गई जबकि जनसंख्या

वृद्धि दर 1983 से 1993-94 के दौरान 2.11 प्रतिशत से घटकर 1993-2000 में 1.98 प्रतिशत एवं 1999-2004-05 में 1.69 प्रतिशत ही रह गई।

तालिका 9.2 क्षेत्रीय रोजगार में हिस्सेदारी (वर्ष 1983 से 2004-05)
(वर्तमान दैनिक स्थिति के आधार पर मिलियनो में)

क्षेत्र	1983		1993-94		2004-05	
कृषि	65.42	207.1	61.03	239.5	52.06	258.8
खनन एवं उत्खनन	0.66	1.8	0.78	2.7	0.63	2.5
विनिर्माण	11.27	32.3	11.10	39.8	12.90	55.9
बिजली, जल आदि	0.34	0.8	0.41	1.4	0.35	1.2
निर्माण	2.56	6.8	3.63	12.1	5.57	26.0
व्यापार, होटल और रेस्तरां	6.98	19.1	8.26	28.4	12.62	49.6
परिवहन, भण्डार और संचार	2.88	7.5	3.22	10.7	4.61	18.6
वित्त, बीमा, स्थावर संपदा और कारोबारी सेवाएँ	0.78	1.98	1.08	3.9	2.00	5.2
सामुदायिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ	9.10	14.72	10.50	35.9	9.24	40.2
कुल	100.00	302.3	100.00	374.3	100.00	458.0

स्रोत राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण एवं योजना आयोग :

एक अन्य विश्लेषण तालिका 9.2 के आधार पर करते है कि वर्ष 1993 से पहले रोजगार में प्राथमिक क्षेत्र की जो सर्वोच्च स्थित थी वह लगातार बनी हुई है, इनके हिस्सेदारी में बहुत ही नाममात्र का परिवर्तन हुआ है कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी जो 1983 में 65.42 प्रतिशत थी वह 1993-94 में 61.03 प्रतिशत और आर्थिक सुधार काल में 2004-05 में 52.06 प्रतिशत पहुँच गई परन्तु इन्हीं वर्षो में संख्या 239.8 मिलियन से बढ़कर 258.8 मिलियन हो गई अर्थात हिस्सेदारी में 8.97 प्रतिशत की कमी के साथ संख्या में 21.3 मिलियन की वृद्धि हुई। जबकि खनन एवं उत्खनन सेवाओं में आर्थिक सुधारों के काल (1993-2005) में हिस्सेदारी में 0.15 प्रतिशत और संख्या में 0.2 मिलियन की कमी हुई। इसी प्रकार बिजली जल आदि के क्षेत्र में भी 0.06 प्रतिशत के साथ 0.2 मिलियन की कमी हुई। बल्कि सामुदायिक सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ की हिस्सेदारी 1.26 प्रतिशत की कमी के साथ संख्या में 4.3 मिलियन की वृद्धि हुई।

9.7 राज्यों में रोजगार का परिदृश्य

राज्यों में रोजगार का परिदृश्य:आर्थिक सुधार प्रक्रिया के इस काल में राज्यों के संन्दर्भ में विश्लेषण के लिए तथ्यों को तालिका 9.3 एवं 9.4 में दिया गया है इन विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त

तालिका 9.3 राज्यों में वार्षिक रोजगार वृद्धि वर्ष)1993-94 से 2004-05)प्रतिशत में

क्रम	राज्य	रोजगार में हिस्सा	रोजगार वृद्धिदर		
		1993-94	1993-94 से 1999-2000	1999-00 से 2004-05	1993-94 से 2004-05
1	पंजाब	2.3	2.6	2.8	2.7
2	महाराष्ट्र	10.9	1.0	3.4	2.1
3	हरियाणा	1.9	1.2	5.6	3.1
4	गुजरात	5.5	2.3	2.6	2.4
5	तमिलनाडु	8.1	0.0	1.7	0.8
	औसत उच्च पांच	28.6	1.4	3.2	2.2
6	केरल	3.3	1.1	1.3	1.2
7	कर्नाटक	6.3	0.8	3.1	1.8
8	आन्ध्रप्रदेश	10.3	0.2	1.9	1.0
9	पं0 बंगाल	7.6	0.8	3.1	1.8
	औसत मध्यम दर	27.6	0.8	2.4	1.5
10	मध्य प्रदेश	9.1	1.1	2.7	1.8
11	राजस्थान	6.3	0.8	3.0	1.8
12	उ0 प्र0	15.5	1.1	3.8	2.3
13	उड़ीसा	4.1	0.8	2.5	1.6
14	बिहार	9.0	2.0	2.2	2.1
	औसत के नीचे के पांच	43.8	1.1	2.8	1.9
	कुल	100.00	1.0	2.8	1.8

स्रोत राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण :

होते है- सम्पन्न राज्य जिनमें पंजाब महाराष्ट्र हरियाणा गुजरात एवं तमिलनाडु शामिल किया गया 1993-94 में रोजगार में हिस्सा 28.6 प्रतिशत था। इन राज्यों में वार्षिक रोजगार में आर्थिक सुधारो के प्राम्भिक वर्षो (1993-94 से 1999-2000) में अत्यंत मंद वृद्धि दर्ज की गई बल्कि तमिलनाडु जैसे राज्य में जिसका कुल रोजगार में हिस्सा 8.1 प्रतिशत था। रोजगार में वर्षिक वृद्वि दर शून्य थी। और महाराष्ट्र में जिसका कुल रोजगार में हिस्सा 10.9 प्रतिशत था, रोजगार में वार्षिक वृद्धि दर मात्र

1 प्रतिशत थी। बाद के वर्षो में इनमें सुधार हुआ परन्तु तमिलनाडु में अभी भी यह मात्र 1.7 प्रतिशत वार्षिक थी।

1.दूसरी तरफ तालिका 9.4 कें विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि आर्थिक सुधारो के इस समय (1993-94 से 2004-05) में सम्पन्न राज्यों में विभिन्न क्षेत्रो की रोजगार की हिस्सेदारी में आमूल चूल परिवर्तन हुआ। तमिलनाडु राज्य में 1993-94 में कृषि क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी 52.6 प्रतिशत से घटकर 2004-05 में 41.2 प्रतिशत पहुँच गई अर्थात 11.4 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई। वही पंजाब राज्य में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी 56.4 प्रतिशत से घटकर 47.4 प्रतिशत रह गई।

तालिका 9.4 राज्यों में क्षेत्रवार रोजगार की हिस्सेदारी (वर्ष 1993-94 से 2004-05)

राज्य	1993-94			2004-05		
	कृषि	विनिर्माण	सेवाएँ	कृषि	विनिर्माण	सेवाएँ
बिहार	76.7	4.9	15.6	68.9	7.2	18.0
उड़ीसा	73.7	7.5	15.0	62.3	11.4	19.1
उ0 प्र0	68.4	8.7	20.1	60.6	12.3	20.9
राजस्थान	69.2	6.2	15.3	61.3	9.1	18.2
म0 प्र0	77.2	5.5	13.4	69.1	7.5	18.2
औसत	73.1	6.6	15.9	64.4	9.5	18.9
प0 बंगाल	48.8	19.9	27.1	45.7	17.5	31.6
अ0 प्र0	67.1	9.2	19.6	58.4	11.0	24.8
कर्नाटक	65.1	10.7	19.7	60.8	10.6	23.8
केरल	48.3	14.3	29.6	35.5	14.4	37.7
औसत	57.3	13.5	24.0	50.1	13.4	29.5
तमिलनाडु	52.6	18.0	24.4	41.2	21.1	30.9
गुजरात	58.9	15.2	21.4	54.8	17.1	23.1
हरियाणा	56.9	9.1	27.7	50.0	13.5	27.7
महाराष्ट्र	59.4	11.3	25.1	53.1	12.5	28.7
पंजाब	56.4	10.3	28.1	47.4	13.5	29.8
औसत	56.8	12.8	25.4	49.3	15.5	28.0
कुल	64.5	10.5	20.7	57.0	12.4	24.1

स्रोत राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण:

2.मध्यम दर्जे में जिन राज्यों को रखा गया है उनमें केरल कर्नाटक आन्ध्र प्रदेश और पं0 बंगाल को शामिल किया गया है। इनका कुल रोजगार में हिस्सा 1993-94 में 27.6 प्रतिशत था जो आगे सुधारो के काल में सम्पन्न राज्यों से अधिक हो गई। केरल को छोड़कर अन्य तीनो में किसी राज्य की सुधार प्रक्रिया के प्रारम्भिक वर्ष (1993-94 से 1999-2000) में रोजगार में वृद्धि दर पूर्णांक में नहीं थी। आन्ध्र प्रदेश में तो यह 0.2 प्रतिशत वार्षिक थी, बाद में कर्नाटक एवं पं0 बंगाल में सुधार के

परिणाम स्वरुप चारों राज्यों के सन्दर्भ में (1993-94 से 2004-05) 1.5 प्रतिशत वार्षिक रही। इसका विशेष कारण यह दिखा कि औद्योगिक क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी जो 1993-94 में चारों राज्यों के सन्दर्भ में 13.5 प्रतिशत थी, से घटकर 13.4 प्रतिशत पर ही रह गई। जबकि इन्हीं राज्यां के सन्दर्भ में इसी अवधि में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी 57.3 से घटकर 50.1 प्रतिशत रह गई। जैसा कि अनुमापन यही रहता है कि यदि कृषि क्षेत्र में रोजगार की हिस्सेदारी घटती है तो सेवा क्षेत्र के साथ ही औद्योगिक क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी निश्चित रुप से बढ़ेगी।

3.पिछडे राज्य जिनमें बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, राज्यस्थान और मध्य प्रदेश को लिया गया है इनकी रोजगार में हिस्सेदारी 1993-94 में 43.8 प्रतिशत थी। आर्थिक सुधारां के इस दौर में रोजगार में विशेष वृद्धि नहीं प्रदर्शित किया 1993-94 से 1999-2000 के काल में यह सम्मिलित रुप में 1.0 प्रतिशत वार्षिक थी बाद के वर्षो में मामूली वृद्धि के परिणाम स्वरुप समग्र रुप से 1993-94 से 2004-05 की अवधि में 1.8 प्रतिशत वार्षिक हो गई। इसका कारण इन राज्यों में 1993-94 में कृषि क्षेत्र की रोजगार की हिस्सेदारी 73.1 प्रतिशत थी जो 8.7 प्रतिशत घटकर 2004-05 में 64.4 प्रतिशत पर पहुॅच गई। विशेष रुप में उड़ीसा की हिस्सेदारी उन्हीं वर्षो में कृषि क्षेत्र में 73.7 प्रतिशत से कम होकर 62.3 प्रतिशत पर पहुँच गई और उत्तर प्रदेश की 68.4 प्रतिशत से घटकर 60.6 प्रतिशत हो गई।

तालिका 9.5 संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर (वर्ष 1983 से 2004)

	1983-1994	**1994-2004**
सार्वजनिक क्षेत्र	1.53	-0.70
निजी क्षेत्र	0.44	0.58
कुल संगठित क्षेत्र	1.20	-0.31

स्रोत लोक उद्यम सर्वेक्षण वर्ष :2008-09

दूसरी तरफ संगठित क्षेत्र की कुल रोजगार में हिस्सेदारी समग्र रुप से 1994 में 7 प्रतिशत थी, वह घटकर 2005 में 5.5 प्रतिशत रह गई। सभी राज्यों की संगठित क्षेत्र में हिस्सेदारी घटी।

संगठित क्षेत्र के संन्दर्भ में बडा आश्चर्यजनक जानकारी तालिका 6.8 से मिलती है कि 1983 से 94 के समय में सार्वजनिक क्षेत्र की रोजगार वृद्धि दर जो 1.53 प्रतिशत वार्षिक थी वह आर्थिक सुधारो के काल में (1994-2004) ऋणात्मक रुप में 0.70 प्रतिशत वार्षिक पर पहुँच गई अर्थात आर्थिक सुधारों के कारण सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में कटौती हो गई। इसी प्रकार निजी क्षेत्र में 1983 से 94 के काल में 0.44 प्रतिशत वार्षिक रोजगार वृद्धि दर बढ़कर 1994-2004 के समय में 0.58 प्रतिशत वार्षिक पर पहुँच गई। जबकि सम्मिलित रुप में संगठित क्षेत्र की रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 1.20 से घटकर सुधार काल में ऋणात्मक रुप में -0.31 प्रतिशत वार्षिक दर्ज हुई।

9.8 बेरोजगारी दूर करने के सुझाव

तेजी से बढ़ रही बेरोजगारी के प्रति अर्थशास्त्री, राजनेता, चिन्तक और विद्वान सभी चिन्तित है। बेरोजगारी की इस गम्भीर समस्या ने अनेक ऐसी समस्याओं को जन्म दिया है जिनका समाधान खोज पाना अत्यधिक दुश्कर हो गया है। यदि समय रहते सुरसा की भांति मुँह बाये खड़ी बेरोजगारी के समाधान की दिशा में सार्थक प्रयास नही किये जा सके तो देश एवं समाज का विघटन अवश्यम्भावी है। बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए कुछ सुझाव निम्नानुसार हैः-

1. **तेजी से बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण-** बेरोजगारी की गम्भीर समस्या के हल के लिए सर्वप्रथम राज्य में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या की गति को नियन्त्रित किया जाना अति आवश्यक है। जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण किये बिना बेरोजगारी की समस्या का समाधान सम्भव नही है।
2. **छोटे उद्योग धन्धो का विकास-** बेरोजगारी दूर करने के लिए छोटे-छोटे उद्योग धन्धों का विकास किया जाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक यह होगा कि सरकार द्वारा बेरोजगार युवकों को अत्यधिक सुविधाजनक शर्तों पर ऋण उपलब्ध करायें जायें और बेरोजगारों द्वारा स्थापित उद्योगों के उत्पादन की बिक्री की समुचित व्यवस्था की जाये।
3. **कृषि से सम्बद्ध उद्योगों का विकास-** देश की अर्थव्यवस्था में कृषि को प्रधानता प्राप्त है किन्तु अभी भी कृषि व्यवसाय मात्र ऋतुपरक या मौसमी रोजगार उपलब्ध कराता है। वर्ष के मात्र छः-सात माह के लिए कृषक और कृषि श्रमिक के पास रोजगार की व्यवस्था रहती है। शेष समय में कृषक और श्रमिक बेरोजगार रहते है, अतः इस खाली समय के उपयोग के लिए कृषि से सम्बद्ध सहायक उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिए; जैसे- दूध का व्यवसाय, मुर्गीपालन, पशुपालन आदि।
4. **ग्रामों में रोजगार उन्मुख योजनाओं का क्रियान्वयन-** देश मे सर्वाधिक बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्रों में है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की सम्भावनायें भी बहुत अधिक है। सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ऐसी योजनाएं तैयार कराना चाहिए जो ग्रामीणों को रोजगार उपलब्ध कराने में सहायाक सिद्ध हो सकें। इन योजनाओं का क्रियान्वयन भी अत्यधिक प्रभावी ढंग से किया जाना चाहिए।
5. **रोजगार उन्मुख शिक्षा प्रणाली-** देश की प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली पूरी तरह सैद्धान्तिक है। यह शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को रोजगार उपलब्ध कराने में सहायता नहीं करती। अतः सरकार को रोजगारोन्मुख शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था करनी चाहिए, ताकि युवक स्कूल और कॉलेज की शिक्षा पूर्ण होने के बाद स्वयं का कोई व्यवसाय या रोजगार स्थापित करने में समर्थ व सक्षम हो सके।
6. **उद्योगों की पूर्ण क्षमता का उपयोग-** देश में यद्यपि उद्योग तुलनात्मक रूप से कम लगे हुए है तथा उनका पूर्ण दोहन भी नहीं हो पा रहा है और आवश्यकता इस बात की है कि

सिर्फ उद्योगों की संख्या को ही न बढ़ाया जाये बल्कि उनकी उत्पादन क्षमता का भी पूर्ण उपयोग होना चाहिए।

7. **विनियोग ढ़ांचे में परिवर्तन-** आधारिक संरचना को मजबूत बनाकर विनियोग को प्रेरित किया जा सकता है जिससे रोजगार में बढ़ोत्तरी होगी तथा अनिवार्य उपभोक्ता वस्तु उद्योगों का विस्तार भी होगा।
8. **तकनीकी को प्रोत्साहन-** नई तकनीकी का इस प्रकार से प्रयोग होना चाहिए जिससे रोजगार पर कोई विशेष फर्क न पड़ते हुए उत्पादन क्षमता में बढ़ोत्तरी हो।
9. **जनशक्ति नियोजन-** देश में बेरोजगारी की स्थिति को देखते हुए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि जनशक्ति का वैज्ञानिक ढंग से नियोजन होना चाहिए। जिससे जनशक्ति का गुणात्मक पक्ष मजबूत होगा और इसके लिए भौतिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक तथा संगठनात्मक पहलुओं स्वस्थ आधारों पर विकसित किया जाये। जनशक्ति का व्यवसाय वितरण, व्यवसायिक ढ़ाचा, रोजगार की सम्भावनाओं की स्थिति तथा जन-वृद्धि में होने वाले परिवर्तन आदि के बारे में विस्तृत एंव पूर्ण सूचनायें एकत्रित की जाये।
10. **अन्य सुझाव-** भारत सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय श्रम ने बेरोजगारी की समस्या के समाधान हेतु अनेक सुझाव दिये है; जैसे- देश में रोजगार के लिए एक राष्ट्रीय नीति सुनिश्चित की जाये, अखिल भारतीय स्तर पर मानव शक्ति सेवा का गठन किया जाये, शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन किये जाये और उसे रोजगारोन्मुख बनाया जाये, औद्योगिक सेवाओं को सुदृढ़ता प्रदान की जाये तथा देश के प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड में कम से कम एक रोजगार कार्यालय की स्थापना की जाये।

    उत्पादक गतिविधियों की पुर्नसंरचना द्वारा उत्पादन में वृद्धि लाकर सरकार द्वारा रोजगार सृजन की प्रक्रिया तो जारी है ही, किन्तु साथ ही सरकार प्रत्यक्ष रूप से युवाओं एवं अन्य बेरोजगारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाने के लिए विशेष कार्यक्रम भी चला रही है।

9.9 बेरोजगारी निवारण के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार नीति

बेरोजगारी एक ऐसी आर्थिक एवं सामाजिक अभिशाप है, जिसके रहते कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता है। जैसेकि संविधान में नागरिको के लिए उचित रोजगार की व्यवस्था के मूलभूत दायित्व को इस प्रकार व्यक्त किया हैं-''राज्य अपनी नीति को इस प्रकार निर्देशित करेगा कि जिससे समस्त पुरूषों एवं स्त्रीयों के लिए जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन, समान कार्य के समान वेतन तथा आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर प्रत्येक के लिए कार्य करने और शिक्षा प्राप्त करने तथा बेकारी, वृद्धावस्था बीमारी एवं अयोग्यता की दिशा में सार्वजनिक सहायता प्राप्त करने के अधिकार की सुरक्षा के लिए प्रभावपूर्ण व्यवस्था हो सके।''इस दायित्व को पूर्ण करने के लिए सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओ में जो कार्य किए उनका विवरण निम्नवत हैः-

पहली पंचवर्षीय योजना में रोजगार वृद्धि से सम्बन्धित 11 सूत्री कार्यक्रम को ध्यान में रखा गया। श्रम प्रधान, कुटीर उद्योग, सड़क, परिवहन व सिंचाई परियोजनाओं को प्राथमिकता दी गई।

द्वितीय योजना के विकास प्रारूप में श्रम शक्ति के अधिकतम उपयोग का सैद्धान्तिक पक्ष मुख्य रूप से ध्यान में रखा गया। भारी व आधारभूत उद्योगों के साथ लघु व ग्रामीण उद्योगों के विस्तार को महत्व दिया गया।

तीसरी योजना में रोजगार के अवसरों में वृद्वि हेतु ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण विनिर्माण कार्यों, जिला स्तर पर बेकारी दूर करने की योजना व बेरोगारी से पीड़ित विशिष्ट क्षेत्रों में विशेष कार्यक्रम चलाये जाने को प्राथमिकता दी गई। 1 करोड़ 40 लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार देने का लक्ष्य रखा गया था, जबकि श्रम -शक्ति में जुड़ने वाले नए लोगो की संख्या 1 करोड़ 70 लाख आंकी गई थी।

अनेक प्रयासों के बावजूद भी रोजगार प्रदान करने में असफलता ही रही। पुराने बेरोजगारो को क्या नये को भी रोजगार प्रदान नही किया जा सका। योजना के अन्त मे 120 लाख लोगो के लगभग बेरोजगार होने का अनुमान था।

चतुर्थ योजना में श्रम-गहन कार्यक्रमों पर काफी बल दिया गया जैसे सड़क, लघु सिचाई, भू-संरक्षण, क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम, सहकारिता, सिचाई, बाढ़ नियत्रंण, ग्रामीण विद्युतीकरण, लघु उद्योग, आवास, डेयरी फार्मिंग आदि। तथा यह अनुभव किया गया कि ऐसे कार्यक्रमों के लिए भौतिक पूँजी के अतिरिक्त मानवीय पूँजी एवं कौशल निर्माण में भारी विनियोग करना आवष्यक होगा।

पाँचवी योजना का प्रमुख लक्ष्य गरीबी उन्मूलन था। गरीबी का प्रमुख कारण भूमि सम्पति की असमानता एवं रोजगार में कमी बतलाया गया। अतः श्रम प्रधान परियोजनाओं एवं स्वरोजगार के अवसर उत्पन्न करनी वाली परियोजनाओ को विशेष महत्व दिया गया। कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसर में वृद्धि हेतु विशेष जोर दिया गया। साथ ही गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार अवसरों में वृद्धि हेतु विकास केन्द्रो के विस्तार की योजना सामने रखी गई।

छठी योजना में अल्प रोजगार की समस्या व दीर्घकालीन बेरोजगारी दूर करने के उपायों को प्राथमिकता दी गई। इस उद्देश्य हेतु रोजगार उन्मुख तीव्र आर्थिक वृद्धि की आवश्यकता का अनुभव किया गया। साथ ही अतिरिक्त रोजगार वृद्धि के लिए राष्ट्रीय युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना (टाइसेम), न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई0 आर0 डी0 पी0), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन0 आर0 ई0 पी0) तथा ग्रामीण भूमिहीन गारण्टी कार्यक्रम प्रमुख थे।

सातवीं योजना में उत्पादन रोजगार प्रदान करने के लिए विनियोग व उत्पादन की उपयुक्त संरचना को विकसित करने तथा समुचित तकनीक व संगठानात्मक आधार को निर्मित करने की प्राथमिकता दी गई। अतिरिक्त रोजगार के लिए (1) ग्रामीण क्षेत्रों में सिचाई सुविधाओं का विस्तार तथा पशुपालन, डेयरी एवं सामाजिक वानिकी को बढ़ावा दिया गया है। (2)लघु एवं कुटीर उद्योग का विकास, भवन निमार्ण, पर्यटन विकास एवं यातायात क्षेत्र के विकास के लिए विशेष व्यूह नीति बनाई गयी। (3) योजना में शिक्षित बेरोजगारी दूर करने के लिए अतिारिक्त रोजगार उपलब्ध करने के प्रयास किये गये। (4) योजना के अन्तिम वर्ष 1989 में ग्रामीण रोजगार हेतु जवाहर योजना प्रारम्भ की गई। इस योजना ''भोजन, काम तथा उत्पादकता '' को तीन केन्द्र-बिन्दु माना गया है।

आठवीं योजना में रोजगार पर प्रमुख बल दिया गया है। इस योजना के दौरान उचित विकास कार्यक्रमों से प्रत्येक नागरिक को काम करने के अधिकार की गारण्टी के प्रति वचनबद्धता को कार्यरूप प्रदान करने का प्रयास किया गया । आठवीं योजना में कुल 5.8 करोड़ व्यक्तियों तथा 1992-2002 के दशक में कुल 9.4 करोड़ व्यक्तियों को काम देने की आवश्यकता स्वीकार की गई। इस योजना की विशेष बात यह रही कि शहरी बेरोजगारी के सन्दर्भ में विशेष ध्यान था। इस योजना में 4 कारोड़ अतिरिक्त रोजगार सृजित किये गयें।

नवीं योजना में रोजगार वृद्धि हेतु त्वरित कार्यक्रमों में तीव्रता लाने का लक्ष्य रखा गया। योजना काल में 5 करोड़ अतिरिक्त लोगो को अतिरिक्त रोजगार प्रदान करने का लक्ष्य था।

दसवीं योजना का लक्ष्य रोजगार सृजन और समानता पर जोर देते हुए योजना अवधि के दौरान प्रगति रफ्तार में तेजी लाना था। इसमें योजना अवधि के दौरान सकल घरेलू उत्पाद में 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। जिसमें 5 करोड़ अतिरिक्त रोजगार और स्वरोजगार अवसरों का लक्ष्य भी शामिल था। दसवीं योजना में श्रम शक्ति के साथ लाभदायक उच्च गुणवत्ता वाला रोजगार मुहैया कराने पर जोर दिया गया। इस योजना की रणनीति में तेज विकास के उन क्षेत्रों पर जोर दिया गया, जो सूचना प्रौद्योगिकी, पर्यटन, वित्तीय सेवाए आदि की तरह उच्च गुणवत्तापूर्ण रोजगार अवसरों का सृजन करते है।

ग्यारहवीं योजना में रोजगार की गुणवत्ता में सुधार को सुनिश्चित करते हुए रोजगार के अवसरो में तेजी से विकास किया जायेगा। इसमें कुल रोजगारो में नियमित कर्मचारियों के हिस्से को बढ़ाने की आवश्यकता के साथ अनियमित रोजगार तदनुरूप कटौती किया जाना शामिल है। योजना में रोजगार सृजन नीति में अधोस्तरीय रोजगार में कटौती का पूर्वानुमान लगाते हुए कृषि क्षेत्र में लगे अतिरिक्त श्रम को उच्च मजदूरी वाले क्षेत्रों में और कृषि भिन्न क्षेत्र मे अधिक लाभकारी रोजगार मे लगाया जाएगा। विनिर्माण में रोजगार के 4 प्रतिशत पर बढ़ाने की आशा है। जबकि निर्माण और परिर्वतन तथा संचार में रोजगार के क्रमशः 8.2 प्रतिशत और 7.6 प्रतिशत बढ़ने की आशा है। योजना के दौरान कुल श्रम बल में 45 मिलियन की वृद्धि होने का पूर्वानुमान लगाया गया है जबकि 58

मिलियन रोजगार के अवसरों का सृजन किया जाएगा। फलस्वरूप बेरोजगारी की दर में 5 प्रतिशत से नीचे तक की गिरावट आएगी।

9.10 बेरोजगारी को दूर करने के सरकारी कार्यक्रम

काम के बदले अनाज कार्यक्रम- 14 नवम्बर 2004 को बस कार्यक्रम को देश के 150 सर्वाधिक पिछड़े जिलों में शुरू किया गया जिसका प्रमुख उद्देश्य पूरक रोजगार सृजन करना था। यह योजना लोगों को खाद्य सुरक्षा देने से भी सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक परिवार के कम से कम एक शारीरिक रूप से समर्थ व्यक्ति को 100 दिन का रोजगार दिया जा सकेगा। यह कार्यक्रम 100 प्रतिशत केन्द्रिय प्रायोजित योजना के रूप में कार्यन्वित किया जा रहा है।

1. **ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम** - यह कार्यक्रम 1995 में ग्रामीण क्षेत्रों तथा छोटे शहरों से शुरू किया गया। यह कार्यक्रम खादी और ग्रामोद्योग आयोग द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत 25 लाख रुपये की लागत वाली परियोजनाओं के लिए उद्यमी खादी ग्रामेद्योग और बैंक ऋणों प्राप्त मार्जिन धन सहायता का लाभ उठाकर ग्राम स्थापित कर सकते है।
2. **इन्दिरा आवास योजना** - यह एक केन्द्र प्रायोजित योजना है जिसका वित्तपोषण केन्द्र एवं राज्यों के बीच 75.25 (केन्द्र शासित प्रदेश100) के अनुपात में किया जाता है। 1999-2000 से प्रारम्भ की गयी इन्दिरा भवन आवास योजना गांवो में गरीबो के लिए मुफ्त में मकानो के निर्माण की प्रमुख योजना है।
3. **जवाहर ग्राम समृद्धि योजना** - इस योजना को अप्रैल 1999 से प्रारम्भ किया गया जो चली आ रही जवाहर रोजगार योजना को ही पुनर्गठित तथा कारगार स्वरूप प्रदान करके किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य अधिक मांग वाले ग्रामीण आधारभूत संरचना जिसमें ग्रामीण स्तर पर टिकाउ परिसम्पत्तियाँ सम्मिलित हैं, को विकसित करना है।
4. **रोजगार आश्वासनकार्यक्रम** - इस याजना का प्रारम्भ 2 अक्टूबर 1993 को सूखा प्रवण, रेगिस्तान बहुल तथा पर्वतीय क्षेत्रों के चुने गये 1772 पिछड़े ब्लाकों में किया गया था। इसी योजना को एकल मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के रूप में 1 अप्रैल 1999 को पुनः तैयार किया गया है।
5. **सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना** -इस योजना को पहले से चल रही जवाहर ग्रामीण समृद्धि योजना तथा एम्पलामेंट एश्योरेंस स्कीम को मिलाकर 25 सितम्बर 2001 को चलाया गया। सह अपने लक्ष्य स्वयं निर्धारित करने वाली याजना है। इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त खाद्यान सुरक्षा प्रदान करना है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाउ सामुदायिक सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थापना सृजित करना है।

6. **शहरी रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम**- शिक्षित बेरोजगारों को स्वरोजगार प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री रोजगार योजना ;च्डत्ल्द्ध को 1993-94 में शहरी क्षेत्रों में चलाया गया।
7. **स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना** - यह योजना दिसम्बर 1997 में लागू हुई जिसमें तीन शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों-नेहरू रोजगार, शहरी गरीबों के लिए बुनियादी सेवाये योजना तथा प्रधानमंत्री एकीकृत शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम को एक में मिला दिया गया । इसका उद्देश्य स्वरोजगार उद्यमों की स्थापना को प्रोत्साहन देना या मजदूरी रोजगार के सृजन के द्वारा गरीबी रेखा के नीचे नवीं दर्जा तक शिक्षित शहरी बेरोजगारों या अर्धरोजगारों को रोजगार प्रदान करना है।
8. **स्वशक्ति प्रोजेक्टर-** यह प्रोजेक्टर अक्टूबर 1998 में ग्रामीण महिला विकास तथा सशक्तिकरण प्रोजेक्टर के रूप में केन्द्र द्वारा बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, झारखण्ड, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश में चलाया गया। यह प्रोजेक्टर वर्ल्ड बैंक तथा इन्टरनेशनल फण्ड फार एग्रीकल्चरल डेवेलपमेण्ट द्वारा संयुक्त रूप से प्राप्त सहायता से चल रही है।
9. **इन्दिरा महिला योजना** - इसका उद्देश्य महिलाओं की अधिकारिता प्रदान करना है।इस योजना को 1995-96 के दौरान 200 विकास खण्डों में चलाया गया था। योजना आयोग के एक अध्ययन दल की संस्तुति पर आई0 एम0 वाई0 को पुर्नगठित करके इसकी कमियो को दूर करके संशोधित रूप में अनुमोदित कर दिया गया है। महिला समृद्धि योजना को आई0 एम0 वाई0 के साथ जोड़ दिया गया है।
10. **बालिका समृद्धि योजना** को 1997 में बालिकाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिर्वतन लाने के विशेष उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया था।
11. **एकिकृत बाल विकास तथा सेवा स्कीम** 1975 में शुरू इस स्कीम का उद्देश्य 6 वर्ष तक के उम्र के बच्चों, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को स्वास्थ्य पोषण एवं शैक्षणिक सेवाओं का एकीकृत पैकेज प्रदान करना है, आँगन वाड़ी, भवनो, सीडीपीओ कार्यलयों एवं गोदामों के निर्माण के लिए ऋण प्रदान करना है।
12. **प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना** जिसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण लोगों की आवश्यक आवश्यकताओं को निर्धारित समयावधि में पूरा करना है।
13. **प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना-** 25 दिसम्बर, 2000 को लागू की गयी। 60 हजार करोड़ रुपये की इस योजना का उद्देश्य 500 से अधिक जनसंख्या वाले गांवों को 2007 तक हर मौसमी सड़क से जोड़ना है। यह एक 100 प्रतिशत केन्द्र प्रायोजित योजना है। इसका वित्तपोषण डीजल पर उपकर से होता है।

14. **अन्नपूर्णा योजना-** 1999-2000 की बजट में घोशित अन्नपूर्णा योजना का आरम्भ गाजियाबाद के सिखोड़ा ग्राम से हुआ। ज्ञातव्य है कि इस योजना को उद्देश्य देश के अत्यन्त निर्धन लागों के रोटी की व्यवस्था करनी है।
15. **शिक्षा सहयोग योजना-** यह योजना 1 अप्रैल 2001 से लागू, 2001-02 के बजट में प्रस्तावित योजना है। इस योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे के बच्चों के माता-पिता को 100 रुपये प्रतिमाह शैक्षिक भत्ता प्रदान किया जायेगा जिससे वे 9 से 12 वीं कक्षा तक की शिक्षा के व्यय को पूरा कर सके।
16. **अन्तोदय अन्न योजना-** यह योजना दिसम्बर 2000 में चालू की गयी। इसके तहत लक्ष्यित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत पहचान किये गये बी.पी. एल. परिवारों में से 1 करोड़ निर्धनतम परिवारों को चुना जाता है। शुरू में इसके अन्तर्गत प्रत्येक अर्ह परिवारों को 25 किलोग्राम अन्न 2 रुपया प्रति किलो गेहूं तथा 3 रुपया प्रति किलों ग्राम चावल दिया जाता था। अप्रैल 2002 से 25 किलोग्राम को बड़ाकर 35 किलो ग्राम कर दिया गया।
17. **दीन दयाल स्वालम्बन योजना-** केन्द्रीय युवा मामलें व खेल मंत्रालय द्वारा ग्रामीण युवकों को स्वयं सहायता समूहों के रूप में संगठित कर उनमें स्वरोजगार के जरिये आय अर्जित करने के लिए क्रियान्वित।
18. **प्रधानमन्त्री आदर्श ग्राम योजना-** 2009-10 बजट में प्रस्तावित नयी योजना है जो उन 44000 गांवों के समन्वित विकास से सम्बन्धित है जिनकी जनसंख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या 50प्रतिशत से अधिक है।
19. **प्राइम मिनिस्टर एम्प्ल्वायमेंट जनरेशन प्रोग्रैम** -15 अगस्त 2008 से प्रारम्भ प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम अपने ढंग का एक नया प्रयास है जिसका प्रमुख उद्देश्य सब्सिडि पर कराये गये ऋण के माध्यम से शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में माइक्रो इन्टरप्राइज़ेज़ की स्थापना के द्वारा रोजगार के अवसर सृजित करना है। पहले से चली आ रही दो रोजगार योजनाओं PMRY तथा REGP को इसमें मिला दिया गया है।
20. **राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा फण्ड-** असंगठित क्षेत्रीय कामगारों सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008 के अनुपालन में इस फण्ड को 1000 करोड़ रुपये के व्याय के साथ 2010 -11 बजट से चालू किया गया हैं। यह फण्ड धुनियों, रिक्सा चालकों, बीड़ी कागरों आदि से सम्बन्धित स्कीमों को सहायता देगा।
21. **स्वावलम्बन**-2010-11 से शुरू यह स्कीम नयी पेंशन स्कीम में असंगठित लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहन करने से सम्बन्धित है। ऐसे लोग जो न्यूनतम 1000 रु. तथा अधिकतम 12000 रु. से इस स्कीम को अपना खाता खोलकर ज्वाइन करेंगे उसमें 1000 रु. सरकार अंशदान के रूप में देगी। यह तीन वर्ष तक उपलब्ध होगी।

22. **महिला किसान सशक्तीकरण परियोजना-** 2010-11 से शुरू परियोजना है जो किसान महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित है। यह राष्ट्रीय ग्रामीण लिवलीहुड मिशन के एक उप भाग के रूप में 100 करोड़ रुपया से शुरू की गयी है।
23. **महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण योजना गारन्टी एक्ट 2004 (मनरेगा) तथा राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी कार्यक्रम-नेशनल रूरल एम्प्ल्वायमेंट गारण्टी एक्ट** (NREGA) नरेगा सितम्बर 2005 को पारित हुआ तथा 2 फरवरी, 2006 को इसकी शुरूआत प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह द्वारा आन्ध्र प्रदेश के बन्दापाली से की गयी। 2 अक्टूबर 2009 इसका नाम बदलकर महात्मागांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी ऐक्ट कर दिया गया।

    2 फरवरी को सरकार ने रोजगार दिवस के रूप में घोषित कर दिया। शुरू में यह योजना 200 जिलों में लागू की गयी पर 2007-08 बजट में इसे बढ़ाकर 330 जिलों में कर दिया गया।इस समय यह देश के सभी 614 जिलों में लागू है। रोजगार सृजन करने वाली यह पहली योजना है और इस दृष्टि से यह सभी स्कीमों से भिन्न है, जो पार्लियामेंट द्वारा पारित एक्ट के द्वारा ग्रामीण जनसंख्या को रोजगार प्राप्त करने की गारण्टी के साथ कानून द्वारा अधिकार प्रदान करती है।

    1. प्रत्येक ग्रामीण परिवार के कम से कम एक प्रौढ़ सदस्य को वर्ष में कम से कम 100 दिन का गारण्टी रोजगार प्रदान की जिम्मेदारी होगी, जिसमें कम से कम 1/3 स्त्रियां होंगी।
    2. इसके तहत दिया गया रोजगार अकुशल शारीरिक श्रम रोजगार होगा जिसके लिए वैधानिक न्यूनतम मजदूरी देय होगी तथा जिसका भुकतान कार्य किये जाने के 7 दिन के भीतर देय होगी।
    3. रोजगार दिये ताने के सम्बन्ध में आवेदन के 15 दिन के भीतर रोजगार प्रदान किया जायेगा तथा रोजगार श्रमिक के निवास से 5 किलोमीटर दूरी के भीतर होगा। इससे बाहर काम दियं जाने पर श्रमिका को 10प्रतिशत अतिरिक्त मजदूरी दी जायेगी। जॉब कार्ड प्राप्त होने के 15 दिन तक काम न पाने पर वह बेरोजगारी भत्ता प्राप्त करेगा। जॉब कार्ड 5 वर्ष तक वैध रहेगा।
    4. यदि इस समय सीमा के भीतर रोजगार नहीं प्रदान किया गया तो आवेदन को बेराजगारी भत्ता देय होगा जो न्यूनतम वैधानिक मजदूरी के 1/3 से कम नहीं होगा।
    5. सम्पूर्ण ग्राम राजगार योजना तथा कार्य के लिए राष्ट्रीय अनाज योजना का इसमें विलय।
    6. सेन्ट्रल एम्प्ल्वायमेंट गारण्टी कौन्सिल तथा प्रत्येक राज्य द्वारा स्टेट कौंसिल की स्थापना जो इससे सम्बन्धित काग्र सम्पादित कर सके।

7. जिला स्तर पर पंचायत अपने सदस्यों की स्टैन्डिंग कमैटी बनायेगी जो जिला के भीतर कार्यक्रमों की देखरेख, मानीटरिंग तथा क्रियान्वयन देखेगी।
8. इस स्कीम के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकार प्रत्येक ब्लाक के लिए प्रोग्राम आफीसर की नियुक्ति करेगी।
9. ग्राम पंचायत परियोजनाओं की पहचान, क्रियान्वयन तथा देखरेख के लिए जिम्मेदारी होगी।
10. केन्द्र सरकार इसकी फन्डिग की व्यवस्था के लिए नेशनल एम्प्ल्वायमेंट गारण्टी फण्ड तथा राज्य सरकार स्टेट एम्प्ल्वायमेंट गारण्टी फण्ड की स्थापन करेगी।
11. पूरी स्कीम इस अर्थ में स्वचयनात्मक होगी कि गरीबों में जो लोग न्यूनतम मजदूरी पर कार्य करने के इच्छुक हैं वे स्वयं इस स्कीम में कार्य के लिए आयेगें।
12. सी प्रस्तावित है कि परियोजना से सम्बन्धित मजदूरी भाग का भुगतान (जो कुल लागत की लगभग 80 होगी) केन्द्र सरकार करेगी जबकि उसमें लगने वाली सामग्री की लागत का 75 प्रतिशत तथा प्रशासनिक लागत का कुछ भाग केन्द्र सरकार वहन करेगी तथा शेष राज्य सरकार वहन करेगी। इसमें होने वाले व्यय को केन्द्र तथा राज्य सरकार 90:10 में वहन करती हैं।
13. ग्राम पंचायत इस स्कीम की क्रियान्वयन इकाई है तथा परिवार लाभ प्राप्तकर्ता इकाई है।
14. इस योजना के अन्तर्गत जल सम्भरण, वाटरशेड मैनजमेन्ट, बाढ़ तथा सूखा संरक्षण, फोरेस्ट्री, भूमि विकास, गांवों को सड़क के द्वारा जोड़ना, मरूस्थल विकास आदि से सम्बन्धित परियोजनाओं में रोजगार प्रदान किया जायेगा, इस प्रकार रोजगार के द्वारा अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति सृजन होगा।
15. उल्लेखनीय है कि इस योजना के अन्तर्गत मजदूरी का भुगतान 'एकाउन्टपेयी चेक' या पोस्ट आफिस में खाते के द्वारा ही होना है जिससे मध्यस्थों या विचोलियों से मुक्ति मिल सके।

निःसन्देह राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी योजना सर्वथा अलग योजना है। अन्य रोजगार सृजन कार्यक्रमों की तरह इसकी सफलता इसके क्रियान्वयन तथा उसके साथ जुड़े हुए भ्रष्टाचार घूसखोर, फर्जीहाजिरी, जबावदेही आदि के स्तर पर निर्भर करेगी। रोजगार सृजन की यह योजना सार्वजनिक वस्तुओं को विकसित करने के लिए मजदूरी की व्यवस्था करती है। चूंकि सार्वजनिक वस्तु किसी की अपनी नहीं होती है, इसीलिए इसके सृजन में होने वाले हर सम्भव दुरूपयोग सम्भव हैं। आवश्यकता इसकी है कि पूरी योजना इस प्रकार से नियोजन हो कि जहां एक ओर यह गरीबों को अधिक से अधिक लाभप्रद रोजगार प्रदान करे वहीं दूसरी ओर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तीव्र आर्थिक विकास सुनिश्चित हो।

अभ्यास प्रश्न

100 शब्दों में टिप्पणी लिखिए

1.प्रच्छन्न बेरोजगारी और खुली से आप क्या समझते है ?

2.बेरोजगारी के प्रमुख कारण क्या है ?

3.बेरोजगारी के दुष्प्रभावों को संक्षेप में बताइए ?

4.राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार बेराजगारी के विभिन्न स्वरूप को बताइए ?

5. बेरोजगारी को दूर करने के प्रमुख कार्यक्रम क्या है ?

9.11 सांराश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में एक प्रमुख समस्या बेरोजगारी है। बेरोजगारी भारत की एक ज्वलन्त समस्या है एक व्यक्ति तभी ही बेरोजगार कहलाता हैं,जबकि उसके पास कार्य नहीं हो और वह रोजगार पाने का इच्छुक हो। इस बेरोजगारी की समस्या ने कई रूप ले लिया हैं,सरकार ने अनेक बेरोजगारी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए हैं, जिससे लोगो की आय का सृजन हो। यद्यपि सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से रोजगार के नवीन अवसर पैदा करने तथा युवाओं की आय में सकारात्मक वृद्धि करने के प्रयास कर रही है। तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या बेरोजगारी के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

9.12 शब्दावली

$$\text{बेरोजगरी की दर} = \frac{\text{बेरोजगारों की संख्या}}{\text{कुल श्रम शक्ति}} \times 100$$

माइग्रेशन - एक जगह से दूसरी जगह जाकर रहने लगना।

अदृश्य बेरोजगारी - खेतों पर से यदि अतिरिक्त लोगों को हटा लिया जाय और उत्पादन में कमी न आये।

कुशलतम प्रयोग - न्यूनतम नुकसान पर अधिकतम इस्तेमाल द्वारा उत्पादन करना।

9.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी लिखिए- 1-देखिए 7.4, 2-देखिए 7.8,3-देखिए 7.9, 4-देखिए 7.4,5-देखिए 7.11।

9.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
- Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation.
- दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था - सर्वेक्षणतथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

9.15 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
- www.economywatch.com/database/agriculture.
- business.gov.in/indian_economy/agriculture
- आर्थिक सर्वेक्षण(विभिन्न अंक),वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

9.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1.किसी देश के अविकसित रहने के लिए बेरोजगारी किस रूप में जिम्मेदार है?क्या इस दिशा में मानवीय नियोजन प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

2.बेरोजगारी की प्रकृति एवं कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।

इकाई 10 आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 भारत में असमानता
10.4 भारत में बढ़ती आर्थिक विषमताएँ/असमानतायें
10.5 भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण
10.6 भारत में आर्थिक विषमताओं/असमानताओं को दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ
10 .7 काले धन की परिभाषा, स्रोत तथा क्षेत्र
10.8 काले धन का अनुमान
10.9 काले धन पर सरकार की पहल
10.10 काले धन को रोकने के उपाय
10.11 काले धन की वृद्धि के प्रभाव
10.12 फाइनेंशियल एक्शन टॉस्क फोर्स फत्फ
10.13 सांराश
10.14 शब्दावली
10.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.17 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
10.18 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह दसवीं इकाई है । इससे पहले की इकाइयों से आपको अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

वर्तमान इकाई में आप देश में बढ़ती आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था के बारे में अध्ययन करेंगें। भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था एक प्रमुख आर्थिक समस्या के रूप में विद्यमान है । यहाँ आगे आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था का आशय उसे जुड़े कारणों, समस्याओं एवं नीतियों का उल्लेख भी किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था को सामान्य दृष्टि से समझा सकेंगें । आप यह भी समझा सकेंगें कि आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था के क्या कारण एवं इसके क्या दुष्प्रभाव है। देश और राज्यों में आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था का विश्लेषण कर सकेगें है और इससे दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ को जान सकेंगें।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- भारत में आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था की प्रकृति को जान सकेंगें।
- भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में बढ़ती आर्थिक विषमताएँ असमानतायें का/वर्णन कर सकेंगें।
- भारत में आय वितरण में प्रादेशिक असमानताएं के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगें।
- भारत में आर्थिक विषमताओंअसमानताओं को दूर करने के उपाय और / उपलब्धियाँ को जान सकेंगें।

10.3 भारत में असमानता

किसी भी देश का आर्थिक विकास केवल राष्ट्रीय आय एवं उत्पादन में वृद्धि में ही निहित नहीं, वरन् उसका एक महत्वपूर्ण पहलू आय एवं उत्पादन का न्यायोचित वितरण भी है। वितरण का स्वरूप कैसा है, व्यक्तिगत एवं प्रादेशिक वितरण की स्थिति कैसी है, वितरण में समानता है अथवा

असमानता और विषमता का आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव है ? इन कई महत्वपूर्ण प्रश्नों का सम्बन्ध राष्ट्रीय आय के वितरण से है जिसका अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

आर्थिक असमानता का अर्थ

आर्थिक असमानता अथवा आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण से अभिप्राय अर्थव्यवस्था की उस परिस्थितियों से है जिसमें कि राष्ट्र के कुछ लोगों क आय, राष्ट्र की औसम आय से बहुत अधिक तथा अधिकांश लोगों की आय, राष्ट्र की औसम आय से बहुत कम होती है। आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण की समस्या का सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यक्तिगत आय के वितरण में विषमताओं से होता है। इससे अभिप्राय यह है कि कुछ व्यक्तियों की आय बहुत अधिक है जबकि अधिकतर लोगों की आय बहुत कम है।

आय के वितरण का अर्थव्यवस्था में महत्व

किसी भी राष्ट्र में आय और धन के वितरण का इसकी अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जब तक आय का वितरण वैयक्तिक एवं प्रादेशिक स्तर पर समान रहता है तो आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है, समृद्धि बढ़ती है और राजनीतिक शान्ति के साथसाथ सामाजिक सद्भावना बनी - रहती है, व्यक्तिगत कुशलता एवं प्रेरणा बढ़ती है। सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है , गरीबी और अमीरी की घृणा नहीं पनपती और सर्वत्र शान्ति एवं सौहार्द पनपता है।

इसके विपरीत समाज में धन एवं आय का असमान वितरण और देश में व्याप्त आर्थिक विषमताओं से अर्थव्यवस्था में कई प्रकार की आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं। देश में आय तथा धन की वैयक्तिक एवं प्रादेशिक वितरण जितना विषम एवं असमान होगा उतनी ही आर्थिक विकास की गति धीमी होगी, समाज में वर्गसंघर्ष और तनाव से राजनीतिक शान्ति एवं - शयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि किसी भी भाग में गरीबी विश्व सुदृढ़ता को खतरा होगा। यह कहना अति समृद्धि को सबसे बड़ा खतरा है। आर्थिक क्षेत्र में विषमताएं आर्थिक शोषण को बढ़ावा देती हैं। अमीरों से गरीबों का द्वेष क्रान्ति को बुलावा देता है। गरीबी में नीचा जीवनस्तर उत्पादन क्षमता को - अधिक गरीब बनाता है जबकि दूसरी ओर विलासिता में डूबे धनी लोग देश के कम करके उन्हें आर्थिक साधनों को कम उपयोगी क्षेत्रों में ले जाकर सामाजिक कल्याण में कमी करते हैं।

भारत में आर्थिक असमानता की प्रकृति एवं विस्तार

भारत में आर्थिक असमानता निरन्तर बढ़ती जा रही है। भारत में आय के वितरण की जांच करने के लिए सरकार ने सर्वप्रथम प्रो महालनोबिस की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की थी। .सी.पी .इस समिति के अतिरिक्त नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च ;छब्।म्द्ध, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया तथा कई अर्थशास्त्रियों जैसे लाइडल, ओझा और भट्ट, रानाडिवे, अहमद, भट्टाचार्य आदि ने आय के वितरण के सम्बन्ध में जांच की है। भारत में कई प्रकार की आर्थिक असमानतायें पाई जाती हैं। इनमें से निम्नलिखित प्रकार की असमानतायें अधिक महत्वपूर्ण हैं।

1. परिसम्पत्ति की असमानता

2. आय तथा उपभोग की असमानता

3. क्षेत्रीय असमानता

10.4 भारत में बढ़ती आर्थिक विषमताएँअसमानतायें/

चाहे अर्थव्यवस्था का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो, प्रत्येक में कुछ न कुछ आर्थिक विषमताएं अवश्य होती हैं। जहाँ समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विषमताएं नगण्य और आर्थिक विकास के अनुकूल, समाजिक दृष्टि से न्यायोचित और राजनीतिक दृष्टि से उपयुक्त हैं वहाँ पूजीवादी, विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में आर्थिक विषमातएं बहुत व्यापक और कष्टदायी हैं। भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था में भी आर्थिक विषमाएं अनेक प्रकार से देश को झकझोर रही हैं और उनकी बढती प्रवृत्ति ने कई प्रकार की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को जन्म दिया है। भारत में आर्थिक विषमता के विभिन्न स्वरूप इस प्रकार हैं –

1. वैयक्तिक आर्थिक विषमता असमानतायें - यद्यपि भारत में वैयक्तिक आय वितरण के आंकड़ें संकलित नहीं किए जाते, किन्तु समयपर किए अध्ययनों के मोटे अनुमानों से पता समय-लगता है कि राष्ट्रीय आय के वैयक्तिक वितरण में भारी असमानताएं हैं।

आयंगर एवं मुकर्जी के अनुसार 1956-57 में ऊपर के 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 25 प्रतिशत हजम कर जाते थे जबकि नीचे के 20 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का 8.5 प्रतिशत भाग ही मिलता था।

प्रो लिण्डाल ने अनुमान लगाया कि जहाँ ऊपर के .5 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 23 प्रतिशत, ऊपर के 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 34 प्रतिशत तथा ऊपर के 50 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 75 प्रतिशत हड़प कर जाते, वहाँ नीचे के 20 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का केवल 9.5 प्रतिशत तथा नीचे के 50 प्रतिशत को राष्ट्रीय आय का केवल 25 प्रतिशत ही मिल पाता था।

नेशनल कौन्सिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च ने 1960 के अनुमान में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में वैयक्तिक वितरण की असमानता को अलगहै। इसके अनुमानों के अनुसार ग्रामीण अलग बताया- क्षेत्रों में ऊपर के10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 33.6 प्रतिशत भाग प्राप्त करते हैं जबकि शहरी क्षेत्रों में उनका भाग 42.4 प्रतिशत है जबकि नीचे के 10 प्रतिशत लोग दोनों क्षेत्रों में राष्ट्रीय आय का 4 प्रतिशत भाग ही प्राप्त करते हैं।

वैयक्तिक आर्थिक वितरण की असमानायें केवल आय में ही नहीं दिखतीं, वरन् वैयक्तिक उपभोग व्यय के अनुमानों में भी झलकती है। नेशनल सेम्पल सर्वे (NSSO) के 1959-60 के अनुमानों के

अनुसार जहाँ ऊपर के 20 प्रतिशत लोगों का उपभोग व्यय कुल का 42 प्रतिशत था वहाँ नीचे के 20 प्रतिशत लोगों का भाग केवल मात्र 8 प्रतिशत अर्थात् बहुत कम था। इसी प्रकार का अनुमान नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लाडइ इकोनोमिक रिसर्च के 1964-65 के अध्ययन में दृष्टिगोचर होता है। इसके अनुसार जहाँ ऊपर के 20 प्रतिशत परिवारों का कुल व्यय में 33 प्रतिशत भाग था वहाँ नीचे के 20 प्रतिशत परिवारों का उपभोग व्यय में केवल 13 प्रतिशत ही भाग था। दाण्डेकर एवं रथ के अनुसार 1960-61 की कीमतों के स्तर पर 1967-68 में शहरी क्षेत्र के केवल 5 प्रतिशत लोगों का प्रति व्यक्ति वार्षिक उपभोग व्यय 1,330 रू था जबकि नीचे के .5 प्रतिशत लोगों का यह व्यय केवल मात्र 78 रू ही था। इस प्रकार दोनों में .17 गुना अन्तर वैयक्तिक असमानता को उजागर करता है।

प्रोमहालनोबिस ने भी राष्ट्रीय आय वितरण सम्बन्धी अपने प्रतिवेदन में इस असमानता पर विचार . हुए बताया कि देश के एक प्रतिशत धनिक राष्ट्रीय आय के करते10 प्रतिशत भाग को हड़प जाते हैं जबकि नीचे के 50 प्रतिशत गरीबों को राष्ट्रीय आय का केवल 22 प्रतिशत भाग ही मिलता है। ये विभिन्न अनुमान संक्षेप में निम्न तालिका में दर्शाये गये हैं।

विश्व विकास प्रतिवेदन 1988 के अनुसार 1975-76 में भारत के सबसे धनी 10 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का 33.6 प्रतिशत भाग मिल रहा था जबकि निम्नतम 20 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का केवल 7 प्रतिशत भाग प्राप्त हो रहा था। जहां ऊपर के 20 प्रतिशत धनी राष्ट्रीय आय का 49.4 प्रतिशत भाग हड़प रहे थे वहाँ 80 प्रतिशत जनसंख्या को राष्ट्रीय आय का 50 प्रतिशत भाग मिल रहा था।

तालिका 10.1 भारत में वैयक्तिक आय वितरण की असमानता के अनुसार (प्रतिशत के रूप)

लोग	**भारतीय रिजर्व बैंक 1953-54 1956-57**		**लिण्डाल के अनुमान 1955-56**	**आयंगर एवं मुकर्जी के अनुमान 1956-57**	**NCAER के अनुसार 1960**	
	गांव	**शहर**			**गांव**	**शहर**
ऊपर के 5 % लोग	17	26	23	17.5	-	31
ऊपर के 10 % लोग	25	37	34	25.0	33.6	42.4
ऊपर के 50 % लोग	69	75	75	-	79.3	83
ऊपर के 20 % लोग	9	7	9.5	8.5	4	4

वैयक्तिक आय वितरण की असमानताएं और कई गुना बढ़ जायें अगर हम काले धन के वितरण का भी समावेश कर लें क्योंकि काले धन का सर्वाधिक भाग धनिकों की जेब में जाता है और भारत में काले धन का बाहुल्य किसी भी छिपा नहीं है।

2. परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता

भारत में परिसम्पत्ति की असमानता के संबंध में प्राप्त आंकड़े अपर्याप्त तथा अविश्वसनीय हैं। परन्तु उपलब्ध आकंड़े स्पष्ट करते हैं कि भारत में परिसम्पत्ति की असमानता काफी अधिक एवम् व्यापक है। परिसम्पत्ति की असमानता का अध्ययन दो भागों में किया जा सकता है-:

1 ग्रामीण क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता

भारत की लगभग 76 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। ग्रामीण क्षेत्र में विद्यमान सम्पत्ति की असमानता निम्नलिखित दो तथ्यों से स्पष्ट हो जाती है:

(अरिजर्व बैंक द्वारा किये गये अखिल भारतीय ऋण एवम् .कुल परिसम्पत्ति का असमान वितरण(सारनिवेश सर्वेक्षण के अनु, ग्रामीण क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण की असमानता का विस्तार काफी अधिक है।

तालिका 10 **.2 ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पत्ति का विवरण**

व्यक्ति	**कुल सम्पत्ति में प्रतिशत भाग**	
व्यक्ति	**1961**	**1971**
नीचे के 10 प्रतिशत	0.1	0.1
ऊपर के 10 प्रतिशत	51.4	51.0
नीचे के 30 प्रतिशत	2.5	2.0
ऊपर के 30 प्रतिशत	79	81.9

तलिका 10.2 में प्रस्तुत ग्रामीण क्षेत्रों की सम्पत्ति के वितरण सम्बन्धी आकंड़ों से निम्न तथ्य स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाते हैं:

(क गांवों में निवास करने वाली जनसंख्या का नीचे के (10 प्रतिशत वर्ग का ग्रामीण परिसम्पत्ति में केवल 0.1 प्रतिशत भाग है। जबकि ऊपर के 10 प्रतिशत वर्ग का लगभग 51 प्रतिशत भाग है। अन्य शब्दों में ऊपर के वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों में से एक व्यक्ति के पास इतनी सम्पत्ति है, जितनी नीचे के वर्ग के 510 व्यक्तियों के पास है। सन् 1961 से 1971 तक के 10 वर्षों में इस असमानता में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

(ख तालिका यह भी इंगित करती है कि नीचे के (30 प्रतिशत वर्ग का ग्रामीण सम्पत्ति में भाग सन् 1961 में 2.5 प्रतिशत था सन् 1971 में यह कम होकर 2 प्रतिशत रह गया। इसके विपरीत ऊपर के 30 प्रतिशत का भाग जो 1961 में 79 प्रतिशत था वह 1971 में बढ़कर 81.9 प्रतिशत हो गया। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण की असमानता कम होने के स्थान पर बढ़ती जा रही है।

2.भूमि के वितरण में असमानता ग्रामीण क्षेत्र में भूमि उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन है। कृषि के . लिए उपयोग की जाने वाली भूमि के वितरण में काफीअसमानता पाई जाती है। इस समय भारत में लगभग 9 करोड़ 77 लाख जोतें या खेत हैं। इनके वितरण की असमानता निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाती है।

तलिका 7.3 कार्यशील भूजोतों का आकार के अनुसार वितरण-

भू जोतों का आकार (हैक्टेयर)	1970-71		1985-86	
	कुल जोतों का प्रतिशत	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत	कुल जोतों का प्रतिशत	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
1.0 हैक्टेयर से कम	51	9	58	13.1
1 से 2 हैक्टेयर	18.9	11.9	18.2	15.5
2 से 4 हैक्टेयर	15	18.5	13.6	22.2
4 से 10 हैक्टेयर	11.2	29.7	8.2	28.7
10 से अधिक हैक्टेयर	3.9	30.9	2.00	20.5
	100	100	100	100

Source : Agricultural Situation in Brief 1988

उपरोक्त तालिका:

1.सन् 1985-86 में सीमान्त जोतों (1 हैक्टेयर तक की जोतों) तथा लघु जोतों (2 हैक्टेयर तक की) जोतों की संख्या कुल कार्यशील जोतों की (76 प्रतिशत थी परन्तु इनके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का 28 प्रतिशत भाग था। इसके विपरीत मध्यम (10 हैक्टेयर तक की जोतों) तथा बड़ी जोतों (10 हैक्टेयर से अधिक तक की जोतो केवल की संख्या कुल जोतों की (10 प्रतिशत थी परन्तु इनके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का लगभग 49 प्रतिशत भाग था। इस प्रकार 10 प्रतिशत जोतों के स्वामी धनी किसानों का 49 प्रतिशत कृषि भूमि पर स्वामित्व है। इसके विपरीत 76 प्रतिशत निर्धन किसानों का केवल 28 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व है। सन् 1970-71 में 15 प्रतिशत धनी किसानों का केवल 60 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व है। सन् 1970-71 में 15 प्रतिशत धनी किसानों का

केवल 60 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व था। तालिका -2 में प्रस्तुत आंकड़ों से यह भी सिद्ध हो जाता है कि भारत में भूमि के स्वामित्व की असमानता काफी अधिक है।

2. शहरी क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता

भारत के केवल ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं अपितु शहरी क्षेत्रों में भी सम्पत्ति की असमानता बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है। इसे निम्नलिखित दो तथ्यों से स्पष्ट किया जा सकता है:

1. भवन सम्पत्ति का स्वामित्वशहरों में सम्पत्ति के वितरण की असमानता और भी अधिक है। - नेशनल सैम्पल सर्वे के आठवें दौर के अनुसार शहरी क्षेत्र के ऊपर के20 प्रतिशत परिवारों के पास शहरी जमीन का 93 प्रतिशत भाग था। इनमें से सबसे अधिक धनी 5 प्रतिशत परिवारों के पास शहरी भूमि का 52 प्रतिशत भाग था। नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च के अनुसार शहरी क्षेत्र के सबसे उच्च वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों के पास 57 प्रतिशत भवन सम्पत्ति केन्द्रित है। इसके विपरीत नीचे के वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों के पास 1 प्रतिशत से भी कम भवन सम्पत्ति है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शहरी क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण में काफी असमानताएं पाई जाती हैं।

2. शेयर सम्पत्ति का स्वामित्व - भारत में शेयर सम्पत्ति से सम्बन्धित असमानताएं और भी अधिक हैं। महालनोबिस समिति के अनुसार आय कर देने वालों में सबसे धनी वर्ग 10 प्रतिशत लोगों को शेयरों के लाभांश से प्राप्त कुल आय का 52 प्रतिशत लाभ मिला था। नीचे के वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों का भाग केवल 2.5 प्रतिशत था। इकोनोमिक टाइम्स रिसर्च ब्यूरों के अनुसार भारत में 20 व्यावसायिक घरानों की परिसम्पत्ति 10,000 करोड़ रूपये से भी अधिक है। इन 20 बड़े घनों का अर्जित लाभ 900 करोड़ रूपये से भी अधिक है। इससे सिद्ध होता है कि देश में आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण होने के फलस्वरूप सम्पत्ति की असमानता का विस्तार काफी व्यापक है।

संक्षेप में, भारत में आय तथा सम्पत्ति की असमानताएं शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में पाई जाती हैं। पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में इन असमानताओं में कमी होने के बजाय बढ़ने की प्रवृत्ति पाई गई है।

4 भारत में आय वितरण में प्रादेशिक असमानताएं

भारतीय अर्थव्यवस्था एक विशाल अर्थव्यवस्था है और उसके विभिन्न क्षेत्रों में भी आय वितरण में काफी असमानताएं हैं। आर्थिक दृष्टि से विकसित एवं प्राकृतिक दृष्टि से सम्पन्न राज्यों में प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक है जबकि पिछड़े राज्यों में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। नेशनल कौन्सिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च के एक सर्वेक्षण के अनुसार 1960-61 में बिहार में प्रति व्यक्ति आय 220.6 रू सबसे कम थी जबकि दिल्ली में प्रति आय सर्वाधिक .871.61 रुपये थी। महाराष्ट्र की प्रति व्यक्ति आय 668.5 रु तथा पश्चिमी बंगाल में 464.6 दूसरे और तीसरे स्थान पर थे।

योजनाबद्ध विकास में यद्यपि लक्ष्य प्रादेशिक विषमाओं को यथासम्भव कम करने का था, किन्तु वास्तविकता यह रही कि धनी राज्य और अधिक धनी एवं समृद्ध हुए और पिछड़े राज्यों की प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के बावजूद धनी राज्यों के मुकाबले कम कम रही। इस विषमता की झलक निम्न तालिका से मिलती है।

तलिका 10.4 भारत में प्रादेशिक आय वितरण (प्रति व्यक्ति आय)

राज्य	1981-82	1985-86 (औसत)	1987-90 (औसत)	1992-95 (औसत)	2005-06	राज्यों में स्थान
पंजाब	3122	4084	6303	12538	30701	(3)
महाराष्ट्र	2519	3208	5368	11369	32170	(2)
हरियाणा	2581	3322	5371	10563	32712	(1)
गुजरात	2211	2814	4602	8829	28355	(4)
राजस्थान	1417	2069	2878	5665	16593	(11)
उड़ीसा	1308	1754	2684	4263	13601	(15)
बिहार	995	1417	2026	3482	5772	(17)

उपर्युक्त तालिका 7.4 से स्पष्ट है कि 2003-04 में हरियाणा में प्रति व्यक्ति आय सर्वाधिक थी जबकि बिहार में सबसे कम है। दोनों की प्रति व्यक्ति आय में साढ़े चार गुना अन्तर है। राजस्थान की प्रति व्यक्ति आय पंजाब से आधी से भी कम है जबकि बिहार से ढ़ाई गुना है। हरियाणा, गुजरात और महाराष्ट्र में प्रति व्यक्ति आय बिहार, उड़ीसा, केरल, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के मुकाबले कहीं अधिक है।

10.5 भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण

भारत में आय तथा सम्पत्ति में पाई जाने वाली असमानता का मुख्य कारण जमींदारी प्रथा के फलस्वरूप भूमि के स्वामित्व में विद्यमान असमानता है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में जमींदारी प्रथा पाई जाती थी। इसके फलस्वरूप भूस्वामित्व में भारी असमानता पाई जाती थी। स्वतंत्रता के पश्चात् - जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई परन्तु भूमि के स्वामित्व की असमानता में कोई विशेष कमी नहीं हुई है।इस समय देश के 10 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के पास कृषि भूमि का 56 प्रतिशत भाग है तथा 70 प्रतिशत जनसंख्या के पास केवल 14 प्रतिशत भाग है। भूमि के स्वामित्व में पाई जाने वाली असमानता ग्रामीण क्षेत्र में पाई जाने वाली आय की असमानता का मुख्य कारण है। ग्रामीण क्षेत्र में भूमिहीन कृषि श्रमिकों तथा छोटे किसानों की आय बहुत कम है। वे बड़ी कठिनाई से अपना जीवन निर्वाह कर पाते हैं। इसके विपरीत बड़े किसानों की आय बहुत अधिक है तथा इसमें लगातार वृद्धि हो रही है। इन किसानों के पास पूंजी अधिक होती है इसलिए ये ट्रैक्टर, ट्यूबवैल, रासायनिक खाद,

उत्तम बीज आदि का प्रयोग करके अधिक उत्पादन करते हैं। इससे इनकी आय में और अधिक वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत छोटे किसान पूंजी के अभाव में अपने खेतों से अधिक उत्पादन नहीं कर पाते। वे पिछड़े तथा निर्धन रह जाते हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में भूस्वामित्व की असमानता के कारण आय तथा सम्पत्ति की असमानता में वृद्धि होती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक असमानताओं के कई कारण है। वैयक्तिक आय में भिन्नता, योग्यता, अवसर कुशलता एवं सम्पत्ति स्वामित्व पर निर्भर है जबकि क्षेत्रीय विषमताएं तो कई कारणों का सामूहिक परिणाम है, अतः उनमें प्रमुख कारण इस प्रकार हैं-

जन्मजात योग्यताओं में अन्तरयह वैयक्तिक आय में सम्पत्ति की असमानताओं का एक प्रमुख - कारण है। कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान, योग्य, परिश्रमी एवं कुशल होते हैं और ऐसे लोगों की आय कम बुद्धिमानों, अयोग्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक ही होगी।

अवसरों की असमानता- व्यक्तियों के जन्मजात गुणों में समानता होते हुए भी उन व्यक्तियों की अधिक आय एवं सम्पत्ति प्राप्त होती है जिन्हें अच्छा अवसर मिल जाता है। जिन व्यक्तियों को अवसर नहीं मिल पाता वे पिछड़ जाते हैं। जहां धनी वर्ग के सामान्य बुद्धि वाले बच्चे उचित अवसर मिलने से आर्थिक उन्नति कर जाते हैं जबकि कुशाग्र बुद्धि वाले परिश्रमी एवं योग्य बच्चे अच्छे अवसर के अभाव में पिछड़ जाते हैं।

आर्थिक शोषण- व्यक्तिगत लाभ एवं सम्पत्ति के स्वामित्व की लालसा व्यक्ति को मानव से दानव भी बना सकती है। यही भावना पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण, उत्पादकों एवं व्यापारियों द्वारा उपभोक्ता का शोषण, धनी व्यक्तियों द्वारा गरीबों का शोषण तथा सबलों द्वारा निर्बलों के शोषण की प्रवृत्ति समाज में धन एवं आय में अन्तराल पैदा करती है। भारत में शोषणकर्ताओं की आय शोषितों के मुकाबले काफी अधिक है।

सम्पत्ति एवं भूस्वामित्व की भावना- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति एवं भूस्वामित्व की असमानता आर्थिक विषमता का मुख्य घटक है। यह आर्थिक असमानता को बढ़ाने के साथसाथ - ती हैउसे स्थायी बना, क्योंकि वितरण का आधार व्यक्ति की कुशलता नहीं, वरन् साधनों की मात्रा से है, जितनी ही जिसके पास सम्पत्ति एवं पूँजी अधिक है उसको राष्ट्रीय आय में इतना ही अधिक भाग मिलता है। भारत में जागीरदारों, बड़ेबड़े- भूस्वामियों, उद्योगपतियों एवं सम्पत्ति स्वामियों को राष्ट्रीय आय में भूमिहीनों, श्रमिकों और सम्पत्तिहीनों से कहीं अधिक हिस्सा मिलता है जो आर्थिक विषमता को बढ़ाता है।

उत्तराधिकार- भारत प्रचलित उत्तराधिकार प्रथा से पैतृक सम्पत्ति उत्तराधिकारियों को मिलती रहती है। धनी घर में जन्म लेने वाले बच्चे भाग्यशाली होते हैं और चाँदी का चम्मच मुँह में लेकर जन्मते हैं

जबकि निर्धन घर में जन्म लेने वाले बच्चों को गरीबी, ऋणग्रस्तता एवं भुखमरी विरासत में मिलती हैं

प्रो टाजिंग ने ठीक ही कहा .है, ''उत्तराधिकार प्रथा ही पूँजी तथा आय अर्जित करने वाली सम्पत्तियों की असमानताओं को स्थायित्व प्रदान करती है और धनी तथा निर्धनों के बीच गहरी खाई की व्याख्या करती है।"

शहरी क्षेत्र में सम्पत्ति का निजी स्वामित्व . शहरी क्षेत्र में उद्योगों, व्यापार, भूमि, मकानों आदि सम्पत्ति पर निजी स्वामित्व पाया जाता है। कुछ लोगों के अधिकार में अधिकतर शहरी सम्पत्ति होती है। इसके विपरीत शहरों की अधिक जनसंख्या निर्धन होती है। शहरों में पूंजीपति, उद्योगों, व्यापार, यातायात तथा अन्य व्यवसायों में पूंजी का निवेश करके अधिक आय प्राप्त कर पाते हैं, परन्तु शहरों का मध्यम तथा निर्धन वर्ग अपना जीवन निर्वाह भी बड़ी कठिनाई से कर पाता है। यद्यपि यह वर्ग अधिक शिक्षित तथा योग्य होता है परन्तु पूंजी की कमी के कारण इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार सम्भव नहीं हो पाता। इसके फलस्वरूप शहरी क्षेत्र में भी आय तथा सम्पत्ति के वितरण की असमनता बनी रहती है।

उत्तराधिकार के नियम

व्यावसायिक प्रशिक्षण में असमानता

आय की असमानता का ज्ञान उपभोग व्यय के वितरण से किया जा सकता है। विभिन्न स्रोतों द्वारा एकत्रित किये गये उपभोग सम्बन्धी आंकड़े निम्न तालिका में प्रस्तुत किये गये।

तालिका 10**.5 भारत में उपभोग की असमानता के अनुमान**

व्यक्ति	**NCAER**	**N.S.S.**
ऊपर के 20 प्रतिशत	42.39	37.87
नीचे के 20 प्रतिशत	8.66	8.47

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से आभास होता है कि नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च **NCAER** के अनुसार सबसे ऊंचे वर्ग के 20 प्रतिशत व्यक्तियों का कुल उपभोग में 42.39 प्रतिशत भाग था सबसे निचले 20 प्रतिशत लोगों का केवल 8.66 प्रतिशत भाग था। इसी प्रकार राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे **N.S.S.**के अनुसार उपरोक्त वर्गों का कुल उपभोग में क्रमशः भाग 37.87 प्रतिशत तथा 8.47 प्रतिशत था। इन आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में आय की असमानता का विस्तार काफी व्यापक है।

उपरोक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप आर्थिक असमानता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि भारत में आय तथा सम्पत्ति की असमानताएं शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में पाई जाती है । योजनाओं की अवधि में इन असमानताओं में बढ़ने की प्रवृत्ति पाई गई है।

10.6 भारत में आर्थिक विषमताओंअसमानताओं को दूर करने के उपाय / और उपलब्धियाँ

भारत के संविधान में ही समानता का अधिकार है । समानता का कतई यह अभिप्राय नहीं है कि सबकी समान आय तथ सम्पत्ति हो, निरपेक्ष समानता न तो सम्भाव है और न वांछित ही। निपुण और अकुशल, योग्य और अयोग्य, श्रेष्ठ एवं सामान्य व्यक्ति की मजदूरी, वेतन एवं आय में कुछ अन्तर तो होना ही चाहिए, क्योंकि इसके बिना कुशल श्रमशक्ति का विकास सम्भव नहीं। अतः - आर्थिक विषमता में यथासम्भव कमी करना ही आर्थिक समानता का आदर्श है । आर्थिक असमानताओं को कम करने के लिए समाजवादी राष्ट्रों में तो उग्र उपायों का सहारा लिया जाताहै जिसमें निजी सम्पत्ति का बिना मुआवजा दिये राष्ट्रीयकरण कर लिया जाता है । सभी व्च्यक्तियों को जाति, लिंग एवं धर्म के भेदभाव किये बिना समान आय प्रदान की जा सकती है, किन्तु पूँजीवादी एवं मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिए उदार उपाय किये जाते हैं ।

इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक विषमताओं को यथासम्भव कम करने के लिए द्वि दिशा आक्रमण-(Two Pronged Attack) के उदार उपायों का सहारा लिया है । जहां एक और वैधानिक एवं प्रजातान्त्रिक तरीकों से धनी व्यक्तियों की आय और सम्पत्ति को कम किया जा रहा है वहां दूसरी ओर निर्धनों की आय, उत्पादन क्षमता, धनोपार्जन विधियों में वृद्धि की जा रही है । धनी एवं निर्धनों के अन्तराल को पाटने के लिए काफी उपाय किये गये हैं ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् से ही सरकार इस बात का प्रयत्न कर रही है कि देश में आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम किया जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार द्वारा अपनाई गई नीति की मुख्य विशेषताएं या सरकार द्वारा अपनाए गए मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं-:

भूमि सुधारर ग्रामीण क्षेत्र में आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम करने के लिए भूमि सुधा - किये गए हैं । भूमि सुधार सम्बन्धी नीति का मुख्य उद्देश्य भूमि स्वामित्व की असमानता में कमीत लाना है । इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार ने स्वतन्त्रता के शीघ्र पश्चात् ही जमत उन्मूलन सम्बन्धी कानून बना दिए थे। इसके फलस्वरूप जमींदारी समाप्त कर दी गई तथा जमींदारी की उच्चतम सीमा से अधिक भूमि का वितरण उस पर काश्त करने वाले काश्तकारों में कर दिया गया। कृषि भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के लिए कानून बनाए गए हैं । सीमा से ऊपर की जमीन उनके स्वामियों से ली जा रही है । इस जमीन का वितरण उन लोगों में किया जा रहा है जिनके

पास बहुत थोड़ी भूमि थी या जो भूमिहीन थे। परन्तु भारत में भूमि सुधार की प्रगति बहुत धीमी रही है। भूमि सुधार के अधिकतर उद्देश्य अधिक सफल नहीं हो सके हैं।

रोजगार में वृद्धि -भारत में आर्थिक विषमता एवं गरीबी मिटाने के लिए सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत पिछले 56 वर्षों में लगभग 26.5 करोड़ से अधिक अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया है। सातवीं योजना में 4 करोड़ अतिरिक्त मानक मानव वर्ष को रोजगार दिये जाने का लक्ष्य था। जहाँ पहली योजना में 75 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया वहां चौथी योजना में लगभग 170 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया। गरीबी हटाओ कार्यक्रम के अन्तर्गत भी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार तथा ग्रामीण भूमिहीन श्रमिक रोजगार गारन्टी योजना द्वारा रोजगार दिया जा रहा है। जवाहर रोजगार योजना के तहत भी गरीबी रेखा के नीचे 4-6 करोड़ परिवारों को रोजगार देने का लक्ष्य था। आठवीं योजना में रोजगार में 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य था। दसवीं योजना में 5 करोड़ आर्थिक रोजगार का लक्ष्य था।

सार्वजनिक क्षेत्र का विकाससरकार - ने सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी से विकास करने की नीति को अपनाया है। इस क्षेत्र के विकास के कई उद्देश्य आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम करना है। यह क्षेत्र निजी क्षेत्र के स्वामित्व के विस्तार को रोकने में सहायक ह। बैंकों के राष्ट्रीयकरण का भी यह एक मुख्य उद्देश्य है। इसके फलस्वरूप निजी लोगों के हाथ में धन तथा आय में केन्द्रीयकरण को रोकने तथा इस प्रकार समानता को बढ़ाने में मदद मिलेगी। किन्तु सरकार द्वारा जिस आदर्श की प्राप्ति हेतु सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार की नीति का अनुशरण किया गया उसमें असफलता ही प्राप्त हुई। अतः विवशतावश अब सार्वजनिक क्षेत्र की बजाय निजी क्षेत्र को विकसित किये जाने को अधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है।

जनकल्याण कार्यक्रमों में वृद्धि- भारत में आर्थिक विषमताओं को कम करने के लिए जनकल्याण कार्यक्रमों में निरन्तर वृद्धि की है ताकि गरीबों का आर्थिक स्तर ऊपर उठे। इस दिशा में समाज कल्याण विभाग द्वारा सहायता, अनुदान, बेकारी भत्ता, चिकित्सा सुविधायें, न्यायिक सहायता, निःशुल्क शिक्षा, 20- सूत्रीय कार्यक्रम द्वारा आय एवं रोजगार में वृद्धि महत्वपूर्ण है, किन्तु कुल व्यय जनसंख्या को देखते हुए नगण्य है, अतः स्थिति में विशेषकर सुधार नहीं हुआ है।

लघु तथा कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन -पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने की नीति को अपनाया गया है। इन उद्योगों को प्रोत्साहन देने से आय तथा सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण को रोकने में सहायता प्रापत होगी, सम्भावना है। इस नीति के फलस्वरूप बेरोजगार मजदूरों को रोजगार दिया जा सकेगा। इस प्रकार निर्धन लोगों की आय में वृद्धि होगी। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक असमानता कम होगी। कुटीर उद्योगों के विकास के फलस्वरूप निम्न आय वाले लोगों को अपनी आय में वृद्धि करने के अवसर प्राप्त हो सकेंगें।

जनसंख्या नियन्त्रण- गरीबों के अधिक बच्चे और कम आय आर्थिक विषमता को बढ़ाते हैं, अतः जनसंख्या पर नियंत्रण के लिए देश में छिले 56 वर्षों में 50,100 करोड़ रूव्यय किया गया है और . उसमें नसबन्दी, लूप तथा परिवार नियोजन पद्धतियों से लगभग 30 करोड़ बच्चों का जन्म रोका गया है। सातवीं योजना में भी परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया गया। भारत में जन्मदर - घटकर सातवीं योजना के अन्त तक30 प्रति हजार हो गई और आठवीं योजना में 23 से 25 प्रति हजार करने का लक्ष्य था किन्तु 2005 में जन्म दर-23.8 प्रति हजार रही।

एकाधिकारी तथा प्रतिरोधात्मक व्यापारिक व्यवहार पर नियंत्रणशहरी सम्पत्ति के - केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए सन्1969 में एकाधिकार तथा प्रतिरोधात्मक व्यापारिक अधिनियम (Monopolies and Restrictive Trade Practices Act 1969) पास किया गया है। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को रोकना है। सरकार ने इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए औद्योगिक लाइसेंस की नीति को भी अपनाया है। औद्योगिक लाइसेंस की नीति के द्वारा औद्योगिक तथा व्यावसायिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को कम करने के प्रयत्न किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में हजारी समिति, दत्त समिति आदि की रिपोर्टों से ज्ञात होता है, ये सभी उपाय अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सके हैं।

मुद्रा-स्फीति पर नियंत्रण- गरीबों को महंगाई की मार से बचाने तथा मुद्रास्फीति द्वारा साधनों का - हस्तान्तरण गरीबों से अमीरों के हित में रोकने के लिए हीनार्थ प्रबन्ध एवं फिजूलखर्ची पर नियंत्रण किया है। उत्पादक विनियोग को बढ़ावा दिया गया है। आवश्यकता की वस्तुओं के लिए गल्ले की 4.6 लाख दुकानें खोली गई हैं। अधिकतम मूल्यों पर नियन्त्रण रखा गया है। मुनाफाखोरी एवं चोरबाजारी को नियन्त्रित किया गया है। गरीबों को सस्ती गल्ले की दुकानों से आधी दर पर खाद्यान्न बेचने की व्यवस्था की जा रही है।

रोजगार तथा मजदूरी नीतियां- देश की बेरोजगार जनता को रोजगार प्रदान करके भी आय की असमानता को कम किया जा सकता है। पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार के अवसर अधिक से अधिक बढ़ाने पर जोर दिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में अनेक विशेष योजनाओं जैसे छोटे किसानों के विकास की एजेन्सी, सीमान्त किसान तथा कृषि श्रमिक एजेन्सी (MFALA), सूखा क्षेत्र कार्यक्रम , काम के बदले अनाज आदि को लागू किया गया था। पांचवी योजना के अन्त में देश में रोजगार के अवसर अधिक बढ़ाने के लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा छठी योजना में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम आरम्भ किया गया है। सातवीं योजना में जवाहर रोजगार योजना आरम्भ की गई थी। देश में रोजगार कार्यालयों की संख्या में भी काफी वृद्धि की गई है। परन्तु इन योजनाओं का आय तथा सम्पत्ति के वितरण पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। अभी हाल ही में सरकार द्वारा आर्थिक असमानता कम करने हेतु पूर्व में घोषित कार्यक्रमों के स्थान पर नवीन कार्यक्रमों की घोषणा की है। इन कार्यक्रमों में प्रमुख सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना आदि प्रमुख हैं।

सामाजिक सुधार -प्रदर्शनात्मक प्रभाव (Demonstration Effect) से प्रेरित होकर गरीब लोग जब धनिकों कीसी फिजूलखर्ची करें तो आर्थिक विष-मता में वृद्धि होती है। अतः सरकार ने मृत्यु-विवाह तथा दहेज की रोक के लिए -भोज एवं विवाहोत्सवों के भारी व्यय पर रोक लगा रखी हे। बाल अधिनियम पारित किये हैं, पर प्रभावी क्रियान्वयन नहीं हो पाया है।

'गरीबी हटाओ' कार्यक्रमों का क्रियान्वन- इस कार्यक्रम के अन्तर्गत समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (I.R.D.P.), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (N.R.E.P.), ग्रामीण भूमिहीन श्रमिक रोजगार गारण्टी योजना (R.L.G.E.P.) तथा 20-सूत्रीय कार्यक्रम लागू करके देश में लगभग 4.5 करोड़ लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाया है जबकि सातवीं योजना में लगभग 6 करोड़ लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने का लक्ष्य था। जवाहर रोजगार योजना से भी गरीबी मिटाने का प्रयास चालू है।

कीमत तथा वितरण नीतियां- आय की असमानता को कम करने के लिए कीमत तथा वितरण नीतियों को भी अपनाया गया है। उनका उद्देश्य समाज के निर्धन वर्ग को सहायता देना है। आवश्यकता की कई वस्तुओं जैसे चीनी, कपड़ा, कागज आदि के लिए सरकार ने दोहरी नीति अपनाई है। इसके फलस्वरूप् निर्धन वर्ग को सम्पन्न वर्ग की तुलना में वस्तुएं सस्ती प्राप्त होती हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा निर्धन वर्ग को आवश्कताओं की वस्तुएं कम कीमत पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। परन्तु इस उपाय का आय तथा सम्पत्ति की असमानता को दूर करने पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देश में आर्थिक विषमता को कम करने के प्रयास किये जा रहे हैं, पर देश में प्रजातान्त्रिक मित्रित अर्थव्यवस्था में काला धन, भ्रष्टाचार, भाईभतीजावाद-, रिश्वतखोरी, प्रशासनिक अकुशलता, गरीबी निवारण की असफलता तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति के अ-भाव में आर्थिक विषमता घटने के बजाय बढ़ती जा रही है। मुद्रास्फीति ने आय का वितरण अमीरों के पक्ष -में कर आर्थिक विषमताओं को और बढ़ाया है और आर्थिक विषमता की खाई निरन्तर चौड़ी होती जा रही है। अतः इन सामाजिक बुराईयों एवं आर्थिक विषमता के कारणों को जब तक प्रभावी ढंग से नियन्त्रित नहीं किया जाता, आर्थिक समानता की कल्पना एक राजनीतिक नारा बनकर रह जायेगी।

अभ्यास प्रश्न - 1

लघुस्तरीय

1.ग्रामीण क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की असमानता कितनी प्रकार की होती है ?

2.शहरी क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की असमानता कितनी प्रकार की होती है?

3.भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के चार कारण बताइये ?

4.भारत में आर्थिक विषमताओं असमानताओं को दूर करने के उपाय बताइये/?

10 .7 काले धन की परिभाषा, स्त्रोत तथा क्षेत्र

काले धन की समस्या में सौदों का आदान प्रदान छुपकर किया जाता है ताकि कानून के दायरे से ये सौदे बाहर रहें और इनमें होने वाली आय से सरकार को जो अंश मिलना चाहिए उससे वंचित हो जाती है, इसी को काले धन की समस्या कहते है। इसके विपरीत श्वेत धन वो धन होता है जिसका लेन देन खुले रूप से होता है ताकि कानुनी तौर पर जो अंश सरकार को प्राप्त होना है वह उसको मिल जाये। काले धन की समस्या के लिए कुछ बातें जिम्मेदार है। काला धन एक निश्चित क्षेत्र में उत्पन्न होता है और उसको चोरी छिपे ही खर्च किया जाता है। काले धन के इस क्षेत्र को समानान्तर अर्थव्यवस्था का नाम दिया जाता है, क्योंकि यह श्वेत धन के साथ साथ चलती है। इसका कुप्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर कितना पड़ता है उसको उसी समय समझा जा सकता है जब हम ये जानें कि देश में काला धन कितनी मात्रा में है। जब काला धन श्वेत धन के साथ साथ चलता है और इसकी मात्रा बढ़ती जाती है तो इससे देश को अत्यधिक हानि होती है और इस प्रकार काले धन को रखने वाले सरकारी निर्णय को भी प्रभावित करने लगते है। अतः ऐसे कदम उठाये जाने चाहिए कि जिससे इस प्रकार के प्रभाव को जहां तक संभव हो समाप्त किया जा सके। हमें सह समझना चाहिए चाहिए कि यह समस्या से देश में वित्तीय स्रोतों की कमी आ जाती है और विकास कार्यो के लिए धनाभाव हो जाता है।

दूसरे इससे समाज के विभिन्न वर्गो में आय विषमता बढ़ने के कारण समाज के विभिन्न वर्गो में संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है, जिसके कारण कुछ असामाजिक तत्व देश के धन के एक बड़े भाग को अनुचित रूप से हथिया कर बैठ जाते है।

काला धन की परिभाषा

वे धन जिस पर कर न चुकाया गया हो या अवैधानिक तरिके से आय सृजित की गई हो, जिसका खुलासा न किया जा सके या आयकर के अंतर्गत घोषित सम्पत्ति से अधिक सम्पत्ति को कालाधन कहते है। भारत कालाधन की मार से त्रस्त है, कालाधन के व्यवस्थित करने के उपाय होने के कारण भ्रष्टचार को बढ़ावा मिलता है और भ्रष्टाचार के कारण कालाधन बढ़ता है। कालेधन का अर्थव्यवस्था में प्रयोग से ही मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के सरकार के राजकोषीय एवं आरबीआई की मौद्रिक नीति निष्प्रभावी हो जाती है, जिससे अर्थव्यवस्था का सही दिशा में विकास करपाना तथा निर्धनों की स्थिति में सुधार नहीं हो पाता है।

काला धन, काली आय अथवा छिपाई हुई आय का प्रयोग उस आय अथवा धन के लिए किया जाता है जिसको कानून की नजर से बचाकर रखा जाता है। इसको चुरा छिपा कर रखा जाता है तथा इस पर कर नहीं दिया जाता। अतः इसका विकास तेजी से होता है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि इस प्रकार श्वेत अर्थव्यवस्था के साथ साथ समानान्तर अर्थव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है।

काले धन का उदय द्वितीय युद्ध काल में हुआ जबकि बाजार में वस्तुओं की कमी हो गई थी और व्यापारियों ने वस्तुओं को अधिक दाम पर बेचने के लिए उसका संग्रह करना शुरू कर दिया। दससे वस्तु आम आदमी को प्राप्त नहीं होती थी पर वहीं वस्तु अत्यधिक दाम पर चोरी छिपे धनी वर्ग को बेची जाती थी। इस प्रकार से प्राप्त आय को व्यापारियों ने चोरी छिपे रखना शुरू कर दिया ताकि वे कानून की नजर से दूर रहें और उस पर किसी प्रकार के कर के भुगतान से बचा जा सके।

कालेधन की उत्पत्ति के स्रोत:- काला धन तीन प्रकार से उत्पन्न होता है।

1. कर वंचन
2. कर न देना
3. श्वेत धन का चोरी छिपे इस्तेमाल।

इन तीनों ही से कर योग्य आय को छिपाया जाता है और सरकार को कर से वंचित रखा जाता है। धन सरकार को न मिलकर गलत तरीके के व्यापारियों के हाथ में जाता है, जो उसका अनुचित प्रयोग करते है तथा सरकार पर गलत असर डाल सकते है। इस प्रकार का लाभ कभी साथ बड़े बड़े सरकारी अधिकारी भी ले भागते है। अर्थात वे सरकारी संगठनों अथवा उद्योगों के धन को चुरा छिपाकर अपने कब्जे में कर लेते है।

1. कर वंचन - कर वंचन का अर्थ यह है कि इसके द्वारा कर देने वाला खातों में हेर-फेर करके कर कम देता है या कर देने से बच जाता है। कर वंचन के अनेक तरीके हो सकते है, जैसे बही खाते में हेर-फेर करना अथवा कई प्रकार के बही खाते रखना अथवा कृत्रिम नाम से खते खोलना जिसे बेनामी खाता कहते है। इसी प्रकार ठेके अथवा व्यापार कृत्रिम नाम से करना, व्यापारिक लेन देन को खाते में न दिखाना, सम्पत्ति का कम मूल्य आंकना तथा विदेशी विनियम के साथ हेर-फेर करना। इस प्रकार व्यापारी तथा काले धन का धंधा करने वाले समाज तथा सरकार को धोखा देते है। कभी साथ तो वे कई खाते विभिन्न बैंको में खोलते हैं ताकि आयकर अधिकारी को उसकी सही आय का पता न लग सके। हमारी बैंकिंग पद्धति कुछ इस प्रकार है, कि हम खाता खोलने वालों के बारे में पूरी जानकारी नहीं प्राप्त करते। विभिन्न बैंकों में प्रतिस्पर्धा के कारण भी ऐसा होता है कि किसी पार्टी के बारे में संदेह होने पर भी बैंक चुप्पी साध लेते है अथवा पार्टी इतनी प्रभाव शाली होती है कि वह उसके बारे में कुछ पूछ ताछ ता करता नहीं और यदि करता भी है तो उसे सही बात का पता नहीं चलता। कभी-2 ठेके विभिन्न नामों से लेकर ठेकेदार आयकर बचा जाता है। इसी प्रकार सम्पत्ति का मूल्य कम दिखाकर आयकर अधिकारियों को धोखा दिया जाता है। कभी कभी जमीन तथा मकान की बिक्री का एक भी भाग श्वेत धन के रूप में दिखाया जाता है और शेष चोरी छिपे दिया जाता है। उपर्युक्त केवल कुछ उदाहरण ही वंचन है।

2. कर न देना - इसका अर्थ ये है कि व्यापारी तथा सरकारी कर्मचारी कानून के अन्तर्गत अपनी आय को इस प्रकार दिखाता है कि उस पर या तो बहुत थोड़ा कर पड़ता है अथवा कर से वो पूरी तरह मुक्त हो जाता है। यहां पर व्यापारी आयकर कानून की कमियों से फायदा उठाता है अतः उसे प्रायः गैर कानूनी या अनैतिक नहीं समझा जाता। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार से है, जैसे धार्मिक ट्रस्ट खोलना, पति-पत्नि की आय को एक साथ न दिखाना। उपहार कर, मृत्यु कर इत्यादि से बचना। वैसे तो समाज में गरीबों के लिए, यतिमों के लिए, असहाय औरतों तथा बच्चों के लिए या धर्म कर्म के लिए धन व्यय करना, बहुत अच्छा माना गया है परन्तु अभाग्यवश आजकल इस प्रकार की संस्थायें चलाने के पीछे समाज सेवा का उद्देश्य उतना नहीं है जितना कि सरकार तथा समाज को धोखा देना। समाज के ठेकेदार तथा धर्मात्मा इसका प्रयोग कर से बचने के लिए कर रहे है। कभी कभी कर से बचने के लिए निजि कम्पनियां बनाई जाती है जिससे बीबी बच्चे तथा दूसरे परिवार के लोगा सदस्य या अंश धारक बना दिये जाते हैं। इस प्रकार के बहुत से कार्य करके व्यक्ति कर से बच जाता है।

3. श्वेत धन का चोरी छिपे प्रयोग - यहां पर हम ये देखेंगें कि किस प्रकार से जब बड़े बड़े ठेके दिये जाते है तो उसमें अत्यधिक भ्रष्टाचार छिपा रहता है जैसे ठेका सही दाम पर न देना, अत्यधिक कमीशन अथवा लेना। अतः श्वेत धन का प्रयोग सरकारी अधिकारियों को देकर ठेकेदार ठेके अथवा खाते के मूल्य बढ़ा देता है इससे सरकार को नुकसान होता है और सरकारी अधिकारी तथा ठेकेदार को लाभ होता है। हम सब जानते है कि ये पद्धति अत्यधिक प्रचलित है पर इसको रोकने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया जा रहा है। इसी में सामान की तस्करी तथा सामान का संग्रह व चोर बाजारी भी शामिल है। निम्नलिखित कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनके द्वारा काले धन का जन्म होता है।

i. मूल्यवान धातुओं तथा विलासिता की वस्तुओं की तस्करी,
ii. आम उपभोग की वस्तुओं का संग्रह,
iii. सट्टा मुनाफाखोरी तथा काला बाजार पद्धति,
iv. रिश्वत तथा कमीशन के द्वारा,
v. शहरी क्षेत्रों में चल तथा अचल सम्पत्ति में विनियोग,
vi. बेनामी खाते तथा बेनामी व्यापार,
vii. धार्मिक तथा सामाजिक सेवा ट्रस्ट,
viii. धनी वर्ग का विलासितापूर्ण रहन सहन।

10.8 काले धन का अनुमान

भारत वर्ष में कितना काला धन है इसका केवल एक ही अनुमान लगाया जा सकता है। क्योंकि इसकी सही मात्रा को जानना सरल नहीं। काले धन का लेन देन चोरी छिपे होता है अतः इसे सही तरीके से आंकना संभव नहीं। काले धन को सफेद में परिवर्तित किया जाता है और सफेद को फिर

काले में परिवर्तित कर लिया जाता है। कभी कभी तो केवल वस्तु विनियम से ही लेन देन हो जाता है। ऐसा इसलिए सम्भव है कि अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनका पूरी तरह से मौद्रीकरण नहीं है और न कच्चे माल के उत्पादन से अन्तिम उत्पादन तक की विभिन्न अवस्थाओं को समन्वित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार हमें मुख्य रूप से ये समझना है कि काले धन का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर किस प्रकारा पड़ता है? भारत में जहां प्रायः आवश्यक वस्तुओं का अभाव हो जाता है वहां इसके महत् को आसानी से समझा जा सकता है।

1. अंतर्राष्ट्रीय निगरानी संस्था ग्लोबल फाइनेंशियल इंटीग्रिटी के ताजा अध्ययन के अनुसार, 1948 से 2008 के बीच भारत से 462 अरब डॉलर की रकम काले धन के रूप में विदेश ले जाई गई। यह रकम 2008 के अंत में भारत के सकल घरेलू उत्पादन का करीब 16.6 प्रतिशत थी और 12 नवम्बर 2010 को भारत के करीब 300 अरब डॉलर के कुल विदेशी मुद्रा भंडार के डेढ़ गुना से ज्यादा है।
2. मैलकौम अधिशिसय्या का अनुमान: इसके अनुसार कुल राष्ट्रीय उत्पादन वर्तमान मूल्य पर यदि लिया जाये तो इसका लगभग 40 प्रतिशत काले धन के रूप में है।
3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के एक सर्वेक्षण के अनुसार काला धन वर्तमान मूल्य पर राष्ट्रीय उत्पादन का 50 प्रतिशत है।
4. कोल्डर के अनुसार कर वंचन की मात्रा 1956-57 में लगभग 200-300 करोड़ थी।
5. वांचू कमैटो के अनुसार, (1971 रिपोर्ट) 1961-62 में इसकी मात्रा 700 करोड़ थी, 1965-66 में 1000 करोड़ तथा 1968-69 में 1400 करोड़ थी।
6. डॉ रगनेकी के अनुसार, 1961-62 में इसकी मात्रा 1150 करोड़, 1965-66 में 2350 करोड़, तथा
7. 1968-69 में 2833 करोड़ और 1969-70 में 3080 करोड़ थी।
8. सूरज बी. गुप्ता के अनुमान के अनुसार वर्ष 1987-88 में काली मुद्रा की मात्रा 1,49,297 करोड़ रुपये थी जो जीएनपी का 50.7 प्रतिशत थी वित्त पर संसदीय स्टेन्डिग कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1994-95 में चालू मूल्यों पर काली मुद्रा की मात्रा 11,00,000 करोड़ थी जबकि इस वर्ष जीएनपी 843294 करोड़ थी इस प्रकार काली मुद्रा जीएनपी का 130 प्रतिशत थी अर्थात जीएनपी से भी अधिक हमारे देश में काली मुद्रा प्रचलित थी।

उपर्युक्त अनुमानों से यह विदित है कि देश में काले धन की समस्या अत्यंत विकराल है।

द ड्राइवर्स एंड डायनामिक्स ऑफ इल्लिसिट फाइनेंशियल फ्लोज फ्रॉम इंडिया (1948-2008) नामक इस अध्ययन को बड़े पैमाने पर अंजाम दिया गया है और इसमें 61 वर्षो की अवधि से जुडें तमाम कारकों और रूझानों पर गौर किया गया। जीएफआई अमेरिका की गैर सरकारी संस्था है, जो काले धन के खिलाफ विरोध कर रही है। भारत पर इस समय करीब 230 अरब डॉलर विदेशी कर्ज

है। इतना काला धन भारतीय इकनॉमी में जायज तरीके से रहता तो देश न केवल अपना कर्ज चुका पाता, बल्कि बाकी रकम से गरीबी उन्मूलन और आर्थिक विकास कार्यक्रमों को रफ्तार दे पाता। काले धन के बारे में यह जानकारी भारत में अपनाए गए उदारीकरण के मॉडल की चमक को कुछ फीकी की है। अध्ययन के अनुसार, देश से बाहर जाने वाले कुल काले धन का करीब 50 प्रतिशत हिस्सा साल 1991 के बाद ले जाया गया। जब भारत ने आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत हुई।

10.9 काले धन पर सरकार की पहल

करीब 25 साल बाद सरकार को एक बार फिर देश में काले धन का पता लगाने की सुध आई है। सरकार ने इस बारे में राष्ट्रीय संस्थानों से प्रस्ताव मांगे है। वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी ने चार संस्थाओं से कहा कि वे देश में काले धन के आंकड़े और उनकी प्रकृति का पता लगाने के बारे में सुझाव दें।

राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान (NIPFP), राष्ट्रीय सांख्यिकी संस्थान (ISI), नेशनल काउंसिल फॉर एप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च (NCER) तथा राष्ट्रीय वित्त प्रबंधन संस्थान (NIFM) को अपने प्रस्ताव सौपने को कहा गया है। केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड (CBDT), केंद्रीय उत्पादन एवं सीमा शुल्क बोर्ड (CBEC), प्रवर्तन निदेशालय और आर्थिक मामलों के विभाग और निर्यातकों के संगठन फियो के अधिकारी की भी मदद ली जाएगी। गृह मंत्रालय विदेशी मंत्रालय कैबिनेट सचिवालय और सांख्यिकी व कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय के अधिकारियों का भी सहयोग लिया जाएगा। संसद की वित्त पर एक स्थाई समिति ने पहले भी इस तरह का अध्ययन कराने का प्रस्ताव किया था। करीब 50 प्रतिशत काला धन वर्ष 1991 के बाद देश से बाहर गया है। जबकि 2000-2008 के बीच इसमें करीब एक तिहाई राशि देश से बाहर भेजी गई है। सर्वेक्षण के जरिए यह पता लगाया जाएगा कि देश में कितना काला धन है और क्या इस धन को देश या देश के बाहर जमा किया गया है। अध्ययन में यह भी पता लगाया जाएगा कि अर्थव्यवस्था के किस क्षेत्र में काले धन का सृजन सबसे ज्यादा हो रहा है और इससे देश की राष्ट्रीय सुरक्षा को क्या खतरा है।

10.10 काले धन को रोकने के उपाय

काले धन को रोकने की दो उपाय हैं

(1) प्रथम विधि के अनुसार काले धन रखने वाले लोगों को प्रोत्साहन देकर काले धन को बाहर निकालना। इसे नरम पद्धति भी कहा जा सकता है।

(2) दूसरी पद्धति के अनुसार कानून के द्वारा सख्ती करके काले धन को बाहर निकालना इसे दृढ़ पद्धति भी कहा जा सकता है।

i. नरम पद्धति: इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार है-

ii. स्वेच्छा से काले धन को बताने की योजना,
iii. धारक बॉडस द्वारा काले धन को बाहर निकालना,
iv. काले धन को सही दिश में प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना,
v. समझौते से काले धन को बाहर निकालना।

स्वेच्छा से काले धन का मात्रा को बताने की योजना काफी उत्साह वर्धक सिद्ध हुई है क्योंकि इसमें यह नहीं पूछा जाता कि व्यक्ति काला धन कहां से लाया है, अभाग्यवश इसमें अन्त में अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऐसा ही धारक बॉड योजना में है। इसमें भी कोई सफलता नहीं मिली। इसके असफल होने के मुख्य कारण से हो सकते है कि पहले तो इसमें ब्याज की दर बहुत कम है। दूसरे लोगों को डर था कि इस प्रकार उन्हें अन्ततः कर के जाल में फंसा लिया जायेगा। इसी प्रकार काले

धन को अन्य सामाजिक रूप से लाभदायक स्रोत जैसे सड़क तथा पुल बनाना आदि की योजना भी असफल हो गई क्योंकि इसमें लाभ कम और जोखिम अधिक था, समझौता योजना भी सफल न हो सकी क्योंकि बड़े बड़े कर दाता अन्ततः कर के जाल में नहीं आना चाहते।

दृढ़ उपाय:- इस प्रकार के उपाय मुख्य रूप से काल्डर ने सुझाये थे जैसे, एक न्यूनतम आय के ऊपर वाले कर दाताओं के खातों की अनिवार्य जांच करना।

प्रत्येक कर दाता के लिए स्थायी खता संख्या देना, कर अधिकारियों की शक्ति को बढ़ाना तथा बही खातों के निरीक्षण में अथवा उनके जब्त कर लेने में पूर्ण छूट देना तथा उन व्यक्तियों पर जो दोषी पाये जायें जुर्माना लगाना और उनका आम जनता में प्रचार करके अन्य लोगों को डराना इत्यादि।

इसी प्रकार की सिफारिश बांचू कमैटी ने की थी। इन दौनों के ही अनुसार एक निश्चित आय के ऊपर वाले करदाताओं के खातों का अनिवार्य रूप से निरीक्षण किया जाना चाहिए। अथवा ये निरीक्षण तथा आडिट चार्टड एकाउन्टेन्ट के द्वारा किया जाना चाहिए इस संम्बध में न्यूनतम आय सीमा एक लाख से पांच लाख तक सुझाई गई थी।

इस प्रकार के प्रयास किये गये थे कि चार्टड एकाउन्टेंन्ट इस कार्य में मदद करेगें उन पर बड़े बड़े करदाताओं का प्रभाव न पड़े और इसी लिए सरकार ने उनको दिये जाने वाले पारिश्रमिक का एक भाग स्वंय वहन करने की घोषणा की। काल्डार का ये विचार था कि भारी जुर्माने और जनता में बदनामी का असर करदाताओं पर अत्यधिक पड़ेगा। और कर की चोरी करने वाले कर देने को तैयार हो जायेंगे। परन्तु इसके लिए कर अधिकारियों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिए। उनमें कर की चोरी करने वालों पर छापा मारने की क्षमता तथा हिम्मत होनी चाहिए। साथ ही साथ उनमें एक सीमा तक ईमानदारी भी होनी चाहिए, इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि इस कार्य को ईमानदारी से किया जाये तो पर्याप्त काला धन बाहर लाया जा सकता है और समस्या का समाधान किया जा सकता है। परन्तु जैसा की हम जानते है कि वर्तमान परिस्थितियों में जहां कर अधिकारियों की कार्य क्षमता तथा

ईमानदारी का स्तर नीचा है वहां पूर्ण सफलता मिलने में कठिनाई होती है। अभाग्यवश राजनीतिज्ञ भी इसके भागी हो जाते है और इस प्रकार वे भी इस योजना के असफल होने के जिम्मेदार हैं। शायद लोक आयुक्त कि नियुक्ति से तथा हर सरकारी अधिकारी की आय व सम्पत्ति का ब्यौरा लेकर इस क्षेत्र में कुछ किया जा सकता है।

कालाधन (बजट 2012-2013)

पिछले वर्ष काले धन के सृजन और उसके चलन की बुराई तथा भारत के बाहर इसके गैर कानूनी अंतरण की समस्या का सामना करने के लिए एक मंच आयामी कार्यनीति को रेखांकित किया गया था। सरकार ने इस कार्यनीति को अमल में लाने के लिए सक्रिय कदम उठाए है। इसके फलस्वरूपः

1. 82 दोहरे कराधान परिहार करार (डीटीएए) और 17 कर सूचना आदान प्रदान करारों (टीआईई) को अंतिम रूप दिया गया है और भारतीयों द्वारा विदेशों में धारित बैंक खातों और परिसंपत्तियों के संबन्ध में सूचना प्राप्त होना शुरू हो चुकी है। कुछ मामलों में अभियोजन शुरू किया जाएगा।

2. संधि किए गये देशों के साथ कर सूचना के शीघ्र आदान-प्रदान हेतु समर्पित सूचना आदान-प्रदान प्रकोष्ठ सीबीडीटी में कार्य कर रहा है।

3. भारत कर मामलों में पारस्परिक प्रशासनिक सहायता संबंधी बहुपक्षीय सम्मेलन का 33वां हस्ताक्षरकर्ता देश बन गया है।

4. सीबीडीटी में आयकर अपराधिक अन्वेषण निदेशालय की स्थापना की गई है।

ससंद के वर्तमान सत्र में काले धन पर सदन में एक श्वेत पत्र प्रस्तुत करने का प्रस्ताव है।

सरकारी अधिप्राप्ति कानून

सरकार एक सरकारी अधिप्राप्ति कानून को अधिनियमित करने के प्रति वचनबद्ध है ताकि सरकारी खरीद में विश्वास बढ़ाया जा सके और इस प्रक्रिया में पारदर्शिता और कार्यदक्षता सुनिश्चित

की जा सके। इस संम्बन्ध में संसद के बजट सत्र में विधेयक लाया जाएगा। भ्रष्टाचार रोधी ढांचा मजबूत करने के लिए निम्नलिखित विधायी उपाय अधिनियम के विभिन्न चरणों में है।

1. धन शोधन रोकथाम (संशोधन) विधेयक, 2011 संसद में प्रस्तुत किया गया है, ताकि इस अधिनियम के कतिपय उपबंध वैश्विक मानकों के अनुरूप हों।

2. बेनामी लेन-देन (निषेध) विधेयक, 2011 की वित्त संबंधी स्थायी समिति द्वारा जांच की जा रही है। यह बेनामी लेन-देन (निषेध)अधिनियम, 1988 का स्थान लेगा।

3. राष्ट्रीय स्वापक और मनोसुख सामाग्री (संशोधन) विधेयक, 2011 संसद में प्रस्तुत किया गया है, ताकि स्वापक दवा तथा मनोसुख की सामाग्री संबंधी राष्ट्रीय नीति को अमल में लाने के कानूनी उपबंधों को मजबूती प्रदान की जा सके।

10.11 काले धन की वृद्धि के प्रभाव

काले धन से होने वाले वित्तीय प्रभाव:- ये होते है कि विभिन्न राज्यों या सरकार की आय घट जाती है और इनके विकास कार्यो के लिए धनाभाव हो जाता है। इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र जिसका महत्व अत्यधिक है उसके लिए भी धनाभाव हो जाता है। इस प्रकार देश महत्वपूर्ण सेवा योजना को पूरा नहीं कर पाता अथवा कुछ आवश्यक पूँजीगत वस्तुयें प्राप्त नहीं करता। इसका कुप्रभाव आधुनिक तकनीक पर भी पड़ता है। एक प्रकार से हम इसी कारण दूसरे देशों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लेने के लिए बाध्य हो जाते है ताकि आवश्यक विनियोगों के लिए धन की कमी को पूरा किया जा सके। अभाग्यवश हमारे निर्यात इतने नहीं है कि हम विदेशी ऋण के भार को आसानी से वहन कर सकें। अतः विदेशी ऋण का भार हमारी अर्थव्यवस्था पर दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, और ऋण जाल की समस्या उत्पन्न हो गई है। इस कमी को पूरा करने के लिए आधुनिक तकनीक के आयात के लिए छूट देनी पड़ी। इसका भी प्रभाव देश में बहुत अच्छा नहीं पड़ा। और इस संम्बध में काफी वाद विवाद उत्पन्न हो गया कि बाहरी तकनीक को हम किस हद तक बढ़ावा दें। एक और प्रभाव इसका ये हुआ कि हमारे सार्वजनिक उद्योगों की लागत बढ़ गई है और हमारी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति घट गई है।

कर चोरी के कारण सरकार को आंतरिक प्रशासन के लिए भी धनाभाव हो जाता है जिसके कारण सरकार को आंतरिक ऋण लेना पड़ता है। और इस प्रकार इससे उत्पन्न होंने वाली कई प्रकार की बुराइयों को झेलना पड़ता है जैसे जब इस धन का प्रयोग अनुत्पादक कार्यो के लिए किया जाता है तो देश में मुद्रा स्फीति की दर बढ़ने लगती है। यदि एक प्रकार से देखा जाये तो मुद्रा स्फीति का एक प्रमुख कारण काला धन है।

नियोजन की प्राथमिकता पर प्रभाव:- हमारे नियोजन का प्रमुख उद्देश्य आय विषमता को दूर करके गरीबी तथा बेकारी की समस्या को सुलझाना है। इसके लिए सरकार को पर्याप्त धन की

आवश्यकता होती है ताकि आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन किया जाये और नये 2 रोजगार के स्रोत खोले जायें। परन्तु जब देश में धन का एक बड़ा भाग चोरी छिपे कुछ लोगों के हाथ में हैं जो उसे अपनी व्यक्तिगत विलासिता पर व्यय करते है तो निश्चिय ही राष्ट्र के पास अपनी उपर्युक्त योजनाओं के लिए धनाभाव हो जाता है। काले धन से धनाभाव बढ़ता है तथा मुद्रा स्फीति भी। कुछ लोग बड़े2 बंगलों में विलासिता की जिंदगी गुजारते है जबकि करोड़ों लोग आवश्यक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते।

राजनैतिक ढांचे में भ्रष्टाचार:- काले धन के कारण देश के राजनैतिक ढ़ाचे में भी भ्रष्टाचार उत्पन्न हो जाता है क्योंकि ये बड़े-2 धनवान राजनीतिक को तो ख्रीद लेते है या उन पर अत्यधिक प्रभाव बना लेते है। अभाग्यवश हमारे राजनीतिक अपने ईमानदारी के स्तर को एक निश्चित स्तर तक बनाये रखने में असफल रहे है। यही नहीं ऐसा भी देखा गया है कि कभी कभी तो कानून के रखवालों को भी इनके सामने झुकना पड़ता है। पैसे में बड़ी शक्ति है और ये लोग इसे समझते है कि इससे किसी को भी अपने वश में किया जा सकता है और इन उद्देश्यों में ये लोग किसी हद तक सुल भी हुये है।

इस प्रकार काले धन के प्रभाव अत्यंत विनाशकारी है।

अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के अनुमान के मुताबिक, मनी लांउडरिंग कारोबार दुनिया के कुल जीडीपी के लगभग 2 से 5 प्रतिशत (हर साल 800 अरब डॉलर से 2 लाख करोड़ डॉलर के बीच) हो सकता है। भारत को हाल ही में फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स की सदस्यता दी गई है।

10.12 फाइनेंशियल एक्शन टॉस्क फोर्स फत्फ

बहुराष्ट्रीय 'फाइनेंशियल एक्शन टॉस्क फोर्स' एक अंतर्सरकारी संगठन है। 1978 में इसकी स्थापना विश्व के सात बड़े औद्योगिक देशों (जी-7) ने मनी लांडरिंग और टेरर फाइनेंसिंग के खिलाफ लाड़ाई के लिए नीतियां तैयार करने के उद्देश्य से की थी। एफएटीफ ने कहा कि जीन देशों में भारत संधि मजबूत करने के प्रयास कर रहा है। क्योंकि इन देशों के सहयोग के चलते हवाला ऑपरेटरों (कालाधन विदेश में भेजने और आतंकियों को धन देने वाले लोग) को पेकड़ने में सरकार को बाधा आ रही है। 36 देशों का एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है। जो मनी लांड्रिग और आतंकी संगठनों को फंडिंग रोकने के लिए बनाया गया है। मार्च 2010 में भारत को इसकी सदस्यता मिली है। भारत 4 साल तक पर्यवेक्षक रहने के बाद यह संस्था का पूर्ण सदस्य हो गया है। एफएटीएफ के 40◌ 9 सिद्धांत है जो मनी लाउंडरिंग पर अंकुश लगाने के लिए पॉलिसी बनाने और उसे बढ़ावा देने की जिम्मेदारी ली है। इन सिद्धान्तों का पालन किसी वित्तीय सेवा देने वाले संस्थान के लिए जरूरत बन गई है। इसके अलावा एफएटीएफ, विश्व बैंक और आईएमएफ करेगा। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फत्फ की अनुशंसा का काफी महत्व दिया जाता है। नकली भारतीय नोट छापने के मामले में भारत अब पाकिस्तान को अंतर्राष्ट्रीय मंच पर बेनकाब करेगा। यह मुद्दा भारत फत्फ (फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्से-एफएटीएफ) में उठाने के बाद आईएमएफ और विश्व बैंक में भी उठाएगा।

फत्फ की सदस्यता का महत्व:-एफएटीएफ की सदस्यता से भारत को इंटरनैशनल फाइनेंस के प्लेटफॉर्म पर बड़ी शक्ति बनने की अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने में मद्द मिलेगी। इससे उसे आतंकवाद के खिलाफ संघर्ष के लिए जरूरी इंफ्रास्ट्रक्चर तैयार करने, आतंकवादियों को मिलने वाले फंड का पता लगाने, मनी लाउडरिंग की जांच करने और आतंकवादियों को फंड मुहैया कराने वाले दोषियों का पता लगाने में मद्द मिलेगी। इससे भारत को मनी लाउंडरिंग और आतंकवादियों को

फंडिग पर ताजा हालात की जानकारी मिलेगी। इससे वित्तीय व्यवस्था में संगठित आपराधिक समूहों की घुसपैठ या दुरूपयोग की आशंका को खत्म करते हुए अधिक पारदर्शी और स्थिति वित्तीय व्यवस्था कायम करने में मदद मिलेगी। आर्थिक वृद्धि की तेज और टिकाऊ रफ्तार और व्यापक भौगोलिक फैलाव के चलते भारत के सामने मनी लाउंडरिंग और आतंकवादियों की फंडिंग के जोखिम संबंधी समस्याएं बढ़ी है। इसे देखते हुए भारत के लिए फत्फ की सदस्यता का महत्व काफी बढ़ गया है। भारत में मनी लाउंडरिंग का सबसे बड़ा स्रोत कई तरह की आपराधिक गतिविधियां है। इनमें वित्तीय जालसाजी, जाली नोटों का कारोबार, नशीले पदार्थ और मानव तस्करी और भ्रष्टचार शामिल है।

अभ्यास प्रश्न - 2

लघुस्तरीय

1. काले धन के अनुमान किन प्रवृत्तियों की और संकेत करते है ?
2. काले धन का राज्य के आर्थिक स्रोतों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
3. काला धन देश में आय विषमताओं को बढ़ाता है ऐसा कहा जाता है। काला धन इसे किस प्रकार बढ़ता है?
4. फाइनेंशियल एक्शन टॉस्क फोर्स पर टिप्पणी लिखिए ?

10.13सांराश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था है। अर्थव्यवस्था को आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाए इसलिए नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना गया। तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या आर्थिक असमानता एवं समानान्तर अर्थव्यवस्था असमानता के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगें।

10.14 शब्दावली

उदारीकरण: अर्थव्यवस्था को अनावश्यक प्रतिबन्धा से मुक्त करके अधिक प्रतियोगी बनाना है। आर्थिक उदारीकरण का अर्थ हैसंबन्धी आर्थिक निर्णय ले उद्योग एवं व्यापार -ने की स्वतंत्रता।

निजीकरण: निजीकरण एक ऐसी सामान्य प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत सरकारी व सार्वजनिक उद्यमों के संचालन, स्वामित्व और नियंत्रण में निजी क्षेत्र की भूमिका में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से है।

भूमण्डलीकरण: भूमण्डलीकरण से तात्पर्य देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अन्य अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किए जाने से है।

आर्थिक संवृद्धि: प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को संवृद्धि कहते हैं।

आर्थिक विकास: सामाजिक न्याय के साथ संवृद्धि को आर्थिक विकास कहते हैं।

प्रिवेंशन ऑफ मनी लॉड्रिंग एक्ट (पीएमएलए) - यह कानून प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) को आरोपी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और उसकी सम्पत्ति को जब्त करने का अधिकार देता है।

10.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

लघुस्तरीय 1.देखिए 10.4, 2. देखिए 10.4.2, 3. देखिए 10.5 , 4. देखिए 10.6।

अभ्यास प्रश्न 2

लघुस्तरीय 1.देखिए 10.7, 2. देखिए 10.8, 3. देखिए 10.9 , 4. देखिए 10.12 ।

10.16सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
2. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
3. Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation.
4. दत्त, रूद्र एवं के) सुन्दरम .एम.पी.2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एसचन्द एण्ड कम्पनी . लि0, नई दिल्ली।
5. लाल एस) लाल .के.एवं एस .एन.2010) भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वेक्षणतथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

10.17 सहायकउपयोग पाठ्य सामग्री/

- www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
- www.economywatch.com/database/agriculture.
- business.gov.in/indian_economy/agriculture
- आर्थिक सर्वेक्षण(विभिन्न अंक),वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना योजना आयोग (विभिन्न अंक), नई दिल्ली।

10.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में आर्थिक असमानता की समस्या का स्वरूप है? इसे दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ का विश्लेषण कीजिए।
2. आर्थिक असमानता कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।
3. आर्थिक असमानता किसी भी समाज के लिए अभिशाप है?इस समस्या को हल करने के लिए आप नियोजन में परिवर्तन हेतु क्या सुझाव देगें।
4. समान्तर अर्थव्यवस्था का अर्थ बतायें ? भारत वर्ष के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में इसका महत्व क्यों अत्यधिक हैं?
5. काले धन के प्रमुख स्रोतों का उल्लेख कीजिए? उन क्षेत्रों को भी बताइयें जहां काला धन प्रचलित है?

इकाई 11 - भारतीय कृषि की प्रकृति एवं महत्व

इकाई की रूपरेखा

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 भारतीय कृषि का प्रादुर्भाव एवं क्रमिक विकास
11.3 औपनिवेशिक काल में कृषि विकास
11.4 योजना काल में कृषि विकास
11.5 कृषि क्षेत्र के लिए आयोजन का लक्ष्य
11.6 कृषि में प्रयुक्त रणनीति
11.7 कृषि क्षेत्र में निवेश का ढ़ाँचा
    11.7.1 दसवीं योजना के आधीन कृषि क्षेत्र
    11.7.2 दसवी योजना की रणनीति और दिशा
    11.7.3 सामान्य आर्थिक विकास के लिए कृषि विकास अनिवार्य
    11.7.4 निम्न उत्पादकता के कारण
    11.7.5 विकास के लिए सुझाव
11.8 अभ्यास प्रश्न
11.9 सारांश
11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार है। भारतीय अर्थव्यवस्था के निवासियों के अस्तित्व और विकास का सम्बन्ध कृषि क्षेत्र से आदि काल से जुड़ा है। आधारिक व्यवसाय एवं अनिवार्य आवश्यकता पूर्ति का क्षेत्र होने के कारण सभी अर्थव्यवस्थाओं अथवा यह कहा जाये कि विश्व अर्थव्यवस्था के लिए यह अपरिहार्य है। यह समस्त मानव जाति के लिए जीवन का आधार है। विश्व में विभिन्न राष्ट्रों के मध्य पारस्परिक निर्भरता के कारण कुछ विकसित अर्थव्यवस्थाओं में कृषि का राष्ट्रीय आय, रोजगार एवं उत्पादन में सापेक्षिक योगदान अपेक्षाकृत कम है, परन्तु विकासशील एवं अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विकास का आधार कृषि ही है। इसी अनुरूप भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं का मुख्य आधार है।

अतः इस इकाई में आप भारतीय कृषि की प्रकृति एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व की जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई में हमने यह प्रयास किया कि आर्थिक दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के योगदान की पूर्ण एवं व्यापक जानकारी दे पायें।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप-

- कृषि विकास की क्रमिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भारतीय कृषि का आर्थिक अर्थव्यवस्था में क्या योगदान है इसकी पूर्ण व्याख्या कर सकेंगे।
- कृषि उत्पादकता के पिछड़ेपन का कारण जान पायेंगे।
- कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के उपाय जान पायेंगे।
- कृषि विकास के लिए क्या सुझाव दे सकते है, इसका निरूपण कर पायेंगे।
- पूर्ण रूप से भारतीय कृषि का स्वरूप, प्रकृति एवं महत्त्व जान सकेंगे।

11.2 कृषि का प्रादुर्भाव एवं क्रमिक विकास

पृथ्वी पर जीवन के क्रमिक विकास के साथ कृषि का भी विकास हुआ। सामान्यतः यह माना जाता है कि पृथ्वी पर लगभग 15 लाख वर्ष पूर्व मनुष्य जैसी रचना की उत्पत्ति हुयी थी। यह आदिमानव बंदर का विकसित रूप था जिसने सर्वप्रथम खड़े होकर चलना आरम्भ किया। इसलिये इसे 'होमोइरेक्ट्स' कहा गया।

कृषि की दृष्टि से नव-पाषाण काल अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। नव-पाषाण काल की अवधि 7500 वर्ष ईसा पूर्व से 1710 वर्ष ईसा पूर्व तक मानी जाती है। यह माना जाता है कि नव-पाषाण

काल में 7500 वर्ष ईसा पूर्व के आस-पास मध्य पूर्व (इजराइल, ईरान, इराक, जार्डन) में कृषि आरम्भ हुयी। इस प्रकार नव-पाषाण-काल को 'कृषि क्रान्ति' की अवधि माना जा सकता है। खेती आरम्भ होने पर मिट्टी के बर्तन भी बनाये जाने लगे। नव पाषाण-काल में मुख्य रूप से अनाजों (गेहूँ, जौ, धान, मक्का, कोदो) की खेती आरम्भ हुयी। यह सभी जंगली मूल वाले घासों अनाजों से विकसित की गयी। जंगली मूल की एवं कृषित अनाजों की फसलों में मुख्य अन्तर यह था कि जंगली मूल के अनाजों की फसल पकते ही उसके दाने गिर जाते थे जबकि कृषित अनाजों के दाने मड़ाई के बाद ही बाल से अलग होते हैं। विभिन्न स्थानों पर पायी गयी तत्कालीन मूर्तियों और भित्ति चित्रों पर अतीत की कृषि के चित्र अंकित है। इस अवधि में खेती के साथ-साथ पशुपालन भी आरम्भ हो गया था। पहले बकरी एवं भेड़ तथा उसके बाद गाय, बैल एवं सूअर पाले गये। अन्त में भारवाहक एवं शुष्क पशु पाले गये। इनसे खाद के अतिरिक्त खाद्य पदार्थ भी उपलब्ध होने लगा। इस प्रकार नव पाषाण-कालीन अर्थव्यवस्था की प्रमुख उपलब्धि अनाज उत्पादन, पशुओं का उपयोग और उनको पालतू बनाना तथा स्थिर ग्राम जीवन का विकास हैं। ताम्र-पाषाण कालीन दशा पहुँचने तक कई दिशाओं में क्रान्तिक परिवर्तन हुये। इस अवस्था में लोग पत्थर के साथ तांबे के औजारों का प्रयोग करने लगे थे। इस कालखण्ड में हल, पहिया और धात्विक विज्ञान की जानकारी हुयी। हल का आविष्कार लगभग 2900 वर्ष ईसा पूर्व सुमेरिया में हुआ।

सिन्धु घाटी की सभ्यता में कृषि ही समाज के आर्थिक जीवन का आधार थी। सिन्धु घाटी की सभ्यता के लोगों ने सुमेरिया के लोगों से हल का प्रयोग करना सीखा। उस समय हल पूर्णतः लकड़ी का बना था। इस काल में फसलों के सिंचाई की सम्यक व्यवस्था थी। सिन्धु घाटी में गेहूँ, जौ, मटर, तिल, सरसों, कपास, नारियल, नीबू, खजूर, तरबूज आदि की खेती होती थी। गाय-बैल, भैस, बकरा, भेड़, हाथी, सूअर, कुत्ते आदि पालतू पशु थे। तत्कालीन मुहरों पर गाय, बैल, भैंस आदि के चित्र उत्कीर्ण हैं। सिन्धु घाटी की सभ्यता में घोड़े के प्रयोग का उल्लेख नहीं है। लगभग 1800 वर्ष ईसा पूर्व भारत में मोटे अनाजों की खेती आरम्भ हुयी। मोटे अनाजों में ज्वार, बाजरा, रागी, कोदो, चीना, सवां आदि सम्मिलित है। भारत में दालों का उत्पादन कर्नाटक में 1780 से 1500 वर्ष ईसा पूर्व की अवधि में आरम्भ हुआ। ताम्र पाषाणकालीन अवस्था में ही सिल्क की खोज हुयी।

वैदिक काल (1500 से 1000 वर्ष ईसा पूव) और उत्तर वैदिक काल (1000 से 600 वर्ष ईसा पूर्व) में कृषि और पशुपालन व्यवसाय में नये आयाम जुड़े। वैदिक आर्यों की सभ्यता आरम्भ में चारागाह प्रधान थी। आर्य शब्द का आधारिक आशय 'जुताई' है। आर्य मूलतः कृषक रहे। वेदों में विविध कृषि कार्यों और कृषि में उपयोग आने वाले पशुओं का उल्लेख है। सबसे पुराने वैदिक ग्रन्थ ऋग्वेद में आलस्य छोड़कर कृषि कार्य करने पर बल दिया गया है। वैदिक काल में खेतों की जुताई के लिये दो से आठ बैलों की टीम से हल खींचे जाते थे। यदि हल में दो से चार तक ही बैल लगाये जाते थे तो उनसे पूरे दिन काम नहीं लिया जाता था।

काल क्रम में कृषि में नये आयाम जुड़ते रहे। मौर्य शासन काल (322 वर्ष ईसा पूर्व से 232 वर्ष ईसा पूर्व) में कृषि और पशुपालन क्षेत्र में प्रगति हुयी। इसके लिये विभिन्न सहायक प्रयास किये

गये लगभग 300 वर्ष ईसा पूर्व प्रकाशित चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रमुख सलाहकार कौटिल्य, की पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में कृषि के विविध पक्षों का उल्लेख किया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ुसलों की उपयुक्तता की दृष्टि से विवरण देते हुये उल्लेख किया गया है कि नदियों के किनारे की भूमियाँ कद्दू और कद्दू वर्गीय अन्य फसलों के लिये तथा जल प्लावित हो जाने वाली भूमियाँ गन्ना, पीपर और अंगूर के लिये उपयोगी होती है।

मौर्य शासन काल में पशु पालन पर विशेष जोर दिया गया। चारागाहों पर अतिक्रमण का निषेध था। सम्राट अशोक ने अपने शासन काल (274 से 237 वर्ष ईसा पूर्व) में वृक्ष संरक्षण पर औद्योगिक कृषि पर विशेष जोर दिया। अशोक के शासन काल में राजकीय नीति के रूप में प्रथम बार वृक्ष संरक्षण प्रणाली को संगठित आधार पर बढ़ावा दिया था। गुप्त काल (300 से 350 ए.डी.) में कला साहित्य और विज्ञान में उल्लेखनीय प्रगति हुयी। यह काल अवधि 'स्वर्ण युग' के रूप में प्रसिद्ध है।

प्राचीनकाल और मध्य काल में देश का विभिन्न भाग राजाओं द्वारा शासित था। उनकी रूचि बहुधा अपने शासन क्षेत्र की सीमा बढ़ाने, अन्य राजाओं पर आक्रमण करने, अपने शासन को सुदृढ़ करने और स्वयं की महत्ता तथा शौर्य को प्रदर्शित करने और यादगार बनवाने में विशेष थी। सामान्य आर्थिक विकास और कृषि हेतु उनके प्रयास प्रासंगिक ही हुआ करते थे। बाह्य आक्रमण और लूट-पाट से जनता के अपने प्रयास भी व्यर्थ ही जाती थी। आठवीं शताब्दी में अरबों ने सिंध और पंजाब पर आक्रमण किया। इनका देश की कृषि पर प्रभाव पड़ा।

फिरोजशाह ने 1355ई0 में पश्चिमी यमुना नहर खोदवाया फिरोजशाह नहर सिंचाई के आवश्यकताओं में से है। इससे यमुना और सतलज के बाढ़ की जल सिंचाई के लिये प्रयोग होने लगा तथा हिसार के क्षेत्र में सिंचाई सुविधा बढ़ी। विजयनगर के कृष्णदेव ने 1521 ई0 में कोटागल में बांध बनवाया जिससे वहाँ सिंचाई सुविधा निर्मित हुयी।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने 1772 ई0 में वारेन हेस्टिंग्स को कलकत्ता का गवर्नर और प्रथम गवर्नर जनरल (1772-1875 ई0) बनाया। उसने देश में कम्पनी शासन का आधार सुदृढ़ किया। वह स्वयं बुद्धिजीवी और विद्वता का पोषक था। खेती और बागवानी में उसकी विशेष रूचि थी। वह अपनी गृह वाटिका में खाली समय में अत्यन्त मनोयोग से काम करता था। उसने इंग्लैण्ड, बर्मा और हिमालय के सीमान्त क्षेत्र में कई पौधे मंगाकर भारत में प्रसार किया। गाय के प्रति उसकी अटूट श्रद्धा थी। पूर्वी भारत में 1769-70ई0 में भयानक अकाल पड़ा जिसमें लगभग 10 मिलियन लोगों की मौत भूख से हो गयी। वारेन हेस्टिंग ने अकालों का सामना करने के लिये अनाज गोदाम बनाने का कार्य किया ताकि अच्छी फसल के समय पूर्वोपाय के रूप में उसे भरा जा सके।

11.3 औपनिवेशिक काल में कृषि

स्वतंत्रता से पूर्व विदेशी शासकों ने अपनी औपनिवेशिक नीति के कारण कृषि विकास हेतु कोई ठोस प्रयास नहीं किया। चूँकि तत्कालीन दोषपूर्ण भूधारण पद्धतियों में वास्तविक काश्तकार

जोत का स्वामी न था। अतः वह जोत में किसी भी प्रकार के स्थायी सुधार के प्रति उदासीन था। वर्तमान शताब्दी के प्रारमिक वर्षों में ब्रिटिश सरकार ने कृषि विकास हेतु कुछ प्रयास किए। 1901 में गठित सिंचाई आयोग की सिफारिशों के आधार पर कम वर्षा वाले और सूखाग्रस्त क्षेत्रों के लिए सुरक्षात्मक सिंचाई सुविधाओं के प्रसार पर जोर दिया गया। सूखा आयोग की सिफारिशों के आधार पर सहकारी खास समिति अधिनियम, 1904 लागू हुआ। कृषि विकासार्थ सुझाव देने के लिए 1926 में नियुक्त शाही कृषि आयोग ने अपना प्रतिवेदन 1927 में प्रस्तुत किया जिसमें कृषि उत्पादन, पशुपालन, मत्स्यपालन, कृषि वित्त और सहकारिता के लिए उपयोगी सुझाव दिए गए। लेकिन खाद्यान्नों की हालत लगातार गिरती गईं अस्तु इसे सुधारने के लिए सरकार ने 1942 में 'खाद्य उत्पादन सभा' बुलाई जिसमें पारित प्रस्तावों के आधार पर 'अधिक अन्न उपजाओं' अभियान आरम्भ किया गया।

सम्पूर्ण अविभाजित भारत में समस्त कृषि वस्तुओं का उतपादन सूचकांक 1904-05 के 100 की तुलना में 1946-47 में बढ़कर 112.6 ही हो सका। लेकिन खाद्यान्नों का उत्पादन सूचकांक आधार वर्ष 1904-05 के 100 की तुलना में 1946-47 में घटकर 95.7 हो गया। खाद्यान्नों की उतपादिता में अत्यन्त गिरावट आई। खाद्यान्न फसलों का उत्पादिता सूचकांक 1904-05 के 100 की तुलना में 1946-47 में घटकर 84 प्रतिशत रह गया। इससे यह प्रतीत होता है कि कृषि उत्पादन में जो नाममात्र की वृद्धि हुई, वह मुख्यतः गैर-खाद्यान्नों की उपज बढ़ने के कारण हुई और यदि खाद्यान्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र में वृद्धि न हुई होती तो स्थिति अत्यन्त खराब हो गयी होती।

ब्रिटिश सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति के परिणामस्वरूप ग्रामीण उद्योगों का विनाश होता गया और कृषि पर जनसंख्या का दबाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया। इस नीति ने भारत को बचे पदार्थ की पूर्ति का स्रोत और ब्रिटेन में बनी वस्तुओं की मंडी बनाकर रख दिया। ब्रिटिश सरकार ने अपने शासन की जड़े मजबूत करने के लिए भू-स्वामित्व में मध्यस्थ प्रथा को प्रोत्साहित किया जिसमें वास्तविक काश्तकार भूमि का स्वामी न था।

11.4 योजना काल में कृषि विकास

प्रथम योजना (1951-56) के आरम्भ के समय कृषि की दशा अत्यन्त निराशाजनक और खराब थी। हमारे किसान महाजनों के ऋण-जाल में बुरी तरह ग्रस्त थे। उनकी जोतों का आकार बहुत छोटा था और वे बिखरी हुई थीं। उनके पास न तो पैसा ही था और न ही ज्ञान जिसके आधार पर वे उचित उपकरण, अच्छे बीज और रासायनिक खाद खरीद सके। कुछ क्षेत्रों को छोड़, अधिकतर क्षेत्रों के किसान वर्षा पर निर्भर थे और उन्हें मानसून की अनिश्चितता सहन करनी पड़ती थी। भूमि तथा श्रम की उत्पादिता लगातार कम हाती जा रही थी और यह विश्व में सबसे कम थी। बावजूद इसके कि हमारी जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत कृषि में कार्य करता था, देश खाद्यान्नों के उत्पादन में स्वावलम्बी नहीं था और इसे खाद्यान्नों के आयात पर निर्भर करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त

1947 में देश के विभाजन ने कृषि की स्थिति और बिगाड़ दी क्योंकि हमारे हिस्से में जनसंख्या का अधिक भाग और इसकी अपेक्षा भूमि का कम भाग प्राप्त हुआ।

11.5 कृषि क्षेत्र के लिए आयोजन का लक्ष्य

कृषि क्षेत्र के विकास का आयोजन करते हुए योजना आयोग के चार मुख्य उद्देश्य रखें:-

1. कृषि उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य सदैव रखा गया है और इसके लिए
    a. कृषि आधीन क्षेत्र में लगातार वृद्धि करना;
    b. प्रति हैक्टेयर उत्पाद (अर्थात् कृषि उत्पादिता) में वृद्धि के लिए, कृषि-आदानों जैसे सिंचाई, उन्नत बीजों, उर्वरकों आदि का अधिकाधिक प्रयोग करना;
    c. कृषि उत्पादन में वृद्धि करना।
2. रोजगार के अवसर बढ़ाना- कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ, कृषि क्षेत्र को रोजगार के अतिरिक्त अवसर कायम करने होंगे और इस प्रकार हमारे गाँवों में गरीब वर्गों की आय बढ़ानी होगी।
3. भूमि पर जनसंख्या के दबाव को कम करना- चूँकि जनसंख्या का भारी भाग भूमि पर निर्भर है, इसलिए कृषि क्षेत्र के आयोजन का एक और बुनियादी लक्ष्य कृषि पर काम करने वाले व्यक्तियों की संख्या को कम करना है। अतिरिक्त श्रमिकों को द्वितीयक एवं तृतीयक की ओर हस्तांतरित करना होगा।
4. ग्रामीण क्षेत्र में आय की असमानताओं को कम करना- सरकार को मुजारों के शोषण को समाप्त कर देना चाहिए और अतिरिक्त भूमि को छोटे तथा सीमान्त किसानों में इस प्रकार वितरित करना चाहिए कि इससे ग्राम क्षेत्र में कुछ हद तक समानता एवं न्याय काम हो सके।

ये चार उद्देश्य सामान्यतया सभी योजनाओं में अपनाए गए हैं, परन्तु व्यवहार में भारत में कृषि-आयोजन का अर्थ केवल कृषि-उत्पादन में वृद्धि ही समझा जाता है अर्थात् केवल पहले लक्ष्य की प्राप्ति और अन्य सभी उद्देश्यों की या तो उपेक्षा की गयी या उन्हें निम्न प्राथमिकता दी गयी।

11.6 कृषि में प्रयुक्त रणनीति

कृषि उत्पादन में वृद्धि एवं रोजगार में वृद्धि प्राप्त करने के लिए, पंचवर्षीय योजनाओं में विभिन्न कार्यक्रमों का उपयोग किया गया जैसे सामुदायिक विकास प्रोग्राम और कृषि-विस्तार सेवाओं को देशभर में फैलाना, सिंचाई सुविधाओं, उर्वरकों, कीटनाशकों, कृषि-मशीनरी, अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों का विस्तार। इसके साथ-साथ परिवहन, पावर, विपणन और संस्थानान्तमक उधार का विस्तार भी किया गया।

भूमि पर जनसंख्या के बदाव को कम करने के लिए योजना आयोग ने ग्राम-विकास की रणनीति अपनायी। इसके लिए ग्राम-क्षेत्रों में कृषि-आधारित उद्योग और हस्तशिल्प स्थापित किए गए। इसके साथ-साथ ग्रामीण परिवहन एवं संचार प्रोन्नत किया गया और लोगों को कृषि से उद्योगों और सेवा क्षेत्र की ओर जाने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

अन्तिम, ग्रामों में समानता एवं न्याय कायम करने के लिए योजना आयोग ने भू- सुधारों की रणनीति अपनायी जिसके अन्तर्गत जमीदारों जैसे बिचौलियों को समाप्त किया गया, काश्तकारों की सुरक्षा के लिए काश्तकारी कानून बनाया गया और जोत की अधिकतम सीमा को लागू करने से प्राप्त अतिरिक्त भूमि भूमिहीन श्रमिकों, छोटे तथा सीमान्त किसानों में बांटी गयी।

11.7 कृषि-क्षेत्र में निवेश का ढाँचा

तालिका: कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में सरकारी परिव्यय का ढाँचाकरोड़ रुपये

योजना	अवधि	कुल योजना परिव्यय	कृषि एवं सम्बद्ध कुलक्षेत्र	कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों का परिव्यय में प्रतिशत
प्रथम योजना	1951-56	1,960	600	31
दूसरी योजना	1956-61	4,670	950	20
तीसरी योजना	1961-66	8,580	1,750	21
चौथी योजना	1969-74	15,800	3,670	24
पाँचवीं योजना	1974-79	39,430	8,740	22
छठी योजना	1980-85	109,300	26,100	24
सातवीं योजना	1985-90	2,18,730	47,100	23
आठवींयोजना	1992-97	4,75,480	1,01,599	21
नौंवा योजना	1997-02	8,17,000	1,61,880	20
दसवीं योजना	2002-07	15,25,640	3,05,055	20

स्त्रोतः योजना, आयोग, विभिन्न योजना प्रलेख आर्थिक समीक्षा (2006-07)

आरम्भ में ''कृषि क्षेत्र'' के अर्थ की व्याख्या करना आवश्यक है। पहली तीन योजनाओं में, ''कृषि क्षेत्र'' में शामिल थे कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र (उद्यान-कृषि, पशुपालन और मत्स्य) एवं सिंचाई तथा बाढ़-नियंत्रण। उत्तरोत्तर योजनाओं में, ''ग्रामीण विकास'' और ''विशेष क्षेत्र कार्यक्रम'' जोड़े गए और सिंचाई एवं बाढ़-नियंत्रण को छोड़ दिया गया। तालिका 7 में, सभी योजनाओं के आँकड़ें इसी आधार पर प्रस्तुत किए गए हैं ताकि ये तुलनीय बन जाएं।

तालिका 8: विभिन्न योजनाओं में कृषि क्षेत्र की उपलब्धियाँ

योजना	खाद्यान्न		तिलहन		गन्ना		रूई		पटसन	
	लक्ष्य	वास्तविक	लक्ष्य	वास्तविक	लक्ष्य	वास्तविक	लक्ष्य	वास्तविक	लक्ष्य	वास्तविक
प्रथम योजना	620	670	55	56	630	600	42	40	54	42
दूसरी योजना	810	800	76	65	780	1,040	65	54	65	40
तीसरी योजना	1,000	720	98	64	1,000	1,270	70	56	62	45
चौथी योजना	1,290	1,040	105	87	1,500	1,400	80	58	74	62
पाँचवीं योजना	1,250	1,320	120	89	1,650	1,650	80	71	77	71
छठी योजना	1,540	1,460	111	130	2,150	1,700	92	85	91	78
सातवीं योजना	1,800	1,710	180	170	2,170	2,100	95	105	95	79
आठवीं योजना	2,100	1,990	230	250	2,750	2,770	140	143	95	110
नौंवा योजना	2,340	2,110	300	207	3,360	3,000	157	101	--	116

स्त्रोत: योजना प्रलेख एवं आर्थिक समीक्षाएं

नोट: 1. खाद्यान्नों, तिलहनों एवं गन्ने का उत्पादन लाख टन,

2. रूई का उत्पादन 180 किलोग्राम के लाख गट्ठे

3. पटसन का उत्पादन 170 किलोग्राम के लाख गट्ठे

11.7.1 दसवीं योजना के आधीन कृषि क्षेत्र

दसवीं योजना के दृष्टिपत्र में इस बात पर बल दिया गया कि कृषि-विकास भारत के आर्थिक विकास के लिए केन्द्रीय महत्त्व रखता है। दसवीं योजना ने कृषि-क्षेत्र में पिछली योजनाओं की सफलताओं और विफलताओं का उल्लेख किया और राष्ट्रीय कृषि नीति (2000) द्वारा बताए गए उद्यमों को अपनाया। इसमें राष्ट्रीय कृषि नीति (2000) द्वारा परिकल्पित प्रकार के विकास ऊपर बल दिया:

i. ऐसा विकास जो संसाधनों के कुशल प्रयोग और देश की भूमि, पानी और जैव-विविधता का संरक्षण करता है।
ii. समता के साथ विकास अर्थात् ऐसा विकास जो सभी औ किसानों तक फैला हुआ हो।

iii. ऐसा विकास जो माँग-संचालित हो और जो आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करते हुए कृषि वस्तुओं के निर्यात से प्राप्त होने वाले लाभों को अधिकतम करें।

iv. विकास जो तकनालॉजीय, पर्यावरणीय एवं आर्थिक दृष्टि से टिकाऊ हो।

राष्ट्रीय कृषि नीति (2000) ने कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत से अधिक वार्षिक वृद्धि-दर प्राप्त करने की परिकल्पना की। दसवीं योजना कृषि में 4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, दसवीं योजना ने यह कल्पना की:

a. दसवीं योजना के अन्त तक खाद्यान्नों की आवश्यकता: 2,300 लाख टन।
b. अनुमानित पूर्ति की स्थिति 2,250 से 2,430 लाख टन के बीच रहने की प्रत्याशा। खाद्यान्नों की इतनी आयोजित मात्रा को प्राप्त करने के लिए मक्का की कृषि पर पर्याप्त बल देना जिसके द्वारा छोटे अनाजों के उत्पादन को 430 से 480 लाख टन तक बढ़ाया जा सकता है; और
c. संकर चावल के वाणिज्यीकरण पर बड़े पैमाने पर बल देना और गेहूँ के लिए नयी उन्नत तकनालाजियों का प्रयोग करना।

11.7.2 दसवीं योजना की रणनीति और दिशा

दसवीं योजना ''क्षेत्र-विभेदक रणनीति'' जो कृषि-जलवायु परिस्थितियों और प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित थी और जो पहली बार नौंवी योजना से आरम्भ कर दी थी, को जारी रखना चाहिए थी।

प्राकृतिक संसाधनों का टिकाऊ विकास- दसवीं योजना देश में प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते हुए जैव-दबाव को स्वीकार किया, विशेषकर बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भूमि, पानी एवं जैव-विविधता पर। इसके नतीजे के तौर पर जोतों का विखण्डन बढ़ गया और इससे देश में भू-जोतों का आकार छोटा होता जा रहा है। इस समस्या के समाधान के लिए दसवीं योजना ने निम्नलिखित उपाय सुझाए:

क. कृषि भूमि का सुविधाजनक हस्तान्तरण ताकि किसान अपनी जोतों को सक्षम इकाइयों में परिवर्तित कर सकें।
ख. भूमि के पट्टे और ठेका-खेती को सुविधाजनक बनाना और इसके लिए भूमि का आन्तरिक पट्टेदारी और बाह्य पट्टेदारी को सुविधाजनक बनाना;
ग. लघु तथा सीमान्त जोतों की उत्पादिता बढाने के लिए उचित तकनालाजियों को विकसित करना। ध्यान रहे कि ये जोतें कुल जोतों का 78 प्रतिशत हैं और कुल कृषि-आधीन क्षेत्रफल के 32 प्रतिशत की काश्त करती है।

11.7.3 सामान्य आर्थिक विकास के लिए कृषि विकास अनिवार्य

भारत में कृषि के महत्त्व का एक कारण यह भी है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्रगति के लिए कृषि का विकास एक अनिवार्य शर्त हैं। रग्नर वर्क्स का कहना हे कि कृषि पर आधारित अतिरिक्त जनसंख्या को वहां से हटाकर नए आरम्भ किए गए उद्योगों में लगाया जाना चाहिए। नर्क्स का मत यह है कि इससे एक ओर कृषि-उत्पादिता में वृद्धि होगी और दूसरी ओर अतिरिक्त श्रम-शक्ति का उपयोग करके नई नई औद्योगिक इकाईयों की स्थापना की जा सकेगी।

आजकल नर्क्स-सिद्धान्त पर आलोचना के रूप में यह कहा गया है कि औद्योगीकरण का अर्थ कृषि क्षेत्र से श्रमिकों को हटाकर उद्योगों में लगा देना नहीं है। औद्योगीकरण के लिए विशेष प्रकार की अभिप्रेरणाएँ और मूल्य आवश्यक हैं, जिनका भारत जैसी कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था में विकास नहीं हो सकता। उक्त प्रेरणाओं और मूल्यों के विकास के लिए पहले कृषि में ही परिवर्तन किया जाना अनिवार्य है। दूसरे, विपण्य अतिरेक में काफी वृद्धि करनी पड़ेगी ताकि बढ़ती हुई शहरी आबादी की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके तथा उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध कराया जा सके। तीसरे, नए उद्योग चाहे कितनी ही तीव्र गति से क्यों न विकसित हो और सेवा क्षेत्र की तीव्र वृद्धि हो रही हो, वे भारत की लगातार बढ़ रही आबादी और श्रम-शक्ति को रोजगार दिलाने में पर्याप्त नहीं होगे। अतः अतिरिक्त रोजगार नए उद्योगों में खोजना होगा। परिणामतः कृषि की उन्नति आवश्यक होगी।

दूसरे शब्दों में सामान्य आर्थिक प्रगति के लिए या तो कृषि का विकास पहले करना होगा या फिर साथ-साथ। भारतीय आयोजकों को दूसरी और तीसरी योजना में यह कटु अनुभव प्राप्त हुआ कि कृषि क्षेत्र से वस्तुओं की अपेक्षित मात्रा में प्राप्ति न हो सकने के कारण कैसे सम्पूर्ण आयोजन-प्रक्रिया ही अस्त-व्यस्त होने लगती है।

अतः कृषि क्षेत्र में कोई भी परिवर्तन-सकारात्मक या नकारात्मक- अर्थव्यवस्था पर गुणक प्रभाव डालता है। कृषि क्षेत्र खाद्य-सुरक्षा बनाए रखने में मुख्य योगदान अदा करता है और इस प्रकार यह राष्ट्रीय सुरक्षा को भी मजबूत करता है। पारिस्थितिकीय संतुलन को कायम रखने के लिए, कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों का पोषणीय एवं संतुलित विकास आवश्यक है। कृषि के अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यभाग को स्वीकार करते हुए दसवीं योजना ने इस बात पर बल दिया है कि देश के त्वरित आर्थिक विकास के लिए कृषि-विकास का केन्द्रीय स्थान है। इसी के द्वारा आर्थिक विकास के लाभ विस्तृत रूप में फैलाए जा सकते है।

परिणामतः कृषि क्षेत्र में कोई भी परिवर्तन सकारात्मक या नकारात्मक-समग्र अर्थव्यवस्था पर गुणक प्रभाव डालेगा। 2002-03 के पश्चात्, भारतीय कृषि एक संकट से गुजर रही है- खाद्यान्न का भारी अतिरेक समाप्त हो गया है, गेहूँ का बड़ी मात्रा में आयात किया जा रहा है, और देशभर में

किसान आत्महात्याएँ कर रहे हैं। 100 करोड़ की जनसंख्या वाले देश को खाद्यान्नों एवं खाद्य-तेलों जैसी बुनियादी वस्तुओं के लिए आयात पर निर्भर रहना उचित नहीं। दसवीं योजना में इस बात पर पुरजोर बल दिया गया कि कृषि-क्षेत्र हमारी खाद्य-सुरक्षा और राष्ट्रीय सुरक्षा की दीवार का कार्य करता है।

दुर्भाग्य की बात यह है कि हमारी अधिकतर पंचवर्षीय योजनाएँ कृषि के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल हुई हैं। वास्तव में, कृषि को सापेक्षतः कम महत्त्व दिया गया और उद्योगों एवं सेवाओं को अधिक प्राथमिकता दी गई।

11.7.4 निम्न उत्पादिता के कारण

हम यह विवेचन कर चुके है कि भारत में विश्व के अन्य देशों के मुकाबले प्रति हैक्टर तथा प्रति श्रमिक कृषि उत्पादिता अभी भी कम है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षो में विशेषतया योजनाओं के दौरान स्थिति में काफी उन्नति हुई है फिर भी अभी काफी प्रगति करने की जरूरतहै। कृषि के पिछड़ेपन के कारणों का विश्लेषण उपयोगी होगा क्योंकि इससे सरकार द्वारा कृषि के सुधार के लिए अपनाए गये उपायों और नीतियों को समझने में सहायता मिलेगी। ये कारण तीन वर्षो में बॉटे जा सकते है - (क) सामान्य कारण, (ख) संस्थानात्मक कारण, और (ग) तकनीकी कारण।

सामान्य कारण-(1) **कृषि में लोगों को बहुत बड़ी संख्या का कार्यरत होना** - भारतीय कृषि की असली समस्या इस पर बहुत अधिक लोगों का निभर होना हैं। 1901 में कृषि पर निर्भर रहने वालों का अनुपात ज्यों का त्यों है। अर्थात् लगभग 70 प्रतिशत है। यद्यपि कृषि में लगी आबादी को प्रतिशत संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है किन्तु कुल संख्या को दृष्टि से इस शताब्दी के आरम्भ में 1.630 लाख के मुकाबले 1991 में यह 5.999 लाख हो गई। जनसंख्या में हुई स्वाभाविक वृद्वि को उद्योगों में खपाया नहीं जा सका। यही नही, पारम्परिक दस्तकारियों कमें लगे हुए व्यक्तियों ने भी उन्हें छोड़कर कृषि को ही अपनी आजीविका का साधन बना लिया। इस प्रकार कृषि पर निर्भर अत्यधिक जनसंख्या के परिणामस्वरूप खेत विकसित होकर छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गए, प्रति व्यक्ति भूमि की मात्रा कम हो गई और कृषि में अदृश्य बेरोजगारी प्रकट हुइ। भूमि पर जनसंख्या के निरन्तर दबाव के कारण प्रति किसान कृषि भूमि की मात्रा 1901 से 2001 तक कुल क्षेत्रफल में वृद्वि के बावजूद 0.43 हैक्टर से कम होकर 0.20 हैक्टर हो गई। स्पष्ट है कि जब तक भूमि पर जनसंख्या का यह दबाव कायम रहेगा, कृषि के विकास में अधिकतर सफलता प्राप्त होने की संभावना कम ही रहेगी।

(2) **अपर्याप्त फार्म** -भिन्न सेवाएँ भारतीय कृषि को फार्म-भिन्न सेवाओं अर्थात् वित्त और विपणन की व्यवस्था आदि की अपर्याप्तता के कारण परेशनी उठानी पड़ी है। या तो ये सुविधाएँ सर्वथा विद्धमान ही नहीं या बहुत महंगी है। उदाहरणतया, कुछ समय पहले तक कृषकों को रूपया उधार लेने के लिए गांव के साहूकारों पर निर्भर रहना पड़ता था जो अत्यधिक व्याज पर उधार देते थे। एक

बार रूपया उधार लेने पर किसान को अपनी जमीन तक बेचनी पड़ जाती थी और वह भूमिहीन मजदूर बन कर यह जाता था। वित्त केअन्य साधन अर्थात् सरकारी समितियाँ और सरकार भी वित्त उपलब्ध कराते थे। परन्तु वे महत्वहीन थे। इसी प्रकार कुछ समय पहले तक कृषकों को माल-संग्रह करने और विपणन की सुविधाएँ प्राप्त नही थी। बेचने के लिए माल मण्डी में लाए जाने पर थोक व्यापारियों और दलालों द्वारा ठगा जाना निश्चित था। इस प्रकार भारत में कृषि के पिछड़ेपन का महत्वपूर्ण कारण फार्म-भिन्न सेवाओं कीअपर्याप्तता है।

संस्थात्मक कारण-(1) **जोत का आकार** - भारत में जोत का औसत आकार बहुत छोटा है, अर्थात् पांच एकड़ से भी कम। ये जाते न केवल छोटी है, बल्कि छोटे-छोटे होते है कि उनमें साधारण हल भी नही चलाया जा सकता। खेतों के छोटा होने के कारण वैज्ञानिक विधि से खेती-बाड़ी सभंव नहीं है। परिणमतः समय,श्रम और पशुशक्ति का भारी अपव्यय होता हैं, सिचांई सुविधाओं के उचित उपयोग में कठिनाई होती हैं। किसानों में झगड़े और मुकदमेंबाजी की दुष्प्रवृत्तियाँ पैदा होती है तथा बाड़ लगाने की कठिनाई के कारण फसल को क्षति पहुंचती है। खेतों के छोटे-छोटे तथा खण्ड-खण्ड होने के कारण जनसंख्या का दबाब और उत्तराधिकार की वर्तमान प्रणाली है जिसके अन्तर्गत पूर्वजों की सम्पत्ति में सभी बेटों केा (अब बेटियों का भी) बराबर हिस्सा रहता है। खेतों का छोटा आकार भारतीय कृषि को भिन्न उत्पादिकता का एक कारण है।

(2) **भू-पट्टेवारी का ढॉचा** - कृषि की कम उत्पादिताका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण उचित प्रोत्साहन का अभाव रहा है। जमींदारी तथा भू-स्वामित्व की प्रणलियों के अन्तर्गत कृषक उस जमीन का स्वामी नहीं होता था जिसे वह जोतता था। जमीन का स्वामी उसेजमीन से निकाल सकता था। यद्यपि अब जमींदारी प्रथा का अन्त किया जा चुका हैं और विभिनन राज्यों में काश्तकारी-विधान लागू हो चुका है,फिर भी काश्तकारों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। काश्तकार भूमि का स्वामी नहीं है, उसे जमीन पर खेती करने के बदले भारी लगान देना पड़ता और उसकी स्थितिसुरक्षित नहीं है। क्योंकि जमींदार जब चाहे उसे हटा सकता है। ऐसी कठिन परिस्थितियों में किसान से कृषि उत्पादिता बढ़ाने की आशा नहीं की जा सकती।

देश में कुछ छोटे कृषक भू-स्वामी हैं हो कि कृषि उत्पादन का कशुलतापूर्वक संगठन कर सकते है, किन्तु खेतों के छोटे आकार और फार्म-भिन्न सेवाओं की अपर्याप्तता जैसी बाधाओं के कारण, अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पा रहे है।

(ग) तकनीक कारण - (1) **उत्पादन की पिछड़ी तकनीक** -भारतीय कृषक उत्पादन की पुरानी और अक्षम विधियाँ तथा तकनीकीका प्रयोग करता चला आ रहा है। निर्धन एवं परम्परावादी होने के कारण, वह पश्चिमी देशों में और जापान में बड़े पैमाने पर अपनाई गई आधुनिक तकनीकी को नहीं अपना सका है। कुछ समय में केवल सीमित रूप में ही वह इस्पात का हल, गन्ना पीड़ने का कोल्हू, छोटे पम्पिंग सेट, हथगाड़ी, कुदाल,बीज-वपित्र और चारा कांटने के यन्त्र आदि उन्नत उपकरणों का

प्रयोग करने लगा है। किन्तु भारत में खेती के काम में आने वाले उपकरणों में इन उन्नत उपकरणें की मात्रा अभी बहुत कम है।

उत्पादन में वृद्धि केवल तभी हो सकती है जब उपर्युक्त और पर्याप्त खाद प्रयोग में लाई जाए। भारत में खाद के प्रयोग की आवश्यकता और भी अधिक है क्योंकि लगातार खेतीबाड़ी किए जाने के कारण भूमि पूर्णतः निःसत्व हो चुकी है। उर्वरता को पुनः उन्नत करने और परती भूमि को उपयोग में लाने के लिए सभी प्रकार की खादों के प्रयोग की तुरन्त आवश्यकता है। किन्तु भारत में गोबर की खाद और रासायनिक उर्वरक दोनों की ही बहुत कमी है।

तात्पर्य यह है कि भारत में कृषि की निम्न उत्पादिता का एक महत्त्वपूर्ण कारण उत्पादन की घटिया तकनीक का प्रयोग करना है। जब तक किसानों को सुधरे उपकरणों के उपयोग की, सुधरे बीज बोने की, उपयुक्त और पर्याप्त खाद तथा उर्वरक के प्रयोग की ओर विनाशकारी कीड़ों तथा रोगों को प्रभावशाली ढंग से मिटाने की प्रेरणा नहीं दी जाती तब तक उत्पादिता बढ़ाने की आशा नहीं की जा सकती।

2. **अपर्याप्त सिंचाई सुविधाएँ-** भूमि, बीज, खाद और कृषि उतपादन आदि में सुधार का तब तक कोई लाभ नहीं जब तक इनके साथ-साथ सिंचाई की उचित और नियमित व्यवस्था न हो जाए। भारतीय कृषि के पिछड़ेपन का एक मूल कारण यह है कि हमारे देश के अधिकांश किसानों को वर्षा पर निर्भर रहना पड़ता था और कृत्रिम सिंचाई सुविधाएँ बहुत कम को उपलब्ध थी। उदाहरणतया, देश-विभाजन से पूर्व केवल 19 प्रतिशत भूमि में सिंचाई होती थी। योजनाकाल में बड़ी और छोटी सिंचाई योजनाओं के प्रबल विकास के बावजूद कुल खेती योग्य भूमि के केवल 33 प्रतिशत में ही सिंचाई होती है। इससे स्पष्ट है कि देश में कृत्रिम सिंचाई के लिए व्यापक क्षेत्र विद्यमान है।

इस विवेचना में निम्न उत्पादिता के जिन कारणों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उन्हें दूर करने के उपायों का संकेत भी मिलता है। कृषि उत्पादिता बढ़ाने का प्रयास करते हुए उक्त कारणों को दृष्टि में रखना उचित होगा। एक ओर इस बात का प्रयास किया जा रहा है कि ग्रामीण जनसंख्या के लिए वैकल्पिक रोजगार उपलब्ध कराए जाएं और व्यवसायिक ढाँचे में इस प्रकार परिवर्तन किया जाए कि केवल 60 प्रतिशत लोग ही कृषि पर निर्भर रह जाएँ। जहाँ तक तकनीकी कारणों का प्रश्न है, किसानों को उन्नत उपकरणों, बीजों, रासायनिक खादों आदि के लाभों से परिचित कराने तथा उनका उपयोग करने की दिशा में उत्साहवर्द्धक कार्य किया जा रहा है। सिंचाई सुविधाएँ तेजी से उपलब्ध कराई जा रही है। दोहरी फसल, अधिक श्रेष्ठ फसल चक्र, पौधों को लगने वाले कीड़ों और बीमारियों को मिटाने आदि की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है। अतः आशा है कि समय आने पर कृषि की भू-उत्पादिता और श्रम-उत्पादिता में वृद्धि हो जाएगी। जितनी जल्दी ऐसी हो सकेगा, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का उतना ही अधिक हित हो सकेगा।

11.7.5 विकास के लिए सुझाव-अगर हम चाहते है कि हमारे देश विकसित हो, तो दो ही बेहतरीन नुख्सें है- पहला, प्रति एकड़ कृषि उत्पादकता बढ़े और साथ-साथ प्रति एकड़ काम करने वालों की संख्या घटे। कहने का तात्पर्य यह है कि जरूरत से ज्यादा लोग यदि भूमि में कार्य करेंगे तो इस कुल उत्पादन क्षमता का प्रयोग नहीं हो पायेगा अतः प्रति एकड़ भूमि पर उतने ही श्रम का प्रयोग होना चाहिए जितनी आवश्यकता हो। इसके अतिरिक्त नयी तकनीकी की व्यवस्था, विनियोग की तत्परता, कृषि आगतो एवं किसी आपूर्ति की समुचित व्यवस्था, सुनियोजित कृषि मूल्य, और कृषि नीति की सार्थकता के माध्यम से कृषि विकास की योजना सफल की जा सकती है।

11.8 अभ्यास प्रश्न

11.8.1 बहुविकल्पीय प्रश्न

1.दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों का परिव्यय में कितना प्रतिशत हिस्सा है -(a) 20% (b) 25%

(c) 26% (d) 35%

उत्तर(a) 20%

2.भारत देश में दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक कितने टन खाद्यानों की आवश्यकता थी -

(a) 2400 लाख टन (b) 2500 लाख टन

(c) 2300 लाख टन (d) 2250 लाख टन

उत्तर(c) 2300 लाख टन

11.8.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1 - भारतीय कृषि इतनी पिछली दशा में क्यों?

प्रश्न 2 - कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए क्या कदम उठाये गये है?

11.9 सारांश

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कृषि की निर्वाहमयी व्यवसाय से लाभपूर्ण व्यवसाय में बदलने के लिए कृषि पर आश्रित जनसंख्या के जीवन स्तर में सुधार हेतु और देश के प्रमुख व्यवसाय कृषि को विविधीकृत करने के लिए संस्थागत और तकनीकी सुधारों की अपेक्षा है। शस्य प्रतिरूप ;बतवचचपदह चंजजमतदद्ध को प्रभावित करने वाले कारणों में आर्थिक कारण सर्वाधिक महत्वपर्ण होते हैं। भारत जैसे देश में जहां किसान दरिद्र एवं रूणीग्रस्त हैं तथा जिनके पास भूमि के बहुत छोटे खण्ड ही हैं, आर्थिक अभ्रिप्रेणाओं ;मबवदवउपब पदबमदजपअमेद्ध द्वारा फसलों के ढ़ॉचों को बदला जा सकता है। हाल ही के वर्षों का अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि जब कभी किसान को शस्य प्रतिरूप को बदलना युक्तिगत लगता है तो वह इस युक्ति को अवश्य ही स्वीकार करता है।

11.10संदर्भ ग्रन्थ

- Datt and Sundram, R., (2009), India Economy, 61st Edition, Suttam Chand & Sons.
- Prakash, B.A., (2009), The Indian Economy Since 1991 – Economic Reforms & Performances, Ist edition, Pearson Education.
- Rudra, Ashok, (1975), Indian Plan Models, Ist edition, Allied Publishers, Bombey.
- Mishra, S. K., and Puri, V. K., (2007), Problems of Indian Economy, Mimalaya Publishing House.
- OECD : A preliminary Assessment of the Impact of the Uruguay Round on Developing Countries, Paris. (1994).
- Govt. of India, Planning Commission, Tenth Five Year Plan, Vol-I
- Economic Survey, 2008-09.
- Economic Survey, 2009-10

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 - 'भारत के आर्थिक विकास में कृषि का अत्यधिक महत्व है।' इस कथन की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 2 - भारतीय कृषि की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए?

इकाई 12 - कृषि आगत

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 कृषि आगत
12.2.1 सिंचाई
12.2.2 भारत में सिंचाई के स्रोत
12.2.3 पंचवर्षीय योजनाओं के आधीन सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण
12.2.4 सिंचाई क्षमता का अल्प प्रयोग
12.2.5 बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएँ: एक वाद-विवाद
12.2.6 महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ
12.2.7 सहयोगी सिंचाई प्रबन्ध और जल-प्रयोक्ता संस्थाएँ
12.3 उर्वरक और खाद
12.3.1 उर्वरकों का उत्पादन
12.3.2 उर्वरकों का आयात
12.3.3 उर्वरकों का उपभोग
12.4 उन्नत बीज
12.5 कृषि का यन्त्रीकरण
12.5.1 कृषि यन्त्रीकरण के पक्ष में तर्क
12.5.2 यन्त्रीकरण के विरुद्ध तर्क
12.5.3 चयनात्मक यन्त्रीकरण योजना का उचित लक्ष्य
12.5.4 भारत में फार्म यन्त्रीकरण की प्रगति
12.6 अभ्यास प्रश्न
12.7 सारांश
12.8 संदर्भ ग्रन्थ
12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

आप सभी को यह भली प्रकार ज्ञात है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में ळक्च् की दृष्टि या उत्पादन की दृष्टि से भारतीय कृषि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु कृषि में उत्पादन के लिये कुछ लागत भी लगाना पड़ता है। आज की कृषि हद तक वैज्ञानिक प्रविधियों पर आधारित है, इसलिए कृषि आदानों व अवस्थापनाओं की सहायता आवश्यक है। इस सम्बन्ध में जल, उर्वरक एवं बीज आदि का प्रबन्धन आवश्यक है। इन कृषि आगतों के प्रयोग के विषय मं सभी पहलूओं को ध्याम में रखते हुए उन्हें प्रोत्साहित करना आवश्यक है। उपलब्ध आगतों की मात्र् उनका प्रबंधन भी कृषि उत्पाद में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः यह सम्पूर्ण इकाई में आप सभी कृषि आगतों की भूमिका एवं महत्व की जानकारी प्राप्त करेंगे।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यनोपरांत आप

- खेती के लिये अनिवार्य जल संसाधन एवं उसके उपयोग (सिंचाई) से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाएँ विवाद का विषय क्यों हैं? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त कर सकेंगे।
- योजनाकाल में सिंचाई की भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे।
- कृषि की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए उर्वरक एवं खाद की भूमिका की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- कृषि में प्रयोग की जाने वाले यंत्र् अर्थात् कृषि यन्त्रीकरण के मुख्य तथ्यों का विवेचना कर सकेंगे।

12.2 कृषि आगत

कृषि की दक्षता अर्थात् उत्पादन की प्रवृत्ति कुछ विशेष कृषि आगत पर निर्भर करती है। विकासशील कृषि के लिये अनुकूल संस्थानात्मक और संगठनात्मक संरचना आदि के अतिरिक्त कृषि आगत एवं विधियों में सुधार करना भी आवश्यक होता है।

कृषि के लिये कुछ महत्वपूर्ण आगतों की आवश्यकता है जिसमें कृषि के लिये सिंचाई, उर्वरक, बीज तथा मशीन आदि प्रमुख हैं।

12.2.1 सिंचाई

खेती के लिए जल अनिवार्य तत्व है। यह वर्षा द्वारा अथवा कृत्रिम सिंचाई से प्राप्त किया जाता है। जिन क्षेत्रों में वर्षा काफी और ठीक समय पर होती है, उनमें पानी को कोई समस्या नहीं है। किन्तु कुछ क्षेत्रों में वर्षा न केवल कम होती है अपितु अनिश्चित भी है। आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब और राजस्थान ऐसे प्रदेश हैं। इन क्षेत्रों में खेती के लिए कृत्रिम सिंचाई नितान्त आवश्यक है क्योंकि इसके बिना खेती सम्भव ही नहीं। कुछ क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा होने पर भी वर्ष भर में वर्षा के दिन बहुत थोड़े होते हैं। परिणामतः सारे वर्ष खेती नहीं हो सकती। इन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपल्ध होने से वर्ष में एक से अधिक फसल उगाने में सहायता मिलेगी। अन्त में चावल और गन्ना आदि कुछ ऐसी खाद्य और व्यापारिक फसलें हैं जिन्हें प्रचुर, नियमित और लगातार जल मिलना आवश्यक है। अधिक उपज के लिए केवल वर्षा पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। तात्पर्य यह है कि वर्षा काफी होने पर भी संभव है कि सारे वर्ष में समान और समुचित रूप में न हों तथा जहाँ वर्षा की मात्रा कम हो, वहाँ पानी न मिल सकने के कारण अधिक उत्पादन में बाधा पड़े। संक्षेप में पानी निरन्तर प्राप्त होता रहना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, कृषि के लिए सिंचाई अत्यावश्यक तत्व है। देश के विभिन्न भागों में वर्ष भर में एक न एक समय अकाल की सी स्थिति वर्तमान रहती है। इन क्षेत्रों को अकाल से बचाना आवश्य है। इसके अतिरिक्त दुहरी और यदि सम्भव हो सके तो तिहरी फसल उगाने तथा कृषि-उपज में वृद्धि कराने के लिए भी पानी प्रचुर मात्रा में निरन्तर उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है।

तालिका-1

वर्ष	**1950-51**	**2005-06**
1. नहरें	83 (39.7)	155 (25.8)
2. तालाब	36 (17.2)	20 (3.3)
3. कुएँ जिनमें ट्यूबवैल भी शामिल हैं	60 (28.7)	354 (58.8)
4. अन्य स्रोत	30 (14.4)	73 (12.1)
कुल	209 (100.0)	602 (100.0)

स्रोतः Central Statistical Organisation (CSO), Statistical Abstract 2007

नोट- ब्रैकिट में दिए गए आंकड़े कुल सिंचाई आधीन क्षेत्र का प्रतिशत हैं।

भारत में जहाँ 1950-51 में 209 लाख हैक्टेयर भूमि को कृत्रिम सिंचाई प्राप्त थी, वहाँ 2005-06 मं 602 लाख हैक्टेअर भूम को सिंचाई प्राप्त है। जाहिर है कि 55 वर्षों के दौरान सिंचाईं आधीन क्षेत्र में 188 प्रतिशत की वृद्धि हुई । इस प्रकार 1950-51 से 2005-06 के बीच सिंचाई आधीन क्षेत्रफल

की वार्षिक वृद्धि दर 2.1 प्रतिशत थी जो इस बात का संकेत करते है कि चाहे पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई को काफी महत्व दिया गया, फिर भी प्रगति बहुत धीमा रही है।

12.2.2 भारत में सिंचाई के स्रोत

तालिका-1 से स्पष्ट है कि जबकि 1050-51 में नहरें सिंचाई का सबसे बड़ा स्रोत थीं, अब इनका महत्व सापेक्ष दृष्टि से कम हो गया है। कुँए (जिनमें ट्यूबवैल भी शामिल है) 2005-06 में कुएँ लगभग 59 प्रतिशत सिंचाई उपलब्ध कराते थे। इनमें ट्यूबवैल अधिक महत्वपूर्ण बने जा रहे हैं और इनका भाग 34 प्रतिशत कर पहुँच गया है। नहरे दूसरा सिंचाई का प्रधान स्रोत हैं और उके द्वारा लगभग 26 प्रतिशत भूमि की सिंचाई की जाती है। सिंचाई के स्रोतों में तालाबों का महत्व गिर गया है और इसका भाग जो 1050-51 में 17.2 प्रतिशत था कम होकर 2005-06 में केवल 3.3 प्रतिशत हो गया है।

भारत में सिंचाई कार्यों को दो वर्गो में विभक्त किया गया है - बड़े सिंचाई कार्य और छोटे सिंचाई कार्य। 1978-79 से योजना आयोग ने सिंचाई परियोजनाओं का नया वर्गीकरण चालू किया है।

(क) बड़ीं सिंचाई योजनाएँ-इनमें वे परियोजनाएँ शामिल की जाती हैं जिनके नियन्त्रण-आधीन 10,000 हैक्टेअर से अधिक कृषि योग्य क्षेत्रफल हो।

(ख) मध्यम सिंचाई योजनाएँ-इनमें वे परियोजनाएँ शामिल की जाती हैं जिनके नियन्त्रण आधीन 2,000 से 10,000 हैक्टेअर कृषि योग्य क्षेत्रफल हो।

(ग) छोटी सिंचाई योजनाएँ-इनमें वे परियोजनाएँ शामिल की जाती हैं जिनके नियन्त्रण आधीन 2,000 हैक्टेअर तक क्षेत्रफल हो।

बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के निर्माण में अनेक तकनीकी और प्रशासनिक कठिनाइयाँ विद्यमान रहती हैं। किन्तु इन परियोजनाओं की क्षमता अधिक होती है, यहाँ तक कि इनसे लाखों एकड़ भूमि सींची जा सकती है। इनके कारण अकाल का खतरा पूर्णतया टल सकता है। इसके अतिरिक्त बड़ी सिंचाई परियोजनाएँ बहुउद्देश्यीय परियोजनाएँ होती हैं जिनका उद्देश्य सिंचाई के लिए पानी प्रदान करने के अतिरिक्त बाढ़ नियन्त्रण और नौचालन और जल-विद्युत का निर्माण करना भी होता है।

छोटी सिंचाई परियोजनाओं के मुख्य गुण यह है कि इनके लिए कम धन की आवश्यकता पड़ती है। इनका निर्माण कम समय में हो जाता है और कृषि -उत्पादन पर इनका प्रभाव तुरन्त प्रकट हो जाता है। शीघ्र फल प्राप्त करने की दष्टि से छोटी सिंचाई परियोजनाएँ बहुत उपयोगी होती हैं। अतः सरकार की वर्तमान नीति यह है कि बड़ी और छोटी दोंनो प्रकार की सिंचाई परियोजनाओं का संतुलित विकास किया जाए। छोटी सिंचाई योजनाओं द्वारा कुल सिंचित क्षेत्र के लगभग 59 प्रतिशत को पानी उपलब्ध कराया जाता है।

तालिका-2

वर्ष	बड़ी तथा मध्यम सिंचाई	छोटी सिंचाई	कुल सिंचाई
1950-51	97 (42.9)	129 (57.1)	226 (100.0)
1980-81	273 (46.5)	313 (53.5)	587 (100.0)
1999-2000	350 (36.8)	600 (63.2)	950 (100.0)
2006-07	420 (40.73)	610 (59.22)	1030 (100.0)
अन्ततोगत्वा क्षमता	590 (42.1)	810 (57.9)	1,400 (100.0)

नोट-ब्रैकिट में दिए गए आंकड़ों कुल सिंचाई आधीन क्षेत्र का प्रतिशत है।

स्रोत-आर्थिक समीक्षा (2008-09)

जब भारत ने 1950-51 में आयोजित आर्थिक विकास आरम्भ किया तो बड़ी तथा मध्यम सिंचाई के आधीन 97 लाख हैक्टेअर भूमि थी और छोटी सिंचाई के आधीन 129 लाख हैक्टेअर। इस प्रकार कुल मिलाकर 226 लाख हैक्टैअर भूमि को सिंचाई प्राप्त थी।

2001-2002 के अन्त तक बड़ी तथा मध्यिम सिंचाई के आधीन कुल क्षेत्र बढ़कर 371 लाख हैक्टेअर हो गया और छोटी सिंचाई के आधीन 569 लाख हैक्टेयर। कुल मिलाकर सिंचाई आधीन क्षेत्रफल 940 लाख हैक्टेअर था। भारत सिंचाई सुविधाओं की दृष्टि से विश्व में प्रथम स्थान रखता है।

सभी सिंचाई परियोजनाओं से अन्ततोगत्वा क्षमता 1,400 लाख हैक्टेअर आंकी गयी है। दीर्घकालीन उद्देश्य के रूप में इसे सन् 2010 तक प्राप्त किया जाएगा।

12.2.3 पंचवर्षीय योजनाओं के आधीन सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण -

नौंवीं योजना के अुसार, सिंचाई, कमान-क्षेत्र विकास और बाढ़ नियंत्रण पर (1996-97 की कीमतों पर) 2,31,387 करोड़ रुपये का कुल विनियोग किया गया। तालिका-3 में विभिन्न मदों के आधीन परिव्यय दिया गया है। विनियोग के ढांचे से 46 वर्ष की पूर्ण अवधि के दौरान एक विशिष्टसमानता को बोध होता है। बड़ी तथा मध्यम सिंचाई पर कुल विनियोग का लगभग 57 प्रतिशत छोटी सिंचाई पर 31-32 प्रतिशत, कमान-क्षेत्र विकास पर 5 से 7 प्रतिशत और बाढ़ नियंत्रण पर लगभग 5 प्रतिशत व्यय किया गया। विनियोग का यह ढांचा पहली छः योजना में पाया गया और सातवीं एवं आठवीं योजना में भी यही ढांचा बना रहा ।

तालिका-3

अवधि	बड़ी तथा मध्यम सिंचाई	छोटी सिंचाई	कमान-क्षेत्र विकास	बाढ़ नियन्त्रण	कुल
पहली छः योजनाएँ	72,000	39,779	6,538	7,245	1,25,562
(1951से 1985)	(57.3)	(31.7)	(5.2)	(5.8)	(100.0)
सातवीं योजना	21,207	11,897	2,763	1,789	37,566
(1985से 1990)	(56.4)	(31.4)	(7.4)	(4.8)	(100.0)
वार्षिक योजनाएं	8,125	4,510	922	686	14,243
(1990 से1992)	(57.0)	(31.7)	(6.5)	(4.8)	(100.0)
आठवीं योजना	31,058	17,302	3,163	2,493	54,016
(1992से 1997)	(57.5)	(32.0)	(5.9)	(4.6)	(100.0)
कुल	1,32,390	73,389	13,386	12,222	2,31,387
(1951से 1997)	(57.2)	(31.7)	(5.8)	(5.3)	(100.0)

स्रोत: योजना आयोग, नौंवी पंचवर्षीय योजना (1997-2002), खण्ड-2

इस विनियोग के परिणामस्वरूप 2006-07 तक सिंचित क्षेत्र के रूप में कायम की गयी क्षमता 1028 लाख हैक्टेअर और छोटी सिंचाई द्वारा 604 लाख हैक्टेअर योगदान दिया गया। बड़ी तथा मध्यम सिंचाई द्वारा 81 प्रतिशत क्षमता का उपयोग किया गया और छोटी सिंचाई द्वारा 87 प्रतिशत का। आर्थिक सर्वेक्षण 2009-10 के अनुसार केन्द्र सरकार द्वारा मार्च 2009 तक सिंचाई लाभ कार्यक्रम के अंतर्गत 34,784 करोड़ रुपये ऋण सहायता के रूप में दिए गए, जिसका उद्देश्य अपूर्ण परि सिंचाई परियोजनाओं को पूरा करना था। मार्च 2009 तक 268 में से 109 परियोजनाएं पूरी कर ली गई। इस योजना के तहत 59.4 लाख हैक्टेयर भूमि सिंचित किया गया।

तालिका-4

स्रोत	कायम की गई क्षमता	उपयोग की गई क्षमता	प्रतिशत उपयोग
बड़ी एवं मध्यम सिंचाई	424	344	81
छोटी सिंचाई	604	528	87
सिंचाई कुल	1028	872	85

स्रोत: भारत सरकार, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012)

तालिका 3 और 4 में दिए गए आंकड़ों के आधार पर बड़ी तथा मध्यम सिंचाई के आधीन प्रति हैक्टेयर स्थापित श्रमता की लागत (1996-97 की कीमतों पर) 40,167 रूपये और छोटी सिंचई द्वारा 12,966 रुपये प्रति हैक्टेयर बैठती है। इसका तात्पर्य यह कि बड़ी तथा मध्यम सिंचाई द्वारा लागत छोटी सिंचाई की तुलना में तीन गुना से थोड़ी अधिक है। इससे छोटी सिंचाई पर अधिक बल दने के नीति रेखांकित होती है। किन्तु बड़ी तथा मध्यम सिंचाई द्वारा बिजली उपलब्ध कराने और बाढ़ नियंक्षण के अतिरिक्त कार्य भी किए जाते हैं। जाहिर है कि सिंचाई-सुविधाओं के विस्तार के लिए दोनों प्रकार के उपायों का प्रयोग करना होगा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि खाद्यान्न उत्पादन का 60 प्रतिशत एक तिहाई सिंचाई आधीन कृषि क्षेत्र से प्राप्त किया जाता है और वर्षा पर निर्भर 67 प्रतिशत कृषि क्षेत्र द्वारा शेष 40 प्रतिशत खाद्यान्न उपलब्ध कराये जाते हैं।

12.2.4 सिंचाई क्षमता का अल्पप्रयोग -

एक बात जिसकी और ध्यान देना आवश्य है और जिसकी बहुत अधिक उपेक्षा की गई है, भारतीय खेती में जल-प्रयोग की कुशलता को बढ़ाना है। इसके लिए पानी का भाप के रूप में या अत्यधिक सिंचाई करने या रिसने के कारण पानी के नुकसान को न्यूनतम करने का प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार यह अनुमान लगाया गया है कि सिंचाई आधीन क्षेत्रफल को 50 प्रतिशत या 100 प्रतिशत तक भी बढ़ाया जा सकता है।

पूर्व स्थापित सिंचाई सुविाओं का श्रेष्ठतर उपयोग भी उतनी ही महत्व रखता है। अभी तक हम अपने सिंचाई सम्बन्धी विनियोग से अधिकतम लाभ प्राप्त करने में बुरी तरह विफल हुए हैं और इस प्रकार सिंचाई आधीन भूमि द्वारा कृषि उत्पादन को अधिकतम योगदान उपलब्ध न कराया गया। अतः सिंचाई से यदि बहुफसल नहीं, तो दोहरी फलस तो अवश्य प्राप्त की जानी चाहिए परन्तु सत्य तो यह है कि भारत का अधिकतम सिंचाई प्राप्त क्षेत्र अभी भी एक फसली क्षेत्र है।

तालिका-5 (सिंचाई प्राप्त भूमि पर दोहरी या बहु-फसल की सीमा)

सिंचाई प्राप्त क्षेत्र (लाख हैक्टर)				शुद्ध सिंचाई आधीन क्षेत्र, कुल बोए गए क्षेत्र के प्रतिशत रूप में
वर्ष	कुल	शुद्ध	कुल फसल आधीन क्षेत्र	
1950-51	210	230	1330	17
1970-71	310	380	1660	23
1990-91	480	620	1860	34
1999-00	570	760	1930	39
2000-01	550	760	1860	40
2006-07	610	850	1930	44

स्रोत:Agricultural Statistics at a Glance 2008

1950-51 में कुल सिंचाई क्षेत्र का 8.2 प्रतिशत एक से अधिक बार बोया गया, यह बढ़कर 1970-71 में 22.1 प्रतिशत हो गया और 2006-07 में 44 प्रतिशत। दूसरे शब्दों में 610 लाख हैक्टेयर सिंचाई आधीन क्षेत्र में से 240 लाख हैक्टेअर (या 39.3 प्रतिशत) एक से अधिक बार बोया गया। यो तो अधिकतम सिंचाई से केवल एक फसल की सुरक्षा होता है या सिंचाई प्राप्त क्षेत्रों में कृषि-व्यवहार इसतने विकसित नहीं हुए हैं कि एक से अधिक फसल प्राप्त हो सके।

यदि हम यह कल्पना कर ले कि समग्र सिंचाई प्राप्त क्षेत्र पर दो फसलें उगाई जा सकती हैं, तब एक फसल के आधार पर सिंचाई प्राप्त भूमि के 60 प्रतिशत का अल्पप्रयोग हो रहा है। इस प्रकार का अल्पप्रयोग सरकारी उद्यमों के किसी भी अन्य प्रकार में पाया नहीं जाता। वैज्ञानिकों ने सिंचाई प्राप्त भूमि पर 10 से 12 टन प्रति हैक्टेयर अनाज उत्पन्न करने की सम्भावना बताई है। यदि बहु-फसल पद्धति या फसलों के उचित विकल्प शस्य-चक्र अपनाएं जाएँ। अतः यह स्पष्ट है कि वर्तमान सिंचाई साधनों के पूर्ण प्रयोग द्वारा ही खाद्यान्न के 2,120 लाख टन के वर्तमान उत्पादन को बढ़ाकर 3,000 लाख टन तक ले जाया जा सकता है।

इस अल्प प्रयोग के कुछ महत्वपूर्ण कारण और उन्हें दूर करने के सुझाव निम्नलिखित हैं -

i. आज भारत के अधिकतम किसानों को सिंचाई के प्रयोग के अनुकूलतम परिणाम प्राप्त करने के लिए आवस्य ज्ञान नहीं है। उन्हें उचित कृषि व्यवहार जिसमें शीघ्र पकने वाली फसलों की उचित किस्में, उचित शस्यचक्र आदि हैं की जानकारी नहीं है। इस सम्बन्ध में अनुसन्धान सम्बन्धी सेवाओं एवं वैज्ञानिकों से सम्बन्धित करना होता ताकि बहु-फसल व्यवहार अपनाया जा सकें।

ii. सिंचाई के अनुकूल मत प्रयोग के लिए सहायक सुविधाएँ अर्थात् भू-समतलीकरण, स्थल सुधार, भूमियों की चकबन्दी, कुशल भू-कल्याण आदि देश के बहुत से भागों में उपलब्ध नहीं है। इस स्थिति के सुधार के लिए बड़े पैमाने पर ग्राम सार्वजनिक निर्माण कार्य चालू करने होंगे।

iii. आज बड़ी तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाओँ का उचित रूप में अनुरक्षण नहीं हो रहा है। छोटी सिंचाई की परियोजनाएँ, विशेषकर तालाबों और खुले कुओं की अधिकतम उपेक्षा की गई है। इस महत्त्वपूर्ण दोष को दूर करने के लिए यह अनिवार्य है कि वर्तमान सिंचाई पद्धति का नवीकरण और आधुनिकीकरण किया जाए। सिंचाई परियोजनाओं बड़ी तथा छोटी दोनों का अनुरक्षण करना होगा ताकि समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। साथ ही नगरी सिंचाई के साथ उचित स्थानों पर कुओं द्वारा सिंचाई को विकसित करना होगा।

iv. आज दोषपूर्ण सिंचाई व्यवहार और उचित एवं पर्याप्त जल-निकाल सुविधाओं का अभाव न केवल जल के अपव्यय के लिए जिम्मेदार है बल्कि जललग्नता, लवणता एवं क्षारयुक्तता के लिए भी उत्तरदायी है जिनके कारण कृषि योग्य भूमि के बड़े भाग को स्थायी हानि पहुँची है। जल प्रबन्ध सम्बन्धी शिक्षा और जल निकास सुविधाओं की स्थापना द्वारा यह दोष दूर किया जा सकता है।

v. सामान्य रूप में, दोहरी एवं बहुफसल कार्यक्रम को प्रोन्नत करने के लिए अखिल भारतीय समन्वित कार्यक्रम बनाना होगा ताकि पानी का अनुकूलतम प्रयोग हो सके। उद्देश्य यह है कि प्रति हैक्टेयर उत्पादिता को सिंचाई कृषि की नयी चुनौती का सामना किया जा सकता है।

12.2.5 बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएँ - एक वाद-विवाद

स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद के काल में बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएँ और अन्य बाँध और नहरें भारत की कृषि की सिंचाई सम्बन्धी आवश्यकताओं, उद्योगों के लिए बिजली और बाढ़ नियंत्रण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण समझी जाती थी। अतः बाँधों के निर्माण को हमारी आर्थिक योजनाओं में उच्च प्राथमिकता दी गई और बाँधों एवं नहरों पर कुल योजना परिव्यय में 15,000 करोड़ रुपये या 15 प्रतिशत इस कार्य पर खर्च किया गया। भारत विश्व के बाँध-निर्माण करने वाले राष्ट्रों में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जवाहर लाल नेहरू के अनुसार बांध आधुनिक भारत के

मन्दिर हैं। अभी तक सिंचाई एवं जल विद्युत भारत में जल-संसाधनों के विकास के प्रमुख उद्देश्य रहे हैं।

12.2.6 महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ - बड़ी एवं मध्यम सिंचाई परियोजनाओं पर भारी विनियोग करे से महत्वपूर्ण परिणाम सामने आये हैं। बड़ी तथा मध्यम परियोजनाओं द्वारा स्थापित सिंचाई-दक्षता के कारण सिंचाई आधीन क्षेत्र जो 1950-51 में 100 लाख हैक्टेयर था बढ़कर 2006-07 में 420 लाख हैक्टेयर हो गया है। कृषि में सफलता और खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के एकमात्र उपाय के रूप में सिंचाई सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण तत्व है।

इस प्रकार जल-विद्युत का उत्पादन जो 1950-51 में 30 करोड़ किलोवाट घण्टे था, बढ़कर 2006-07 में 1130 किलोवाट घण्टे हो गया - अर्थात् इसमें 38 गुना वृद्धि हुई।

(क) सिंचाई के लाभों में अतिश्योक्ति - ऊपर दी गयी उपलब्धियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि ये उपलब्धियाँ वास्तव में इतनी प्रभावी नहीं हैं। चाहे 1951 और 1997 के बीच बड़ी तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाओं द्वारा 230 लाख हैक्टेअर तक की सिंचाई-क्षमता कायम की गई किन्तु नालियों एवं जल-मार्गों के निर्माण में विलम्ब होने के कारण वास्तविक रूप में सिंचाई प्रपत क्षेत्रफल कहीं कम था। योजना आयोग ने यह बात स्वीकार की है कि बड़ी तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाओं की उत्पादिता एवं वित्तीय रूप में प्रत्यय-दर निराशापूर्ण ढंग से निम्न है। उदाहरणार्थ, सिंचाई आधीन भूमि से वार्षिक औसत राष्ट्रीय उत्पादिता, सिंचाई आधीन भूमि से वार्षिक औसत राष्ट्रीय उत्पादिता 17 क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है जबकि इससे कम से कम 40 से 50 क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अधिकतम राज्य अपनी सिंचाई परियोजनाओं से कार्यकारी व्यय भी वसून नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि वे समुन्नति कर लगाने और उगाहने में रुचि नहीं रखते। छठीं योजना ने 430 करोड़ रूपये की वार्षिक हानि का अनुमान लगाया। आज इस कारण 2,400 करोड़ रुपये की वार्षिक हानि हो रही है।

इस सम्बन्ध में सबसे गम्भीर समस्या बड़ी तथा मध्यम परियोजनाओं को पूरा करने में विम्लब है जोकि सामान्यतया 15 से 20 वर्ष तक हो जाता है और जिसके परिणामस्वरूप इनकी लागत बहुत बढ़ जाती है।

(ख) जल विद्युत सस्ती नहीं - जल विद्युत में निहित मुख्य लाभ यह है कि यह ऊर्जा का एक नवीकरणयोग्य और गैर-प्रदूषित करने वाला स्रोत है। यह भी समझा जाता है कि तापीय एवं न्यौष्टिक ऊर्जा की तुलना में यह सस्ता है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि जल विद्युत परियोजनाओँ को चालू करने में लगातार विलम्ब होता ही रहता है। जल-विद्युत परियोजनाओं की परिपक्वता समानान्यतः 5 से 12 वर्ष के बीच रहती है जबकि तापीय-शक्ति की केवल 5 वर्ष। परिणामतः तापीय ऊर्जा के जनन की लागत 4,000 रुपये प्रति किलोवाट है जबकि यह जल-विद्युत के लिए 7,000 रुपये है।

1951 और 2000 के बीच जल-विद्युत की स्थापित क्षमता में आश्चर्यजनक वृद्धि के बावजूद, इसका कुल स्थापित क्षमता में भाग जो 1950-51 में 33 प्रतिशत था गिरकर 2005-06 में 21 प्रतिशत हो या। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि जल-विद्युत के लाभ अधिकतम उद्योगों एवं शहरी क्षेत्रों को उपलब्ध हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि बिजली की कमी के काल में कृषि की आवश्यकताओं की उपेक्षा करके शहरी प्रयोक्ताओं को प्राथमिकता दी जाती है। पंजाब और हरियाणा के सम्पन्न किसान ऐसे आपातकाल के लिए डीजल पम्प भी रखते हैं।

(ग) बाढ़-नियन्त्रण का लाभ नहीं - नदी के जल को रोक कर इसे नियन्त्रित दर पर छोड़ते हैं ताकि यह बाढ़ की रोकथाम कर सकें। तथाकथित बहु-उद्देश्यीय नदी-घाटी परियोजनाएँ अपने-अपने क्षेत्रों में बाढ़ों के रोकने के लिए कायम की गई हैं। राष्ट्राय बाढ़ नियन्त्रण प्रोग्राम में 1954 में बहुत से बाँध, निकास-नालियाँ एवं नगर तथा ग्राम विकास योजनाएँ चालू की गई। मोटे तौर पर बाढ़ नियन्त्रण सम्बन्धी उपाय बुरी तरह विफल हुए हैं और साल-दर-साल बाढ़ों के कारण प्रभावित क्षेत्र और फसलों, पशुओं एवं इन्सानों को होने वाले नुकसान में तेजी से वृद्धि हुई है।

बड़े बाँधों की एक और समस्या भारी मात्रा में गाद का जलाशयों में जम जाना है। गाद जमने की दर मौलिक अनुमान से अधिक रही है। भारी गाद जमने से जलाशय का संग्रहण क्षमता कम हो जाती है और परिणामतः वे भारी बाढ़ को रोकने के योग्य नहीं रहते। प्रायः एकदम पानी बढ़ जाने से कई बार अचानक बाढ़ आ जाती है जिससे भारी नुकसान होताहै।

(घ) पर्यावरण पर दुष्प्रभाव - बड़े बाँधों और विशाल बहु-उद्देश्यीय नदी-घाटी परियोजनाओं के पर्यावरण पर गम्भीर दुष्प्रभाव पड़ते हैं। इसका एक प्रधान रूप जलग्रस्तता एवं भू-लवणता के कारण सिंचाई परियोजनाओं के कमान-क्षेत्रों में भूमि का कटाव है।

बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के साथ बहुत-सी-समस्याएँ जुड़ी हुई हैं। सर्वप्रथम, यह देखा गया है कि सारे विशाल में जितनी भूमि नयी परियोजनाओं द्वारा उत्पादन के आधीन लाई जाती है, उतनी ही भूमि जलग्रस्तता और लवणता के कारण उत्पादन से बाहर चली जाती है। दूसरे, बड़ी परियोजनाओं की परिपाक अवधि बहुत लम्बी होती है। तई बार तो यह परिपाक अवधि बढ़ते-बढ़ते एक या दो दशक या इससे भी अधिक हो जाती है। तीसरे, इन प्रोजेक्टों के साथ जुड़े हुए अनेक अधिकारी सामान्यतः भ्रष्ट एवं अकुशल होते हैं और इस कारण लागत वृद्धि कहीं अधिक हो जाती है। चौथे , बहुमूल्य कृषि भूमि का एक बड़ा भाग वितरण प्रणाली का विकास करने में नष्ट हो जाता है। अन्तिम परन्तु यह कम महत्वपूर्ण बात नहीं है कि धीरे-धीरे रिसने से पानी की उपलब्धि में बहुत हानि होती है और कई बार यह हानि छोड़े गए पानी की 50 प्रतिशत मात्रा के उच्च स्तर तक पहँुच जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि वितरण सम्बन्धी नालियाँ कच्ची होती हैं और परिणामतः जलग्रस्तता एक गम्भीर समस्या बन जाती है।

अतः डॉ0 बी.बी. बोहरा का यह निष्कर्ष निकालना सही है - ''बड़ी तथा मध्यम सिंचाई का भविष्य धुन्धला है और देश के पास इस उपाय से 260 लाख एकड़ भूमि में अतिरिक्त सकल सिंचाई क्षमता कायम करने के लिए न ही तो संसाधन उपलब्ध हैं और न ही समय। अतः सभी भावी योजनाओं का मुख्य आधार छोटी सिंचाई विशेषकर भौमजल के प्रयोग द्वारा ही होगी।''

बड़े सिंचाई बाँधों के पक्ष में सम्मोहन समाप्त होना चाहिए और पहले की तुलना में छोटी सिंचाई के लिए कहीं अधिक राशि का प्रावधान होना चाहिए। छोटी सिंचाई की परिपाक अवधि भी कहीं छोटी होती है और इसका कार्यान्वयन निजी क्षेत्र द्वारा कुँए, ट्यबवेल, पम्पसेट आदि स्थापित करके किया जाता है। अतः इसमें वितरण सम्बन्धी नालियों के कारण भूमि का अपव्यय नहीं होता। छोटी सिंचाई के साथ जलग्रस्तता की समस्याएँ भी जुड़ी नहीं रहती। किसान पानी के प्रयोग मे किफायत करते हैं क्योंकि यह व्यवस्था प्रत्यक्षतः उनके नियन्त्रण आधीन होती है। अतः बेहतर प्रबन्ध की दृष्टि से भारी वित्तीय लागत एवं पर्यावरण पर दुष्प्रभाव डालने वाले बड़े बाँध लाभकारी नहीं है परन्तु इस दृष्टि सिंचाई अधिक लाभप्रद है क्योंकि इससे भूमिगत-जल का अधिकतम प्रयोग सुनिश्चित किया जाता है और सिंचाई स्रोतों पर बेहतर नियंत्रण रहता है।

हाल ही के वर्षों में बहुत से बुनियादी प्रश्न उठाए गए हैं और समय आ गया है कि सिचाई नीति पर पुर्नविचार पर नयी नीति का निर्माण किया जाए और बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाओं पर बल कम किया जाए।

12.2.7 सहयोगी सिंचाई प्रबन्ध और जल-प्रयोक्ता संस्थाएँ - राष्ट्रीय जल नीति (1987) ने सिंचाई प्रणालियों के प्रबन्ध के विभिन्न पहलुओं में किसानों को भागीदारी देने पर विशेष बल दिया गया विशेषकर जल-वितरण और जल-दरों की वसूली के सम्बन्ध में। इस उद्देश्य से विभिन्न राज्यों में जल प्रयोक्ता संस्थाएं कायम की गयीं, परन्तु योजना आयोग द्वारा की गयी समीक्षा से पता चलता है कि इन संस्थाओं द्वारा केवल 8 लाख हैक्टेयर कृषि क्षेत्र का प्रबन्ध किया जा रहा है। यह स्थिति बहुत ही असन्तोजनक है। इन संस्थाओं की मन्द प्रगति के लिए निम्नलिखित कारणतत्त्व उत्तरदायी हैं:-

1. सरकार द्वारा प्रबन्धित प्रणालियों के चिरकाल से वर्तमान होने के कारण किसानों में जल-प्रयोक्त संस्थाओं में पहल करने की इच्छा समाप्त हो गयी है।
2. किसान भागीदारी पद्धति अपनाने में हिचकचाते हैं जब तक कि उन्हें जल के सम्भरण में लोचशीलता व्यवहार्यता एवं आवश्यकता के अनुसार उपलब्धि का आश्वासन प्राप्त न हो जाए।
3. किसानों को डर है कि नयी प्रणाली के आधीन उन्हें अपेक्षाकृत ऊँची जल-दरों के अतिरिक्त संचालन एवं अनुरक्षण पर भी खर्च करना पड़ेगा।

4. सहयोगी सिंचाई प्रबन्ध के लिए धन-राशि की अनुपलब्धि एक और बाधा है। कमान-क्षेत्र प्रोग्राम के आधीन एक समय साहाय्य प्रदान करना जल-प्रयोक्ता संस्थाओं को बनाए रखने के लिए अपर्याप्त है।

5. किसानों की जनसंख्या में समरूपता का अभाव जल-प्रयोक्ता संस्थानों की स्थापना में एक और रुकावट है। किसानों में वर्ग और जाति के आधार पर भेदभाव उन्हें सामूहिक रूप में संगठित होने के मार्ग में रूकावट है।

6. अधिकारतन्त्रीय प्रशासन में जल-प्रयोक्ता संस्थाओं की स्थापना के प्रति वचनबद्धता का अभाव है।

योजना आयोग ने एक कार्यदल स्थापित किया है जिसका उद्देश्य जल-प्रयोक्ता संस्थाओं के क्षेत्र विस्तार के उपायों के लिए सुझाव देना है। आवश्यकता इस बात की है कि जल-प्रयोक्ता संस्थाओं के वित्त-प्रबन्ध के लिए एक अलग खाता खोला जाए और इन्हें कमान-क्षेत्र विकास का उपांग न समझा जाए।

राज्य का कार्यभार - सिंचाई में निजीकरण के परिणामस्वरूप सरकार का सिचाई के वित्त-प्रबन्ध में प्रत्यक्ष कार्यभाग कम हो जाएगा परन्तु इसका एक सुविधाजनक और नियन्त्रक का कार्यभाग बहुत बढ़ जाएगा। मुख्य क्षेत्र जिनमें सरकार को अपना कार्यभाग निभाना है, निम्मलिखित हैं -

1. जब कि निजी क्षेत्र की भागीदारी मध्यम और छोटे सिंचाई प्रोजेक्टों के लिए उपयुक्त है,. इससे बड़े प्रोजेक्टों के सम्बन्ध में समस्याएँ पैदा हो सकती हैं। अतः बड़े प्रोजेक्टों के वित्त-प्रबन्ध के लिए सरकार को ही भूमिका निभानी होगी।

2. निजी क्षेत्र सहायता के लिए वन, पर्यावरण, बेदखल किए गए परिवारों को फिर बसाने, भूमि प्राप्त करने आदि के लिए सरकार को विभिन्न विभागों से स्वीकृति उपलब्ध करानी होगी।

3. सरकार को निजी क्षेत्र के विनियोक्ताओं को कुछ रियायतें देनी चाहिए ताकि वे अपनी प्रत्याय दर बढ़ा सकें। ये रियायतें कर-छूट, ऋण-स्थगन, पर्यटक सुविधाओं, नौ परिवगन आदि के रूप में दी जा सकती हैं।

4. निजी बैंक के विनियोग पर प्रत्याय की गारण्टी देनी होगी।

5. इस प्रकार की सहभागिता मं सरकार को अपने और निजी क्षेत्र के दायित्व एक सन्धि में स्पष्ट करने होंगे।

12.3 उर्वरक और खाद

कृषि उत्पादन को बढ़ाने की किसी भी योजना में रासायनिक खादों का महत्वपूर्ण भाग होता है। भारत की भूमि चाहे नाना प्रकार की है तथा कई प्रकार से उपजाऊ है, परन्तु इसमें नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की कमी है जो कि कार्बनिक खाद के साथ फसल के उत्पादन को बढ़ावा देते हैं। जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ने के साथ, खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने के लिए अधिकाधिक मात्रा में रासायनिक खादों का प्रयोग एक अनिवार्य उपाय हो जाता है।

12.3.1 उर्वरकों का उत्पादन - मोटे तौर पर उर्वरक उद्योग ने पिछले दशक के दौरान तीव्र प्रगति की। उर्वरकों का उत्पादन जो 195-52 में केवल 39,000 टन बढ़ कर 2006-07 में 161 लाथ टन हो गया। उर्वरकों के देशीय उत्पाद में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है परन्तु उपभोग में वृद्धि को दष्टि में रखते हुए यह पर्याप्त नहीं है।

उर्वरक संयत्र स्थापित करने में अत्यधिक विलम्ब हुआ है। कई बार एक प्रोजेक्ट को स्थापित करमें में 8 से 9 वर्ष तक लग जाते हैं और कारण इसकी लागत अनावश्यक रूप से बढ़ती जाती है। दूसरे, उर्वरक प्रोग्राम के लिए पूँजी की समस्या है। यह अनुमान लगाया गया है कि एक प्रोजेक्ट के लिए 5000 से 10,000 करोड़ रुपये चाहिए जिसमें से विदेशी मुद्रा का भाग 2,500 करोड़ रुपये आंका गया है। अधिक विदेशी विनियोग की आवश्यकता की स्वीकर करते हुए भारत सरकार ने उर्वरक उद्योग में विदेशी पूँजी को आकर्षित करने के लिए 1965 के अन्त में कुछ रियायते दीं, जैसे बहुसंख्यक हिस्सा पूँजी सहयोग, वितरण अइधकार आदि। परन्तु इन सभी रियायतों के देने के बावजूद विदेशी सहयोग बहुत कम था। इसके मुख्य कारण थे - (क) भारत को उर्वरकों के आयात की लाभदायकता बहुत ही ऊँची रही है और (ख) कच्चे मालों की प्रकृति एवं उपलब्धि के बारे में नीति में अनिश्चितता रही है।

तालिका - 7

(भारत में रासायनिक उर्वरकों का उत्पादन, आयात एवं उपभोग)

वर्ष	उत्पादन (हजार टन)	आयात (हजार टन)	उपभोग (हजार टन)	प्रति हैक्टेयर उपभोग(कि.ग्रा.)
1951-52	39	52	70	0.5
1970-71	1060	630	2260	13.1
1990-91	11860	2760	12550	76.8
2000-01	14750	2090	16700	90.1
2005-06	15575	5253	20340	104.5
2006-07	16096	6058	21651	112.2
2007-08	14760	7750	22570	116.9
2008-09	14334	10221	12470	127.2
2009-10	16320	8123	13225	---

स्रोत: भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा (2009-2010),Agricultural Statistics at a Glance 2009.

12.3.2 उर्वरकों का आयात - चूंकि आन्तरिक उत्पादन लगातार बढ़ती हुई माँग से कम हो रहा है, सरकार को आयात पर निर्भर करना पड़ा है। आन्तरिक उत्पादन की तुलना में उर्वरकों के आयात का प्रतिशत सदैव बहुत अधिक रहा है। 1951-52 में रायायनिक उर्वरकों का आयात आन्तरिक उत्पादन

का 133 प्रतिशत था और यह 1980-81 में कम होकर 92 प्रतिशत हो गया और 2000-01 में और कम हो कर केवल 16 प्रतिशत रह गया। लेकिन उसके बाद 2007-08 तक यह बढ़कर 34.3 प्रतिशत हो गया। 1951-52 तथा 2008-09 के बीच उर्वरक आयात 0.52 लाख टन से बढ़कर 102.2 लाख टन हो गया। इतनी बड़ी मात्रा में उर्वरकों का आयात करना जिसके लिए दुर्लभ विदेशी मुद्रा का प्रयोग करना पड़ता है, सही नहीं है। इसका मुख्य कारण देश में उर्वरकों के उत्पादन की इकाइयाँ स्थापित करने के बारे में स्पष्ट नीति का अभाव रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में उर्वरक दुर्लभ होते जा रहे थे और तेल संकट के प्रभाव के कारण 1973 के पश्चात् इनकी कीमत में तेजी से वृद्धि हो रही थी।

12.3.3 उर्वरकों का उपभोग- 1965 में नयी विकास रणनीति अपनीने के पश्चात रासायनिक उर्वरकों के उपभोग में तीव्र वृद्धि होती गई है। हाल ही के वर्षों में उर्वरकों के वितरण को सही करने के लिए विसेष उपाय किए गए। इनमें उल्लेखनीय हैं-परिवहन की अच्छी व्यवस्था करना, प्रथमिकता प्राप्त फसलों को उर्वरकों का नियमित सम्भरण, रेलवे विभाग के साथ समन्वय द्वारा बैगनों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध कराना, उर्वरकों के लिए अल्पकालीन ऋणों की व्यवस्था, उर्वरकों के संतुलित प्रयोग को प्रोन्नत करना आदि। चाहे हाल ही के वर्षों में भारत में उर्वरकों के उपभोग में भारी वृद्धि हुई है परन्तु अभी भी भारत अन्य प्रगतिशील देशों से बहुत पीछे है।

उर्वरक के उपभोग के बारे में उल्लेखनीय बाते निम्नलिखित हैं -

2008-09 में भारत में उर्वरकों का प्रति हेक्टेयर उपभोग 127.2 किलोग्राम था। इसके विरुद्ध कुछ विकसित देशों सम्बन्धी आंकड़ें इस प्रकार हैं: दक्षिण कोरिया (400 कि.ग्रा.), नीदरलैण्ड (275 कि.ग्रा.), बैल्जियम (225 कि.ग्रा.) और जापान (340 कि.ग्रा.)।

उर्वरकों के गहन प्रयोग के लिए पानी का निश्चित सम्भरण एक महत्वपूर्ण शर्त है। देश के अधिकतर भागों में यह परिस्थिती विद्यमान न होने के कारण यह भारत के उर्वरक उपभोग को बढ़ाने में एक मुख्य कठिनाई सिद्ध हुई है।

चूंकि वर्षा पर आश्रित 70 प्रतिशत काश्य काधीन क्षेत्रफल द्वारा कुल उर्वरकों के केवल 20 प्रतिशत का उपभोग किया जाता है, सरकार इन क्षेत्रों में उर्वरकों के उपभोग को बढ़ाने के लिए हाल ही के वर्षो में उपाय कर रही है। सरकार ने एक राष्ट्रीय प्रोजेक्ट के आधीन 16 राज्यों के 60 जिले निश्चित किए हैं जिनमें उर्वरकों का प्रयोग बहुत कम था। इसे बढ़ाने के लिए प्रदर्शन, किसानों के प्रशिक्षण, परचून की दुकानों एवं मिट्टी के परीक्षण सम्बन्धी उपाय किए जा रहे हैं।

देश के विभिन्न् राज्यों में उर्वरकों के उपभोग में काफी अन्तर पाए जाते हैं। प्रति हैक्टेयर उर्वक उपयोग में पंजाब का प्रथम स्थान है - 184 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर, इसके बाद तामिलनाडू में 163

कि.ग्रा. और आन्ध्र प्रदेश में 158 कि.ग्रा., उड़ीसा में सबसे कम उर्वरक उपभोग होता है अर्थात् 44 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर।

रबी की फसलें (खाद्य-भिन्न) हमारे कुल कृषि उत्पादन के एक-तिहाई के समान हैं। फिर् भी इनके द्वारा दो-तिहाई कुल उर्वरक उपभोग किया जाता है। इसका कारण यह है कि इनके लिए सिंचाई को अपेक्षाकृत निश्चित मात्रा उपलब्ध है या भू-गर्भ में पर्याप्य नमी उपलब्ध है।

उर्वरकों पर प्राप्त होने वाले अर्थसाहाय्यों में तेजी से वृद्धि हुई है। ये 1979-80 में 600 करोड़ से बढ़कर 1992-93 में 5,800 करोड़ रुपये हो गये। तत्पश्चात इनमें और वृद्धि हुई है और ये 2006-07 में 22,450 करोड़ रुपये पर पहुँच गए। यह हमारे सरकारी संसाधनों पर अत्यधिक भार है और दुःख की बात यह है कि ये साहाय्य अधिकतम सम्पन्न किसानों को प्राप्त होते हैं।

उर्वरकों की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों मे वृद्धि के कारण अब गहम इस बात पर विचार करने पर मजबूर हुए कि वनस्पति पोषकों का प्रयोग किया जाए कम से कम सिद्धान्त रूप में यह स्वीकार किया जा रहा है कि कार्बनिक खादों की ओर अब पहले की अपेक्षा अधिक ध्यान देना होगा।

आठवीं योजना में उर्वरक विकास रणनति को कार्बनिक खाद के प्रयोग की ओर मोड़ गया। इसमें गोबर की खाल, वनस्पति खाद, ग्रामीण एवं शहरी दोनों शामिल हैं। एक रूक्ष अनुमान के अनुसार एक-तिहाई गोबर इकट्ठा नहीं किया जात और एक तिहाई का इस्तेमाल ग्रामीण लोग ईंधन के रूप में कर लेते हैं और वास्तव में एकत्रित किए और इस्तेमाल किए गोबर की मात्रा 3,400 लाख टन आंकी गई है आज पशुओं का पेशाब, जिसमें खाद सम्बन्धई महत्वपूर्ण गुण हैं को पूर्णतया व्यर्थ बहने दिया जाता है। यदि पशुओं के पेशाब को गोबर के साथ मिला लिया जाए तो कुछ उपलब्ध खाद की मात्रा 4,000 लाख टन हो जाएगी। ग्रामीण जनसंख्या के लिए यदि विकल्प ईंधन की व्यवस्था की दी जाए तो इससे गोबर की खाद अधिक मात्रा में उपलब्ध हो सकेगी। इसके अतिरिक्त गोबर गैस प्लाट के बढ़ते हुए उपयोग से भी कार्बनिक खाद की मात्रा किसानों को उपलब्ध हो सकेगी। शहरी व्यर्थ पदार्थों वनों के डास और अन्य व्यर्थ पदार्थों का प्रयोग भी हरी खाद क लिये किया जा सकता है। इन उपायों से रासायनिक खादों पर निर्भरता कम की जा सकती है।

12.4 उन्नत बीज

भारतीय किसान खेती में उन्नत बीजों के महत्व से परिचित हैं। कारण यह है कि उन्नत बीजों द्वारा 10 से 20 प्रतिशत उत्पादन वृद्धि हो सकती है। परन्तु वे सामान्यतया इस प्रकार के बीजों का प्रयोग करते हैं, क्योंकि या तो अच्छे बीज जो बुआई के लिए रकखे जाते हैं, उपभोग कार्य में लाए जाते हैं या संग्रह न कर सकने के कारण वे नष्ट हो जाते हैं। अधिक महत्व की बात यह है कि किसान उन्नत बीजों का प्रयोग करें। कृषि विभाग तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने उन्नत बीजदों का विकास करने और उन्हें लोकप्रि बनाने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। उदाहरणआर्थ, विश्व में प्रसिद्ध गेहूँ

और धान की कुछ सर्वोत्तम किस्मों का भारत में विकास किया जा रहा है परन्तु ये बीज थोड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं। द्वितीय योजना में उन्नत किस्मों में बीज की माँग को पूरा करने के लिए प्रत्येक विकास खण्ड बनाए गए। सरकार ने 1963 में राष्ट्रीय बीज निगम की स्थापना की है जिसका उद्देश्य देश भर के लिए उन्नत उत्पादिता वाले बीजों का उत्पादन एवं वितरण करना है। अधिक उपजाई किस्म के बीजों का प्रोग्राम 1966 में चालू किया गया और 1997-98 तक 760 लाख हेक्टेयर भूमि अधिक उपभाज किस्म के बीजों के आधीन लाई गई।

तालिका-8

(ब्रीडर एवं आधार बीज का उत्पादन एवं प्रमाणित बीजों का वितरण)

वर्ष	ब्रीडर का उत्पादन (क्विंटल)	आधार बीजों का उत्पादन (लाख क्विंटल)	प्रमाणित बीजों का वितरण(लाख क्विंटल)
2004-05	66,460	6.9	113.10
2005-06	68654	7.4	126.74
2006-07	3829	7.96	155.01
2007-08	91960	8.22	179.05
2008-09	100000 अनुमानित	9.69 अनुमानित	190.00 अनुमानित

स्रोत: Economic Survey

बीज उत्पादन के तीन चरण होते हैं। एक ब्रीडर बीजों का उत्पादन। दो, आधार बीजों का उत्पादन और तीन, प्रमाणित बीजों का किसान तक वितरण। उपरोक्त तालिका में हाल ही के वर्षो में अच्छे बीजों के उत्पादन एवं विरण के विभिन्न चरणों के आंकड़े दिए गये हैं। जिससे पता चलता है कि वर्ष 2008-09 में ब्रीडर बीजों का उत्पादन 1,00,000 क्विंटल, आधार बीजों का उत्पादन 9.69 लाख क्विंटल और प्रमाणित बीजों का वितरण 190 लाख क्विंटल रहा। यह पिछले से काफी बेहतर स्थिति है।

12.5 कृषि का यन्त्रीकरण

भारतीय किसानों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले औजार और उपकरण सामान्यतया पुराने तथा आदिकालीन हैं जबकि पश्चिमी देशों के किसान उन्नत तथा उद्यतन फार्म-मशीनरी का प्रयोग करते

हैं। कृषि के यन्त्रीकरण के फलस्वरूप, इन देशों में भी कृषि क्रान्ति हुई है, जसिकी तुलना 18वीं शताब्दी में हुई औद्योगिक क्रान्ति से की जा सकती है। कृषि के यन्त्रीकरण के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई और लागत में कमी। इसके अतिरिक्त कृषि मशीनरी द्वारा बंजर भूमियों को काश्त योग्य बनाया जा सका। इसीलिए तो पश्चिमी देशों की समृद्धि का मुख्य कारण कृषि के यन्त्रीकरण को ही समझा जा सकता है। समामान्यतः यह विकास सुदृढ़ हो गया कि कृषि के यन्त्रीकरण के बिना प्रगतिशील कृषि सम्भव नहीं।

कृषि के यन्त्रीकरण का अर्थ है कि जहां भी सम्भव हो पशु तथा मानवशक्ति का मशीनरी द्वारा प्रतिस्थापन किया जाए। हल चलाने का कार्य ट्रैक्टरों द्वारा होना चाहिए, बुवाई और उर्वरक डालने का कार्य ड्रिल द्वारा करना चाहिए. इसी प्रकार फसल काटने का कार्य भी मशीनों द्वारा किया जाना चाहिए, कृषि के पुराने ढंगों और औजारों अर्थात् लकड़ी के हलों, बैलों, दरान्ती आदि की जगह मशीनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। अतः यन्त्रीकरण का अर्थ खेती की सभी क्रियाओं में हल चलाने से लेकर फसल काटने तथा बेचने कर मशीनों का प्रयोग होता है।

भारत में कृषि के विकास की गति तेज करने के लिए यन्त्रीकरण का प्रश्न महत्वपूर्ण बनाता जा रहा है। जहाँ एक ओर तो कृषि के यन्त्रीकरण के पक्के समर्थक मिलते हैं, वहाँ दूसरी और विरोधी पक्ष के विचारक भारत की वर्तमान आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में फार्म-मशीनरी का प्रयोग बिल्कुल अनुचित मानते हैं। अब हम इन दोनों पक्षों के तर्कों को प्रस्तुत करेंगे।

12.5.1 कृषि यन्त्रीकरण के पक्ष में तर्क -

कृषि के यन्त्रीकरण का मुख्य आधार मशीनरी के उपयोग द्वारा सम्भव होने वाली बड़े पैमाने की मितव्ययिताएं हैं। जितनी धरती पर एक बैल की जोड़ी द्वारा 10 दिन हल चलाया जा सकता है, उतनी भूमि पर ट्रैक्टर द्वारा एक दिन में और अधिक गहरा हल चलाया जा सकता है। दूसरे फार्म मशीनरी ने मनुष्य को भारी काम से छुटकारा दिलाया है। तीसरे, फार्म मशीनरी द्वारा बड़े पैमाने की खेती सम्भव हो पाई। भूमि के बहुत बड़े-बड़े खेत जोते जा सकते हैं, भारी मात्रा में फसल काटी जा सकती है बड़ी मात्रा में उत्पादन मण्डी तक पहुँचाया जा सकता है। इन सभी कार्यों को थोड़े समय मे करने के लिए कृषि मशीनों का प्रयोग होता है। इस प्रकार श्रम उत्पादिता तथा भू-उत्पादिता बढ़ाई जा सकती है। उत्पादन की लागत कम की जा सकती है। अन्तिम यन्त्रीकरण से उद्योग, परिवहगन आदि में रोजगार के अवसर भी बढ़ाए जा सकेंगे और परिणामतः कृषि से जिन लोगों का रोजगार छिन जाएगा, वे अन्य क्षेत्रों में रोजगार पा सकेंगे।

पश्चिम देशों, विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका और भूतपूर्व सोवियत संघ मं जहां कृषि का विस्तृत रूप में यन्त्रीकरण किया गया है, कृषि उत्पादन कई गुना बढ़ गया है। चूंकि कृषि की मुख्य समस्या उत्पादन को बढ़ाना है, इसलिए कृषि के यन्त्रीकरण की पुष्टि करना युक्तिसंगत ही है। परन्तु प्रयोग की दृष्टि से भी यन्त्रीकरण के लिए काफी क्षेत्र उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ, ट्रैक्टरों द्वारा बड़े पैमाने पर जंगल साफ किए जा सकते हैं, व्यर्थ भूमि को पुनः काश्त योग्य बनाया जा सकता है और इसी

प्रकार भू-रक्षण आदि मं सहयोग प्राप्त हो सकता है। ट्रैक्टरों के अतिरिक्त पम्पिंग सेटों तथा नलकूपों के लिए काफी क्षेत्र विद्यमान हैं। इसी प्रकार तेल निकालने, गन्ने का रस प्राप्त करने आदि के लिए डीजल इंजन तथा बिजली से चलने वाली अन्य मशीनों का प्रयोग किया जा सकता है।

12.5.2 यन्त्रीकरण के विरुद्ध तर्क -

कृषि उत्पादन को बढ़ाने की दृष्टि से यन्त्रीकरण के पक्ष में तर्क दिए जा सकते हैं, वहाँ यन्त्रीकरण के विरोध में भी सबल तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सर्वप्रथम, भारत में जोतों का आकार छोटा होने के कारण यन्त्रीकरण के लिए कोई जगह नहीं। फिर ये छोटी जोतें भी ग्राम के विभिन्न भागों में बिखरी हुई हैं। एक ट्रैक्टर को आधी एकड़ भूमि को काश्य के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। यन्त्रीकरण की एक अनिवार्य शर्त यह है कि कृषि-मशीनों का उचित एवं अनुकूल प्रयोग करने के लिए जोतों का आकार बड़ा होना चाहिए, वे छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखरी नहीं होनी चाहिए, जैसा कि भारत में वर्तमान है।

दूसरे, कृषि के यन्त्रीकरण के कारण बहुत से कृषि श्रमिक फालतू हो जाएंगे। एक अनुमान के अनुसार यदि पूर्ण यन्त्रीकरण कर दिया जाए तो भारत में उपलब्ध कुल क्षेत्रफल को 30 से 40 लाख कृषकों द्वारा जोता जा सकता है। इस प्रकार लाखों की संख्या में किसान बेरोजगार हो जाएंगे और उन्हें विकल्प रोजगार उपलब्ध कराने की समस्या उत्पन्न होगी। इतनी बड़ी संख्या में कृषि श्रमिकों को कृषि-भिन्न व्यवसायों में रोजगार उपलब्ध कराना सम्भव नहीं। यन्त्रीकरण खेती के विरुद्ध यह सबसे गम्भीर आपत्ति है। यह नीति कम जन-घनत्व वाले विकसित देशों के लिए लाभदायक एवं उचित हैं, अनिवार्य नहीं कि वह भारत के लिए भी ठीक हो।

तीसरे, फार्म मशीनरी के लिए पेट्रोल, डीजल एवं मिट्टी के तेल की आवश्यकता होगी। देश में इन खनिज तेलों की बहुत कमी है क्योंकि आन्तरिक माँग को पूरा करने के लिए देशीय उत्पादन काफी नहीं है और तेल संकट के कारण तेल की अन्तर्राष्ट्रीय कीमत बहुत बढ़ गई हैं। भारत इस कारण तेल पर आधारित फार्म मशीनरी का विस्तृत पैमाने पर प्रयोग नहीं कर सकता।

12.5.3 चयनात्मक यन्त्रीकरण-योजना का उचित लक्ष्य -

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि भारत में जोत का आकार छोटा है किन्तु कृषि कार्य में लगी जनसंख्या का आकार बहुत बड़ा है, कृषि में अन्धाधुन्ध यन्त्रीकरण की नीति चलाना बड़ी भारी भूल होगी। भारत में भूमि, एक दुर्लभ साधन है परन्तु श्रम एक प्रचुर साधन है और परिणामतः भू-उत्पादिता को उन्नत करने की नीतियों का ग्राम-जनशक्ति के प्रयोग के साथ सामंजस्य करना होगा। अतः सीमित यन्त्रीकरण की नीति को अपनाना अनिवार्य होगा ताकि श्रम विस्थापन प्रभाव कम से कम किया जा सके। साथ ही गुप्त रूप से बेरोजगार कृषि श्रम को कृषि भिन्न ग्राम उद्योगों में जज्ब करने के लिए इनका विस्तार करना होगा। इसके अतिरिक्त ग्राम क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने के प्रयास त्वरित करने होंगे ताकि जनसंख्या में भावी वृद्धि दर कम हो जाए। इस आवश्यकता को स्वीकार करते हुए पाँचवीं योजना के प्रारूप में उल्ले ख किया गया - ''पांचवी योजना में चयनात्मक यन्त्रीकरण की नीति अपनायी जाएगी। उद्देश्य यह होगा कि फसल तीव्रता और फार्म

उत्पादिता बढ़ाई जाए। इन दिनों देश में प्रति हैक्टेयर 0.4 हार्स पावर शक्ति उपलब्ध है (जिसमें से मशीनों से प्राप्त शक्ति केवल एक चौथाई है) यह बहुत कम है और इसे बढ़ाना होगा। खेती की नई तकनालॉजी में खेती के काम तेजी से, उचित समय पर ठीक ढंग से करने होते हैं। इसके अलावा बैल खरीदने और इन्हें रखने का खर्चा भी बढ़ता जा रहा है। इन सबको देखते हुए खेती का यन्त्रीकरण आवश्यक लगता है। किन्तु यन्त्रीकरण किस दर से, किस रूप में हो, यह बात जोतों के आकार और कृषि श्रमिकों के रोजगार पर यन्त्रीकरण के प्रभाव आदि सम्बद्ध बातों को ध्यान में रखकर निश्चित करनी होगी। अन्तिम बात खास तौर पर फसल की कटाई एवं सफाई की मशीन का इस्तेमाल करने के बार में अवश्य सोचना होगी। इन मशीनों का उपयोग उन्हीं इलाकों कत सीमित रखना होगा जहाँ फसल की कटाई के दौरान श्रमिकों की कमी रहती है।" अतः आयोजक, इस विषय में सावधानी बरतने की सलाह देते हैं। इस सम्बन्ध में छठी योजना में उल्लेख किया गया - 'फिर भी कृषि कार्यों का अ नियन्त्रित यन्त्रीकरण हमारे देश के हित में नहीं होगा, इससे देहातों में बेरोजगारी की समस्या विकट हो जाएगी। इस प्रकार चयनात्मक यन्त्रीकरण की नीति को अपनाया जाएगा।'

12.5.4 भारत में फार्म यन्त्रीकरण की प्रगति

बहुत से सरकारी प्रोग्रम कृषि उपकरणों और मशीनरी की उन्नति से सम्बन्धित थे । ये फार्म यन्त्रीकरण और उपकरणों की देश में प्रोन्नति को बढ़ावा देते रहे हैं। इसका उद्देश्य फार्म-क्रियाओं से जुड़ी हुई नीरसता को कम करना है। किसानों को कृषि मशीनरी के क्रय में सहायता करने के लिए सरकार उधार के रूप में सहायता मुहैया करवाती है।

इन सभी प्रयासों के परिणामस्वरूप, पशु-शक्ति का भाग जो 1971-72 में 43.5 प्रतिशत था कम होकर 2001-02 में 9.5 प्रतिशत हो गया। इसका अर्थ यह है कि पशु-शक्ति का मशीन-शक्ति से प्रतिस्थापन हो रहा है। ट्रैक्टर और पावर-टिलर जुताई, भूसा निकालने और परिवहन के लिए चालन शक्ति का मुख्य स्रोत बन गए हैं। 7.75 प्रतिशत के विरुद्ध अब मशीन-पावर कुल फार्म पावर आवश्यकताओं का 44 प्रतिशत जुटाती है। इसके परिणामस्वरूप भारतीय कृषि में पावर की उपलब्धि जो 1971-72 मे 0.29 कि.वा. प्रति हेक्टेयर थी बढ़कर 2001002 में 1.23 कि.वा. प्रति हेक्टेयर हो गयी है। जैसे-जेसे आगामी वर्षों में फार्म यन्त्रीकरण और प्रगति करेगा और आधिक मात्रा में ट्रैक्टर और पावर टिलरों का प्रयोग किया जाएगा, इस पावर उपलब्धता में और उन्नति होगी।

1992-93 से 2001-02 की 10 वर्षीय अवधि के दौरान 22 लाख ट्रैक्टरों और 1.3 लाख पावर-टिलरों का विक्रय हुआ। यह अनुमान लगया गया है कि 2001-02 के कृषि आधीन क्षेत्र के 27.8 प्रतिशत पर जुताई के लिए ट्रैक्टरों का प्रयोग किया गया और बीजाई के आधीन 21.3 प्रतिशत क्षेत्रफल पर पावर-टिलरों का इस्तेमाल किया गया। इसके अतिक्तित, सिंचाई, फसलों की कटाई और भूसा निकालने की क्रियाओं के यन्त्रीकरण में भी काफी प्रगति हुई है।

1999-2000 से 2003-04 के पांच वर्षों के दौरन 11.40 लाख ट्रैक्टरों का विक्रय किया गया अर्थात् 2.8 लाख प्रति वर्ष। क्षेत्रीय आंकड़ों से पता चलता है कि इस विक्रय में उत्तर प्रदेश का स्थान सबसे ऊंचा था अर्थात् भारत में कुल विक्रय का 26 प्रतिशत और इसके बाद क्रमानुसार थे

मध्य प्रदेश, पंजाब, राजस्थान और हरियाणा। इन पांच राज्यों द्वारा ट्रैक्टरों के विक्रय में 62 प्रतिशत योगदान दिया गया।

जहाँ तक पावर-टिलरों का सम्बन्ध है, पश्चिम बंगाल देश में सबसे आगे है और इसमें 25,537 पावर-टिलरों का विक्रय हुआ, देश के कुल विक्रय का लगभग 35 प्रतिशत. इसके बाद क्रमानुसार तमिलनाडु, असम, कर्नाटक, केरल और उड़ीसा। इन छः राज्यों का देश मे कुल पावर टिलरों के विक्रय में 78 प्रतिशत भाग था।

इस विक्रय सूचक का अभिप्राय यह नहीं कि इसके कारण विभिन्न राज्यों में कृषि उत्पादकता में स्वतः वृद्धि हो जाएगी। कृषि मशीनों के प्रयोग में वृद्धि के बावजूद सभी राज्यों में कृषि विकास की दृष्टि से इनके पोषणीय लाभ समान नहीं हैं क्योंकि इनके अधिकतर लाभ उत्तरी राज्यों एवं कुछ अन्य राज्यों में संकेन्द्रित हो गए हैं चूंकि इनमें सिंचाई सुविधाएं विकसित की जा चुकी हैं।

इसके अतिरिक्त बड़े किसानों ने ट्रैक्टरों एवं पावर-टिलरों का प्रयोग करना आरम्भ किया है क्योंकि इसके लिए बड़े आकार के फार्म चाहिए परन्तु यदि इनका प्रयोग छोटी फार्मों की बहुत अधिक संख्या द्वारा करना हो तो दसवीं योजना का मत है कि जापान जैसे देशों में इस्तेमाल किए जाने वाले उपकरण एवं मशीनें जो विशेषतः छोटी फार्मों के लिए उपयुक्त हैं, को भारत में अपनाना होगा।

12.6 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1 - बहुउद्देशीय परियोजनाएं आज भी विवाद का विषय क्यों हैं?

प्रश्न 2 - क्या कृषि यन्त्रीकरण कृषि विकास के लिए आवश्यक है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

भारत में 2006-07 तक कुल कितने प्रतिशत सिंचाई क्षमता का प्रयोग किया गया -

a. 95 प्रतिशत
b. 85 प्रतिशत
c. 75 प्रतिशत
d. 65 प्रतिशत

उत्तर 1- b

2.2009-10 में केन्द्र सरकार द्वारा सिचाईं कार्यक्रमों में कितने रूपये ऋण सहायता के रूप में दिए गये -

a. 34, 784 करोड़
b. 35, 874 करोड़
c. 32,684 करोड़
d. 31, 874 करोड़

उत्तर 2- a

12.7 सारांश

सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि कृषि आगतों के विदोहन को ल्ोकर काफी सतर्कता की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त भू-रक्षण, पौधों की सुरक्षा एवं मशीनों के सुचारू प्रयोग जैसे विषयों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। एक अच्छे विकसित क्षेत्र के लिए सिंचाई क्षमता का पूर्ण प्रयोग आवश्यक है। राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार दोनों को सहभागिता करके कृषि आगतों का विदोहन सुचारू रूप से करने का प्रयास करना चाहिए। इसके अतिरिक्त किसानों कों टे"क्टरों एवं पावर-टिलरों का प्रयोग आवश्यक है। जापान का उदाहरण इस हेतु अग्रणी रूप से लिया जाता है अब वक्त आ गया है कि अब भारत भी इसे अपना कर अपने विकास का रास्ता प्रशस्त करे।

12.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. Datt and Sundram, R., (2009), India Economy, 61st Edition, Suttam Chand & Sons.
2. Prakash, B.A., (2009), The Indian Economy Since 1991 – Economic Reforms & Performances, Ist edition, Pearson Education.
3. Rudra, Ashok, (1975), Indian Plan Models, Ist edition, Allied Publishers, Bombey.
4. Mishra, S. K., and Puri, V. K., (2007), Problems of Indian Economy, Mimalaya Publishing House.
5. Govt. of India, Planning Commission, Tenth Five Year Plan, Vol-I
6. Shah and Vakil (Ed) : Agricultural Development of India, Policy and Problems.
7. Desai, A.R., (1983) Rural Sociology in India, Popular Prakashan, Bombay.
8. Bansil, P. C. (1981), Agricultural Problems of India, Oxford and IBH Publishing Company.
9. J. W. Mellow; Economics of Agriculatural Development.

12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 - भारत में सिंचाई क्षमता के अल्पप्रयोग के क्या कारण हैं? इसको किस प्रकार दूर किया जा सकता है?

प्रश्न 2 - कृषि आगतों की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

इकाई-13 भूमि सुधार एवं नवीन कृषि रणनीति

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 भूमि सुधार से आशय
13.3 भूमि सुधार और आर्थिक विकास
13.4 भारत में भूमि सुधार
13.4.1 मध्यस्थता उन्मूलन
13.4.2 काश्ताकारी सुधार
13.4.3 जोतों की सीमाबन्दी
13.4.3.1 जोत सीमा बन्दी का मूल्यांकन
13.4.3.2 चकबन्दी
13.5 भूमि सुधारों की अपर्याप्तता
13.6 भू-सुधार नीति की आलोचना
13.7 भू-सुधार और नयी आर्थिक नीति
13.8 नवीन कृषि रणनीति
13.9 नयी कृषि विकास रणनीति
13.9.1 नयी कृषि विकास रणनीति की कमजोरियाँ
13.9.2 आय की बढ़ती हुई असमानताएँ
13.10 अभ्यास प्रश्न
13.10 पाठ सारांश
13.11 संदर्भ ग्रन्थ
13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना:-

पिछले अध्याय के अध्ययन के उपरान्त आप यह भांति प्रकार जान चुके हैं कि कृषि अर्थव्यवस्था का निष्पादन स्तर तकनीकि और संस्थागत घटकों से प्रभावित होता है। यदि चर्चा तकनीकि घटकों की की जाये तो इसमें बीज, सिंचाई, उर्वरक, कृषि यंत्र और पौध संरक्षण प्रमुख है जब संस्थागत घटकों के अन्तर्गत भू-धारण प्रणाली, भूमि स्वामित्व का वितरण, कृषिगत रोजगार की संरचना और संस्थागत परिवर्तन की कोटि में एक प्रमुख आयाम भूमि सुधार की है।

अतः यह इकाई इस प्रकार निर्मित की गयी है जिससे आपके भारत में भूमि सुधार से सम्बन्धित जानकारी प्रदान की जायेगी। इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा निर्मित नवीन कृषि रणनीति की व्यापक चर्चा की जायेगी।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यनोपरांत आप

- भूमि सुधार का आर्थिक विकास से सम्बन्ध जान पायेंगे।
- भूमि सुधार से सम्बन्धित विभिन्न प्रथाओं से अवगत हो सकेंगे।
- जोतों की सीमाबंधी, चकबंदी सम्बन्धित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- नवीन कृषि रणनीति पर विस्तारपूर्वक चर्चा कर सकेंगे।
- भूमि सुधार से सम्बन्धित सरकार द्वारा बनायी विभिन्न प्रकार की नीतियों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

13.2 भूमि सुधार से आशय

सामान्य रूप से लघु व सीमांत कृषक और कृषि श्रमिक के हित में भूमि संसाधन का पुनर्वितरण भूमि सुधार कहलाता है। विरासत से प्राप्त भूमि प्रणाली में निहित कृषि उत्पादन के अवरोधों को दूर करना और भू-धारण प्रणाली में विद्यमान समस्त शोषण एवं सामाजिक अन्याय को दूर करना भूमि सुधार के उद्देश्य है। छटी पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधार के उद्देश्यों को अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। मध्यस्थों की समाप्ति, लगान नियमन, कास्तकारी सुरक्षा तथा कास्तकारों को स्वामित्वाधिकार सहित कास्तकारी सुधार, जोतों पर सीमाबंधी और अतिरिक्त भूमि का वितरण, जोतों की चकबन्दी और भूमि अभिक्षेत्रों का संगठन और नवीनीकरण को भूमि सुधार का मुख्य उद्देश्य माना गया है। अतः भूमि सुधार कार्यक्रम एक और भू-धारण प्रथाओं को बदलने के प्रति और दूसरी ओर उत्पादन इकाइयों को आर्थिक आकार में बदलने के प्रति प्रयत्नशील है।

13.3 भूमि सुधार और आर्थिक विकास:

भूमि की समस्या भारतीय कृषि में आधारभूत है। जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि पर जनसंख्या का दबाव अधिक बढ़ता जा रहा है। अर्थव्यवस्था के विविधीकरण की अपेक्षाकृत मद गति और ग्रामोद्योगों के पतन के कारण भूमि समस्या अधिक दुरूह होती जा रही है। इस परिप्रेक्ष्य में भूमि सुधार की आवश्यकता देश में दीर्घकाल से अनुभव की जाती रही। भूमि सुधार किसी अर्थव्यवस्था की परम्परागत कृषि में निहित अवरोधों को दूर करता है और रकम व भूमि संसाधनों को अपव्यय से बचाता है। भूमि सुधार एक संस्थात्मक परिवर्तन है और इसे तकनीकी परिवर्तन व वैज्ञानिक कृषि आरम्भ करने के पूर्व किया जाना चाहिये। यद्यपि कुछ ऐसी अर्थव्यवस्थाओं के भी उदाहरण उपलब्ध हैं। जिन्होंने भू-धारण प्रणाली में समानता और सुधार लाने का विशेष प्रयास नहीं किया, तथापि आर्थिक विकास में बहुत आगे बढ़ गये यथा जापान, हंगरी, इंग्लैंड आदि। इन अर्थव्यवस्थाओं के भू-स्वामियों ने अपने लाभांशों का प्रयोग औद्योगिक विकास हेतु किया। दूसरी ओर ऐसा भी उदाहरण उपलब्ध हैं जहाँ कृषक इन लाभांशों का प्रयोग पूँजी-निर्माण में नहीं करते हैं। इस अवस्था में विलासी व अनुत्पादक अतिरेक को घटाने के लिए भूमि साधन का पुनर्वितरण आवश्यक है। दूसरी ओर समाज के वे लोग जो इस प्रकृति-प्रदत्त संसाधन के लाभों से वंचित हैं, उनका भी इस पर अधिकार हैं, उनके पक्ष में भी इसका पुनर्वितरण होना चाहिए। अधिकांश बड़े भू-स्वामी स्वयं कृषिकार्य न करके असामियों व पट्टेदारों से कराते हैं। जिसमें कास्तकारों की कोई सुरक्षा नहीं होती है और इसके अभाव में कृषि कार्य में अपेक्षित रूचि लिया जाना संदिग्ध हो जाता है। अतः कास्त सुरक्षा अवश्य ही उत्पादन बढ़ाकर आर्थिक विकास में योगदान करेगी। भूमि सुधार में दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न कृषि उत्पादिता बढ़ाकर आर्थिक विकास में योगदान करेगी। भूमि सूधार में दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न कृषि उत्पादिता के सन्दर्भ में जोत आकार से सम्बद्ध है। छोटे व सीमान्त कृषकों को केवल भूमि स्वामित्व प्रदान करना पर्याप्त नहीं है। जोत का उपयुक्त आकार भी होना आवश्यक है। इसके द्वारा भी उत्पादन वृद्धि में सहायता प्राप्त होती है। अतः भूमि सुधार के कुछ अन्य पहलू यथा चकबन्दी, सहकारी खेती एवं जोत सीमाबन्दी भी उत्पादन वृद्धि में येागदान कर आर्थिक विकास को द्रुत बनाते है।

13.4 भारत में भूमि सुधार:

13.4.1 मध्यस्थता उन्मूल

स्वतंत्रता के बाद कृषि क्षेत्र में व्याप्त मध्यस्थों के उन्मूलन को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई। राष्ट्रीय आकांक्षा के अनुरूप राज्यों की विधान सभाओं द्वारा क्रमशः कानून बनाये गए। अधिकांश राज्यों में मध्यस्थता उन्मूलन का कार्यक्रम 1948 से 1954 की अवधि में लागू किया गया। जमींदारी उन्मूलन सन्नियमों की वैधता को भी चुनौती दी गई तथा विभिन्न पक्षों के प्रति राज्यों के उच्च न्यायालयों और अंततः उच्चतम न्यायालय में मुकदमें दायर किए गए, तथापित इन

सन्नियमों को ही सामान्यतः बैधता प्रदान की गई। जमींदारी उन्मूलन कार्यक्रम मुख्यतः जमींदारों की परिसम्पत्ति का राज्य द्वारा क्षतिपूर्ति देकर अधिग्रहण करने का कार्य थां मध्यस्थों की समाप्ति का कार्य 1948 में मद्रास के अधिनियम से आरम्भ हुआ। इसके पश्चात् बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बम्बई आदि राज्यों ने भी कानून बनाये। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पश्चिमी बंगाल में जमींदारी उनमूलन अधिनियम सबसे बाद में 1954-55 में बनाया गया, जबकि पश्चिमी बंगाल बिचौलियों की लम्बी श्रंखला और कुप्रभावों से अत्यधिक प्रभावित था सभी राज्यों में जमींदारी उन्मूलन अधिनियम बन चुका है और मध्यस्थें के उन्मूलन का कार्य लगभग पूरा हो चुका है। मध्यस्थता उन्मूलन एक प्रमुख कार्यक्रम था और इसकी उपलब्धि महत्वपूर्ण रही है। देश के कृषित क्षेत्र के 46 प्रतिशत भाग पर मध्यस्थ प्रथा रही है और जिस पर से मध्यस्थों का उन्मूलन किया जा चुका है।

भारत में मध्यस्थ प्रथा यथा जंमीदारी, जागीरदारी, इनाम देश के लगभग 40 प्रतिशत भू-भाग पर फैली हुई थीं। इस कार्यक्रम से इनका उन्मूलन हुआ और काश्तकारों की सामाजार्थिक स्थिति में सुधार हुआ। कुल मिलाकर 173 लाख एकड़ भूमि राज्य के अधिकार में आ गई। सरकार ने 670 करोड़ रूपये की क्षतिपूर्ति कर भूमि पर अपना स्वामित्व स्थापित कर लिया। इसके साथ-साथ सरकार ने बड़े भूमिखंडों, सामूहिक भूमियों और वनों पर भी अधिकार कर लिया। कृषि सुधार की दिशा में इस शक्तिशाली वर्ग का विशेष एक उल्लेखनीय उपलब्धि थी तथा कृषि सुधार के इतिहास में यह अद्वितीय घटना रही है। मध्यस्थों के उन्मूलन और काश्तकारों को भूमि का स्वामित्व मिलने से कृषकों को उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा मिली। इसके पूर्व मध्यस्थ प्रथा के कारण कृषि में उन्नति के लिए आवश्यक विनियोग नहीं हो पाता था और कृषि की उत्पादिता निम्नकोटि की बनी रहती थी। उत्तरप्रदेश में भूमि सुधार के एक अध्ययन से पता चलता है कि जमींदारी उन्मूलन के कारण जोतों की संरचना समानता की ओर बढ़ी है और जमींदारी उन्मूलन व्यक्तिगत पूँजी निर्माण को प्रोत्साहित किया है। यद्यपि बटाई की कुप्रथा पर मध्यस्थों के उन्मूलन का कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ, क्योंकि कानून में इसके निराकरण हेतु कोई व्यवस्था नहीं थी।

13.4.2 काश्तकारी सुधार- जमींदारी और रैयतवारी भूमि व्यवस्था के अधीन देश में पट्टेदारी काश्त प्रचलित रही है। पट्टे पर कृषि कार्य करने वाले किसानों के तीन वर्ग रहे हैं। (क) स्थायी काश्तकार (ख) इच्छित काश्तकार (ग) उप काश्तकार। स्थायी काश्तकार के पट्टेदारी हक स्थायी रहे है। उनहें पट्टे की स्थिरता और सुरक्षा प्राप्त रहती है। इस कारण अंततः वे कृषि भूमि के स्वामी बन जाते हैं। भूमि व्यवस्था के इस प्रारूप में इच्छित काश्तकारों और उप-काश्तकारों की स्थिति अत्यन्त खराब थी। इन काश्तकारों का भू-स्वामियों द्वारा बार-बार लगान में वृद्धि, बेदखली, बेगार आदि माध्यमों से शोषण किया जाता था। इनकी काश्तकारी भू-स्वामियों की प्रसन्नता तक ही बनी रह सकती थी। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 8वें दौर में यह अनुमान लगाया गया था कि सम्पूर्ण भारत में 1953-54 में लगभग 20 प्रतिशत भूमि पट्टेदारी व्यवस्था के अन्तर्गत थी। इन आँकड़ों में स्थायी

काश्तकार की भूमि को सम्मिलित नहीं किया गया था। क्योंकि स्थायी पट्टेदारों को भूमि-स्वामियों के समान अधिकार प्राप्त थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पट्टेदारी में सुधार के निम्नलिखित प्रयास किये गये।

(क) लगान का नियम - स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व देश के विभिन्न भागों में लगान की दर अत्यन्त ऊंची थी और साथ-साथ लगान वसूली की अमानुषिक विधि भी प्रचलित थी। पट्टदारों को लगान प्रदान करने के लिए प्रताड़ित किया जाता था। विभिन्न भागों में प्रचलित लगान उपज का 50 प्रतिशत व इससे भी कुछ अधिक था। एच0डी0 मालवीय ने अनुमान लगाया कि देश में लगान की दर उपज के

34.75 प्रतिशत भाग तक थी। उस समय लगान या तो परम्परा के आधार पर लिए जाते थे या इनका निर्धारण मांग-पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता था। ब्रिटिश शासन के अंतिम चरण तक देश का ग्रामोद्योगी ढाँचा चरमरा गया था। परिणामतः कृषि पर जनसंख्या का बोझ बढ़ जाने से मांग शक्तियाँ अधिक प्रबल हो गयी और लगान बढ़ता गया। इन अंतर्विरोधों को समाप्त करने के लए यह आवश्यक हो गया था कि लगान नियमन किया जाये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न राज्यों में निर्धारित की गई लगान दरों में विभिन्नता है, तथापि वे एक निश्चिम अंगीकृत मान के आस-पास ही हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में योजना आयोग की ओर से यह सुझाव दिया गया कि सम्पूर्ण देश में लगान का नियमन करके इसके कुल उपज का 20 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक भाग निश्चित किया जाना चाहिए। राजस्थान, महाराष्ट्र और गुजरात में अधिकतम लगान कुल उपज का छठा भाग नियत किया गया है। उड़ीसा, बिहार, असम, मणिपुर और त्रिपुरा में कुल उपज का 25 प्रतिशत भाग लगान नियत यिका गया है। मध्य प्रदेश में लगान भू-राजस्व का गुणज है तथा लगान भू-राजस्व के दुगुने से चार गुने के बीच निश्चित किया गया हे। योजना आयोग ने यह भी सुझाव दिया है कि उपज रूप में लगान निर्धारित करना कठिन है। इस कारण उपज लगान के स्थान पर नकद लगान निर्धारित किया जाना चाहिए, ताकि लगान की दर में होने वाले वार्षिक उच्चावचनों को समाप्त किया जा सके और जोतने वाले को उसके विनियोग का लाभ सुनिश्चित किया जा सके। लगान के सम्बन्ध में विद्यमान किसी भी शोषण और अनिश्चितता को समाप्त करने के लिए प्रयास किया जा रहा है।

(ख) काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार - काश्तकारी सुरक्षा की दिशा में भूमि सुधार कार्यक्रमों का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष काश्तकारों के लिए भूमि स्वामित्व अधिकार प्रदान करने की व्यवस्था करना है। भूमि व्यवस्था में न्याय प्रदान करने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण प्रयास है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह व्यवस्था की गई कि उन जोतों पर जिन्हे भू-स्वामी पुनः नहीं प्राप्त कर सकते, काश्तकारें और सरकार के बीच सम्बन्ध स्थापित किया जाये। इस आकांक्षा के अनुरूप राज्यों ने कानून लागू किये हैं जिनके अनुसार पट्टेदार कृषक भू-स्वामी को निश्चित क्षतिपूर्ति प्रदान कर भू-स्वामित्व प्राप्त कर सकता है। पश्चिमी बंगाल, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात और कर्नाटक आदि राज्यों में इसके लिये कानून बनाये जा चुके हैं। भारतीय योजना आयोग के एक अनुमान के अनुसार लगभग 8 मिलियन काश्तकारों और बटाई पर खेती

करने वालों के इस व्यवस्था के अधीन उनके द्वारा कृषित भूमि पर उन्हें स्वामित्व का अधिकार प्रदान किया जा चुका है।

13.4.3 जोतों की सीमाबन्दी - समतावादी समाज की स्थापना का विचार भारतीय आर्थिक नीति में आरम्भ से ही निहित रहा है। इस कारण आरम्भ से ही सामाजिक व आर्थिक असमानतायें घटाने के लिए प्रयास किया जाता रहा है और किसी भी प्रकार की असमानता का निषेध नीति निर्धारण का मूल प्रेरक तत्व रहा है। इसी परिकल्पना के अन्तर्गत जोत सीमाबन्दी की नीति बनाई गई। सामान्य रूप से जोत सीमाबन्दी निर्धारण के दो पक्ष हैं। प्रथम बड़े कृषकों के जोत के आकार में कमी करना और द्वितीय अतिरिक्त भूमि-वितरण द्वारा अत्यन्त छोटी जोतों वाले भू-स्वामियों और भूमिहीनों को भूमि प्रदान करना।

कृषि गणना के आँकड़ों से प्रतीत होता है कि देश की कुल जोतों का लगभग 57.8 प्रतिशत भाग सीमान्त जोतें हैं जिनका आकार 1.0 हेक्टर से छोटा है। परन्तु इन 57.8 प्रतिशत जोतों में कुल क्षेत्र का केवल 13.4 प्रतिशत भाग आता है। इसी प्रकार लघु आकारीय जोतें कुल जोत का लगभग 18.5 प्रतिशत भाग हैं। जिनके अन्तर्गत कुल क्षेत्र का 15.6 प्रतिशत भाग है। दूसरी ओर केवल 2.0 प्रतिशत जोतों का आकार 10.0 हेक्टर से अधिक है, जबकि इनके अन्तर्गत आने वाला कुल क्षेत्र 26.1 प्रतिशत है। तालिका 17.1 से स्पष्ट होता है कि 48.7 प्रतिशत कुषिगत क्षेत्र 4.0 हेक्टर और उससे बड़ी जोतों के अन्तर्गत है, जबकि इन जोतों की संख्या कुल जोतों की केवल 10.1 प्रतिशत ही है। इससे यह ज्ञात होता है कि भारत में भूमि का कुछ हाथों में ही संकेन्द्रण है। अधिकांश सम्पन्न कृषक भूमि के मालिक बने हैं। बहुसंख्यक जोतों का आकार अनार्थिक है। इन छोटी जोतों के अतिरिक्त एक बड़ी संख्या में भूमिहीन कृषि श्रमिक विद्यमान है। भूमि संसाधन का यह नितान्त विषमता पूर्ण वितरण जोत सीमाबन्दी की अनिवार्यता का संकेत करता है।

क्रियात्मक जोतों का आकार

आकार वर्ग	संख्या लाख में		क्षेत्र लाख हेक्टर में	
	1980-81	**1985-86**	**1980-81**	**1985-86**
1.0 हेक्टर में कम	501.5	561.8	197.3	220.4
1.0 से 2.0 हेक्टर तक	160.4	179.2	231.7	257.1
2.0 से 4.0 हेक्टर तक	124.5	132.5	346.4	366.7
4.0 से 10.0 हेक्टर तक	80.7	79.1	485.4	471.4
10.0 हेक्टर से अधिक	21.7	19.2	377.0	330.0
योग	888.6	971.5	1637.8	1654.6

Source : Agriculture Statistical Glance 2002.

आरम्भ से लेकर अब तक जोत सीमाबन्दी के क्षेत्र में हुई प्रगति का विश्लेषण चार आधारों- सीमाबन्दी लागू करने की इकाई, जोत की अधिकतम सीमा, छूट की अधिकतम सीमा और अतिरिक्त घोषित भूमि की उपलब्धि और उसका वितरण-पर किया गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सिद्धान्ततः, सीमाबन्दी नीति को मान लिया गया था और राज्य सरकारों को यह स्वतंत्रता दी गयी थी कि अपने ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याओं को देखते हुए जोत सीमाबन्दी का निर्धारण करें। भूमि रखने की अधिकतम सीमा लागू करने के सिद्धान्त की घोषणा सर्वप्रथम 1953 में की गयी। भूमि-सम्बन्धी आँकड़ों को एकत्र करने का प्रयास किया गयां 22 राज्यों ने कृषिजोतों की गणना का कार्य किया और 1953-54 के भूमि-सम्बन्धी आँकड़े एकत्र किये। अंततः द्वितीय पंचवर्षीय योजना से सीमाबन्दी नीति को क्रियान्वित करने के प्रयास किये गये।

जोत सीमाबन्दी के संदर्भ में 1972 के नियम के पूर्व सभी राज्यों में व्यक्ति को सीमाबन्दी की इकाई माना गया था। इस आधार पर परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने पास एक निश्चित स्तर तक भूमि रख सकता है। परिणामतः जोत सीमाबन्दी के बाद भी प्रत्येक परिवार के पास बड़ी-बड़ी जोतें बनी रहीं। इसी प्रकार 1972 के कानूनों के पूर्व जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण बहुत ऊचें स्तर पर किया गया था तथा उच्चतम और निम्नतम् सीमाओं के बीच अत्यधिक अंतर था। विभिन्न राज्यों ने अपनी परिस्थिति के अनुरूप सीमा निर्धारण किये था। इस कारण विभिन्न राज्यों द्वारा निर्धारित अधिकतम सीमा में भी अन्तर था। उदाहरणार्थ अधिकतम जोत सीमा का विस्तार प्रति व्यक्ति आन्ध्र प्रदेश में 27 से 324 एकड़ तक और राजस्थान में 22 से 326 एकड़ तथा। इस प्रकार आन्ध्र प्रदेश में 5 व्यक्तियों का एक परिवार 324 ग 5 त्र 1620 एकड़ तक जमीन अपने पास रख सकता था। पूर्व के जोत सीमाबन्दी कानूनों में भूमि के लिए विभिन्न प्रकार की छूट की व्यवस्था थी, यथा उत्तर प्रदेश में 20 प्रकार की भूमियाँ, केरल में 17 और पंजाब में 13 प्रकार की भूमियाँ छूट से युक्त थी। छूट प्रदान की गई इन भूमियों में बागान क्षेत्र, सहकारी कृषि फार्म, धर्मार्थ संस्थाओं के अन्तर्गत आने वाली भूमियाँ आदि सम्मिलित थीं। इन छूटों के कारण लोग भूमि को परिवार के अन्य व्यक्तियों और छूट वाले विशिष्ट प्रयोगों में हस्तांतरित करने लगे। परिणामतः अत्यन्त कम भूमि अतिरिक्त घोषित की जा सकी थी। इन विसंगतियों और अल्प निष्पादन के कारण यह आवश्यक हो गया था कि जोत सीमाबन्दी पर पुनर्विचार किया जाये।

जोत सीमाबन्दी पर पुनर्विचार और जोत सीमाबन्दी की नवीन योजना बनाने के लिए एक केन्द्रीय भूमि सुधार समिति का 1971 में गठन किया गया। जोत सीमाबन्दी पर पुनर्विचार पूर्व अधिनियमों की विसंगतियों के अतिरिक्त इस कारण भी आवश्यक था क्योंकि चतुर्थ पंचवर्षीय योजना तक हरित क्रान्ति का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा था। उत्पादन, उत्पादिता और कीमतें बढ़ने के कारण कृषकों की, विशेषकर बड़े कृषकों की आय बढ़ने लगी थी। अतः उक्त समिति ने राज्य सरकारों के साथ विचार-विमर्श किया और जोर सीमाबन्दी के लिए पृथक् महत्वपूर्ण निर्णय लिये। इसके निर्णयों ने जोत सीमाबन्दी के पुराने कानूनों की विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया। साथ-साथ भूमि की बढ़ती हुई माँग को देखते हुए अपेक्षाकृत नीची जोत सीमा निर्धारित की। इस सन्दर्भ में 23 जुलाई,

1972 को मुख्य मंत्रियों का एक सम्मेलन बुलाया गया। सम्मेलन में हुए विचार-विमर्श के आधार पर जोत सीमाबन्दी के लिए नवीन अधिनियम बनाया गया। 1972 के बाद जोत सीमाबन्दी से सम्बद्ध विभिन्न आयामों का विवरण और तत्सम्बद्ध निष्पादन निम्नवत् रहा है।

वर्तमान सीमाबन्दी नीति के अन्तर्गत अधिकतम जोत सीमाबन्दी के लिए परिवार को आधार बनाया गया है और परिवार की संकल्पना में पति-पत्नी तथा तीन बच्चों को सम्मिलित किया गया है। नवीन नीति के अन्तर्गत अधिकतम सीमा का स्तर और विस्तार घटा दिया गया है। भूमि की उर्वरा शक्ति, स्थिति और सुविधा देखते हुए सिंचित भूमियों के लिए जोत की सीमा 10 से 18 एकड़ निश्चित की गई है। जिन भूमियों पर सिंचाई की सुविधा केवल एक फसल के लिए सीमित थी, उस पर अधिकतम सीमा 56 एकड़ निर्धारित की गई थी। अन्य सभी प्रकार की भूमियों के लिए जोत की अधिकतम सीमा 56 एकड़ निर्धारित की गई थी। नवीन जोत सीमाबन्दी नीति नागालैंड, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश और मिजोरम, अंडमान नीकोबार द्वीप समूह ओर गोवा दमन व द्वीव को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में लागू कर दी गई है। आठवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक 74.9 लाख एकड़ भूमि जोत सीमाबन्दी नियमों के अन्तग्रत अतिरिक्त घोषित की गयी है। इसमें से 52.13 लाख एकड़ भूमि 5.5 मिलियन लाभार्थियों में बांटी जा चुकी है। नवीं पंचवर्षीय येाजना में अतिरिक्त भूमि घोषित करने और उसे ग्रामीण भूमिहीन कास्तकारों में बांटने में कोई प्रगति नहीं हुयी। नवीं पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधार के अन्य कार्यक्रमों यथा कास्तकारी सुरक्षा और चकबन्दी के क्षेत्र में प्रगति अत्यन्त सीमित रही। इसमें से अधिकांश लाभान्वित लोग अनुसूचित जनजाति परिवारों से थे। यह भूमि कुल 33.76 लाख व्यक्तियों को वितरित की गयी है इसमें से 54.7 प्रतिशत अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के हैं।

13.4.3.1 जोत सीमा बन्दी का मूल्यांकन:

किसी भी स्तर से देखा जाए तो ऊपर वर्णित सफलता बहुत कम है। बचत घोषित क्षेत्र देश की कुल कुषि योग्य भूमि का लगभग 1.8 प्रतिशत है। परन्तु वास्तव में 1.1 प्रतिशत भूमि ही वितरित की गई। 1981 के आँकड़ों के अनुसार खेतिहर श्रमिकों के केवल 6 प्रतिशत को ही लाभ पहुँचा। इस प्रकार समस्या के केवल किनारे को ही स्पर्ष किया जा सका। लाभ प्राप्त करने वालों तथा वितरित क्षेत्र के बारे में आँकड़ों से पता चलता है कि इस योजना के अन्तर्गत लाभ पाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को 0.52 हेक्टेयर जमीन उपलब्ध हुई जिसका क्षेत्रफल थोड़ा है और इससे इतना अधिक उत्पादन नहीं हो सकता कि उस परिवार को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाया जा सके।

बचत घोषित भूमि तथा भूमिहीनों को वितरित की गई जमीन प्रायः अचछी किस्म की नहीं होती। इसके अलावा जिन लोगों को यह जमीन आवंटित की जाती है वे इतने गरीब होते हैं कि पूरक निवेशों के लिए वे धन नहीं लगा सकते और ऋण प्राप्त करने में उन्हें बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। सीलिंग से प्राप्त भूमि जिन लोगों को आवंटित की गई, उन लोगों को भूमि में सुधार के लिए

वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए एक केन्द्रीय योजना 1975-76 से शुरू की गई। परन्तु इस योजना के अन्तर्गत इतनी मामूली धनराशि दी गई जिसका कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। केन्द्रीय कृषि तथा सिंचाई मंत्रालय द्वारा भूमि सुधारों के बारे में गठित एक कार्यदल ने कई वर्ष पहले बताया कि भूमि सुधार की लागत 700 रूपपे प्रति हेक्टेयर से कम नहीं होगी जबकि केन्द्र योजना के अन्तर्गत केवल 200 रूपये प्रति एकड़ की सहायता उपलब्ध है। यह धनराशि बाद में बढ़ाकर 400 रूपये प्रति एकड़ तथा उसके बाद 1000 रूपये कर दी गयी। अभी भी अतिरिक्त घोषित 74.9 लाख एकड़ भूमि में से 52.13 लाख एकड़ भूमि लाभार्थियों में वितरित की जा सकी है। शेष 22-77 लाख एकड़ भूमि लाभार्थियों में वितरित किया जाना है। इसमें से कुछ भूमि मुकदमे में उलझी है। अतिरिक्त घोषित भूमि में से कुछ भूमि खेती लायक नहीं है उसे खेती योग्य बनाने में भारी लागत आयेगी। कुछ भूमियां वृक्षारोपण और सामाजिक वानिकी जैसे प्रयोजनों के लिए आरक्षित है। इस प्रकार बहुत कम भूमि वितरण के लिये उपलब्ध होगी।

13.4.3.2 चकबन्दी -उपविभाजन और अपखण्डन की समस्या के समाधान हेतु सामान्यतः जोत के आकार में वृद्धि, सहकारी खेती और चकबन्दी के उपाय आवश्यक समझे जाते है। इनमें वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार चकबन्दी अत्यन्त सक्षम उपाय माना जाता है। यहाँ चकबन्दी की प्रक्रिया और इस दिशा में हुई प्रगति का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

चकबन्दी की प्रक्रिया में गाँव में प्रत्येक कृषक के विभिन्न स्थानों पर बिखरे खेतों को एक ही स्थान पर लाया जाता है। प्रत्येक खेत का पृथक-पृथक मूल्यांकन किया जाता है। इस विधि से कृषक की सम्पूर्ण जोत का मूल्यांकन कर लिया जाता है। इस आधार पर प्रत्येक कृषक को उसके जोत की भूमि के मूल्य के बराबर की भूमि एक ही स्थान पर प्रदान की जाती है। इस प्रकार भूमि के अपखण्डन की समस्या के समाधान हेतु सबसे सरल और साधारण उपाय चकबन्दी को माना जाता है। चकबन्दी का लक्ष्य एक ही परिवार के बिखरे हुए खेतों को एक चक में बदल करके आर्थिक जोत व लाभप्रद कृषि का आधार सृजन करना है। चकबन्दी किये हुए खेत पर वैज्ञानिक ढंग से कृषि की जा सकती है। एक खेत से दूसर खेत पर आने-जाने वाला श्रम और समय बच जाता है। खेतों के बीच डोर बनाने में भूमि व्यय नहीं होती है। रखवाली करना सुगम हो जाता है और सिंचाई ठीक से की जाती है। अतः खेती का व्यय कम हो जाता है और आय बढ़ जाती है।

जोतों की चकबन्दी दो प्रकार से की जा सकती है। स्वेच्छापूर्ण प्रयत्नों द्वारा चकबन्दी में व्यक्तिगत किसान पारस्परिक समझौते द्वारा अपने बिखरे और अपखण्डित खेत के विनियम में अन्य खेत लेकर अपनी सम्पूर्ण जोतों को एकत्रित करता है। अनुभव ने बताया है कि स्वेच्छापूर्ण प्रयत्नों द्वारा चकबन्दी बहुत खर्चीली और कठिन होती है। पंजाब में 1920 में सहकारिता के आधार पर चकबन्दी का कार्य प्रारम्भ किया गया था। जो किसान अपने खेतों की चकबन्दी करने के लिये इच्छुक होते थे, वे एक सहकारी समिति का निर्माण करते थे और अपने सम्पूर्ण खेत को एकत्रित

करते थे। एकत्रित करने के बाद वे भूमि के पुनर्वितरण की योजना बनाते थे। परन्तु ऐच्छिक प्रयासों का समुचित प्रभाव न होने के कारण 1930 के बाद में अनिवार्यता लागू की गई और अधिनियम बनाये गये। अधिनियमों के अन्तर्गत चकबन्दी की योजना को समस्त स्थानीय भूमि अधिकार रखने वाले किसानों पर अनिवार्य रूप से लागू किया गया। यदि इस प्रकार के आधे काश्तकार, जो कि भूमि के कम से कम 2/3 हिस्से पर दखल रखते हैं, इस योजना से सहमत हो गये हैं। बाद में इन अधिनियमों में संशोधन हुआ और नपये अधिनियम बनाये गये। बम्बई चकबन्दी अधिनियम 1947 के द्वारा सबसे पहले सरकार को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि काश्तकारों की बिना अनुमति लिये चकबन्दी की जा सके। अन्य राज्य जहाँ इस प्रकार के कानून लागू कर दिये गये हैं'-पंजाब, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश का हैदराबाद वाला भाग और जम्मू और कश्मीर हैं।

चकबन्दी की प्रगति - भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही चकबन्दी का कार्य चल रहा है। यह एक सतत् प्रक्रिया के रूप में चलना भी चाहिये। परन्तु कुल मिलाकर चकबन्दी कार्य की प्रगति मंद रही है। देश में 1979-80 तक कुल 46.2 मिलियन हेक्टर क्षेत्र में चकबन्दी की जा चुकी थी। छठी योजना के अंत तक 56 मिलियन हेक्टर क्षेत्र पर चकबन्दी हो चुकी थी। जो कृषि योग्य क्षेत्र का लगभग 39 प्रतिशत है। 31 मार्च, 2002 तक देश के कुल कृषि योग्य क्षेत्र 142 मिलियन हे0 से 66.10 मिलियन हेक्टर पर चकबन्दी कार्य पूरा हो चुका था। जो देश के कुल कृषि योग्य क्षेत्र 142 मिलियन हेक्टर का 46.5 प्रतिशत है। चकबन्दी का कार्य सतत् प्रक्रिया के रूप में चलना चाहिये परन्तु कई राज्यों ने चकबन्दी की प्रक्रिया बंद कर दिया है। पंजाब और हरयाणा में चकबन्दी कार्य पूरा हो चुका है। उत्तर प्रदेश, बिहार, गजरात, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर और कर्नाटक में चकबन्दी लगभग पूर्ण होने की स्थिति में है। मध्य प्रदेश और उडीसा में अच्छी प्रगति है। देश के उत्तर-पूर्व के राज्यों में चकबन्दी पर जोर दिया जा रहा है।

13.5 भूमि सुधारों की अपर्याप्तता

राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप भारत में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद आरम्भ किये गये भूमि सुधार कार्यक्रमों का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर निश्चित रूप से सकारात्मक रहा है। भूमि प्रणाली अब पर्याप्त रूप से सरल हो गयी हे और भूमि सम्बन्धों में एकत्व व समानता स्थापित हो गयी है। विभिन्न भू-धारण प्रणालियों के स्थान पर अब दो-तीन प्रकार का भू-स्वामित्व ढंग विद्यमान है। कृषक का सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। स्वतंत्रता के समय देश में जोत की संरचना में अत्यधिक असमानात विद्यमान थी। उस समय ग्रामीण जनसंख्या के लगभग 4 प्रतिशत बड़ें भू-स्वामी 50 प्रतिशत भूमि के स्वामी थे। इसके विपरीत तीन-चौथाई ग्रामीण जनसंख्या केवल 16 प्रतिशत भूमि की मालिक थी। बाद की स्थिति में इसमें उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है। 1971 की कृषि गणना के अनुसार देश के लगभग 4 प्रशित बड़े कृषकों के पास कुल कृषित भूमि का 30.1 प्रतिशत भाग था। लगभग 70 प्रतिशत जोतें छोटे आकार की है जिनके पास कुल भूमि का लगभग

21 प्रतिशत भाग था। पट्टेदारी की सुरक्षा व मध्यस्थों के उन्मूलन से भारतीय कृषक के सामाजिक व आर्थिक स्तर में सुधार हुआ है। इन संस्थागत परिवर्तनों से वैज्ञानिक कृषि को प्रोत्साहन मिला है। कृषि उत्पादन व उत्पादिता बढ़ी है।

जोत सीमाबन्दी के पुराने नियम स्वयं में इतने उदार थे कि उनसे किसी आधिक्य की वास्तविक संभावना नहीं थी। जोत सीमा निर्धारण की नवीन नीति अवश्य ही समस्या तक पहुँचने का प्रयास करती है, परन्तु इसका क्रियान्वयन अत्यन्त मंद है। बड़े भू-स्वामी आज ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अपना दबाव बनाये रखने में सफल हैं। उन्हें कोई प्रसन्न कर सकने की स्थिति में नहीं है। साथ-साथ यह भी तर्क दिया जाता है कि यदि नगरीय क्षेत्र में एक ओर झुग्गी-झोपड़ियों की संख्या बढ़ रही है, फुटपाथ ओर अनाथालयों में रहने वालों की संख्या बढ़ रही है, तो दूसरी ओर विलासी उपभोग करने वालों की संख्या भी बढ़ रही है। महलों और झोपड़ियों का अन्तर बढ़ता जा रहा है तो वहाँ भी सम्पत्ति और आयगत अधिकतम सीमा लगायी जानी चाहिये। जो भी हो ग्रामीण क्षेत्र में भूमि संरचना का स्वभाव लगभग पूर्ववत् बना है। सतत उपादेय और ह्रासरहित भूमि संसाधन की माँग 'भूमि क्षुधा' बड़े कृषकों में बढ़ती जा रही है। यह देखा जा रहा है कि नगर-स्थित पूँजीपति ग्रामीण क्षेत्र में बड़े-बड़े कृषि फार्म क्रय कर रहे हैं जिसका प्रयोग वे सामाजिक प्रतिष्ठा, आमोद-प्रमोद और आधिक्य अर्जन के लिये करते हैं। इनके कारण सीमान्त कृषकों और भूमिहीन श्रमिकों की संख्या बढ़ रही है।

13.6 भू-सुधार नीति की आलोचना

भू-सुधार प्रोग्राम को एक भरसक उत्साह के साथ आरम्भ किया गया परन्तु यह उत्साह शीघ्र ही शिथिल पड़ गया और भू-सुधार के लिए आरम्भिक जोश ठंडा हो गया। मोटे तौर पर भू-सुधार विधान का परिकल्पन तो ठीक था परनतु इन कानूनों में बहुत दोष होने के कारण भू-सुधार विधान द्वक्षरा ग्रामीण जनता को बहुत थोड़ा सा न्याय उपलब्ध हुआ।प्रोफेसर दन्तवाला ने ठीक ही कहा, ''मोटे तौर पर भारत में अब तक बनाए गए भू-सुधार सम्बन्धी कानून और निकट भविष्य में कल्पित कानून उचित दिशा में कदम है, किन्तु कार्यान्वयन के अभाव के कारण इनके परिणाम सन्तोषजनक होने से कहीं दूर है।''

भारतीय भू-सुधार नीति का एक और दोष यह है कि इसके आधीन प्रगति धीमी रही है। इस प्रकार जमींदारों, जागीरदारों तथा अन्य निहित हितों को व्यवहार में इस कानून को खण्डित करने के लिए पर्याप्त समय प्राप्त हो गया।

कार्यक्रम में मूल्याकन संगठन द्वारा भू-सुधार के दो दोषपूर्ण प्रभावों का पता चलता है एक ओर तो पुराने भू-सुधारों को ध्यान में रखकर सभी राज्यों में राष्ट्रीय मार्गदर्शी सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए या तो नए अधिकतम जोत की सीमा के अधिनियम बनाए गए हैं या पुराने कानून संशोधित किए गए

हैं। अधिकतर संशोधित अधिनियम अब संविधान के नौंवे परिशिष्ट में शामिल कर दिए गए हैं। इस प्रकार अधिनियमों को न्यायालयों में चुनौती नहीं दी जा सकती। किन्तु असम, जम्मू तथा कश्मीर, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और दिल्ली द्वारा पारित कानून राष्ट्रीय मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं थे, या वे बहुत देर से पारित किए गए।

कृषि पर राष्ट्रीय आयोग ने सरकारी मशीनरी को याचिकाओं के परिणामों का प्रसार करने में ढील के लिए दोषी ठहराया है। आयोग ने उल्लेख किया हैः ''जब सरकार किसी मुकदमे में विजयी होती है, तो यात्रिकाओं के परिणाम जिले या तहसील तक पहुँचने कमें महीने या कई बार साल भी लग जाते हैं। इसके विरूद्ध जहाँ कहीं भी व्यक्ति विजयी होते हैं, वे बिना किसी बिलम्ब के प्रयास आरम्भ करते हैं और रिकार्डो में उचित संशोधन करवा कर ही दम लेते हैं।''

निस्सन्देह प्रशासनिक मशीनरी को मजबूत करने की बहुत आवश्यकता है। भू-सुधारों को सही ढंग से लागू करने के लिए और भूमि अधिकतम सीमा कानून की सफलता के लिए भू-स्वामित्व सम्बन्धी रिकार्डो को तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है। भू-सुधारों की सफलता के लिए प्रशासनिक मशीनरी में काश्तकारों, फसल सहभाजकों और भूमिहीन मजदूरों के प्रतिनिधि लेने होंगे ताकि बुनियादी स्तर पर जहाँ प्राथमिक स्तर पर अपीलें और तबदीलियाँ की जाती हैं, प्रभावी कार्य किया जा सके।

डा. पी.के. अग्रवाल जिन्होंने चुने हुए राज्यों में भू-सुधारों का अध्ययन किया है ने इस सम्बन्ध में कुछ अत्यन्त उपयोगी सुझाव दिए हैं:-

1. बड़े भू-स्वामियों से प्राप्त अतिरिक्त भूमि का वितरण अवलम्बित किया जाना चाहिए। इसके साथ-साथ भू-सुधार से लाभ प्राप्तकर्ताओं की सहायता के लिए इस बात की सख्त आवश्यकता है कि जवाहर रोजगार योजना/प्रधानमंत्री रोजगार योजना में निवेश को आदानों की समय पर पूर्ति से जोड़ा जाए।
2. भू-रिकार्डों की तैयारी रख-रखाव ओर कम्प्यूटरीकरण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। सभी काश्तकार जिनमें फसल-सहभाजक भी शामिल हो, की पहचान की जानी चाहिए और उनके अधिकार रिकार्ड किए जाने चाहिए और एक अभियान के रूप में पश्चिम बंगाल द्वारा कार्यान्वित 'आप्रेशन बरगा' की भांति उनको स्थायी एवं पैतृक अधिकार सौंपे जाने चाहिए। रिकार्ड की एक प्रमाणित प्रतिलिपि उन्हें 'किसान पासबुक' या किसी अन्य रूप में जारी करनी चाहिए।
3. जनजातीय वर्गो की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। इन पर लागू कानूनों में छिद्रों को समाप्त करना होगा और इनके लिए प्रशासनिक मशीनरी मजबूत बनानी होगी। जनजातीय क्षेत्रों में भूमि की सीमा, मूल्य और स्वामित्व सम्बन्धी भू-स्वामित्व सर्वेक्षण जहां कहीं भी न किए गए हों, पूरे करने होंगे।
4. खुद-काश्त की परिभाषा में निम्नलिखित बातों पर बल देना चाहिए:

(क)जो व्यक्ति खुद काश्त का दावा करता है, उसे काश्त करने की पूरी लागत का वहन करना होगा,

(ख) वह अपनी भूमि की काश्त या तो स्वयं करे या उसके परिवार के सदस्यों द्वारा इसके लिए श्रम जुटाया जाए और

(ग) वे और उसके परिवार के सदस्य वर्ष के अधिकतर भाग के दौरान उसी इलाके में रहें जहां उनकी भूमि स्थित है और

(घ) काश्त ही उसकी आय का मुख्य स्रोत होना चाहिए।

5. कृषि भूमि का कोई भी स्वामिस्वांतरण किसी गैर-कृषक को नहीं किया जाना चाहिए।
6. विकलांगों और सेना के कर्मचारियें को छोड़, भू-स्वामियों द्वारा भूमि को पुनःकाश्त करने के लिए स्व-खेती के नाम पर हासिल करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।
7. यदि भू-स्वामी और किसी अन्य व्यक्ति अर्थात् काश्तकार या फसल-सहभाजक के बीच विवाद हो जाए, तो इसे प्रमाणित करने का भार भू-स्वामी पर डालना चाहिए। काश्तकार या फसल-सहभाजक को भू-स्वामी का उत्पादन में भाग निकटतक प्राधिकार के पास जमा कराने की इजाजत होनी चाहिए।
8. स्वीकृत किसान संगठनों या कृषि मजदूरों के संगठनों या जानी-मानी स्वैच्छिक संस्थाओं को अनौपचारिक काश्तकारों अथवा फसल-सहभाजकों की पहचान की इजाजत होनी चाहिए और उन्हें प्रासंगिक व्यक्ति की ओर से उचित प्राधिकार के सामने काश्तकारी अधिकार या स्वामित्वाधिकार के दावे करने की अनुमति होनी चाहिए।
9. राजनीतिक इच्छाशक्ति को मजबूत बनाना चाहिए। इसके लिए भूमिहीनों, छोटे और सीमान्त किसानों के प्रतिनिधियों को स्थानीय पंचायत निकायों और मंत्रालयों में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए ताकि वे निर्णय करने के प्रत्येक स्तर के साथ जुडे रहें।
10. गरीब किसानों को सर्वोच्च न्यायालय के स्तर तक कानूनी सहायता प्रदान की जानी चाहिए। ग्रामीण न्यायालयों अर्थात् न्याय पंचायतों या ग्राम न्यायालयों को भू-सुधार के मामलों में तेजी से फैसले करने चाहिए और इसके साथ-साथ लोक अदालतों को भी इन मामलों को निपटाने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

13.7 भू-सुधार और नयी आर्थिक नीति

श्री पी.एस.अप्पू न 1977 में पश्चिम बंगाल में वाम पंथी मोर्चा सरकार द्वारा अपनाए गए भू-सुधार के लिए आप्रेशन बरगा की सिफारिशत करते हुए यह उल्लेख किया: ''अब कृषि विकास को बढ़ावा देने और रोजगार के अवसरों का विस्तार करने के लिए भू-सुधार के कार्यभार पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। ग्रामीण गरीबों की आय में उन्नति को अधिक प्राथमिकता केवल निस्स्वार्थ भाव के कारण ही नहीं देनी चाहिए। आय में वृद्धि का अर्थ है, क्रय शक्ति में वृद्धि। इसके परिणामस्वरूप जनोपभोग वस्तुओं की मांग में वृद्धि से औद्योगिक विकास को बढ़ावा मिलेगा। इसके नतीजे के तौर

पर नयी आर्थिक नीति की सफलता का मार्ग साफ हो जाएगा जोकि बाजार को आर्थिक विकास का इंजन समझती है। हमें भारतीय अर्थव्यवस्था के पूँजीवदी पथ पर विकास के लिए जिसको हम ने अपनाया है, सुविधाजनक बनाने के लिए भू-सुधार के न्यूनतम उपाय करने आवश्यक है।''

13.8 नवीन कृषि रणनीति

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य मुख्य रूप से खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाना था। कृषि आयेाग की सिफारिशों के बाद कृषि नीति में व्यापक परिवर्तन किया गया। इस समय तक विकास युक्ति का लक्ष्य 'विकास के लिये विकास' न होकर 'सामाजिक न्याय के साथ विकास' हो गया था। इस युक्ति के अनुसार वितरणात्मक न्याय पर ध्यान केन्द्रित किया गया। इसी मनोभावना के अनुरूप राष्ट्रीय कृषि आयोग ने अपनी रिपोर्ट में यह उल्लेख किया कि विभिन्न कृषि वस्तुओं की माँग और पूर्ति में संतुलन तथा वितरणात्मक न्याय कृषि नीति के मुख्य लक्ष्य होना चाहिये। आयेाग ने अनुमोदित किया कि विनियोग नीति इस प्रकार होना चाहिये ताकि रोजगार अवसरों के सृजन और उत्पादन बढ़ाने में अधिक दक्षता प्राप्त की जा सके। आयेाग ने यह सुझाव दिया कि भारत श्रम बहुत अर्थव्यवस्था है, इसलिये प्राविधि का चुनाव सर्तकतापूर्वक किया जाना चाहिये ताकि रोजगार अवसरों में वृद्धि हो। रोजगार वृद्धि को कृषि विकास नीति का आधारित तत्व माना गया। आयोग की रिपोर्ट में इस बात पर भी जोर दिया गया कि कृषि नीति का लक्ष्य न केवल अंतर्वर्गीय विषमतायें घटाना और कमजोर वर्ग के लोगों की आय बढ़ाना है बल्कि इसका उद्देश्य अंतक्षेत्रीय विषमतायें भी कम करना है ताकि समस्याग्रस्त क्षेत्रों तथा पहाड़ी, पठारी, मरूस्थलीय और सूखाग्रस्त क्षेत्रों की कृषि भी विकसित की जा सके। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आयोग ने उत्पादन वृद्धि को आधारिक महत्व देते हुये वितरणात्मक न्याय की आवश्यकता पर बल दिया।

भारत की कृषि नीति में राष्ट्रीय विकास युक्ति और कृषि आयोग की संस्तुतियों के अनुरूप परिवर्तन आया। जोत सीमाबन्दी के लिये राज्यों को नवीन दिशा निर्देश दिये गये। जोत सीमाबन्दी की सीमा नीची की गयी। सीमाबन्दी की इकाई व्यक्ति न मानकर परिवार माना गया तथा रियायतों में कमी की गयी। भूमि सुधार कार्यक्रमों को अधिक सुदृढ़ किया गया। चकबन्दी कार्य में तेजी लायी गयी ताकि कृषक की जोत एक स्थान पर एकत्र हो जाये। कृषिगत अंतर्वर्गीय और अंतर्क्षेत्रीय विषमतायें घटाने की नीतत के परिप्रेक्ष्य में लघु एवं सीमान्त कृषकों के विकासार्थ विशेष कार्यक्रम चलाये गये। खेतिहर समुदाय के कमजोर वर्गो को प्रत्यक्ष सहायता देने की विशेष योजनायें चलायी गयी। इसी प्रकार सूखाग्रस्त क्षेत्र विकास कार्यक्रम, बंजर भूमि विकास कार्यक्रम, रेगिस्तानी क्षेत्र की कृषि के विकास कार्यक्रम चलाये गये ताकि इन समस्याग्रस्त क्षेत्रों की कृषि को भी सक्षम बनाया जा सके। छठी पंचवर्षीय योजना में घरेलू खपत और निर्यात माँग की तात्कालिक और दीर्घकालिक जरूरतों को ध्यान में रखकर कृषि विकास युक्ति बनायी गयी। यह पाया गया कि कृषि उपज की सामर्थ्य तो अधिक सृजित कर ली गयी है परन्तु वास्तविक उत्पादन अत्यन्त कम रहता है। इसलिये

छठी योजना की कृषि विकास युक्ति का मुख्य लक्ष्य रखा गया कि कृषि उपज के वास्तविक और संभावित अंतराल को कम किया जाये। इस बात पर भी जोर दिया गया कि नवीन प्रौद्योगिकी को अधिक लोगों तक पहुंचाया जाये। सातंवी योजना में कृषि जलवायु क्षेत्रीय नियोजन के आधार पर कृषि को विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। देश को कुल 15 कृषि जलवायु क्षेत्रों में विभक्त किया गया है और प्रत्येक क्षेत्र के लिये संसाधनों और भूमि बनावट के अनुरूप उपयुक्त कृषि विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। सातवीं योजना कृषि विकास को देश की गरीबी और बेरोजगारी उन्मूलन का प्रधान घटक मानकर कृषि विकास की दर 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया।

13.9 नयी कृषि विकास रणनीति

नयी कृषि विकास-रणनीति की मुख्य उपलब्धि अनाजों अर्थात् गेहूँ और चावल के उत्पादन को बढ़ावा देना है। तालिका में पिछले कुछ वर्षो के दौरान मुख्य खाद्य फसलों का उत्पादन दिया गया है। तालिका पर ध्यानपूर्वक विचार करने से पता चलता है कि चावल का उत्पादन जो 1970-71 में 350 लाख टन था बढ़कर 2008-09 में 990 लाख टन हो गया। जाहिर है भारत की इस मुख्य फसल में उत्पादन तेजी से बढ़ा है। प्रति हेक्टेयर उत्पादन में भी वृद्धि हुई है और यह 1960-61 में 1,123 किलोग्राम से बढ़कर 2008-09 में 2,190 किलोग्राम हो गया।

गेहूँ का उत्पादन जो 1970-71 में 238 लाख टन था यह बढ़कर 2008-09 में कम होकर 810 लाख टन हो गया। इस वृद्धि का कुछ भाग तो क्षेत्रफल में विस्तार के कारण था, परन्तु इसी अवधि के दौरान प्रति हेक्टेयर उत्पादन 1970-71 1,307 किलोग्राम से 2008-09 में बढ़कर 2,890 किलोग्राम हो गया अर्थात् 36 वर्षो के दौरान इसमें 121 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जबकि मक्का ने भी प्रभावशाली प्रगति दिखायी है, अन्य मोटे अनाजों और दालों में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई

खाद्यान्नों के उत्पादन की प्रगति (लाख टन)

	1970-1971	**1990-1991**	**2008-2009**
चावल	350	750	990
गेहूँ	110	550	810
मोटे अनाज	230	320	400
(अ) कुल अनाज	690	1620	2200
(ब) कुल दालें	130	140	150
(स)कुल खाद्यान्न	820	176	2350

हरित क्रान्ति की आरम्भिक सफलता के पश्चात् यह आशा की जाती थी कि खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति बनी रहेगी। इसी कारण 1970-71 मे खाद्यान्न उत्पादन बढ़कर 1,084 लाख टन हो

गया। यह बात बड़े गर्व से घोषित की गयी कि हरी क्रान्ति के परिणामस्वरूप खाद्य-आयात बन्द कर दिए गए हैं और काफी अच्छी मात्रा बफर-स्टॉक एकत्र कर लिए गए हैं। परन्तु 1972-73 में सूखा पड़ने के कारण यह स्थिति कायम न रह सकी। पाँचवीं योजना के दौरान भी खाद्यान्न के उत्पादन में तेज उच्चावचन हुए हैं। 1974-75 के 1,000 लाख टन के निम्न स्तर से उत्पादन बढ़ कर 1975-76 में 1,210 लाख टन हो गया फिर 1976-77 में यह गिर कर 1,110 लाख टन हो गया। 1985-86 में 1,520 लाख टन का रिकार्ड खाद्यान्न उत्पादन हुआ किन्तु खराब मौसम के कारण यह गिरकर 1987-88 में 1,380 लाख टन रह गया। 1990-91 में खाद्यान्न का उत्पादन एकदम तेजी से बढ़कर 1,760 लाख टन हो गया, परन्तु 1991-92 के दौरान गिरकर 1,670 लाख टन रह गया। 2008-09 में खाद्यान्न उत्पादन पुनः बढ़कर 2350 लाख टन हो गया।

दूसरे अनाजों में चावल का अनाजों के कुल उत्पादन में भाग 1950-51 ओर 2007-08 के दौरान 48 प्रतिशत से कम होकर 45 प्रतिशत हो गया है। इसी अवधि के दौरान, गेहूँ के महत्व में वृद्धि हुई है और इसका अनुपात दुगुने से भी अधिक हो गया है अर्थात् 15 प्रतिशत से 37 प्रतिशत। गेहूं के महत्व में वृद्धि हुई है और इसका अनुपात दुगने से भी अधिक हो गया है अर्थात्् 15 प्रतिशत से 37 प्रतिशत। गेहूं के अनुपात में वृद्धि से संकेत प्राप्त होता है कि मोटे अनाजों का प्रतिस्थापन गेहूं द्वारा हो रहा है। यह प्रवृत्ति तो हरी क्रान्ति के आरम्भ होने से पहले ही शुरू हो गयी थी परन्तु यह अब और बलवती हो गयी है।

अनाजों के उत्पादन का प्रतिशत वितरण

	चावल	गेहू	मोटे अनाज	कुल
1950-51	48	15	37	100
1960-61	50	16	34	100
1990-91	46	34	20	100
2006-07	46	37	17	100
2007-08	45	36	19	100

नयी कृषि विकास रणनीति के आरम्भ के पश्चात् कृषि उत्पादन में उच्चावचन सम्बन्धी दो निष्कर्ष प्राप्त है:-

(क) अनाज का उत्पादन पहले की भाँति मौसम पर बहुत हद तक निर्भर हैं, और

(ख) अब गत वर्षो की अपेक्षा अधिकतम एवं न्यूनतम उत्पादन कहीं अधिक है।

चूँकि हरी क्रान्ति का मुख्य बल खाद्यान्नों के उत्पादन को बढ़ाना था, इसलिए आरम्भ में वाणिज्य फसलों के उत्पादन में वृद्धि की आशा करना उचित नहीं होगा। तालिका से स्पष्ट है कि

1969-70 और 1974-75 के दौरान गन्ने, रूई पटसन और तिलहनों के उत्पादन में कोई उल्लेखनीय उन्नति व्यक्त नहीं हुई। डा. धर्म नारायण ने इस परिस्थिति को रोप-फसलों के उत्पादन में लगभग पक्षाघात की संज्ञा दी है। 1974-75 के पश्चात् गन्ने के उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। परन्तु इस वृद्धि को क्रान्ति कहना उचित नहीं होगा। परन्तु 1980-81 के पश्चात् वाणिज्य फसलों के उत्पादन में भी महत्वपूर्ण वृद्धि हुई।

भारत में वाणिज्य फसलों का उत्पादन

वस्तु	इकाई	1960-61	1990-91	2003-04	2009-09
तिलहन (लाख टन)	70	190	210	240	280
गन्ना (लाख टन)	1100	2540	2990	3560	2850
रूई (लाख गट्ठे)	60	100	120	230	230
पटसन (लाख गट्ठे)	40	80	110	110	104
आलू (लाख टन)	30	150	250	300	290

कुल रूप में, हरी क्रान्ति ने दालों के उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं डाला जबकि 1970-71 में खाद्यान्नों में इनका उत्पादन 118 लाख टन था, यह 1990-91 में बढ़कर 140 लाख टन हो गया परन्तु 2008-09 में भी यह मात्र 150 लाख टन था। अतः दालों का उत्पादन पिछले 16 वर्षो में अवरूद्ध हो रहा था। इसमें नाम मात्र वृद्धि हुई। अतः हरी क्रान्ति केवल अनाजों जिनमें मुख्यतः गेहूँ, मक्का और बाजरा गिने जा सकते हैं, तक ही सीमित रही। जबकि चावल का उत्पादन 1968-69 से 1978-79 के दौरान बड़ी मन्द गति से बढ़ा परन्तु इसके बाद चावल के उत्पादन में भी महत्वपूर्ण वृद्धि हुई।

तीसरे, नयी कृषि-तकनालाजी को सफलतापूर्वक अपनाने के कारण फसलों के आधीन क्षेत्रफल में लगातार वृद्धि हुई है, कुल उत्पादन बढ़ा है और उत्पादिता उन्नत हुई है। गेहूं, चावल, मक्की, आलू आदि में प्रभावी परिणाम प्रापत किए गए हैं। नयी कृषि तकनालाजी के अपाने से कृषि-रोजगार की वृद्धि हुई है क्योंकि बहु-फसलीकरण और भाड़े पर लगाए श्रमिकों की ओर परिवर्तन से विविध रोजगार-अवसर कायम किए गए है। इसके साथ ही, कृषि-मशीनरी के विस्तृत प्रयोग से कृषि-श्रम का विस्थापन भी हुआ है।

अन्तिम, नयी तकनालाजी और कृषि के आधुनिकीकरण से कृषि और उद्योग में सम्बन्ध मजबूत हो गए है। पारम्परिक खेतों के अधीन भी, कृषि तथा उद्योग के बीच अग्र-सम्बन्ध बहुत प्रबल था क्योंकि कृषि उद्योगों के लिए बहुत से आदान उपलब्ध कराती थी, परन्तु प्रतिगामी सम्बन्ध अर्थात् उद्योग से तैयार की ई-विनिर्मित वस्तुओं का कृषकों द्वारा प्रयोग कमजोर था। किन्तु अब कृषि-आधुनिकीकरण से उद्योगों द्वारा उत्पन्न वस्तुओं की मांग कृषि-क्षेत्र में बहुत बढ़ गयी है और

प्रतिगामी सम्बन्ध भी काफी मजबूत हो गया है। इस प्रकार कृषि और उद्योग के बीच सम्बन्ध प्रबल हो गया है।

13.9.1 नयी कृषि विकास रणनीति की कमजोरियाँ

भारतीय कृषि में पूँजीवादी खेती का विकास-अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उर्वरकों और सिंचाई पर भारी निवेश करना पड़ता है। भारी निवेश करना छोटे और मध्यम श्रेणी के किसानों की क्षमता से बाहर है। भारत में लगभग 810 लाख जोतें हैं परन्तु केवल 6 प्रतिशत बड़े किसानों के पास कुल भूमि का 40 प्रतिशत है और केवल वही नलकूप, पम्पिंग सेट, उर्वरक और भारी मशीनरी के रूप में भारी निवेश कर रहे हैं। परिणामतः नई कृषि-उत्पादन रणनीति के कारण भारत में पूँजीवादी खेती का विकास हुआ है। अतः कृषि-क्रान्ति में प्रसार-प्रभाव का अभाव और इस कारण भारतीय खेती में विकास कुछ आर्थिक घेरों में सीमित हो गया है। परिणामतः निर्धन किसानों को लाभ नहीं हुआ बल्कि इसके कारण ग्रामीण जनसंख्या के उच्चतम 10 प्रतिशत भाग के हाथ में सम्पत्ति का संकेन्द्रण हुआ है। अतः भारत में भद्र किसानों की संख्या में वृद्धि का काफी प्रमाण उपलब्ध है। इनमें मिलिटरी की नौकरी से रिटायर हुए अफसर, रिटायर्ड सिविल अफसर, शहरी व्यापारी शामिल हैं जो अपनी आय उद्योग या व्यापारी से प्राप्त करते हैं और जिन्होंने हाल ही में कृषि को एक उद्योग के रूप में चलाना आरम्भ किया है। यह वर्ग कृषि में निवेश को लाभदायक समझता है। पंजाब में इनकी संख्या कुल किसानों की संख्या का 3 प्रतिशत है। पूँजीवादी किसानों, जिनमें भद्र किसानों के अतिरिक्त प्रगतिशील किसान भी शामिल हैं, के आधीन कुल फार्मो का 8.5 प्रतिशत फार्म हैं जो कि कुल कृषि योग्य क्षेत्रफल के 27 प्रतिशत क्षेत्र पर फैले हुए हैं। इस वर्ग के किसान ही टैक्टरों, नलकूपों, पम्पिंग सेटों और अन्य उपकरणों पर विनियोग कर सकते हैं। इसी प्रकार ये किसान अपनी जोतों पर बिल्डिंग, भू-सुधार और अन्य मरम्मत आदि के लिए पूँजी-व्यय करने की सामर्थ्य रखते हैं। सर्वेक्षण के आधार पर यह परिणाम निकला है कि बड़े फार्मो पर प्रति एकड़ अधिक पूँजी-व्यय किया जाता है जो कि इनमें यन्त्रीकरण का सूचक है।

13.9.2 आय की बढ़ती हुई असमानताएं

कृषि में तकनीकी परिवर्तनों का ग्राम-क्षेत्रों में आय-वितरण पर दुष्प्रभाव हुआ है। भारतीय कृषि में तकनीकी परिवर्तन और वितरण सम्बन्धी लाभों के बारे में अपने अध्ययन से सी.एच. हनुमन्त राव यह निष्कर्ष प्रापत करता हैः ''तकनीकी परिवर्तनों से एक ओर विभिन्न क्षेत्रों, छोटे और बड़े फार्मो और भू-स्वामियों के बीच आय की असमानताएँ बढ़ी हैं और दूसरी ओर भूमिहीन मजदूरों और मुजारों में खाई और चौड़ी हो गयी है। किन्तु परम रूप में तकनीकी परिवर्तन के लाभ सीमित वर्गो मे बँटे हैं। इनका संकेत तकनीकी परिवर्तन के अनुभव करने वाले क्षेत्रों में वास्तविक मजदूरी एवं रोजगार में वृद्धि, और छोटे किसानों की आय में वृद्धि के रूप में मिलता है।''

फिर भी हरी क्रान्ति के प्रधान लाभ प्राप्तकर्ता तो बड़े किसान ही हैं जो अपने लाभ के लिए उन्नत किस्म के आदानों और ऋण-सुविधाओं को हथिया लेते हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि नीतियों में इस प्रकार परिवर्तन किया जाए। डा. वी.के.आर.वी. राव के शब्दों में: ''यह बात अब सर्वाविदित है कि तथाकथित हरी क्रान्ति जिसने देश में खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने में सहायता दी है, के साथ ग्रामीण आय में असमानता में वृद्धि हुई है, बहुत से छोटे किसानों को अपने काश्तकारी अधिकार छोड़ने पड़े और ग्राम-क्षेत्रों में सामाजिक एवं आर्थिक तनाव बढ़े हैं।''

13.10 अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1.सन् 2008-09 में कितने लाख टन दालों की उपज की गयी थी -

a. 990 b. 440 c.150 d. 400

उत्तर1- c

2.खुद-काश्त की परिभाषा में निम्न में से किन बातों पर बल देना चाहिए -

(a) पूरी लागत का वहन करना (b) श्रम को जुटाना

(c) भूमि की स्वयं काश्त करना (d) उपर्युक्त सभी

उत्तर 2- d

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1 - नयी कृषि रणनीति की मुख्य उपलब्धियां बताइये?

प्रश्न 2 - स्वतन्त्रता से पूर्व भू-धारण प्रणाली की संक्षेप में चर्चा कीजिए।

13.10 सारांश

सारांश में हम कह सकते हैं कि भूमिहीन गरीबों ओर छोटे किसानों को जिन्हें हरित क्रान्ति से कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ उन्हें सशक्त करना आवश्यक है। भूमिहीन किसानों को भूमि सुधार कार्यक्रमों के तहत उचित दामों पर भूमि उपलब्ध करा उन्हें प्रगतिशील बनाना आज के समय की मांग है। अभी भी बहुत से ऐसे विकास क्षेत्र हैं जिनकी ओर हमारी कृषि नीतियॉ मोड़ी जानी चाहिए ताकि कृषि विकास में अवलम्बनीयता ;ेनेजंपदंइपसपजलद्ध और न्याय पर बल दिया जा सके। बिचौलियों के उन्मूलन सम्बन्धी कानून का उद्देश्य कृषकों कों भूमि दिलाना है परन्तु अनुभव के ज्ञात है कि इससे पट्टेदारी की समस्या समाप्त नहीं होती। अतः अधिक विवेकपूर्ण यहीं है कि पट्टे पर खेती की कमियों को दूर करने का भी प्रयास किया जाये।

13.11संदर्भ ग्रन्थ

1. Datt and Sundram, R., (2009), India Economy, 61st Edition, Suttam

Chand & Sons.
2. Prakash, B.A., (2009), The Indian Economy Since 1991 – Economic Reforms & Performances, Ist edition, Pearson Education.
3. Rudra, Ashok, (1975), Indian Plan Models, Ist edition, Allied Publishers, Bombey.
4. Mishra, S. K., and Puri, V. K., (2007), Problems of Indian Economy, Mimalaya Publishing House.
5. OECD : A preliminary Assessment of the Impact of the Uruguay Round on Developing Countries, Paris. (1994).
6. Govt. of India, Planning Commission, Tenth Five Year Plan, Vol-I
7. Economic Survey, 2008-09.
8. Economic Survey, 2009-10.
9. Rudra Ashok, (1974) Indian Plan Models, Allied Publishere, Bombay.
10. Sen Amarty (1983) Development Which Way Now Economic Journal.
11. Shah and Vakil (Ed) : Agricultural Development of India, Policy and Problems.
12. Desai, A.R., (1983) Rural Sociology in India, Popular Prakashan, Bombay.
13. Bansil, P. C. (1981), Agricultural Problems of India, Oxford and IBH Publishing Company.

13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 - भू-सुधार से क्या समधते हो? इस हेतु सरकार द्वारा उठाए गये प्रमुख कदमों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2 - निम्न पर टिप्पणी लिखिए-

(1) चकबंदी (2) लगान का नियमन

(3) जोतों की सीमा बंदी (4) काश्तकारी सुधार

इकाई 14 - कृषि / ग्रामीण वित्त एवं कृषि विपणन

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 कृषि/ग्रामीण वित्त का अर्थ
14.3 कृषि विपणन
14.3.1 कृषि विपणन का महत्व
14.3.2 भारत में कृषि-विपणन की वर्तमान अवस्था
14.3.2.1 किसानों को उपलब्ध कृषि विपणन सम्बन्धी मूल सुविधाएँ
14.3.3 कृषि विपणन के दोष
14.3.4 कृषि विपणन को उन्नत करने के उपाय
14.4 विनियमित मण्डियाँ
14.4.1 विनियमित मण्डी के लक्षण
14.5 सहकारी विपणन
14.5.1 सहकारी विपणन समितियों के लाभ
14.6 सरकार और कृषि विपणन
14.7 कृषि विपणन में सुधार संदर्भ मॉडल एपीएमसी एक्ट
14.8 अभ्यास प्रश्न
14.9 पाठ सारांश
14.10 संदर्भ ग्रन्थ
14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र राष्ट्रीय आय एवं कुल रोजगार के अवसरों में महत्वपूर्ण भूकिा रखता है, परन्तु अन्य देशों की तुलना में सापेक्षिक दष्टिकोण से भारतीय कृषि अपनी अल्प उत्पादिता एवं पिछड़ेपन के कारण भरण-पोषण के अतिरिक्त अतिरेक उत्पन्न करने में असमर्थ दिखती है। इसके लिए कृषि के अभिनवीकरण एवं इसमें पर्याप्त विनियोग की आवश्यकता प्रतीत होती है। कृषि/ग्रामीण वित्त इसी विनियोग से सम्बन्धित है। परन्तु विभिन्न प्रकार की नीतियों के चलते उत्पादन में वृद्धि हुई है जिसको किसान साहूकारों साप्ताहिक या अर्ध-साप्ताहिक ग्राम बाजारों या सरकार को समर्पित कीमतों में बेचते हैं, इन्हें वितरण कहते हैं। इस इकाई में आप कृषि/ग्रामीण वित्त और कृषि विपरण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यनोपरांत आप

- कृषि के अर्थ से परिचित हो सकेंगे।
- कृषि वित्त के विभिन्न स्रोतों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भारत में कृषि विपणन की वर्तमान स्थिति से अवगत होंगे।
- कृषि विपणन के गुण-दोष जान पायेंगे।
- कृषि वित्त के दोषों को दूर करने के लिए सरकार द्वारा उठाये गये उपायों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- कृषि विपणन में सुधार संदर्भ मॉडल को समझ सकेंगे।

14.2 कृषि/ग्रामीण वित्त का अर्थ

प्रत्येक आर्थिक क्रिया का वित्त से अविभाज्य सम्बन्ध होता है, क्योंकि वित्तीय आधार प्रत्येक आर्थिक क्रिया की एक महत्वपूर्ण पूर्वाप्रेक्षा होती है। यह तथ्य कृषि के लिए समान रूप से लागू होता है। कृषकों को उर्वरक, बीज, कृषि यन्त्र् एवं कीटनाशक दवाइयां खरीदने, मजदूरी और लगान का भुगतान करने, भूमि में आधारिक सुधार करने, विभिन्न उपभोग वस्तु की प्राप्ति एवं पुराने ऋणों के परिशोधनार्थ वित्त की आवश्यकता होती है। इसे कृषि/ ग्रामीण वित्त कहते हैं।

अधिकांश कृषक अपने निजी चालू आय स्रोतों द्वारा कृषिगत उक्त आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप कृषि साख की समस्या का उदय होता है। नियोजन के पूर्व कृषि का स्वरूप मूलतः परम्परावादी रहा फलतः कृषि साख की आवश्यकता कम थी और उसकी

आपूर्ति मुख्यतः निजी स्रोतों से हो जाती थी। नियोजन काल में विशेषकर कृषि की नवीन तकनीक के प्रादुर्भाव के फलवस्वरूप कृषि साख की मांग में विभिन्न नवीन निवेशकों के परिप्रेक्ष में परिवर्तन हो गया है।

कृषि वित्त की व्यवस्था में मुख्यतः कृषि साख अर्थात् कृषि ऋण का प्रयोग किया जाता है। भारत में दीर्घकाल तक कृषि साख संरचना में निजी स्रोतों जिन्हें गैर संस्थागत स्रोत कहा जाता है का ही वर्चस्व रहा। ग्रामीण साहूकार महाजन, सम्बन्धी जन, भू-स्वामी एवं दलाल इसके प्रमुख संघटन तत्व हैं। इसमें महाजन, सगे-सम्बन्धी और व्यापारियों का विशेष महत्व रहा है।

इस अतिरिक्त संस्थागत स्रोतों से वित्त व्यापार के लिये व्यापारिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और सहकारी समितियाँ शामिल हैं।

स्रोत	**कृषि वित्त / कृषि संस्थागत साख कृषि साख का प्रतिशत**		
	1997-98	2001-02	2004-05
सहकारी बैंक	44.0	40.7	26.6
क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	6.4	7.3	10.2
व्यापारिक बैंक	49.5	52.0	63.2
योग	1000.0	1000.0	100.2
कुल कृषि साख	31956	66771	80000

इन सभी के अतिरिक्त कृषि एवं ग्रामीण विकास का राष्ट्रीय बैंक (नाबार्ड) भी कृषि वित्त की व्यवस्था करता है।

14.3 कृषि विपणन

विपणन वह मानवीय क्रिया है जो विनिमय प्रक्रिया द्वारा मनुष्य की आवश्यकताओं को संतुष्ट करती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विपणन वह प्रक्रिया है जिसमें विभिन्न व्यक्तियों व सामाजिक वर्गों के बीच विनिमय कार्य होता है। इस प्रकार विपणन में वे सभी क्रियायें सम्मिलित हैं जो वस्तुओं ओर सेवाओं को उचित समय पर तथा उचित मात्रा में उपभोक्ताओं पर पहुँचाकर उनकी उपयोगिता में वृद्धि करती है। विपणन संरचना में वस्तुओं और सेवाओं का संग्रह, श्रेणीकरण, वित्त व्यवस्था, यातायात एवं बिक्री की क्रियायें सम्मिलित होती हैं। प्रत्येक बाजार संगठन के दो औपचारिक कार्य होते हैं। प्रथम, बाजार संगठन दूर-दूर तक फैले उपभोक्ताओं तक ले जाता है। इस कार्य अत्यन्त सक्रियता और न्यूनतम लागत पर होना चाहिए और द्वितीय बाजार

संगठन उपभोक्ता के विभिन्न स्तरों पर प्रचलित कीमत स्तरों की जानकारी उत्पादक तक पहुँचाता है। इसी प्रकार उत्पादकों की ओर से वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों की सूचना उपभोक्ता तक पहुँचाता है। बाजार संगठन के प्राथमिक दायित्व के कारण बाजार में माँगी जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं की मात्र् तथा बाजर में भेजी जाने वाली मात्र् के मध्य संतुलन स्थापित हो जाता है। विपरण क्रिया आर्थिक विकास का एक प्रमुख प्रेरक तत्व है। विपणन और बाजार अवसर का प्रसार पिछड़े क्षेत्रों में भी नवीन आर्थिक क्रियाओं के सृजन और प्रसार में सहायक होता है।

14.3.1 कृषि विपणन का महत्व - कृषि उत्पादन की विभिन्न प्रक्रियाओं, यथा संग्रह, श्रेणीकरण, यातायात, वित्तपूर्ति एवं बिक्री का समावेश कृषि विपणन के अन्तर्गत होता है। कृषि विपणन उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा करता है। यह कृषि उत्पादन को उत्पादक से उपभोक्ता व औद्योगिक प्रक्रिया इकाइयों तक अपेक्षित समय व दूरी की सीमा में पहुँचाने में सहायक होता है। इसी प्रकार कृषि विपणन संगठन कृषि उत्पादनों की कीमत और अन्य जानकारी उपभोक्ताओं तक और उपभोक्ताओं के विभिन्न स्तरों से उत्पादक तक पहुँचाने में सहायक होता है। सामान्य रूप से कृषि उत्पादन के क्रेताओं के मुख्यतः तीन वर्ग होते हैं। प्रथम वर्ग में वे क्रेता सम्मिलित हैं जो कृषि उत्पादनों का प्रत्यक्ष उपभोग करते हैं, यथा गेहूँ, चावल इत्यादि के क्रेता। द्वितीय वर्ग में वे क्रेता सम्मिलित हैं जो कृषि उत्पादनों का प्रयोग कच्चे पदार्थ के रूप में करते हैं और कृषि वस्तुओं का माध्यमिक वस्तुओं के रूप में प्रयोग कर विभिन्न् वस्तुओं का निर्माण करते हैं। इसमें गन्ना, कापस, तिलहन, पटसन आदि वस्तुओं के क्रेता सम्मिलित होते हैं। तृतीय वर्ग में वे क्रेता सम्मिलित हैं जो कृषि वस्तुओं का क्रय निर्यात की आवश्यकताओं से करते हैं. इसमें प्रत्यक्ष उपभोग और माध्यमिक प्रयोग की वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य तैयार वस्तुयें भी सम्मिलित रहती हैं। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में कृषिगत विपणन योग्य अतिरेक एकत्र करने के लिए विपणन संरचना का प्रभावी और सक्षम होना आवश्यक है। यदि उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ विपणन-योग्य अतिरेक का सृजन न हुआ तो नगरों और उद्योगों के लिए खाद्य पदार्थ व कच्चे पदार्थ की आपूर्ति न हो पायेगी जो विकास मार्ग में अत्यधिक बाधक तत्व होगा। एक सक्षम विपणन तंत्र की कमी की स्थिति में कृषि उत्पादन, वितरण और उपभोग की आवृत्ति पूरी न हो सकेगी। भारतीय अर्थव्यवस्था अब भी मूलतः कृषि प्रधान है। इस कारण विकास के लिए कृषिक्षेत्र के अतिरेक सृजित किया जाना आवश्यक है। कृषिक्षेत्र की निम्नलिखित विशेषतायें एक उपयुक्त विपणन प्रणाली की आवश्यकता पर विशेष बल देती है।

1. कृषि उत्पादन कार्य व्यापक क्षेत्र में फैला है। इन क्षेत्रों में कृषि उपज एकत्र करना स्वतः एक समस्या है। एक ही उत्पादन की विभिन्न किस्में उपलब्ध हैं। अतएव उनका श्रेणीकरण करना आवश्यक होता है।

2. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि पदार्थों का लेन-देन देश में होने वा कुल विमिनय का बहुत बड़ा भाग होता है। कृषि निर्यात देश के कुल निर्यातों का एक महत्वपूर्ण भाग है।

3. कृषि उत्पादन कुछ निश्चित समयों पर ही उपलब्ध होता है जबकि इसकी मांग समान रूप से पूरे वर्ष बनी रहती है। इसलिए संग्रह व परिहन की समस्या बनी रहती है।

4. कृषि क्षेत्र देश की राष्ट्रीय आय में लगभग 24 प्रतिशत का योगदान करता है और देश की कुल कार्यशील जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत भाग कृषिक्षेत्र में अपनी आजीविका अर्जित करता है।

14.3.2 भारत में कृषि-विपणन की वर्तमान अवस्था -किसान अपने अतिरिक्त उत्पादन का कई प्रकार से विक्रय कर सकता है। सबसे पहला और सामान्य तरीका तो यह है कि किसान फालतू फसल ग्राम के साहूकार या महाजन एवं व्यापरी हो बेचता है। व्यापरी स्वयं भी कृषि-उत्पादन क्रय कर सकता है या किसी बड़ी वाणिज्यिक फर्म या किसी बड़े व्यापारी को अभिकर्ता बन कर भी फसल खरीद सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि पंजाब में गेहूँ का 60 प्रतिशत, तिलहनों का 70 प्रतिशत और रूई का 35 प्रतिशत उत्पादन ग्राम में ही बेचा जाता है।

भारतीय किसानों में प्रचलित विक्रय की दूसरी प्रणाली के अनुसार किसान अपने उत्पादन को साप्ताहिकत या अर्ध-साप्ताहित ग्राम-बाजारों में जिन्हें 'हाट' कहते हैं बेच देते हैं। इनके अतिरिक्त धार्मिक उत्सवों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण ग्रामों या कस्बों में मेल लगाए जाते हैं। किसान इन मेलों में अनी उत्पादन और पशु लाते हैं और उन्हें वहाँ बेचते हैं।

कृषि-विपणन की तीसरी प्रणाली में छोटे तथा बड़े कस्बों में, मण्डियों में, क्रय-विक्रय किया जाता है। मण्डियाँ उत्पादन केन्द्रों से कई मील दूर स्थित भी हो सकती हैं और परिणामतः किसान को अपनी उपज मण्डी तक ले जाने के लिए विशेष प्रयास करना पड़ता है। मण्डियों में दलालों द्वारा किसान अपनी फसल को आढ़तियों को बेचते हैं। ये आढ़तिए जो थोक व्यापारी होते हैं अपनी फसल या तो फुटकर विक्रेताओं को या आटे की मिलों या विधायन इकाइयों को बेच देते हैं। उदाहरणतया रूई के थोक विक्रेता इसे कपड़ा कारखानों को बेच देते हैं किन्तु खाद्यान्न को आटे की मिलों या फुटकर विक्रेताओं को बेचा जाता है।

14.3.2.1किसानों को उपलब्ध कृषि विपणन सम्बन्धी मूल सुविधाएँ -कृषि उत्पादन के विक्रय में अधिकरतम लाभ प्राप्त करने के लिए किसान को कुछ मूल सुविधाओं की उपलब्धि आवश्यक है -

(क) उसके पास अपनी वस्तुओं को रखने के लिए गोदामों की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

(ख) इसमें कुछ समय के लिए रुक सकने की क्षमता होना चाहिए, जबकि वह इस समय की प्रतीक्षा कर सके जबकि वह अपने स्टांक अच्छे मूल्य पर बेच सके। यदि वह फसल कटने के बाद अपनी उपज के बेचेगा तो उसे कम कीमत ही प्राप्त होगी।

(ग) उसके पास सस्ती परिवहन सुविधाएँ होना चाहिए ताकि वह फसक को ग्राम में ही साहूकार या महाजन व्यापारी को न बेचकर मण्डी में ले जा सके।

(घ) उसे बाजार में विद्यामान परिस्थितियों तथा प्रचलित मूल्यों के बारे में पूर्ण सूचना होना चाहिए, नहीं तो उसे धोखा हो सकता है। व्यवस्थित और निमियमित मण्डियों का विकास होना चाहिए जहाँ किसान को दलाल और आढ़तिए लूट न सके।

(ङ) बिचौलियों की संख्या जितनी कम से कम हो सके, कर देनी चाहिए। इससे किसानों को अपनी फसल के बदले उचित मूल्य प्राप्त होगा।

14.3.3 कृषि विपणन के दोष -

भारत में कृषि विपणन की दशा बहुत ही बुरी है, किसान बहुत निर्धन एवं अशिक्षित है। उसे अपनी उपज के क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी भी उपलब्ध नहीं। सबसे पहले तो उसके पास अपनी उपज का संग्रह करने के लिए गोदामों की सुविधा उपलब्ध होना चाहिए। गोदानों के रूप में उपलब्ध सुविधाओं की यह हालत है कि ग्रामों में 10 से 20 प्रतिशत उपज चूहों, चीटिंयों आदि के द्वारा नष्ट हो जाती है।

दूसरे, किसान इतना निर्धन और ऋणग्रस्त है कि वह अपने ऋणों का भुगतान करने के लिए अपनी उपज महाजन या व्यापारी को बेचने के लिए तैयार हो जाता है। इस प्रकार के बाध्य-विक्रय के कारण औसत किसान की कमजोर स्थिति और भी अधिक कमजोर हो जाती है।

तीसरे, ग्रामीण क्षेत्रों में परिवहन सुविधाएँ इतनी बुरी हैं कि समृद्ध किसान भी जिसके पास काफी अतिरेक उपलब्ध होता है, मण्डियों में जाना नहीं चाहते। बहुत सी सड़के कच्ची हैं जो बरसात के मौसम में इस्तेमाल नहीं की जा सकतीं।

चौथी मण्डियों में परिस्थितियाँ इतनी बुरी हैं कि किसान को मण्डियों में जाकर काफी प्रतीक्षा करनी पड़ती है तब ही वह अपनी फसल को बेच पाता है। इसके अतिरिक्त सौदा-प्रणाली ऐसी है कि इससे किसान को नुकसान ही होता है। किसान आढ़तिये को अपनी फसल बेचने के लिए दलाल की सहायता लेता है।

पाँचवें, किसान और अन्तिम उपभोक्ता के बीच विचौलियों की संख्या बहुत अधिक है और इसलिए उपज का काफी भाग वे हड़पकर जाते हैं।

छठे, किसानों को बड़ी-बड़ी मण्डियों में प्रचलित कीमतों के बारे में सूचना भी नहीं मिलती और न ही उन्हें प्रत्याशित बाजार परिस्थितियों और कीमतों सम्बन्धी जानकारी होती है। परिणामतः किसानों को जो भी कीमत दलाल और आढ़तिये देने के तैयार हो जाएँ, स्वीकार करनी पड़ती है।

14.3.4 कृषि विपणन को उन्नत करने के उपाय -सरकार कृषि विपणन की परिस्थितियों को उन्नत करने के बारे में जागरूक है और उन्हें सुधारने के लिए कई उपाय किए हैं। अखिल भारतीय

भाण्डारगार निगम की स्थापना की गई है, जिसका उद्देश्य कस्बों तथा मण्डियों में गोदाम कायम करना और उनका प्रबन्ध करना है। ग्रामों में गोदामों की संख्या बढ़ाने के लिए सहकारी समितियों को अनिवार्य वित्तीय स्थिति उत्पन्न करने के लिए और इन्हें महाजनों के चुंगुल से मुक्त कराने के लिए रहकारी साख समितियाँ उधार देती हैं। अतः किसानों की उपज का क्रय-विक्रय करने के लिए सहकारी विपणन एवं विधायन समितियाँ आरम्भ की गई हैं। ग्रामीण परिवहन को विकसित किया जा रहा है। विनियमित मण्डियाँ स्थापित की गयीं और इनमें किसानों के हितों की रक्षा के लिए कदम उठाये गये। खाद्यान्नों की कीमतें सरकार द्वारा कृषि कीमत आयोग की सिफारिशों के आधार पर निश्चिय की जा रही हैं। सरकार भारतीय खाद्य निगम और भारतीय रूई निगम द्वारा एक बड़े व्यापारी के रूप में कार्य कर रही है और कृषि-उत्पादन का क्रय-विक्रय करती है।

14.4 विनियमित मण्डियाँ

विनियमित मण्डियों का उद्देश्य किसान को आढ़तियों और दलालों के दोषपूर्ण व्यवहारों से मुक्त कराना है। इनके मुख्य लक्ष्य अस्वस्थ बाजार व्यवहारों को दूर करना, विपणन दतव्य कम करना और किसान को उचित मूल्य का विश्वास दिलाना है। इन उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर सभी राज्यीय सरकारों ने विनियमित मण्डियों सम्बन्धी कानून बनाए हैं। 1951 में भारत में 200 से अधिक विनियमित मण्डियाँ थीं। मार्च 1998 के अन्त तक देश में 7,060 कृषि मण्डियाँ विनियमित की गयीं।

14.4.1 विनियमित मण्डी के लक्षण- कानून के आधीन एक विनियमित मण्डी किसी विशिष्ट वस्तु या वस्तु समूह के लिए चालाई की जाती है। ऐसी मण्डी के प्रबन्ध के लिए एक मण्डी समिति बनाई जाती है जिसमें राज्यीय सरकार, स्थानीय संस्थाओं (अर्थात् जिला बोर्ड), व्यापारियों, कमीशन एजेन्टों या दलालों और स्वयं किसानों के प्रतिनिध होते हैं। दूसरे शब्दों में, मण्डी समिति में सभी प्रकार के वित्त सम्मिलित होते हैं। इस समिति को एक निश्चित अवधि के लिए सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है और इसे मण्डी के प्रबन्ध का कार्य सौंप दिया जाता है।

मण्डी समिति द्वारा मण्डी में वसूल किये जाने वालो कमीशन भी निश्चित किए जाते हैं। मण्डी समिति इस बात का भी ध्यान रखती है कि दलाल न तो क्रेता की ओर से कार्य करे और न विक्रेता की ओर से। इस प्रकार किसान को दी जाने वाली कीमत में से आनाधिकृत कटोतियाँ समाप्त हो जाती हैं। साथ ही माप और तौल के सही बटों का प्रयोग भी अनिवार्य कर दिया जाता है। यह समिति सभी प्रकार की शिकायतें सुनती है और इनके निर्णय भी करती हैं। झगड़े की हालत में मध्यस्थ निर्णय भी करती है।

14.5 सहकारी विपणन

1954 से पूर्व, सहकारी साथ समितियों की अपेक्षा सहकारी विपणन समितियाँ पृथक् रूप में स्थापित की गयीं। किन्तु 1954 तक किसानों को अधार दने के लिए और अतिरिक्त उपज के क्रय-विक्र के लिए बहु उद्देश्यीय समितियाँ चालू की गयीं।

14.5.1 सहकारी विपणन समितियों के लाभ- कुछ पश्चिमी देशों में सहकारी विपणन बहुत ही सफल हुआ है। दुग्ध पदार्थों के सहकारी विपणन के लिए डेनमार्क विश्व में प्रसिद्ध है। सहकारी आधार पर कृषि-विपणन के अनेक लाभ हैं। उनमें मुख्य ये हैं -

(1) विपणन समिति वैयक्तिक सौदा शक्ति का प्रतिस्थापन सामूहित सौदाशक्ति द्वारा करती है। किसान स्वयं निर्बल है परन्तु विपणन समिति बलवान होती है। (2) यह समिति किसानों को अग्रिम देती हैऔर इन्हें अच्छी कीमतों की प्रतीक्षा करने के योग्य बनाती है, इसके अतिरिक्त यह उन्हें उनकी अन्य आवश्यताओं के लिए भी ऋण देती है। (3) समिति के अपने गोदाम और भाण्डागार भी होते हैं। इस प्रकार चूहे, चींटियां और नमी से खराब हो जाने वाली फसल को बचाती है। (4) यह तेज और सस्ते परिवहन का प्रबन्ध भी करती है। कई बार तो यह अपने वाहनों की भी व्यवस्था करती है। (5) यह किसानों की वर्गीकृत मानकीकृत वस्तुओं के उत्पादन के लिए प्रोत्साहन देती हैं और इन्हें अपनी उपज में मिलावट करने से रोकती है। (6) यह संभरण की मात्रा का नियन्त्रण करती है और इस प्रकार कीमतों को प्रभावित करती है। (7) यह बहुत से बिचौलियों को भी हटा देती हैं और इस प्रकार बहुत सा लाभ उनकी अपेक्षा किसान को प्राप्त होता है। (8) किसानों के उपज को बेचने के अतिरिक्त यह उनको बीज, उर्वरक, उपकरण आदि जैसी अनवार्य वस्तुयें उपलब्ध कराती हैं. अतः सहकारी विपणन समिति ग्रामीण बाजार प्रणाली को पुनः व्यवस्थित करने की सर्वोत्तम पद्धति है।

14.6 सरकार और कृषि विपणन

सरकार द्वारा विपणन - सर्वेक्षणों के आधार पर कृषि वस्तुओं के क्रय-विक्रय में सुधार लाने के लिए किए गए उपाय निम्नलिखित हैं -

सरकार ने कृषि वस्तुओं के वर्ग-विभाजन तथा मानकीकरण के लिए बहुत सा कार्य किया है। कृषि उपज (वर्ग विभाजन एवं विपणन) अधिनियम के आधीन घी, आटा, अण्डे आदि वस्तुओं के लिए वर्ग विभाजदन केन्द्र स्थापित किए हैं। कृषि विपणन द्वारा वर्ग-विभाजित वस्तुओं पर '।ळडात्ज्ञ (एगमार्क)' की मुहर लगा दी जाती है। इस प्रकार इन वस्तुओं के बाजार का विस्तार होता है और इनके लिए अच्छी कीमत प्राप्त हो सकती है। नागपुर में केन्द्रीय कोटि नियन्त्रण प्रयोगशाला कामय की गयी है। इसी प्रकार देश के विभिन्न भागों में आठ प्रादेशिक प्रयोगशालाएँ कायम की गयी हैं। इन सब प्रयोगशालाओं का उद्देश्य कृषि-वस्तुओं की किस्म एवं शुद्धता परीक्षण करना है। कोटि नियन्त्रण

को अधिक मजबूत करने के लिए निरीक्षण को बढाया जा रहा है और वर्ग-विभाजन में उन्नति की जा रही है।

i. कृषि-विपणन को सुधारने का एक महत्वपूर्ण उपाय देश भर में विनियमित मण्डियाँ कायम करना है। अब देश में 7.060 विनियमित मण्डियाँ कार्य कर रही हैं। विनियमित मण्डियों की स्थापना का फलस्वरूप मण्डियों में दोषपूर्ण व्यवहारं को दूर किया जा रहा है। यह अनुमान है कि कुल कृषि उपज के लगभग 70 प्रतिशत का क्रय-विक्रय इन्हीं मण्डियों में होता है।

इस सम्बन्ध में सरकार द्वारा देश भर में माप और तोल के बटों का मानकीकरण विशेषकर उल्लेखनीय है। सरकार ने देश में प्रचलित विभिन्न प्रकार के माप और तौल से बट्टों को समाप्त कर इनके स्थान पर मीट्रिक प्रणाली अपनायी गयी है। इस प्रकार किसानों के साथ बट्टों के आधार पर होने वाला छल-कपट समाप्त हो गया है।

ii. सरकार ने कस्बों तथा ग्रामों में भण्डागार सुविधाओं को भी उन्नत करने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। 1957 मं कृषि उपजों में संग्रहण तथा गोदानों एवम भंडारणों के परिचालन के लिए केन्द्रीय भाण्डागार निगम की स्थापनी की गयी। इसी उद्देश्य से विभिन्न राज्यों में राज्यीय भाण्डागार निगम स्थापित किए गए। आज भारतीय खाद्य निगम देश के विभिन्न भागों में गोदामों के एक जाल का निर्माण कर रहा है।

iii. किसानों में कृषि सम्बन्धी सूचना के प्रसारण के लिए सरकार रेडियों तथा टेलीविजन का प्रयोग भी करती रही है। रेडियों तथा दूरदर्शन के प्रसारण में मुख्य वस्तुओं के दैनिक मूल्यों, स्टॉक तथा बाजार की गतिविधियाँ सम्बन्धी सूचना दी जाती है। बहुत से किसान इन प्रसारणों को सुनकर लाभ उठाते हैं।

(अ) सहकारी विपणन समितियों का संगठन - भारत सरकार ने बहुउद्देश्य सहकारी समितियों के संगठन को प्रोत्साहन देने के लिए सक्रिय प्रोत्साहन दिया है और इस कार्य में विशेष बल उधार एवं विपणन पर ही रखा गया। प्राथमिक विपणन समितियों को केन्द्रीय समितियाँ और राज्यीय स्तर पर शिखर विपणन समितियाँ और राज्यीय स्तर पर शिखर विपणन समितियाँ कायम करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए। इसी प्रकार राष्ट्रीय सहकारी विपणन संघ भी कायम किया गया। सरकार ने सहकारी विपणन समितियों और संघों को स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया और अन्य राष्ट्रीयकृत बैंकों के माध्यम से अधिक वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराए।

इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम का उल्लेख करना उचित होगा जिसकी स्थापना भारत सरकार द्वारा सन् 1965 में की गयी ताकि वह सहकारी समितियों द्वारा कृषि उपज के उत्पादन, संसाधन, भाण्डागार और विपणन के प्रोग्रामों का आयोजन कर सके और उन्हें प्रोत्साहन दे सके।

विशेष बोर्डों की स्थापना - भारत सरकार ने कुछ विशेष वस्तुओं जैसे चावल, दाले , पटसन, मोटे अनाज, रूई, तम्बाकू, तिलहन, गन्ना, सुपारी आदि के लिए बहुत सी विकास परिषदें भी कायम की हैं जैसे काजू निर्यात प्रोन्नति परिषद और कृषि एवं संसाधित खाद्य निर्यात विकास प्राधिकरण।

कृषि वस्तुओं के निर्यात को बढ़ावा - सरकारी सहायता के आधीन हाल ही के वर्षों में कृषि निर्यात के बढ़ने की प्रवृत्ति अभिव्यक्त हुई है। उदाहरणार्थ, कृषि वस्तुओं का निर्यात जो 1992-93 में 7,880 करोड़ रुपये था बढ़कर 2003-04 में 34,000 करोड़ रुपये हो गया। भारत के कृषि निर्यात में दाले , चावल, गेंहूँ, तम्बाकू, चीनी, मुर्गी एवं दुग्धशाला से सम्बन्धित वस्तुएं गर्म मसाले , काजू, तिलहन, मूँगफली, फल एवं सब्जियाँ शामिल हैं। भारत के कुल निर्यात में कृषि निर्यात का भाग के बीच 12-15 प्रतिशत रहा।

भारत सरकार के विदेश व्यापार नीति (2004-09) में कृषि निर्यात पर बल दिया गया है और एक नयी योजना विशेष कृषि उत्पाद योजना चालू की गयी है ताकि फलों, सब्जियों, फूलों और छोटे वन-उत्पादन की निर्यात प्रोन्नत हो सके। सरकार ने राज्यों के लिए कृषि निर्यात क्षेत्रों की स्थापना के लिए राशि भी निर्धारिक कर दी है।

कृषि-विपणन सुधार - सरकार ने कृषि निर्यात सुधारं के एक अंतःमंत्रीय कार्यदल स्थापित किया ताकि कृषि विपणन को अधिक सबल और प्रतिस्पद्धी बनाने के लिए उपायों का प्रस्ताव करे। इस कार्यदल ने अपनी रिपोर्ट जून 2002 में पेश कर निम्नलिखित सुझाव दिये -

(क) प्रत्यक्ष विपणन और अनुबंध खेती को प्रोन्नत करना।

(ख) निजी एवं सहकारी क्षेत्रों में कृषि बाजारों का विकास करना।

(ग) सभी कृषि बाजारों में भावी व्यापार का विस्तार करना।

(घ) परक्रायम भाण्डागार रसीद प्रणाली को चालू करना और

(ङ) किसानों को बाजार सम्बन्धी विस्तार सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए सूचना तकनीलाजी का प्रयोग।

भारत सरकार ने कृषि विपणन के लिए एक माडल कानून तैयार और प्रचारित किया है जो अन्य मदों के साथ प्रत्यक्ष खरीद केन्द्र उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष विक्रय के लिए बाजर कीमत-निर्धारण प्रणाली में पूर्ण पारदर्शिता, किसानों को उसी दिन भुगतान, वर्तमान बाजारों के सार्वजनिक निजी स्वामित्व के लिए व्यावसायिक प्रबन्ध और मुहैया कराएगा। 2004 में, राज्यीय सरकारों ने इस मॉडल कानून को लागू करना स्वीकर कर लिया है। (ताकि थोक एवं खुदरा व्यापारियों के रूप में बिचौलियों को समाप्त किया जा सके)

भावी व्यापार - आर्थिक सुधारों के अंग के रूप में सरकार ने गुड़, आलू, अरण्ड के बीज, काली मिर्च, हल्दी और पटसन में भावी व्यापार की अनुमति दे दी। 1997-98 में सरकार में भावी व्यापार का विस्तार कर इसमें कॉफी, रूई, अरण्ड तेल और पटसन की वस्तुओं को और बढ़ा दिया।

2003-04 में भारत सरकार ने सभी वस्तुओं में भावी व्यापार को चालू करने के लिए एक मुख्य कदम उठा कर राष्ट्रीय-स्तरीय वस्तु बाजार स्थापित किये हैं। इन बाजारों पर क्रय-विक्रय की जाने वाली मुख्य वस्तुएं हैं: गेहूँ, कपास (रूई), सोया तेल, पटसन, रबड़, काली मिर्च, हल्दी आदि। इन वस्तु बाजारों ने बहुत सी नव क्रियाएं चालू की हैं जिनसे देश में कृषि विपणन की कुशलता बढ़ेगी।

14.7 कृषि विपणन में सुधार संदर्भ मॉडल एपीएमसी एक्ट

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् व्यापक स्तर पर यह महसूस किया गया था कि कृषि क्षेत्र के बाजार कुशलतापूर्वक कार्य नहीं करते हैं। वितरण की अकुशलता, जिसमें कृषि उत्पाद की बर्बादी सम्मिलित है, इन समस्याओं से निजात पाने के लिए विभिन्न राज्य सरकारों ने अपने अपने एपीएमसी अधिनिय बनाए। इन कानूनों द्वारा किसानों को शोषण से बचाने के लिए कठोर प्रावधान बनाए गए। कार्यकुशलता को बढ़ा दिया गया तथा विभिन्न मदों जैसे बुनियादी ढांचे के विकास पर विपणन शुल्क खर्च करने हेतु विधान बनाए गए।

कृषि उत्पाद विपणन समिति (एपीएमसी), 'मंडियों' में निर्णय लेने वाले शीर्ष निकाय की संरचना इस तरह से बनाई गई कि इसमें एक बड़ा बहुमत किसानों का हो और इस समिति का अध्यक्ष एक किसान हो। इसमें कोई संदेह नहीं है कि समय के साथ हमें कानूनों में संशोधन लाना पड़ता है। चाहे वे अपने मूल रूप में कितने ही अच्छे क्यों न हों। कृषि के क्षेत्र में उभरते परिवर्तन, कृषि विपणन से संबंधित कानूनों में परिवर्तनों की आवश्यक बना देते हैं।

कृषि विपणन व्यवस्था को अधिक जीवंत और प्रतिस्पर्धी बनाने के कथित उद्देश्य से, भारत सरकार ने पहले कृषि विपणन पर एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया और बाद में 'कृषि विपणन में सुधार पर अंतर मंत्रालयी टास्क फोर्स' का गठन किया। विशेषज्ञ समिति की मुख्य सिफारिशे निम्नलिखित हैं:-

1. प्रत्यक्ष विपणन को बढ़ावा देने के लिए एक वैकल्पिक विपणन व्यवस्था।
2. कृषि क्षेत्र में ऋण प्रवाह बढ़ाना
3. भण्डारण रसीद की एक प्रणाली शुरु करना
4. 'फार्वर्ड' और 'फ्यूचर्स' कांट्रैक्ट प्रणाली विकसित कनरा और इससे संबंधित पहलुओं पर कार्य
5. कृषि विपणन के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना

कृषि विपणन में सुधार पर अंतर मंत्रालयी टास्क फोर्स ने 9 क्षेत्रों को प्राथमिकता दी, जो निम्नानुसार हैं:-

1. कानूनी सुधार
2. प्रत्यक्ष विपणन
3. बाजार का आधारभूत ढ़ांचा
4. वित्तपोषण
5. भंडारण रसीद प्रणाली
6. फार्वर्ड और फ्यूचर्स बाजार
7. समर्थन मूल्य नीति
8. कृषि विपणन में सूचना प्रौद्योगिकी
9. विपणन विस्तार, प्रशिक्षण और अनुसंधान

इस टास्क फोर्स ने कई सिफारिशे की। सबसे महत्वपूर्ण सिफारिशों में शामिल है राज्य एपीएमसी अधिनियम और अनुबंध, खेती में संशोधन।

14.8 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1 - भारत में कृषि विपरण को उन्नत करने के लिए सरकार ने कौन-कौन से प्रयास किए हैं?

प्रश्न 2 - सहकारी विपरण पर टिप्पणी लिखिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1.निम्न में से कौन सा कारण भारत में बुरी कृषि विपरण का कारण है -

(a) किसानों की निर्धनता (b) ऋणग्रस्तता (c) मण्डियों की ऋणात्मक परिस्थितियाँ

(d) उपर्युक्त सभी

उत्तर 1- (d)

2.कृषि विपरण में सुधार हेतु किस एक्ट की स्थापना की गयी है -

(a)M.R.T.P. Act (b) Model APMC Act (c) M.R.P. Act (d)उपर्युक्त सभी

उत्तर 2- b

14.9 सारांश

अन्त में यही कहा जा सकता है कि किसानों को विशेष बाजारों की उपलब्धता ने कृषि विपरण की नकारात्मक परिस्थितियों को सकारात्मक रूप देने का प्रयास किया है, परन्तु इस दिशा में केन्द्र के साथ-साथ राज्य सरकारों को भी अहम भूमिका निभानी होगी। इसके लिए सरकार को जब भी सम्भव एवं अनिवार्य हो सहकारी विपणन समितियों का प्रयोग करना चाहिए। उदाहरणार्थ सरकार ने पहले ही खाद्यानों में राजकीय व्यापार चालू कर दिया है। अब राजकीय विपरण निगम द्वारा सहकारी विपरण समितियों से सीधे खाद्यान खरीद सकता है।

14.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. Datt and Sundram, R., (2009), India Economy, 61st Edition, Suttam Chand & Sons.
2. Prakash, B.A., (2009), The Indian Economy Since 1991 – Economic Reforms & Performances, Ist edition, Pearson Education.
3. Rudra, Ashok, (1975), Indian Plan Models, Ist edition, Allied Publishers, Bombey.
4. Mishra, S. K., and Puri, V. K., (2007), Problems of Indian Economy, Mimalaya Publishing House.
5. OECD : A preliminary Assessment of the Impact of the Uruguay Round on Developing Countries, Paris. (1994).
6. Govt. of India, Planning Commission, Tenth Five Year Plan, Vol-I
7. Economic Survey, 2008-09.
8. Economic Survey, 2009-10.
9. Rudra Ashok, (1974) Indian Plan Models, Allied Publishere, Bombay.
10. Sen Amarty (1983) Development Which Way Now Economic Journal.
11. Shah and Vakil (Ed) : Agricultural Development of India, Policy and Problems.
12. Desai, A.R., (1983) Rural Sociology in India, Popular Prakashan, Bombay.
13. Bansil, P. C. (1981), Agricultural Problems of India, Oxford and IBH Publishing Company.

14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 - कृषि विपणन में सुधार हेतु भारत सरकार द्वारा बनाए गये 'संदर्भ मॉडल' (एपीएमसी एक्ट) की विवेचनात्मक समीक्षा कीजिए?

प्रश्न 2 - भारत में कृषि विपणन प्रणाली के कौन-कौन से गुण एवं दोष हैं? पूर्ण व्याख्या कीजिए।

इकाई 15 - कृषि मूल्य नीति, खाद्य सहायता और सार्वजनिक वितरण प्रणाली

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 कृषि मूल्य नीति
15.2.1कृषि कीमतों की प्रवृतियाँ
15.2.2कीमत वृद्धि के कारण
15.2.3माँग तत्व से सम्बद्ध तत्व
15.2.4पूर्ति तत्व से सम्बद्ध तत्व
15.2.5कृषि मूल्य नीति की आवश्यकता
15.2.6कृषि कीमत नीति का मूल्यांकन
15.3 खाद्य सहायता
15.4 सार्वजनिक वितरण प्रणाली
15.4.1 सार्वजनिक वितरण विक्रमय में विभिन्न सापेक्ष भाग
15.4.2 सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सम्भरण और निकास
15.4.3 सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा गरीबों को आय हस्तांतरण
15.4.4 सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार नीति
15.4.5 सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा कुल आवंटन एवं कुल निकास
15.4.6 सार्वजनिक वितरण प्रणाली और गरीबी रेखा के नीचे वाली जनसंख्या
15.4.7 लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली
15.5 अभ्यास प्रश्न
15.6 पाठ सारांश
15.7 संदर्भ ग्रन्थ
15.8 निबन्धात्मक प्रश्न

16.0 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों के अध्ययन के उपरांत आप इस तथ्य को जान चुके होंगे कि भारत मे योजना काल में विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों की तीव्र प्रगति के बाद अभी भी अर्थव्यवस्था का मूल चरित्र कृषि प्रधान ही है।

इस अध्याय में आप योजना काल के दौरान कृषि कीमतों में आये उच्चावचों को जान पायेंगे और इसके कारणों की भी जानकारी आपको दी जायेगी। उसके उपरांत आप इस इकाई में कृषकों को और गरीबों को प्रदान की जाने वाली खाद्य सहायता नीति की पूर्ण जानकारी प्राप्त करेंगे तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली से जुड़े विभिन्न पहलुओं का मूल्यांकन भी कर सकेंगे।

16.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यनोपरांत आप

- योजना काल के दौरान कृषि कीमतों की प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर पायेंगे।
- भारत में लगातार बढ़ती खाद्य कीमतों के कारणों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- भारतीय कृषि मूल्य नीति की विवेचना कर पायेंगे।
- भारत में गरीबों और किसानों को प्रदान की जाने वाली खाद्य सहायता की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली क्या है, यह कैसे कार्य करती है और भारत में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली आलोचनात्मक मूल्यांकन प्राप्त कर पायेंगे।

16.2 कृषि मूल्य नीति

16.2.1 कृषि कीमतों की प्रवृत्तियां- योजना काल में कृषि कीमतें सतत् रूप से बढ़ती रही है। इसका अपवाद केवल पहली पंचवर्षीय योजना है जब कि कीमतों में वस्तुतः गिरावट हुई। अभी तक हमारे पास थोक कीमतों की छः काल श्रेणियां हैं - पहली का आधार 1952-53 = 100, दूसरी का आधार 1961-62 = 100, तीसरी का आधार 1993-94 = 100 तथा छटी का आधार 2004-05 = 100 है। इन श्रेणियों के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं:-

- कृषि कीमतों की प्रवृत्ति लगातार बढ़ने की है। 1952-53 को आधार मानकर कृषि कीमतों का सूचकांक 1950-51 मे 110 से बढ़कर 1960-61 में 123.8 हो गया परन्तु पहली योजना में इसमें गिरावट हुई और यह 1951-52 में 110 से कम होकर 1955-56 में 88 हो गया, परन्तु दूसरी योजना के शुरु होते की कृषि कीमतें फिर बढ़ने लगी और तब से लगातार

बढ़ रही है (केवल 1961-62 को छोड़कर)। 1970-71 में कृषि कीमतें, 1961-62 की तुलना में दोगुनी तथा 1981-82 में 1970-71 की अपेक्षा दो गुणा से भी अधिक थीं। 1993-94 में कृषि कीमतें, 1982-83 की तुलना में ढाई गुणा अधिक थी। 1993-94 में 100 मानकर 2006-07 में कृषि कीमतों का सूचकांक 204.1 था अर्थात् इस अवधि में कृषि कीमतों में लगभग 104 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

- सभी श्रेणियों की समबंधन करके पूरा योजनावधि के लिए कृषि कीमतों में वृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। समबंधन से प्राप्त सूचकांक जो 1950-51 में 100 था 2006-07 में बढ़कर 2,774 हो गया अर्थात् पूरी योजनावधि में कृषि कीमतों में लगभग 28 गुणा वृद्धि हुई।
- केवल पांच वर्षों 1961-62, 1968-69, 1975-76, 1978-79 तथा 1985-86 को छोड़कर अन्य सभी वर्षों में कृषि कीमतें अपने पहले के वर्ष की तुलना में अधिक रही है। (विचाराधीन अवधि 1955-56 से 2006-07) केवल पांच वर्ष ही ऐसे हैं जबकि प्रतिशत वृद्धि ऋणात्मक है। इस प्रकार 51 वर्षों मं से 46 वर्ष ऐसे हैं, जब कीमतें लगातार बढ़ी है। चार वर्ष 1964-65, 1973-74, 1974-75 तथा 1991-92 ऐसे ये जब कृषि कीमतें अपने पहले के वर्ष की तुलना में लगभग 20 प्रतिशत या उससे अधिक बढ़ी थी।

इन तथ्यों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आयोजन काल में कृषि वस्तुओं की कीमतों में अत्यधिक वृद्धि हुई है। इसके कई बुरे परिणाम हुये हैं क्योंकि थोक कीमतों के सूचकांक में कृषि वस्तुओं का भार काफी अधिक है। (1952-53 के आधार वाली श्रेणी में यह भार 46.1 तथा बाद वाली श्रेणियों में क्रमशः 33.2, 40.4 तथा 27.5 था) इसलिए कृषि कीमतों में वृद्धि की प्रवृत्ति के कारण देश मे स्फीतिकारी शक्तियां और मजबूत हुई हैं और सब वस्तुओं का थोक कीमत सूचकांक बढ़ा है। बढ़ती हुई कीमतों का सबसे बुरा प्रभाव जनसंख्या के निम्न आय वर्गों पर पड़ा है जिनकी क्रय शक्ति में तेज गिरावट आने से जीवन निर्वाह मुश्किल हो गया है।

अधिकतम कृषि वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हुई है, जिससे कृषि कीमतों का सूचकांक बढ़ा है। इसके अतिरिक्त विभिन्न कृषि वस्तुओं की कीमतों में साल-दर-साल तेज उतार-चढ़ाव हुए हैं जिससे अनिश्चितता और अस्थिरता में वृद्धि हुई है तथा जमाखोरी की प्रवृत्तियों को बल मिला है।

16.2.2 कीमत वृद्धि के कारण- अब प्रश्न यह उठता है कि किन कारणों से लगातार कीमतों में वृद्धि दृष्टिगोचर हो रही है। इस कीमत वृद्धि के लिए प्रमुख रूप से जनसंख्या वृद्धि, नगरीकरण की तीव्र प्रवृत्ति, उपभोक्ताओं की रुचि में परिवर्तन, आय स्तर में वृद्धि, उत्पादन में कतिपय वर्षों में कमी, अनुचित संग्रह आदि तत्व उत्तरदायी रहे हैं। कीमत वृद्धि के लिए उत्तरदायी इन कारणों को मुख्य रूप से हम निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

16.2.3 मांग पक्ष से सम्बद्ध तत्व - जनसंख्या बढ़ने से खाद्यान्नों और अन्य कृषि उत्पादनों की माँग बढ़ी है। इसके अतिरिक्त आय वृद्धि के कारण उपभोक्ताओं द्वारा श्रेयस्कर कृषि उत्पादनों की मांग में तेजी आयी है। इससे भी कृषि वस्तुओं की मांग पर अधिक तीव्र प्रभाव पड़ा है। औद्योगिक

क्षेत्र में कृषि उत्पादनों का अधिक प्रयोग होने लगा है। कई नवीन औद्योगिक इकाइयां कृषि उत्पादन से तत्काल उपयोग योग्य वस्तुएँ बनाने लगी हैं।

16.2.4 पूर्ति पक्ष से सम्बद्ध तत्व- कृषि उत्पादन-स्तर का उच्चावचन पूर्ति पक्ष की ओर से कीमत बढ़ाने वाला सबसे प्रमुख उत्तरदायी तत्व है। प्रतिकूल मौसम की अवस्था में कृषि वस्तुओं की कीमतें इस कारण बढ़ जाती है, क्योंकि कृषि उत्पादन घट जाता है। यदि हाल के वर्षों के आँकड़ें देखे जाये तो भी इस प्रवृत्ति का आकलन किया जा सकता है। जैसे दलहन की फसलों में जादुई किस्म के बीजों की सफलता न होने के कारण दालों का उत्पादन या तो स्थिर बना रहता है या उसमें कमी आ जाती है। जबकि उपभोक्ताओं द्वारा की जाने वाली मांग लगातार बढ़ी है। इनसे कृषि वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि की प्रवृत्ति बनी रही है।

16.2.5 कृषि कीमत नीति की आवश्यकता- कृषि कीमतों में तेज वृद्धि और अधिक उतार-चढ़ाव के कई बुरे प्रभाव पड़ते हैं। उदाहरण के लिए किसी भी फसल की कीमत में तेज गिरावट आने से उसके उत्पादकों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। उनकी आय में तेजी से कमी आयी है और अगले वर्ष वे उसी फसल को दुबारा बोने से हिचकिचाते हैं। यदि फलस आम जनता के उपभोग की वस्तु है तो अगले वर्ष पूर्ति मांग की अपेक्षा कम रहने की सम्भावना रहेगी और इस अन्तराल को पूरा करने के लिए सरकार को आयात करने पड़ेगे (यदि उसके पास उस कृषि वस्तु के उपयुक्त मात्रा में भंडार नहीं हैं)। इसके विपरीत यदि किसी फसल की कीमते किसी वर्ष बहुत बढ़ जाती है तो उपभोक्ताओं पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। यदि यह वस्तु उपभोग की आवश्यक वस्तु है तो उपभोक्ता को उसे खरीदने के लिए अन्य वस्तुओं पर खर्च कम करना पड़ेगा। इसका अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।

इस बात को ध्यान में रखते हुए एक ऐसी कृषि कीमत नीति बनाने की आवश्यकता है जो उत्पादकों और उपभोक्ताओं दोनों के ही हितों की रक्षा कर सके। अतिरिक्त उत्पादन वाले वर्षों में सरकार को चाहिए कि वह उचित दामों पर किसानों से उत्पादन खरीद लो ताकि उन्हें हानि न हो। ये दाम ऐसे होने चाहिए कि किसानों की उत्पादन-लागत को पूरा करने के बाद कुछ न्यूनतम मुनाफा भी दें। इस प्रकार सरकार के पास जो प्रतिरोधक भंडार इकट्ठा होंगे उनका इस्तेमाल वह उन वर्षों में मांग को पूरा करने के लिए कर सकती है जब उत्पादन में कमी हो। इससे न केवल आयातों पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा अपितु कीमत-स्तर को भी उचित स्तर पर बनाया रखा जा सकेगा जिससे उपभोक्ताओं की कठिनाई नहीं होगी। इस प्रकार सरकार की कृषि कीमत नीति के दो मुख्य उद्देश्य होने चाहिए - कीमतों को बहुत ज्यादा न बढ़ने देना और कीमतों को एक न्यूनतम स्तर से नीचे न गिरने देना। स्वाभाविक है कि यह तभी हो पायेगा जब सरकार बफर भंडारों का निर्माण करे। इसके लिए उपयुक्त भंडार क्षमता बनाने की जरूरत है। इसके अलावा बड़े पैमाने पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विकास भी आवश्यक है ताकि उपभोक्ताओं को उचित दाम पर खाद्यान्न व अन्य कृषि वस्तुएं उपलब्ध कराई जा सकें। न्यूनतम समर्थन कीमतों तथा वसूली कीमतों का निर्धारण करते समय सरकार को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि उत्पादकों को 'उत्पादन करने की प्रेरणा' बनी

रहे, अर्थात् कीमतें ऐसे स्तर पर निर्धारित की जाएं जो किसानों को और ज्यादा उत्पादन करने के लिए प्रेरित कर सकें। विकासशील देशों के सन्दर्भ में यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है जहां उद्देश्य कृषि क्षेत्र में केवल 'कीमत व आय स्थिरीकरण' नहीं है अपितु उसका प्रयोग 'संवृद्धि के रूप में करना है। इसलिए विकासशील अर्थव्यवस्था में कृषि कीमत नीति के मुख्य उद्देश्य निम्न होना चाहिए: (1) किसानों को एक निश्चित न्यूनतम समर्थन कीमत की गारण्टी देना ताकि उनके हितों की रक्षा हो सके, उत्पादन में जोखिम न रहे और वे लोग उत्पादन को और ज्यादा बढ़ाने के लिए निवेश करने को तत्पर रहें; (2) योजनाओं में निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप विभिन्न फसलों के उत्पादनको निर्देशित किया जा सके; (3) अधिक लागतों के प्रयोग द्वारा तथा उन्नत किस्म के बीजों, उर्वरकों व अन्य आगतों का प्रयोग करने वाली नई कृषि तकनीक के और प्रसार द्वारा कुल उत्पादन में वृद्धि लाई जा सके; (4) किसानों को इस बात के लिए प्रेरित किया जा सके कि वे खाद्यान्नों का बढ़ता हुआ हिस्सा बाजार में बेचने के लिए तैयार हो तथा (5) अत्यधिक कीमत वृद्धि से उपभोक्ताओं की रक्षा करना, विशेष रूप से निम्म आय वर्ग के उपभोक्ताओं की उन वर्षों में जब आपूर्ति मांग से काफी कम हो और बाजार कीमतों में लगातार वृद्धि हो रही हो।

16.2.6 कृषि कीमतों का मूल्यांकन

उपरोक्त विश्लेषण के उपरांत आप समझ चुके होंगे कि भारत में योजना काल में कृषि कीमत नीति का मुख्य उद्देश्य कीमत उत्पादनों की कीमतों में अनुचित उतार-चढ़ाव को रोकना, उपभोक्ताओं विशेषकर कमजोर वर्ग के लोगों के हितों की रक्षा करना तथा उत्पादकों को उत्पादन बढ़ाने तथा नवीन कृषि प्रविधि अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना रहा है।

कृषि मूल्य आयोग कृषि लागतों के प्रत्येक संघटकों पर विचार करने के पश्चात कीमतें निश्चित करता है। लागतों का निश्चय करने के लिए लागत 'सी' की संकल्पना का प्रयोग किया गया है. लागत 'सी' की संकल्पना में बीज, उर्वरक, खाद, कीटनाशक, सिंचाई, विद्युत, डीजल, बैलों के रख-रखाव आदि का व्यय, किराए के श्रम के साथ-साथ प्रचलित मजदूरी दर पर आकलित पारिवारिक श्रम लागत, परिसम्पत्तियों के लिए उपयुक्त ब्याज, स्वयं की एवं पट्टे पर ली गयी भूमियों पर लगान, भूमिकर और अधिभार, मशीनरी और अन्य परिसम्पत्तियों का घिसावट व्यय सम्मिलित किया जाता है। अब कृषि आयोग उत्पादन की मंडी तक ले जाने के लिए यातायात लागतों को भी सम्मिलित करता है।

अब तक के अध्ययन के उपरांत निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त वर्णित तत्वों को ध्यान में रखकर घोषित कीमत के प्रति यह कहना संदेहास्पद हो जाता है कि इससे लागतें नहीं वसूल हो पाती हैं। भारत में कृषि क्षेत्र हो जहां घोषित समर्थित कीमतों से समस्त कृषि लागतों का वापस किया जाना सुनिश्चित किया जाता हो और साथ-साथ अनुदानित दरों पर कृषि निवेश की उपलब्ध कराए जाते हों। परन्तु आज भी कृषि मूल्य आयोग द्वारा संस्तुत और सरकार द्वारा घोषित कृषि कीमतों की लाभदायता भी विवाद का विषय बना हुआ है। सामान्यतः यह कहा जाता है कि कृषि मूल्य आयोग द्वारा संस्तुत कीमतें कम रही हैं और वे उचित तथा लाभपूर्ण नहीं है। घोषित

कीमतों से कृषि लागतें भी नहीं निकल पाती हैं। इस तर्क का प्रयोग सामान्यतः राजनीतिक अó के रूप में किया जाता है। इसी तर्क के आधार पर आंदोलन को बल दिया जाता है परन्तु कृषि कीमतों की प्रवृत्ति और उसकी निर्धारण संरचना इसके गैर-लाभदायता के पक्ष को नकार देती हैं।

16.3 खाद्य सहायता

नियोजन काल में यद्यपि खाद्यान्न उत्पादन मे लगातार वृद्धि की प्रवृत्ति रही है, परन्तु इसमें उतार-चढ़ाव होते रहे हैं। नियोजन काल मे खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति के बाद भी देश को खाद्यान्न संकट का सामना करना पड़ा और कभी-कभी तो स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गयी। नियोजन काल की अवधि में अनुभव की गयी और सम्प्रति विद्यमान खाद्य समस्या का विश्लेषण मात्रात्मक और गुणात्मक आधार पर किया जा सकता है। खाद्य समस्या का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष व्यापक जन समुदाय की गरीबी से सम्बद्ध है।

खाद्यान्नों की मात्रात्मक कमी का भी दबाव अर्थव्यवस्था पर लगातार बना है। पूर्ति पर मांग का आधिक्य बने रहने के कारण आयातों पर निर्भर रहना पड़ता है और लोगों को न्यूनतम आवश्यक कैलोरी के लिए खाद्यान्न नहीं उपलब्ध हो पाते। खाद्य और कृषि संगठन ;थ्ण्।ण्व्द्ध के अनुमान के अनुसार खाद्यान्नों की दैनिक उपलब्धि इस स्तर से कम रही है। यद्यपि इसमें अब सुधार आया है परन्तु इस स्तर को बनाये रखने के लिए और खाद्यान्नों की कमी को पूरा करने के लिए नियोजन काल में कतिपय वर्षों को छोड़कर खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा है। यद्यपि आयातों की मात्रा में उतार-चढ़ाव होते रहते हैं, परन्तु कभी-कभी आयातों पर निर्भरता अधिक रही। सन् 1959 और 1960 में क्रमशः 39 मिलियन टन और 5.1 मिलियन टन खाद्यान्नों का आयात किया गया, 1965-66 और 1966-67 भारत के लिए अत्यधिक संकट के रहे इस समय 10.3 मिलियन टन और 8.7 मिलियन टन आयात करना पड़ा और 1990-94 में 1238 मिलियन यू.एस. डालर के बराबर अनाज आयात करने पड़े हैं।

खाद्य समस्या के समाधान हेतु सरकार ने विभिन्न प्रयास किया जिसमें खाद्य सहायता या खाद्य सहायिका प्रमुख है। किसानों को दी जाने वाली खाद्य सहायिका की राशि में लगातार वृद्धि हुई है। खाद्य सहायिका कुल राशि 1990-91 में 2450 करोड़ रूपये थी जो क्रमशः 1904-05 में 27,746 करोड़ रुपये हो गयी। भारत सरकार वित्त मंत्र्ाालय के अनुसार 1990-91 की अपेक्षा 2003-04 में दी जाने वाली खाद्य सहायिका में 10.5 गुणा वृद्धि हुयी है। खाद्य सब्सिडी से मुख्य रूप से गरीब तबके के उपभोक्ताओं और किसानों को अपने उत्पादन स्तर को एक न्यूनतम खाद्य स्तर में बनाए रखने में सहायता मिलती है।

खाद्य सहायता में लगातार हो रही वृद्धि के मुख्य रूप से दो प्रमुख कारण हैं - प्रथम विभिन्न कृषि उत्पादों की न्यूनतम समर्थित कीमत में लगातार वृद्धि हुई है। द्वितीय इसके साथ परिवहन, भंडारण, रख-रखाव आदि की लागते बढ़ने से अनाजों की आर्थिक लागतें बढ़ती गयी हैं। इसी के

साथ-साथ गरीबों को सस्ते दामों पर खाद्यान्नों की उपलब्ध कराने वाली सार्वजनिक वितरण प्रणाली निर्गत कीमतों में वृद्धि नहीं हुयी। इसलिए सहायता राशि बढ़ती गयी।

न्यूनतम समर्थित कीमतें बढ़ने से घरेली कीमतें भी प्रभावित हुयी और भारतीय कृषि उत्पादों की विश्व बाजार में प्रतिस्पर्धात्मकता में कमी आयी। प्रोत्साहन मुख्य न्यूनम समर्थित कीमत पर खुली बिक्री के कारण खाद्यान्न स्टाक में क्रमशः वृद्धि होती गयी और खाद्यान्नों का बफर स्टाक 2002-03 में बढ़कर 60 मिलियन टन हो गया।

खाद्य साख के अन्तर्गत भारतीय खाद्य निगम, राज्य सरकारों और राज्य सहकारी संगठनों को बैंकों द्वारा दिये गये ऋण से है। खाद्य ऋण बैंकों द्वारा प्रदत्त कुल ऋण का लगभग 5.6 प्रतिशत होता है। खाद्य वसूली बढ़ने पर खाद्यान्न स्टाक बढ़ता है और साथ-साथ बकाया खाद्य ऋण में भी वृद्धि होती है। परन्तु उपभोग में वृद्धि होने पर एक और खाद्यान्न स्टाक में कमी आती है और दूसरी ओर बकाया खाद्य ऋण में भी कमी आती है। हाल के वर्षों में खाद्य भंडार और बकाया खाद्य ऋण में भारी वृद्धि हुयी थी। खाद्य भंडार जून 2002 में 64.8 मिलियन टन तक पहुंच गया था। इसके पश्चात् भंडार से भारी निकासी होने का कारण खाद्यान्न भंडार और खाद्य ऋण में कमी आयी है। खाद्य भंडार अगस्त 2003 में न्यूनतम मानक से नीचे आ गया था। अब उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता लगातार बढ़ती जा रही है।

निम्न तालिका द्वारा आप खाद्य-साहाय्य पर केन्द्र सरकार के कुल व्यय को भली-भाँति समझ सकेंगे

तालिका-1खाद्य सहाय्य पर केन्द्र सरकार का व्यय

वर्ष	(करोड़ रुपये चालू कीमतों पर)
1980-81	650
1990-91	2,450
2000-01	12,120
2005-06	27,798
2006-07	31,260
2007-08	43,668
2009-10	46,907

स्रोत - योजना आयोग, दसवी पंचवर्षीय योजना भाग-2, आर्थिक समीक्षा 2009-10

खाद्य सहाय्य पर खर्च, तालिका में दिया गया है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली सम्बन्धी व्यय में लगातार वृद्धि हुई है और यह 1980-81 में 650 करोड़ रुपये से बढ़कर 1990-91 में 2,450 करोड़ रुपये हो गया। केन्द्र सरकार के कुल के अनुपात में यह 1980-81 के दौरान 2.9 प्रतिशत हो गया परन्तु सरकार ने जनता के दबाव के कारण इसे एक कीमत-स्थिरीकरण उपकरण के रूप में कल्याणकारी प्रोग्राम का हिस्सा बना लिया। 1997-98 के पश्चात् सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर व्यय में तीव्र वृद्धि हुई और यह बढ़कर 2000-01 में 12,125 करोड़ रुपये हो गया और फिर 2003-04 में 25,800 करोड़ रुपये के रिकार्ड स्तर पर पहुँच गया लेकिन तदुपरांत वर्ष

2006-07 में यह घटकर 24,014 करोड़ रुपये ही रह गया। वर्ष 2009-10 में यह 46,907 करोड़ रुपये था।

अतः उपर्युक्त विवेचना से आप समझ चुके होंगे कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से सरकार खाद्य सहायता को बल दे रही है परन्तु इससे सार्वजनिक व्यय का बोझ बढ़ता जा रहा है।

16.4 सार्वजनिक वितरण प्रणाली

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का आशय सार्वजनिक रूप में उपभोक्ता के निर्धारित कीमतो पर उचित मात्रा में विभिन्न उपभोक्ता वस्तुये वितरित करने से है। इसके अन्तर्गत उपभोक्ताओं को वस्तुएँ इस प्रकार वितरित की जाती हैं जिससे कि उपभोक्ताओं को खाद्य सहायता प्रदान की जा सके। यह प्रणाली हमारे देश में काफी दिनों से प्रचलित है। इससे मुख्यतः दो लाभ प्राप्त होते हैं:

(1) इससे मूल्यों को नीचे स्तर पर बनाये रखने में सहायता मिलती है अर्थात् मूल्य वृद्दि से बचाना।

(2) यह प्रणाली समाज के कमजोर वर्गों (विशेषकर निम्न आय वाले) के लोगों को कम मूल्य पर आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध कराती है।

इस प्रकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली के मुख्य रूप से दो पहलू हैं प्रथम, केन्द्र सरकार का यह दायित्य होता है कि वह कमी वाले राज्यों की आवश्यकताओं को पूरा करे। इसके लिए अतिरेक वाले राज्यों से खाद्यान्न व अन्य आवश्यक न्यूनता वाले राज्यों में भेजा जा सकता है अथवा केन्द्र सरकार अपने ही भण्डारों, जो पूर्व वर्षों में समाहरण अथवा आयातों द्वारा बनाया गया है, से कमी वाले राज्यों व अंचलों की खाद्य पूर्ति कर सकता है। अतः सार्वजनिक वितरण प्रणाली का एक महत्वपूर्ण पक्ष राशनिंग अथवा उचित मूल्य की दुकान प्रणाली द्वारा कमजोर वर्ग और न्यूनता वाले क्षेत्रों की आवश्यकताओं को पूरा किया जाना है।

1980-81 के दशक के मध्य में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार कुछ राज्यों मे ग्राम क्षेत्रों में किया गया। इस प्रकार इसे कल्याणकारी कार्यक्रम का दर्जा दिया गया। 1985 में प्रयास किया गया कि सभी जनजाति ब्लाकों में जिनकी जनसंख्या लगभग 5.7 करोड़ है, सस्ती दर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराए जायें। देश में आज 4.62 लाख उचित मूल्य की दुकान का नेटवर्क बन गया है जो 30,000 करोड़ रुपये की वस्तुएँ प्रति वर्ष वितरित करती है। अतः भारतीय सार्वजनिक वितरण प्रणाली सम्भवतः विश्व मे सबसे बड़ा वितरण नेटवर्क ;क्पेजतपइनजपवद दमजूवताद्ध है। कई रोजगार जनन कार्यक्रमों में मजदूरी के अंग रूप में सहायतित खाद्यान्न वितरित किये गये।

इस समय सार्वजनिक वितरण प्रणाली मे सात वस्तुएँ - गेहूँ, चावल, चीनी, आयातित खाद्य तेल, घरेलू उपयोग में प्रयोग होने वाला कोयला, मिट्टी का तेल और नियंत्रित कीमत पर बिकने वाला वó सम्मिलित है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली का क्रियान्वयन संयुक्त रूप से केन्द्र सरकार

और राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। केन्द्र सरकार का दायित्व खाद्यान्नों की वसूली, संग्रह, परिवहन और भारी आवंटन करना है। केन्द्रीय सरकार विभिन्न वस्तुओं का विक्रय मूल्य निर्धारित करती है, परन्तु राज्य सरकारों को केन्द्रीय विक्रय मूल्य में अन्य आकस्मिक खर्चे जैसे परिवहन व्यय आदि सम्मिलित करने का अधिकार है। इसी के साथ उचित मूल्य की दुकानों के कार्यों पर नियंत्रण रखने के लिए राज्यों में जिला, ब्लाक और तालुका स्तर पर सलाहकार समितियों का गठन किया गया है। राज्य सरकारें उक्त सात वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सम्मिलित कर सकती हैं जिनकी वे सरकारी खरीद कर सकती हैं। इससे उपभोक्ताओं को प्रयोग की अन्य वस्तुये भी सुगमतापूर्वक प्राप्त हो सकेंगी और उचित मूल्य की दुकानों में आर्थिक शक्यता आ सकेगी। कुछ राज्यों या पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, तमिलनाडु और हिमाचल प्रदेश में उचित मूल्य की दुकानों द्वारा दालें , माचिस, साबुन, साइकिल टायर और ट्यूब, कापियाँ, टार्च के सेल आदि भी उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराने लगी है।

16.4.1 सार्वजनिक वितरण विक्रय मे विभिन्न मदों का सापेक्ष भाग:

चावल, गेंहूँ, चीनी, खाद्य तेल, सॉफ्ट कोक, और मिट्टी का तेल सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुकानों पर बेचे जाते हैं, किन्तु इनमें से चार मदों अर्थात् चावल, गेंहूँ, चीनी और मिट्टी का तेल कुल विक्रय में भाग 86 प्रतिशत है। केवल चीनी का भाग 35 प्रतिशत, चावल का 27 प्रतिशत, गेंहूँ का 15 प्रतिशत और मिट्टी के तेल का 15 प्रतिशत है। मोटे अनाज (बाजरा, ज्वार, और अन्य अनाज) जिनका उपभोग गरीब वर्ग द्वारा किया जाता है का कुल विक्रय में 1 प्रतिशत से भी कम है। दालो जो गरीबों के लिए प्रोटीन का मुख्य स्रोत हैं का भाग 0.2 प्रतिशत से भी कम है।

16.4.2 सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सम्भरण और निकास

महँगाई के बढ़ने, उत्पादन के कम और आयातों की मात्र् बढ़ने के कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा वितरित की जाने वाली खाद्य कीमतों में भी वृद्धि करनी पड़ी परन्तु सार्वजनिक वितरण प्रणाली में जारी कीमत को बढ़ाने के परिणामस्वरूप इससे अनाज निकासी पर दुष्प्रभाव पड़ा क्योंकि साहायित जारी कीमत और खुले बाजार की कीमत मे अन्तर कम हो गया। अतः सभी राज्यों में निकासी केन्द्रीय आवण्टन से कम रही। विश्व बैंक की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है - ''बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश जैसे गरीब राज्यों में केन्द्रीय आवंटन की तुलना में क्रय में महत्वपूर्ण अन्तर का कारण कुछ हद कर केन्द्रीय जारी कीमत और बाजार कीमत में थोड़ा ही अन्तर था और कुछ हद तक इन राज्यों की कमजोर राजकोषीय सामर्थ्य भी इसके द्वारा वे जारी कीमतों को कम करके इसके लिए अतिरिक्त इन राज्यों ने प्रभावी संस्थानात्मक प्रक्रिया तैयार नहीं की जिसके माध्यम से वे भारतीय खाद्य निगम से उचित कीमत की दुकानों तक माल पहुँचा सकें। यह बड़ी विडम्बना है कि जिन राज्यों में गरीबों का अनुपात अधिक है उन्हीं राज्यों में भारतीय खाद्य निगम से क्रय सबसे नीचा है।

16.4.3 सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा गरीबों को आय हस्तांतरण

सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा सस्ते दर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराकर आय-हस्तांतरण करना है। आय हस्तांतरण की मात्र् सार्वजनिक वितरण प्रणाली से किये गये क्रय को जारी कीमत और बाजार कीमत के अन्तर से गुना करके प्राप्त की जा सकती है। इस विधि के आधार पर यह निष्कर्ष निकला कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा दिये गये सभी सहाय्यों से ग्राम क्षेत्रों से आय-हस्तांतरण रु. 2.30 प्रतिमास था जो कि 1986-87 में प्रतिव्यक्ति गैर-सरकारी उपभोग व्यय का 1.6 प्रतिशत था और शहरी क्षेत्रों में 3.68 रुपये। सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सर्वोच्च लक्ष्य गरीबों की मदद करना है इसके लिए गरीबों की पहचान बुनियादी समस्या है और इसके लिए ऐसी रणनीति तैयार की जानी चाहिए जो राज्य-अर्थशास्त्र गुह्यार्थी की उपेक्षा किए बिना, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लाभों को गैर-निर्धनों तक पहुंचने की क्रिया के प्रभाव को न्यूनतम बना सके। इसके लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं:

1.गरीबों की पहचान के कार्य को नौकरशाही की अपेक्षा पंचायती राज संस्थाओं को सौंप देना चाहिए। इस प्रश्न पर अर्थशास्त्रियों और समाज सेवकों में एकमत प्राप्त हो चुका है।

2.विस्तृत उपभोक्ता सर्वेक्षणों द्वारा ऐसी वस्तुओं की पहचान की जानी चाहिए जो सार्वजनिक वितरण में गरीबों को अधिक आय-हस्तांतरण मे सहायक हो सकें और अन्य वस्तुएं जो गैर-निर्धनों द्वारा इस्तेमाल की जाती हैं, धीरे-धीरे खुले बाजार में हस्तांतरित कर देनी चाहिए।

3.गरीबों को प्रभावी रूप से आय-हस्तांतरण के लिए अनिवार्य वस्तुओं की जाती कीमत और बाजार कीमत में काफी अन्तर होना चाहिए ताकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की वस्तुओं की खरीदने के लिए गरीब आकर्षित हो सकें।

4.सार्वजनिक वितरण प्रणाली को रोजगार जनन कार्यक्रमों जैसे जवाहर रोजगार योजना या रोजगार आश्वासन योजना के माध्यम से लागू करना चाहिए क्योंकि इन प्रोग्रामों को दोहरे लाभ प्राप्त होते हैं। प्रथम, इनमें गैर-निर्धनों की त्रुटि न्यूनतम हो जाती है क्योंकि ऐसा प्रायः देखा गया है कि गैर-निर्धन सामान्यतः इन रोजगार कार्यक्रमों का लाभ नहीं उठाते। द्वितीय, निर्धनता समाप्ति रोजगार जनन कार्यक्रमों मे क्रय-शक्ति गरीबों को हस्तांतरित करने के अतिरिक्त सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा अतिरिक्त आय भी इन वस्तुओं के माध्यम से लाभप्राप्तकर्ताओं को उपलब्ध करायी जाएगी।

5.पंचायती राज संस्थाओं को अपने लक्षित उद्देश्यों से विकृत होने से रोकने के लिए यह अच्छा होगा कि ऐसी गैर-सरकारी संस्थाओं को जिनका गरीबों की सहाया करने में रिकार्ड सिद्ध हो चुका है, पंचायती राज संस्थाओं के निरीक्षण के साथ जोड़ा जाए।

6.राज्य सरकार को खाद्य-स्टाम्प या प्रमाण-पत्र पंचायती राज संस्थाओं को जारी कर देने चाहिए ताकि वे इनको जवाहर रोजगार प्रोग्राम या रोजगार आश्वासन प्रोग्रम के चालकों को श्रमिकों के लिए सौंप दें।

7.भारतीय खाद्य निगम गरीबों को खाद्य-सुरक्षा उपलब्ध करना का सबसे उचित संस्थान नहीं है। यह कहीं बेहतर होगा यदि भारतीय खाद्य निगम को खाद्य-कीमतों को स्थिर करने की जिम्मेदारी दी जाए और पंचायती राज संस्थाओं को खाद्यान्न के आवंटन का कार्य राज्य सरकारों को सौंप दिया जाए।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सर्वाजनिक वितरण प्रणाली का कार्यक्षेत्र विस्तृत है और इस कारण यह गरीब वर्ग के बड़े भाग को सहायता पहुँचा सकती है, यदि इसे उचित रूप में लक्षित किया जाए। फिर भी वस्तु-स्थिति यह है कि इसका गरीबों को लाभ रक्त-संचारण की भाँति है, जिससे अस्थायी राहत प्राप्त हो सकती है। गरीबों की स्थायी खाद्य-सुरक्षा उपलब्ध कराने के लिए ऐसी रणनीतियों पर बल देना उचित होगा जो गरीबी को कम करें। इस संबंध में तीव्र आर्थिक विकास के साथ अधिक रोजगार जनन का महत्व केन्द्रीय स्थान रखता है। इस बात को आश्वस्त करने के लिए जो गरीबों को आय के रूप में प्राप्त लाभ कीमतों में वृद्धि की परणिामस्वरूप लोप न हो जाएं, यह जरूरी है कि सरकार कीमत-स्थिरीकरण रणनीतियों को अपनाए।

16.4.5 सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा कुल आवंटन एवं कुल निकासी

तालिका-2 सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा कुल आवंटन एवं कुल निकासीलाख टन

वर्ष	आवंटन			निकासी			3, 6 का प्रतिशत
	गेहूँ (1)	चावल (2)	कुल (3)	गेहूँ (4)	चावल (5)	कुल (6)	
1991-92	103	104	217	88	102	190	87.5
1991-92	103	114	217	88	102	190	87
1995-96	113	146	259	53	94	147	57
2000-01	115	163	278	40	79	120	43
2001-02	131	172	303	56	81	138	46
2005-06	167	277	444	61	73	135	30
2006-07	92	263	253	104	212	316	88
2007-08	87	206	293	77	162	239	82
2008-09	110	174	284	93	157	250	88

इसमें दिसम्बर 2002 तक अन्तोदय को भी शामिल किया गया है।

तालिका 5 में दिए गए आंकड़ों से पता चलता है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा कुल आवंटन की राज्यों द्वारा कुल निकासी जो 1991-92 में 88 प्रतिशत थी गिरकर 1990-00 में 70 प्रतिशत हो गयी। परन्तु 20001-01 तक निकासी के अनुपात में भारी गिरावट आयी और यह 43 प्रतिशत के स्तर पर पहुँच गयी। यह 2002-03 में और गिरकर यह 24 प्रतिशत के निम्न स्तर पर पहुंच गयी। लेकिन बाद में 2008-09 में यह बढ़कर पुनः 88 प्रतिशत तक पहुँच गई। यहां पर ध्यान देने योग्य है कि पूर्व की तुलना में सार्वजनिक वितरण के लिये खाद्यान्नों के आवंटन में भारी कमी की गई है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की खरीद में तीव्र उच्चावचन का कारण या तो खुले बाजार की कीमत और जारी कीमत में कम अन्तर है या सरकार द्वारा व्यापारियों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली से कम मात्रा में माल उपलब्ध कराना है या सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रति वचनबद्धता का अभाव है। निर्धन राज्यों अर्थात् बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश एवं समृद्ध राज्यों अर्थात् पंजाब और हरियाणा में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रति वचनबद्धता में कमजोरी के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

16.4.6 सार्वजनिक वितरण प्रणाली और गरीबी रेखा के नीचे वाली जनसंख्या

इस बारे में यह उल्ले ख करना प्रासंगिक होगा कि भारतीय खाद्य निगम अच्छी किस्मों के खाद्यान्नों को खरीद कर इन्हें सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सौंप देता है, परन्तु इसका बहुत बड़ा भाग खुले बाजार में बेच दिया जाता है और उचित मूल्य की दुकानों पर घटिया अनाज राशन कार्डों पर

हाल ही के वर्ष में केन्द्रीय संग्रह से अनाज की निकासी

लाख टन

वर्ष	अनाजों का उत्पादन (1)	सार्वजनिक वितरण प्रणाली एवं अन्य कल्याणकारी योजनाओं के लिए (2)	खुले बाजार में विक्रय केलिए (3)	निर्यात (4)	कुल निकासी (2+3+4)
1999-00	1,964	184	46	-	230
2000-01	1,857	152	15	15	182
2001-02	1,995	210	56	47	313
2002-03	1,636	317	57	124	498
2003-04	1,985	377	13	103	493
2004-05	1,912	310	3	100	508
2005-06	1,603	411	11	-	411
2006-07	2,031	367	12	-	367
2007-08	2,160	374	02	-	370
2008-09	2,192	362	12	-	382

स्रोत: भारत सरकार आर्थिक समीक्षा (2009-10)

उपलब्ध कराया जाता है। बेचारे उपभोक्ताओं को जैसा अनाज इन दुकानों पर उपलब्ध हो, स्वीकार करना पड़ता है। इस कुप्रबन्ध एवं भ्रष्टाचार को दूर करना होगा ताकि गरीबों को इच्छित लाभ प्राप्त हो सके और सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा गरीबी दूर करने के कार्यक्रम में योगदान किया जा सके।

चूंकि गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवारों ने घटिया खाद्यान्नों को ऊंची कीमत पर स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, इसके नतीजे के तौर पर जुलाई 2002 तक सरकार के पास 630 लाख टन खाद्यान्नों का भारी सक इकट्ठा हो गया। इस परिस्थिति से निपटने के लिए सरकार के पास दो विकल्प थे ; या तो वह जारी कीमतों को कम करे ताकि गरीब पविार उचित कीमत की दुकानों से अधिक अनाज खरीदने लगे। इसका अर्थ यह है कि सरकार को साहाय्य के रूप में अधिक भार सहन करना होगा। दूसरा विकल्प यह है कि सरकार चावल और गेहूँ का निर्यात करे।

16.4.7 लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कड़ी आलोचना निम्नलिखित कारणों से हुई।

i. यह गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या को खाद्यान्न उपलब्ध कराने में विफल हुई है,
ii. इसका मुख्य बल नगर क्षेत्रों की ओर रहा है,
iii. जिन गरीब राज्यों में ग्रामीण गरीबों की संख्या बहुत अधिक हैं, इनमें यह राहत नहीं पहुँचा पाई और भारतीय खाद्य निगम द्वारा उचित कीमत की दुकानों को उपलब्ध कराए गए खाद्यान्नों को खुले बाजार में विक्रय और राशन की दुकानों पर घटिया अनाज उपलब्ध कराना इसकी मुख्य कमजोरी रही है।

इसका ध्यान रखते हुए, सरकार ने इस प्रणाली को सुधारने का प्रयास किया और इसके लिए गरीब परिवारों को विशेष कार्ड जारी किए और जून 1997 से इन्हें विशेष रूप में साहाय्यित कीमतों पर खाद्यान्न बेचने शुरु किए। लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के आधीन प्रत्येक परिवर को 10 कि.ग्रा. खाद्यान्न अत्यधिक साहाय्यित दरों पर प्राप्त करने का हक दिया गया।

गरीब परिवारों को लाभ की मात्रा बढ़ाने की दृष्टि से गरीब परिवारों को प्रति मास 20 कि.ग्रा. अनाज 1 अप्रैल 2000 से आर्थिक लागत के 50 प्रतिशत पर उपलब्ध कराना निश्चित किया गया। गरीबी रेखा के ऊपर वाले परिवारों को 10 कि.ग्रा. अनाज की मात्रा जो 1997 में तय की गयी थी 100 प्रतिशत आर्थिक लागत पर ही उपलब्ध करायी जाएगी। इसका मुख्य उद्देश्य साहाय्य को गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले परिवारों की ओर निर्देशित करना था और गरीबी रेखा के ऊपर रहने वाले परिवारों को निरुत्साहित करना था। इसके नतीजे के तौर पर यह आशा की गयी कि 652 लाख गरीब परिवारों को आय-हस्तांतरण होगा।

जुलाई 2001 से, गरीब परिवारों को राशन की मात्रा 20 कि.ग्रा. से बढ़ा कर 25 कि.ग्रा. कर दी गयी। इसके अतिरिक्त अत्यन्त निर्धन परिवारों को अन्तोदय अन्न योजना के आधीन 25 कि.ग्रा. खाद्यान्न अत्यधिक साहाय्यित दर पर - गेहूँ के लिए 2 रुपये प्रति कि.ग्रा. और चावल के लिए 3 रुपये प्रति कि.ग्रा. - सार्वजनिक वितरण प्रणाली से उपलब्ध कराने का निर्णय किया गया।

राजग सरकार के शासनकाल के दौरान, हमारी स्थिति दयनीय थी। 647 लाख टन अनाज से भरे हुए गोदाम थे और दूसरी और लगभग 30 करोड़ व्यक्ति देश मे भूख की विभिन्न अवस्थाओं में जीवन व्यतीत कर रहे थे। बुर्जुग और कमजोर जो ग्राम क्षेत्रों में रहते थे, उनके पास सार्वजनिक वितरण प्रणाली से खाद्यान्न खरीदने की शक्ति नहीं थी। पांचवें वेतन आयोग ने बहुत से राज्यों को पंगू बना दिया था और इनके पास केन्द्रीय गोदामों से मुफ्त प्राप्त होने वाले अनाज के लिए परिवहन लागत देने की भी सामर्थ्य नहीं थी। सरकार की नीति एवं प्रवृत्ति खाद्यान्नों के स्टाक को कम करने के बारे में बिल्कुल सरस थी परन्तु यग निजर्यी थी। चावल के निर्यात के लिए साहाय्य उपलब्ध करना चाहिए और सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए निर्धारित अनाज को सीधे निजी मिल मालिकों एवं व्यापारियों को सौंप देना चाहिए।

तालिका से कुछ बातों का संकेत प्राप्त होता है -

1.अनाजों का उत्पादन (दालों को छोड़कर) अब समतल स्तर पर पहुंच गया है और केवल 2002-03 को छोड़कर यह 1,900 लाख टन के इर्द-गिर्द रहा है। जबकि यह 1,636 लाख टन हो गया था।

2.सरकारी केन्द्रीय संग्रह के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली एवं अन्य कल्याणकारी योजनाओं के लिए निकासी 2003-04 में 377 लाख टन के उच्चतम स्तर पर पहुँच गयी। कृषि तथा खाद्य-नगरपालिका मंत्र्ाालवयों के सरकारी अफसरों ने इस प्रवृत्ति के बारे में सोचा ही नहीं।

3.सरकारी गोदामों से खुले बाजार में विक्रय 2002-03 में 57 लाख टन के अधिकतम स्तर पर पहुँच गया जबकि खराब मौसम के कारण कृषि को काफी बड़ा धक्का लगा।

4.निर्यात जो 2001-02 में 47 लाख टन थे, बढ़ कर 2002-03 में 124 लाख टन के उच्चतम स्तर पर पहुँच गए जबकि हाल ही के वर्षों में 2003-04 में अनाजों का उत्पादन निम्नतम था। परन्तु सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि बाग के दो वर्षों में निर्यात को 100 लाख टन से भी ज्यादा बढ़ने की इजाजत दी गयी।

अतः राजग सरकार ने तीन से चार वर्षों के दौरान खाद्यान्नों के एकत्रित भारी स्टाक को बड़ी बेदर्दी से समाप्त कर दिया। सरकार ने इसके लिए कई बहाने लगाए और यह कहा कि वह अपनी सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए पर्याप्त स्टॉक रखने के लिए वचनबद्ध है ।

जनता और लोकसभा के सदस्य भी कृषि एवं खाद्य मंत्रालय की गतिविधियों से अनभिज्ञ थे। जब भी कभी गेंहूँ और चावल के खुले बाजारों में विक्रय कानूनी एवं गैर-कानूनी और साहाय्यित निर्यात का प्रश्न उठाया जाता तो सरकार ने साधिकार यह कहा कि केन्द्र सरकार के गोदामों में इन दो खाद्यों के पर्याप्त भण्डार उपलब्ध हैं जो समय-समय पर निश्चित बफर स्टाक मानदण्डों से कहीं अधिक हैं। तालिक में दिए गए आंकड़ों से पता चलता है कि इन दो अनाजों के लिए 187 लाख टन का मानदण्ड 2001 के बाद के वर्षों के लिए रखा गया परन्तु 2001 में वास्तविक स्टाक 530 लाख टन था। यह जुलाई 2002 में 640 लाख टन पर भी पहुँच गया। परन्तु अनाजों का स्टाक लगातार गिरता जा रहा था। इसका कारण इस स्टाक का कल्याणकारी योजनाओं और साहाय्यित निर्यात में तेजी से इस्तेमाल था और एक समय ऐसा आया कि यह स्टाक बफर स्टाक मानदण्डों के ही केवल

बराबर हो गया। वास्तव में गेंहूँ में स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी जबकि इसका स्टाक बफर स्टाक मानदण्डों से भी कम हो गया। वर्ष 2005 में यह स्थिति उत्पन्न हो गयी कि गेहूँ का इतना बड़ा अतिरेक दो वर्षों के जादुई ढंग से लोप हो गया। सरकार ने किसानों पर राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष डा. एम.एस. स्वामीनाथन को जून 2005 में भी यह यकीन दिलाया था कि सरकारी गोदामों में गेंहूँ के पर्याप्त स्टाक उपलब्ध हैं। यह निर्लज्जापूर्ण गलत जानकारी थी। यू.पी.ए. सरकार ने भी इस बारे में कोई ध्यान नहीं दिया और वर्ष 2008 में भी खाद्यान्नों का कुल केन्द्रीय स्टाक मात्रा 191 लाख टन ही था।

व्यापारियों और फ्लोर मिलों ने इस स्थिति को भांप लिया और जमाखोरी द्वारा भारी मुनाफा कमाया। सरकार पिछले तीस वर्षों में पहली बार गेंहूँ का आयात करने के लिए मजबूर हो गयी। 2006, में 50 लाख टन गेंहूँ का आयात भारतीय किसानों को दी जाने वाली कीमतों के कहीं ऊँची कीमतों पर किया गया।

प्रश्न उठता है कि भविष्य में क्या होगा? 2004-05 में खाद्यान्न उत्पादन 2,040 लाख टन था जबकि इससे पिछले वर्ष में यह 2,130 लाख टन था। 2005-06 के दौरान में यह फिर कम हो कर 2,083 लाख टन हो गया। खाद्यान्नों का अनतर्राष्ट्रीय उत्पादन और भी गिर रहा है। यदि यह स्थिति बनी रहती है तो गेंहूँ की कीमत और बढ़ जाएगी और इसका आयात ऊँची कीमतों पर करना पड़ेगा। राजग सरकार के विघटन का मुख्य कारण कृषि क्षेत्र को उन्नत करने में इसकी विफलता थी। संप्रग सरकार भी राजग सरकार की भान्ति विनिर्माण, सेवा और वित्तीय क्षेत्र को बढ़ावा दने की राजग सरकार की नीति का अनुसरण कर रही है और कृषि क्षेत्र के महत्त्व और विकास के प्रति केवल शाब्दिक सहानुभूति व्यक्त करती है। इसके ऊपर यह बात है कि संप्रग सरकार को विरासन मं लगभग खाली गोदाम मिले हैं। देश में अनाजों, दालों एवं सब्जियों की कीमतें बढ़ती जा रही हैं और इनमें अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। यह स्थिति लगातार बिगड़ती जा रही है और इसका प्रमाण किसानों की लगातार बढ़ती हुई आत्महत्याएँ हैं और कृषि क्षेत्र की दसवीं योजना के 4 प्रतिशत की लक्षित वृद्धि दर की अपेक्षा वास्तविक वृद्धिदर का गिर कर 1.7 प्रतिशत हो जाना है।

ऐसा प्रतीत होता है कि संप्रग सरकार कृषि में बिगड़ती हुई स्थिति और विशेषकर खाद्य की शोचनीय स्थिति को देखते हुए अब जागी है। इसके लिए स्वामीनाथन आयोग द्वारा सुझाए गए उपायों को उपचार के रूप में इस्तेमाल करने का प्रयास कर रही है।

अर्थात् व्यय का केवल 1.7 प्रतिशत गरीबों के लिए आय-हस्तांतरण ग्राम क्षेत्रों में 2.0 रुपये और शहरी क्षेत्रों में 3.4 रुपये था। अतः खाद्य सहायता द्वारा विषमता को काफी हद तक कम किया जा सका।

16.5 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1 - खाद्य सहायता क्या है?

प्रश्न 2 - लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली लिखिये?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. केन्द्र सरकार द्वारा घोषित नई लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत निर्धनता रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वालों में वितरण हेतु गेहूँ का केन्द्रीय निर्गम मूल्य कितने रुपये प्रति कि.ग्रा. निर्धारित किया गया है

(A) 3-25 रुपये(B) 2 रुपये(C) 1-50 रुपये(D) 4 रुपये Ans. – (B)

16.6 सारांश

सम्पूर्ण इकाई के अध्यनोपरान्त निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वैश्विक स्तर पर खाद्यान्नों की उपलब्धता का खतरा मण्डरा रहा है ऐसी स्थिति में किसानों को उचित कीमत देकर देश में खाद्यान्नों के उत्पादन को बढ़ावा देना चाहिए। इसके साथ ही हमारी विशाल जनसंख्या के लिए उचित मात्रा में तथा उचित मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना होगा इसके लिए आवश्यक है कि सरकार उचित मात्रा में खरीद को बल दे।

16.7 संदर्भ ग्रन्थ

1. Datt and Sundram, R., (2009), India Economy, 61st Edition, Suttam Chand & Sons.
2. Prakash, B.A., (2009), The Indian Economy Since 1991 – Economic Reforms & Performances, Ist edition, Pearson Education.
3. Rudra, Ashok, (1975), Indian Plan Models, Ist edition, Allied Publishers, Bombey.
4. Mishra, S. K., and Puri, V. K., (2007), Problems of Indian Economy, Mimalaya Publishing House.
5. OECD : A preliminary Assessment of the Impact of the Uruguay Round on Developing Countries, Paris. (1994).
6. Govt. of India, Planning Commission, Tenth Five Year Plan, Vol-I
7. Economic Survey, 2008-09.
8. Economic Survey, 2009-10.

16.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि कीमत नीति की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए?
2. ''सार्वजनिक वितरण प्रणाली आम जनतो को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने में समर्थ है'' इस कथन का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 16 - भारतीय कृषिऔर विश्व व्यापार संगठन

इकाई की रूपरेखा

16.0 प्रस्तावना
16.1 उद्देश्य
16.2 विश्व व्यापार संगठन और कृषि पर समझौता प्रावधान
16.2.1 घरेलू समर्थन में कमी
16.2.2 घरेलू बाजार खोलना
16.2.3 स्वच्छता एवं पादप स्वच्छता प्रावधान
16.2.4 व्यापार सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा प्रावधान
16.3 WTO और भारतीय संदर्भ में कृषि पर समझौता प्रावधान
16.4 अभ्यास प्रश्न
16.4.1 लघु उत्तरीय प्रश्न
16.4.2 बहुविकल्पीय प्रश्न
16.5 पाठ सारांश
16.6 संदर्भ ग्रन्थ
16.7 निबन्धात्मक प्रश्न

16.0 प्रस्तावना

यह इकाई तीन भागों में विभक्त की गई है। सर्वप्रथम आप विश्व व्यापार संगठन से जुड़े कुछ तथ्यों को जानेंगे तदुपरांत सदस्य राष्ट्रों के बीच हुए कृषि पर समझौता प्रावधान का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे और अंत में WTO और भारतीय संदर्भ में कृषि पर समझौता प्रावधान की चर्चा होगी।

जैसा कि आप को ज्ञात होगा, उरुगुए दौर की समाप्ति पर सन् 1995 में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई। इस संगठन ने जनवरी 1995 से काम करना शुरु किया। विश्व व्यापाक संगठन एक वैधानिक समझौता है। इसलिए इसके प्रावधानों का अनुपालन सभी पक्षकारों के लिए बाध्यकारी प्रकृति का है। उरुगुए दौर के अधीन, प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी सामान्य समझौते के सभी सदस्य देशों ने प्रशुल्कों में व्यापक कमी करने, मात्रात्मक प्रतिबंधों को समाप्त करने तथा अपनी अर्थव्यवस्थाओं को विदेशी प्रतियोगिता के लिए खोलने के कई समझौतों पर हस्ताक्षर किये।

इस प्रकार विश्व व्यापार संगठन के तत्वावधान में जो नया अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक परिवेश जन्म ले रहा है। इसमे लगभग हर आर्थिक गतिविधियों पर घरेलू संरक्षण व रोक समाप्त हो जाये और विदेशी व्यापार पर सारे प्रतिबंध उठा लिये जायेंगे।

16.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यनोपरांत आप

- विश्व व्यापार संगठन द्वारा कृषि पर हुए समझौता प्रावधान के मुख्य बिन्दुओं अथवा तथ्यों का निरूपण कर सकेंगे।
- ग्रीन बॉक्स, ब्ल्यू बॉक्स तथा स्पेशल एण्ड डिफैन्शल बॉक्स की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- WTO का भारतीय कृषि पर हुए समझौते के मुख्य बिन्दुओं का वर्णन कर सकेंगे।
- WTO और भारतीय कृषि पर हुए समझौते का प्रभाव कितना सकारात्मक और कितना नकारात्मक रहा, इस बात का विश्लेषण कर सकेंगे।

16.2 विश्व व्यापार संगठन और कृषि पर समझौता प्रावधान

विश्व व्यापार संगठन में कृषि पर हुए समझौते का लक्ष्य सदस्य देशों में कृषि व्यापार हेतु समता आधारित सुधार कार्यक्रम अपनाना और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना है।

धरती पर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित किया जाना प्रत्येक विकास प्रारूप की प्राथमिक आवश्यकता है। खाद्य एवं कृषि संगठन ने खाद्य सुरक्षा को सभी के लिए प्रत्येक समय स्वस्थ और क्रियाशील जीवन हेतु पर्याप्त भोजन तक पहुँच के रूप में परिभाषित किया है।

जहाँ तक कृषि पर समझौते का सम्बन्ध है इसमें विशेष तौर पर तीन मुद्दों पर जोर दिया गया –

(1) घरेलू बाजार में प्रवेश आसान बनाना

(2) घरेलू समर्थन को नियंत्रित करना

(3) निर्यात सहायता को कम करना

कृषि सम्बन्धी समझौता प्रावधान के निम्नलिखित प्रमुख पक्ष हैं -

16.2.1 घरेलू समर्थन में कमी

विश्व व्यापक संगठन के समझौते के अनुसार सभी सदस्य देशों को कृषि क्षेत्र में दी जाने वाली समग्र घरेलू सहायता में कमी करना है। यह प्रावधान किया गया है कि आधार वर्ष 1986-88 की तुलना में विकसित देशों के समग्र घरेलू सहायता में 1995-2000 की अवधि में 20 प्रतिशत तथा विकासशील सदस्य देशों को 1995-05 की अवधि में समग्र घरेलू समर्थन में 1.30 प्रतिशत कमी करना है तकि समर्थन की कुल माप (ए.एम.एस.) आधार अवधि 1986-88 के स्तर तक पहुँच सके। विश्व व्यापार संगठन के नियमों के अनुसार कृषि क्षेत्र को दी जाने वाली समग्र घरेलू सहायता की सीमा विकसित देशों के लिए कृषि उत्पादन के मूल्य का 5 प्रतिशत और विकासशील देशों के लिए कृषि उत्पादन के मूल्य का 10 प्रतिशत निर्धारित की गयी है।

जहाँ तक घरेलू समर्थन में कमी का सम्बन्ध है, कृषि पर समझौते मे घरेलू समर्थन को दो भागों मे बांटा गया है - (1) व्यापार को विरूपित करने वाला समर्थन तथा (2) व्यापार को विरूपित न करने वाले या न्यूनतम विरूपित करने वाला ;दवद जतंकम कपेजवदजपदह वत उपदपउंस जतंकम कपेजवतजपदहद्ध समर्थन व्यापार को विरूपित करने वाले घरेलू समर्थन को अम्बर बॉक्स ;।उइंत ठवगद्ध में रखा गया। जहां तक व्यापार को विरूपित न करने वाले घरेली समर्थन का सम्बन्ध है उसे तीन भागों में विभक्त किया गया -

1. ग्रीन बॉक्स

2. ब्ल्यू बॉक्स

3. स्पेशल एण्ड डिफ्रैन्शल बॉक्स

ग्रीन बॉक्स के अधीन वह आर्थिक सहायता रखी गयी जो पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों के तहत दी जाती है। अनुसंधान प्रशिक्षण इत्यादि सेवाओं पर सहायता, बाजार सूचना के लिए सहायता, ग्रामीण आधारिक संरचना के कुिछ रूपों पर सहायता इत्यादि। ग्रीन बॉक्स में शामिल गतिविधियों पर दी जाने वाली सहायता को कम करने की सहायता को कम करने की आवश्यकता नहीं है (अर्थात् यह सहायता कम करने की वचनबद्धता से मुक्त है) और इस प्रकार की सहायता पर कोई अधिकतम सीमा नहीं है।

ब्ल्यू बॉक्स के अधीन वह आर्थिक सहायता रखी गयी है जो किसानों को हानिपूर्ति भुगतान ;क्मपिबपमदबल चूंलउमदजद्ध के रूप में या फिर उत्पादन को सीमित करने के बदले में दी जाती है जैसे - अमेरिका में सरकारी न्यूनतम समर्थन कीमत और बाजार भाव के अन्तर के बराबर 'हानिपूर्ति भुगतान' सीधा किसानों को किया जाता है जबकि यूरोपीय संघ के देशों में किसानों को उत्पादन सीमित करने के बदले सीधी आर्थिक सहायता दी जाती है। ब्ल्यू बॉक्स के अधीन दी जाने वाली सहायता भी कम करने की वचनबद्धता से मुक्त है परन्तु इस प्रकार की सहायता पर अधिकतम सीमा है।

स्पेशल एण्ड डिफ्रैन्शल बॉक्स में विकासशील देशों के गरीब व कम आय वाले उत्पादकों को दी जाने वाली निवेश सहयता तथा कृषि आगतों पर सहायता शामिल की गयी है। व्यापार को विरूपित करने वाले सभी घरेलू समर्थन को अम्बर बॉक्स में रखा गया है। इसका आकलन समर्थन समग्र माप द्वारा करना है और फिर उसे समाप्त करना है। समर्थन के समग्र माप के दो हिस्से हैं -

1. उत्पाद - विशिष्ट समर्थन

2. गैर - उत्पाद विशिष्ट समर्थन

घरेलू समर्थन कीमतों (जैसे भारत में वसूली कीमतों में वाह्य संकेतक कीमतों में अन्तर को समर्थन प्राप्त उत्पादन से गुणा करके उत्पाद - विशिष्ट समर्थन प्राप्त किया जाता है। गैर-उत्पादन विशिष्ट समर्थन के अधीन विभिन्न कृषि आगतों (जैसे उर्वरकों, विजली, सिंचाई, साख इत्यादि) पर जी जाने वाली सहायता को शामिल किया गया।

कृषि पर समझौते में यह व्यवस्था की गयी है कि विकसित देश 6 वर्ष की अवधि में समर्थन के समग्रमाप को 20 प्रतिशत तथा विकासशील देश 10 वर्ष की अवधि में 13 प्रतिशत कम करेंगे। कम करने की वचनवद्धता सम्पूर्ण घरेलू-समर्थन के परिप्रेक्ष्य में ज्ञात करनी है न कि व्यक्तिगत वस्तुओं के संदर्भ में। जिन नीतियों से विकसित देशों में उत्पादन के मूल्य के 5 प्रतिशत के कम तथा विकासशील देशों में उत्पाद के मूल्य के 10 प्रतिशत के कम घरेलू समर्थन प्राप्त होता है उन्हें कम करने की वचनबद्धता से मुक्त रखा गया है। इस प्रकार, जिन नीतियों का उत्पादन पर कोई निरूपण प्रभाव नहीं है (या बहुत कम निरूपण प्रभाव है) उन्हें भी कम करने की वचनबद्धता से मुक्त रखा गया है।

16.2.2 घरेलू बाजार खोलना

बाजार का विस्तार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए आवश्यक है। समझौते में सभी सदस्य देशों को अपने 1986-88 के उपयोग के स्तर के आधार पर खाद्यान्न के कुल घरेलू उपभोग का 03 प्रतिशत भाग विदेशों से आयात करने का प्रावधान किया गया है। यह प्रावधान विश्व व्यापार संगठन लागू होने के वर्ष 1995 के लिए था तथा सन् 2000 में यह बढ़कर 5 प्रतिशत हो गया। यह प्रावधान सभी सदस्य देशों के लिए लागू होगा भले ही वे खाद्यान्नों के संदर्भ में आत्मनिर्भर हों। इसी प्रकार प्रत्येक प्रशुल्क सारणी में प्रशुल्कों में कमी करने का भी प्रावधान किया गया। समझौते में उल्लेख किया गया है कि सभी सदस्य देश अपना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सीमा शुल्क के माध्यम से नियोजित करेंगे और गैर-प्रशुल्कीय प्रतिबंधों को प्रशुल्कीय प्रतिबंधों में परिवर्तित करेंगे।

संक्षेप में यदि कहा जाये तो जहां तक घरेलू बाजार में प्रवेश आसान बनाने का प्रश्न है, 'कृषि पर समझौते' में यह व्यवस्था की गयी है कि जो मौजूदा मात्रात्मक प्रतिबंध व्यापार विरूपित करते हैं, उन्हें समाप्त करना होगा तथा प्रशुल्कों में बदलना होगा ताकि पूर्ववत् संरक्षण प्राप्त होता रहे और बाद में इन प्रशुल्कों को कम करना होगा।

कृषि पर समझौते के अतिरिक्त विश्व व्यापार संगठन के तत्वावधान में लागू किये जाने वाले कुछ अन्य समझौतों का भी कृषि पर प्रत्यक्ष पड़ा। इनमें प्रमुख हैं - स्वच्छता एवं पादप स्वच्छता प्रावधान, व्यापार सम्बन्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकार । इनके अधीन पेटेंट व कॉपीराइट संरक्षण की व्यवस्था है।

16.2.3 स्वच्छता एवं पादप स्वच्छता प्रावधान

स्वच्छता एवं पादप स्वच्छता प्रावधान विश्व व्यापार संगठन का एक प्रमुख बिन्दु है। इस प्रावधान के कारण कृषि वस्तुओं का विदेशी का विदेशी व्यापार प्रकाशित होने लगा है। विश्व व्यापार संगठन का कृषि पर समझौता प्रावधान उन कृषि उत्पादों के निर्यात का निषेध करता है। जो आयातक देश की कृषि, पशु सम्पदा एवं मानव जीवन तथा स्वास्थ्य के लिए हानिकारण हैं। वर्तमान कृषि उत्पाद व्यापार में स्वच्छता एवं पादप स्वच्छता प्रावधान वरीयता के आधार पर प्रयुक्त होने लगा है। विकास क्रय में स्वच्छता एवं उत्पाद गुणवत्ता अधिक प्रभावी तत्व हो जाता है और अपेक्षित भी है। विश्व व्यापार संगठन का स्वच्छता एवं पादप स्वच्छता प्रावधान निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करता है।

- सदस्य देशों में पादक एवं जीव-जन्तुओं के जीवन या स्वास्थ्य को नाशक जीवों बीमारियों, बीमारी वाहक जीवाणुओं या बीमारी उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं से रक्षा करना है।

- सदस्य देशों में मानव एवं पशु जगत के जीवन और स्वास्थ्य की खाद्य, पेय या खाद्य पदार्थों में बीमारी उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं और योगिक प्रदूषकों से उत्पन्न होने वाले जोखिमों से रक्षा करना है।
- सदस्य देशों में मानव जीवन और स्वास्थ्य की बीमारी वहन करने वाले पशुओं, पौधों का पौध उत्पादों से उत्पन्न होने वाली बीमारियों से रक्षा करना है।
- सदस्य देशों के परिक्षेत्र को नाशक जीवों के प्रवेश स्थापना और फैलाव से बचाना या सदस्य देश की सीमा में उससे होने वाली क्षति को कम करना।

16.2.4 व्यापार सम्बन्ध बौद्धिक सम्पदा प्रावधान:

विश्व व्यापार संघठन का बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रावधान ट्रिप्स भी कृषि क्षेत्र के समझौते में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बौद्धिक सम्पदा से आशय सिकी डिजाइन, प्रौद्योगिकी व वस्तु का किसी व्यक्ति व संस्था द्वारा सृजन करना है। यह वस्तुतः मस्तिष्क का सृजन है। बौद्धिक सम्पदा पर अधिकार से आशय बौद्धिक सम्पदा का किसी अन्य के द्वारा प्रयोग किये जाने पर आविष्कारक से स्वीकृति लेने और आविष्कारक को प्रतिफल ले सकने की व्यवस्था से है। स्वत्वाधिकार की व्यवस्था के अनुसार निर्माणकर्ता की अनुमति के बिना न उसे बेचा जा सकता है न ही खरीदा जा सकता है और न ही उसे परिवर्तित या नष्ट किया जा सकता है।

बौद्धिक सम्पदा में कापीराइट, ट्रेडमार्क, भौगोलिक, इन्डिकेशन, ट्रेड सीक्रेट, इन्डस्ट्रियल डिजाइन, इन्टीग्रेटेड सर्किट डिजाइन और पेटेन्ट सम्मिलित हैं। इन सभी में पेटेन्ट का बिन्दु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं विवादास्पद रहा है। विश्व व्यापार संगठन के बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रावधान के अनुसार प्रौद्योगिकी के प्रत्येक क्षेत्र, उत्पाद अथवा प्रक्रिया के अन्वेषण पर पेटेन्ट उपलब्ध होगा, बशर्ते कि वे नये हों, नव्यता हो, उनमें गवेषणात्मक घटक हो या वे औद्योगिक उपयोग हेतु सक्षम हो। विश्व व्यापार संगठन के बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रावधान में यह व्यवस्था की गयी है कि मानव एवं पशुओं के उपचार के लिए निदान शास्त्र चिकित्सा विज्ञान और शल्यक माध्यमों पर तथा सूक्ष्मजीवियों के अतिरिक्त पौधों एवं वनस्पतियों पर पेटेन्ट लागू नहीं होगा।

ट्रिप्स के अंतर्गत सभी आविष्कारों (उत्पाद एवं प्रक्रिया) के लिये 20 वर्षों का संरक्षण दिया जायेगा। विकासशील देशों के 5 वर्षों अर्थात् 1 जनवरी 2000 तक कानून बनाना था। साथ ही विशेष क्षेत्रों यथा दवायें, खाद्य उत्पाद तथा कृषि रसायन के लिए 10 वर्षों में यह प्रणाली लागू करनी थी।

यह भी व्यवस्था है कि गैर-वाणिज्यिक सार्वजनिक उपयोग वाली दवाओं के लिए सरकार अनिवार्य लाइसेंस प्रणाली लागू कर सकेंगी। प्राकृतिक रूप से पैदा न होने वाले जीन्स में पेटेन्ट की आवश्यकता नहीं है। इसीलिए इसमें आयुर्वेदिक दवायें इस कानून में सम्मिलित नहीं हैं। ट्रिप्स के अनुच्छेद-2 में यह व्यवस्था की गयी है कि भारत अपनी जैव विविधता तथा बौद्धिक सम्पदा को

पेटेन्ट कर सकता है और ट्रिप्स से संगत अपना कानून, सूई जेनरिस बना कर उन्हें संरक्षित कर सकता है।

16.3 भारतीय संदर्भ में कृषि पर समझौता प्रावधान

कृषि भारत में एक जीवन दर्शन है, एक समृद्ध परम्परा है। कृषि ने स्वयं देश के आर्थिक व्यवहार, चिन्तन, दृष्टिकोण और संस्कृति को दिशा प्रदान की है।

विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौते के अनुसार सदस्य देशों को अपना कृषि बाजार अन्य देशों के कृषि उत्पादों, प्रौद्योगिकी एवं पूँजी अंतरण के लिए खोलना है। प्रशुल्क और गैर प्रशुल्क प्रतिबंधों को शिथिल और समाप्त करना है। समग्र घरेलू सहायिका में कमी करना है तथा बाजार को प्रतिस्पर्धी बनाना है। कृषि पर समझौता प्रावधान को भारत में पूर्ण निष्ठा और दृढ़ता से लागू किया गया है। तद्नुसार यहां कृषि उत्पादों के आयात पर प्रशुल्क और मात्रात्मक प्रतिबंधों को क्रमशः समाप्त किया जा रहा है। कृषि में विदेशी पूॅजी के अंतरण हेतु अनुकूल दशायें बन रही हैं अन्य देशों से कृषि प्रौद्योगिकी अंतरण बढ़ रहा है। भारतीय संदर्भ कृषि पर समझौता प्रावधान का कुछ सकारात्मक और कुछ नकारात्मक प्रभाव की चर्चा हम निम्न रूपों में कर सकते हैं।

- कृषि आगतों और उत्पादों का बाजार अधिक उदार बनाने के लिए 1970 में भारतीय पेटेन्ट कानून बनाया गया। इसे एक आदर्श पेटेन्ट कानून कहा गया। अंकटाड ने भी इसकी सराहना की थी और अन्य देशों को तद्नुसार अपना पेटेन्ट कानून बनाने की सिफारिश भी की गयी। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में भारतीय पेटेन्ट कानून तीन बार 1999, 2004 और 2004 में संधोशित किया गया। 2004 का संशोधन 1 जनवरी 2005 से प्रभावी हुआ। इससे कृषि आगतों और उत्पादों का बाजार की अधिक उदार हो गया।
- कृषि पर समझौते के अनुसार भारत में आयात होने वाले 825 कृषि उत्पादों से मात्रात्मक प्रतिबंध मुक्त किया जाना था। इस संदर्भ मे 1 अप्रैवल 2001 से 714 वस्तुओं पर से मात्रात्मक प्रतिबंध हटा लिये गये। फरवरी 2002 में गेहूँ, गेंहूँ उत्पाद, मोटे अनाज, मक्खन ओर बासमती चावल और दलहन के निर्यात पर लगे मात्रात्मक प्रतिबंध को समाप्त कर दिया गया।
- कृषि क्षेत्र के लिए भारत में दी जाने वाली सहायता पहल्ो से ही अत्यन्त कम है। भारत में आधार अवधि का ए.एम.एस. ऋणात्मक है। दूसरी और अधिकांश विकसित देशों में ए.एम.एस. का स्तर बहुत ऊंचा है। इससे भारत की बाजार पहुंच बाधित हो रही है। यहां कुल 20 फसल उत्पादों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली हेतु फसलवार सहायता दी जाती है और प्रत्येक के संदर्भ में यह 10 प्रतिशत से कम है।

- समझौते के अनुसार लगभग कम आय और कमजोर साधन आधार वाले कृषकों की दी गयी सहायता 10 प्रतिशत की गणना में सम्मिलित नहीं है। समझौते में 2.5 एकड़ के कम जोत आकार वाले कृषकों को कम आय और कमजोर साधन वाला माना गया है। इस आधार पर भारत में अधिकांश कृषकों को जी गयी सहायिका उपरोक्त 10 प्रतिशत में सम्मिलित नहीं है।
- बाजार उपलब्धता प्रावधान की बाध्यता से उन देशों को मुक्त रखा गया है जिनमें भुगतान संतुलन की समस्या है। भारत को भुगतान संतुलन की समस्या वाले देश के रूप में वर्गीकृत किया गया है। अतः कृषि उत्पादों के बाजार खोलने की बाध्यता से इस समय भारत मुक्त है।
- विकसित देश उच्च सहायिका प्रधान कर कृषि को संरक्षण प्रदान करते हैं। यह आकलन किया गया कि आर्थिक सहयोग संगठन एवं विकास संगठन के देशों द्वारा कृषि के लिये दी जाने वाली सहायिका वर्ष 1988 के 308 बिलियन डॉलर से बढ़कर 1999 में 361 बिलियन डॉलर हो गयी है। समग्र घरेलू सहायता ग्रीन बॉक्स, ब्ल्यू बॉक्स, विशेष एवं विभेद सहायता तथा डी मिनिमिस को सम्मिलित करते हुए कृषि क्षेत्र को दी जाने वाली कुल सहायिका 1998 में कृषि क्षेत्र के कुल घरेलू उत्पाद का यूपोपीय यूनियन में 58 प्रतिशत, जापान में 58 प्रतिशत, यू.एस.ए. में 40 प्रतिशत और कनाडा में 24 प्रतिशत था। इससे पृथक भारत में नाकारात्मक ए.एम.एस. को छोड़कर कृषि को दी जाने वाली कुल सहायिका कृषि क्षेत्र के कुल घरेलू उत्पादन का 9 प्रतिशत है।
- निर्यात सहायिका के प्रावधानों के विपरीत विकसित देश कृषि उपायों पर अधिक निर्यात सहायिका दे रहे हैं। ब्ल्यू बॉक्स सपोर्ट और ग्रीन बॉक्स सपोर्ट के माध्यम से कृषि क्षेत्र को छद्म रूप से उच्च सहायिका प्रदान करते हैं। इस प्रकार की सहायता भारत नहीं दे पाता है। इस कारण भारतीय कृषि उत्पाद अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धी नहीं रह जाते हैं।
- विकसित देश विकासशील देश से आयात के संदर्भ में प्रशुल्क दर ऊंची कर देते हैं। यू.एस.ए., कनाडा, योरोपीय यूनियन, जापान एवं कोरिया में कृषि वस्तुओं पर लगी उच्चतम प्रशुल्क दर ऊंची है। ऊंची प्रशुल्क दरों द्वारा वे अपना बाजार संरक्षित कर लेते हैं। इन देशों की तुलना में भारत में कृषि प्रशुल्क दरें नीची हैं। विकसित देशों की ऊंची प्रशुल्क दरों के कारण भारत का निर्यात अत्यन्त कम रह जाता है।
- कृषि पर समझौता प्रावधान कृषि वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के स्वतंत्र करने और कृषि वस्तुओं के आयात पर लगे मात्रात्मक प्रतिबंधों के समाप्ति की पुष्टि करता है। स्पष्टतः भारत यह चाहता है कि कृषि वस्तुओं के विश्व व्यापार में भारत को अधिक अंश प्राप्त हो। परन्तु भारत की यह आकांक्षा वास्तविकता को प्राप्त नहीं हो पाया।
- कृषि पर समझौता प्रावधान कई रूपों में भारत और इस प्रकार की विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के हितों के प्रतिकूल है। विश्व व्यापार संगठन के कृषि पर समझौता

प्रावधान में कृषि उत्पादों का एक न्यूनतम आयात सुनिश्चित करने की व्यवस्था की गयी है। बाजार उपलब्धता का यह प्रावधान स्वयं द्वारा बहुप्रचारित स्वतंत्र व्यापार की परिकल्पना के विपरीत है।

- कृषि उत्पाद बहुत पहले से भारतीय निर्यात की प्रमुख मदें रही हैं। सामूहिक उत्पाद, चावल, चाय, कॉफी एवं मसाले निर्यात की प्रमुख मदें हैं। हाल के वर्षों में यद्यपि मांस, मांस से बने पदार्थ, फल, सब्जियां, प्रसंस्करित फल और सब्जियों के निर्यात में वृद्धि हुयी है परन्तु कृषि वस्तुओं के विश्व व्यापार में भारत का अंश अभी अत्यन्त भी कम है।
- भारत ने कृषि उत्पादों में प्रशुल्क और गैर-प्रशुल्क प्रतिबन्धों को समाप्त किया और पश्चिमी कृषि प्रौद्योगिकी का अंतरण किया है, परन्तु इसका प्रतिस्पर्धात्मक सामर्थ्य कम है। विकसित देशों में जैव प्रौद्योगिकी जन्य बीजों की उच्च उत्पादन सामर्थ्य होती है। अनाज, दलहन, मूँगफली, कपास आदि से संदर्भ में भारत में प्रति हेक्टर उत्पादन यू.एस.ए. की तुलना में आधे से भी कम है।
- विकसित देशों में आधुनिक कृषि मशीनों का प्रयोग होता है। इनमें उत्पादन लागत में कमी हो जाती है। फलतः अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कीमतों में घटने की प्रवृत्ति है जबकि भारतीय बाजार मे कीमतों के बढ़ने की प्रवृत्ति है क्योंकि आज भी भारत में आधुनिक कृषि यन्त्र का प्रयोग कम है अतः ऐसी दशा में भारत प्रतिस्पर्धी नहीं बन सका है।
- समझौते के अनुसार भारत जैसे विकासशील देशों जिनकी प्रतिव्यक्ति आय 1000 डॉलर से कम है, को उत्पादों पर छूट देने की अनुमति दी गयी है तथा जिनका विश्व व्यापार मे 3.25 प्रतिशत से कम योगदान है उन्हें भी इसमें शामिल किया गया है। इस प्रकार भारत का 22.8 प्रतिशत निर्यात (चावल, चाय, चमड़ा उत्पाद, रत्न एवं आभूषण) इस नियम से प्रभावित होगा।
- आर्थिक सहायिकाओं की संरचना एक और विवादास्पद मुद्दा है। कृषि सम्बन्धी समझौते के अनुसार निर्यात सम्बन्धी आर्थिक सहायताएं, उर्वरक तथा बिजली के लिये दी जा रही आर्थिक सहायताएं, किफायती ब्याज दरें तथा बाजार कीमत समर्थन व्यापार को विकृत करने वाले हैं तथा उनको कम किया जाना है। कृषि संबंधी समझौते के अधीन विभिन्न बॉक्सों में आर्थिक सहायिकाओं की संरचना के बारे में जो उल्लेख किया गया है वह विकसित देशों के पक्ष मे है। उदाहरणार्थ, अमेरिका में अपर्याप्त भुगतान के रूप में किसानों को सीधे किए जाने वाले भुगतानों को व्यापार को अल्पमात्र विकृत करने वाला माना जाता है तथा उसे कम करने की प्रतिबद्धता व्यक्त करना आवश्यक नहीं है, इसके विपरीत भारत में दी जाने वाली निविष्टगत तथा निर्यात सम्बन्धी आर्थिक सहायिकाएं कम किए जाने की वचनबद्धताओं के अधीन है। इसके अतिरिक्त भारत, निविष्टगत सहायिका जैसे उर्वरक पर जी जाने वाली सब्सिडी को धीरे-धीरे कम कर रहा है। हालांकि अमेरिका में फार्म

सुरक्षा और ग्रामीण निवेश अधिनियम 2000 पारित करके फार्म क्षेत्र को अत्यधिक समर्थन प्रदान किया है।

- कतिपय विकसित देश विश्व व्यापार संगठन के स्वच्छता एवं पादप स्वच्छता (एस.पी.एस.) तथा व्यापारगत तकनीकी व्यवधान के प्रावधानों के कार्यान्वयन का प्रयोग विकासशील देशों के व्यापार के प्रति व्यवधान पैदा करने के लिए कर रहे हैं। उदाहरण के लिए के आधिकारिक मानदंडों के अनुसार मूंगफली में अफ्लारोक्सिन का अंश जो 15 अंश प्रति बिलियन तक हो सकता है, का एकपक्षीय अतिक्रमण योरोपीय संघ द्वारा 4 अंश प्रति बिलियन के मानदंड द्वारा हो रहा है। इस प्रकार यद्यपि भारतीय उत्पादन विश्व व्यापार संगठन द्वारा निर्धारित मानदंड़ों के अनुरूप है फिर भी यूरोपीय संघ के मानदण्ड भारतीय मूंगफली के व्यापार के लिए व्यवधान होंगे। इसके अतिरिक्त योरोपीय संघ मानदण्डों के अनुपालन के लिए खतरा विश्लेषण तथा अनिवार्य बिन्दु प्रणाली में बड़े पैमाने पर निवेश करने के लिए बाध्य हो जायेंगे जो अत्यधिक पूँजी प्रधान होगा तथा इसी कारण से विकासशील देशों के कई छोटे निवेशकों का निवारण स्वतः करता है। दोहा घोषणा में विकासशील देशों के लिए विशेष और निभेदक' (एस. एण्ड डी) उपायों का उल्लेख किया गया है जो समझौते का अभिन्न अंग है। भारत विशेष और विभेदात्मक प्रावधानों को सर्वाधिक प्राथमिकता देता है और चाहता है कि स्वच्छता एवं पादप स्वच्छता तथा विशेष सुरक्षा उपायों जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर शीघ्र विचार-विमर्श हो और यह विचार-विमर्श का यह सिलसिला शुरू हो चुका है, क्योंकि यह भारतीय कृषकों के हितों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।
- अभी तक भारतीय कृषक अपनी उपज का प्रयोग बीज के लिए भी करते रहे हैं। समर्थ विविधता बनाये रखने और आवश्यक पूर्ति के लिए परस्पर बीजों का अदल-बदल करते थे। अब पेटेन्ट प्राप्त निगमों से प्रचारित बीजों से तैयार की गयी फसल के उत्पादन का व्यावसायिक आधार पर बीज के रूप में विक्रय पर निषेध की स्थिति आ गयी है। कुछ कम्पनियां इसमें भी आगे बढ़कर कृषि व्यवस्था को सर्वांश में नियंत्रत कर लेना चाहती हैं और वे ऐसे बीज बनाने तक आगे बढ़ गयी हैं जिनें पुर्नअंकुरण की सामर्थ्य न होने से दूसरी बार इनकी बीज के रूप में प्रयोग ही नहीं किया जा सकता है। यह बीज प्रणाली कृषकों को अपने लिए भी बीज रखने से पूर्णतः रोक देगी। ऐसे बीजों के चलन से प्रत्येक वर्ष नवीन बीज खरीदना कृषकों की बाध्यता हो जायेगी। भारत में अभी भी 80 प्रतिशत बीज अपनी फसलों या परस्पर अदल-बदल से प्राप्त होते हैं। इन बीजों के व्यापक चयन से स्वतः बीज रखने या अदल-बदल से बीज प्राप्त करने पर स्वतः रोक हो जायेगी। कुछ समय बाद देशज मूल बीज चलन से हट जाते हैं, जैसा कि हमारी विभिन्न फसलों के हजारों किस्म के बीजों के संदर्भ में हुआ। एक और ऊँची कीमत के साथ निर्वंशी बीजों की नियंत्रित आपूर्ति और दूसरी ओर देशज मूल बीजों का अप्रचलन कृषि प्रणाली में पूर्ण निर्भरता का भय उत्पन्न

करता है। इस स्थिति से बीज सम्पदा करोड़ों किसानों के हाथ से निकलकर निजी सम्पत्ति बनते जा रहे हैं।

- बाजार का खोला जाना सभी देशों के लिए कृषि व्यापार में प्रतिस्पर्धी बाजार सुनिश्चित नहीं करता है। वस्तुतः पैमाने की मितव्यमितायें, विनियोग की अविभाज्यतायें प्रौद्योगिकी अंतराल और राजकीय नीतियों से बाजार की अपूर्णताएं बढ़ती है। इन कारणों के कई प्रसंस्करित उत्पादों के संदर्भ में कतिपय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का वर्चस्व बढ़ रहा है। निगमीय कृषि प्रणाली सामान्य कृषकों और असंगठित उत्पादकों के लिए अस्तित्व की कठिनाई उत्पन्न कर रही है। इससे कृषि उत्पादों में प्रतिस्पर्धी बाजार न बनकर अल्पाधिकारिक बाजार बन रहा है। अल्पाधिकारीय बाजार की प्रभुता सम्पन्न फर्मे उत्पादन लागत से बहुत ऊंची कीमते वसूल रही हैं, जिसका अनुकरण बाजार की अन्य फर्में भी कर रही हैं। इससे अन्तिम उपभोक्ताओं को ऊंची कीमते देनी पड़ रही है और प्राथमिक कृषि उत्पादकों को अत्यन्त नीची कीमतें मिल रही है।
- कई कृषि उत्पादों के संदर्भ में हमारी राष्ट्रीय उत्पादकता विश्व स्तर से कम है विकसित देश कृषि उत्पादों को ऊंची निर्यात सहायिता प्रदान करते हैं। इस कारण भारतीय कृषि उत्पाद लागत और कीमत की दृष्टि से विश्व बाजार में प्रतिस्पर्धी नहीं हो पाते हैं। अतः कृषि व्यापार खुलने के बाद कृषि क्षेत्र के समक्ष गुणवत्ता और उत्पादिता उन्नयन की नयी चुनौतियां उत्पन्न हुयी हैं। अब गांव तक विदेशी कृषि उत्पाद पहुंच रहे हैं और डम्पिंग का भय तो बना ही है।
- कृषि पर समझौते का प्रभाव यद्यपि अभी स्पष्टतः परिलक्षित नहीं हुआ है क्योंकि भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए घरेलू सहायता में कमी, घरेलू बाजार को खोलना जैसी बाध्यतायें अभी लागू नहीं हुयी हैं। कृषि निर्यात सहायिका की कमी से भी भारत का मात्र 22.8 प्रतिशत निर्यात व्यापार ही प्रभावित हो रहा है। परन्तु पेटेन्ट कानून का प्रभाव निकट भविष्य मे भारतीय कृषि पर अवश्य पड़ेगा। इसलिए कृषि क्षेत्र की उत्पादकता बढ़ाने, गुणवत्ता उन्नत करे और लागत घटाने की साथ-साथ उत्पाद विविधीकरण और प्रसंस्करण की आवश्यकता स्पष्ट होती है। भारत इस समझौते में लाभ लेने के लिए स्वच्छता और पौध स्वच्छता के अन्तर्राष्ट्रीय मानको की गुणवत्ता के कृषि उत्पादों का घरेलू आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना होगा। विक्रय योग्य आधिक्य को विश्व बाजार मे प्रतिस्पर्धात्मक कीमतों पर कम परिवहन लागत के साथ निर्यात करना सुनिश्चित करना होगा।

16.4 सम्बन्धित प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1 - निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए -

i. WTO
ii. घरेलू समर्थन
iii. मुक्त व्यापार
iv. भारतीय कृषि और WTO

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. भारत के निर्यात व्यापार में निर्मित सामान का प्रतिशत हाल के वर्षों में रहा -
   (a)75 प्रतिशत से अधिक (b) 70 से 75 प्रतिशत के बीच
   (c) 60 से 70 प्रतिशत के बीच (d) 50 प्रतिशत से कम
2. WTO की स्थापना किस सन् में हुयी -
   (a) 1996 (b) 1999
   (c) 1995 (d) 1997

उत्तर -1- a, 2- c,

16.5 सारांश

इस प्रकार अब तक के अध्ययन के उपरांत आप समझ चुके होंगे कि कृषि पर समझौते पर हस्ताक्षर के बाद कई विकासशील देशों में बहुत उत्साह दिखाई दिया क्योंकि उन्हें आशा थी कि इससे विकसित देशों के बाजार खुलेगे, जिससे उन्हें कृषि वस्तुओं का निर्यात बढ़ाने का मौका मिले गा।

जहां तक भारत का सम्बन्ध है कृषि को सहायता ऋणात्मक ही रही, जबकि विकसित देशों में कृषि को भारी आर्थिक सहायता दी जाती रही है। कृषि पर समझौते के कार्यान्वयन से यह उम्मीद बंधी कि विकसित देशों मे कृषि को घरेलू समर्थन में काफी गिरावट आयेगी जिससे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कृषि वस्तुओं की कीमतें बढ़ेगी। इससे भारत एवं अन्य विकासशील देशों को कृषि वस्तुओं के निर्यात से काफी आय प्राप्त होगी परन्तु वास्तव मे इसका उल्टा हुआ है। WTO की स्थापना के बाद के वर्षों मे कृषि वस्तुओं की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों में तेज गिरावट आयी है। जिससे भारत (व अन्य विकासशील देशों) की कृषि वस्तुओं से निर्यात आय कम हुई है। WTO के सोलह वर्ष पूरे हो चुके हैं और अब भी कृषि पर समझौता प्रावधान एक विवादास्पद मुद्दा बना हुआ है क्योंकि कहीं न कहीं यह प्रतीत होता है कि ये समझौते विकसित देशों के पक्ष में रहे हैं।

16.6 संदर्भ ग्रन्थ

- Datt and Sundram, R., (2009), India Economy, 61st Edition, Suttam Chand & Sons.

- Prakash, B.A., (2009), The Indian Economy Since 1991 – Economic Reforms & Performances, Ist edition, Pearson Education.
- Rudra, Ashok, (1975), Indian Plan Models, Ist edition, Allied Publishers, Bombey.
- Mishra, S. K., and Puri, V. K., (2007), Problems of Indian Economy, Mimalaya Publishing House.
- OECD : A preliminary Assessment of the Impact of the Uruguay Round on Developing Countries, Paris. (1994).
- Govt. of India, Planning Commission, Tenth Five Year Plan, Vol-I

16.7 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 - विश्व व्यापार संगठन का कृषि पर हुए समझौता प्रावधान की विस्तृत व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 2 - विश्व व्यापार संगठन का भारतीय संदर्भ में हुए कृषि समझौता प्रावधान का विवेचनात्मक मूल्यांकन कीजिए?

इकाई 17 - भारतीय कृषि आयकर और कृषि श्रम

इकाई की रूपरेखा

17.0 प्रस्तावना
17.1 उद्देश्य
17.2 कृषि कराधान या कृषि कर
17.2.1 भू-राजस्व
17.2.2 कृषि आयकर
17.2.3 कर भार में अंतक्षेत्रीय असमानता
17.2.4 कृषि अतिरिक्त करारोपण हेतु राज समिति के प्रस्ताव
17.2.5 कृषि जोत कर
17.3 कृषि श्रम
17.3.1 भारत में कृषिश्रम की वर्तमान स्थिति
17.3.2 कृषि श्रम का परिमाण
17.3.3 कृषि श्रमिकों की हीन आर्थित दशा के कारण
17.3.4 कृषि श्रमिकों की दशा सुधारने की लिए सुझाव
17.3.5 कृषि श्रम के सम्बन्ध में सरकार द्वारा किए गये उपाय
17.3.6 कृषि मजदूर और न्यूनतम मजदूरी
17.4 अभ्यास प्रश्न
17.5 सारांश
17.6 संदर्भ ग्रन्थ
17.7 निबन्धात्मक प्रश्न

17.0 प्रस्तावना

आपको यह भली-भाँति ज्ञात है कि कृषि क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। राष्ट्रीय आय संरचना में कृषि क्षेत्र का और कृषि श्रमिकों का महत्वपूर्ण योगदान है। इसी कारण इस इकाई में आप भारतीय कृषि से सम्बन्धित दो महत्वपूर्ण कारणों का अध्ययन करेंगे प्रथम कृषि आयकर इसे हम कृषि कराधान के रूप में भी जानते हैं और द्वितीय कृषि श्रम।

उत्पादक क्षेत्र होने के कारण यह अपेक्षा किया जाना स्वाभाविक है कि कृषि क्षेत्र को आर्थिक विकास की लागत पूरा करने के लिए अतिरेक सृजित कर सहयोग करना चाहिये। प्रमुख रूप से इसी आकांक्षा के आधार पर कृषि कराधान की व्यवस्था है। दूसरी और जहाँ तक कृषि श्रम का प्रश्न है भारतीय अर्थव्यवस्था में आजीविका हेतु कृषि श्रम की प्रधनता होना सामान्य है।

इस इकाई में आप इन्हीं दो विषयों का विस्तारपूर्वक अध्ययन पायेंगे।

17.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यनोपरांत आप:

- कृषि कराधान क्या है तथा यह कितने प्रकार का होता है, इस विषय की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भू-राजस्व और कृषि आय कर में विभेद कर सकेंगे।
- कृषि तथा गैर कृषि क्षेत्र में लगाये गये प्रत्यक्ष करों का विवरण प्राप्त करे करेंगे।
- कृषि जोत कर का पूर्ण रूपेण मूल्यांकन कर सकेंगे।
- कृषि श्रम का अर्थ तथा भारतीय कृषि श्रम परिमाण की व्याख्या कर सकेंगे।
- कृषि श्रमिकों की हीन आर्थिक दशा का कारण जान पायेंगे।
- कृषि श्रमिकों की दशा सुधारने हेतु सरकार द्वारा बनायी गयी नीतियों की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकेंगे।
- कृषि मजदूर और न्यूनतम मजदूरी में सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।

17.2 कृषि कराधान

व्यापक संकल्पना के आधार पर कृषि कराधान से आशय कृषकों द्वारा भुगतान किये जाने वाले प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष करों से है। भूमि राजस्व, अधिभार, भूमि विकास कर एवं कृषि आयकर प्रत्यक्ष कृषि कराधान की श्रेणी में आते हैं। इसके साथ-साथ विभिन्न कृषि आगतों और उत्पादों पर लगाये जाने वाले कर अप्रत्यक्ष करों की श्रेणी में हैं। कृषि क्षेत्र विभिन्न अप्रत्यक्ष करों जैसे

उत्पादन शुल्क, बिक्री कर, सीमा शुल्क, पंजीकरण शुल्क, यातायात कर, सिंचाई शुल्क आदि का भुगतान करता है। इससे केन्द्र और राज्य सरकारें आय प्राप्त करती हैं। यद्यपि इनमें प्रत्येक के पृथक्-पृथक अनुमान कम उपलब्ध हैं तथापि यह स्पष्ट है कि उक्त सभी राजकोष मे योगदान करते हैं।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मेलक का कहना है कि ''आर्थिक विकास की गति बढ़ाने के लिए कृषि कराधान की अत्यन्त प्रमुख भूमिका है, क्योंकि कृषि क्षेत्र पर केवल अनिवार्य उगाही द्वारा ही आर्थिक विकास हेतु बचतों को बढ़ाया जा सकता है।'' इस प्रकार कृषि कराधान आर्थिक विकास हेतु बचतों की आपूर्ति बढ़ाता है। कृषि उत्पादिता और कृषकों की आय बढ़ने के साथ-साथ कर प्रणाली को उससे सम्बद्ध करने की आवश्यकता है। इससे कृषि अतिरेकों को आर्थिक विकास हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है। कृषि क्षेत्र करोरोपण द्वारा अतिरिक्त आय प्राप्त करने का तर्क विभिन्न दृष्टिकोण से युक्ति संगत माना जाता है।

कुछ प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के ऐतिहासिक तथ्य यह संकेत करते हैं कि इनमें भारी भूमिकर और अनिवार्य उगाही द्वारा कृषि अतिरेकों को औद्योगिक विकास के लिये गतिशील बनाया गया। सोवियत रूप, जापान, चीन, मैक्सिको, कोरिया, ताइवान आदि अर्थव्यवस्थाओं में कृषि पर भारी करों द्वारा औद्योगिकरण और समग्र आर्थिक विकास को गति मिलती है।

कृषि पर भारी करारोपण कृषि के व्यवसायीकरण को बढ़ावा देता है। कृषि व्यवसायीकरण को प्रभाव बाजार कीमतों और बाजार की अन्य शक्तियों पर पड़ता है। कृषि करारोपण कृषकों को उन्नत कृषि प्रविधयों की ओर अग्रसर करता है ताकि आर्थिक लाभ कमाया जा सके। इससे अंतक्षेत्रीय आदान-प्रदान बढ़ता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में योजनाकाल में कृषकों की विशेषकर बड़े कृषकों की आय बढ़ी, परन्तु आय बढ़ने के बाद भी कृषकों ने संसाधन एकत्र करने में समान रूप से योगदान नहीं किया। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि योजनाकाल में बड़े कृषक बढ़ी हुई आय से आर्थिक सुविधादायक वस्तुओं के उपयोग में संलग्न हुए। यदि किसी सीमा तक यह माना जाये कि कृषि क्षेत्र के संसाधन का कृषि विकास में ही प्रयोग किया जाये तो भी कृषि क्षेत्र पर अधिक करारोपण की आवश्यकता है।

कृषि करारोपण भारत में राजस्व प्राप्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोत रहा है। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासक भी बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्ति के लिए हुआ। 1948 के बाद भू-राजस्व से सरकारी आय बढ़ गयी। जमींदारी उन्मूलन से लागान को भू-राजस्व में बदल दिया गया।

17.2.1 भू-राजस्व - भू-राजस्व एक प्रत्यक्ष कर है जो भूमि के क्षेत्रफल पर आधारित है। यह जोतों पर प्रति एकड़ एक समान दर से लगाया जाता है, चाहे जोत बड़ी हो या छोटी हो। भू-राजस्व सरकार की आय का प्रमुख स्रोत रहा है। योजनाकाल में भू-राजस्व में लगातार वृद्धि हुई है। 1950-51 से भू-

राजस्व की प्राप्ति का यद्यपि निरपेक्ष स्तर बढ़ा है। परन्तु राज्यों की आय में इसका सापेक्षिक स्तक कम होता गया है। 1950-51 में भू-राजस्व से प्राप्त आय राज्यों की कुल आय का 17 प्रतिशत थी। इसका राज्यों की आय में सापेक्षिक महत्व लगातार कम होता गया। 1984-85 में राज्यों की आय मे भू-राजस्व का अंश घटकर लगभग 2 प्रतिशत हो गया। यही प्रवृत्ति बाद के वर्षों में भी बनी है।

17.2.2 कृषि आयकर - कृषि आय कर कृषि कराधान का दूसरा प्रमुख घटक है। भारतीय आयकर अधिनियम, 1961 के अनुच्छेद 2(IA) में कृषि आय का आशय स्पष्ट किया गया है। इसके अनुसार कृषि आय में 1.भूमि से प्राप्त किराया या लगान, 2. भूमि पर कृषि कराने से प्राप्त आय, 3. भूमि पर उपज को विक्रय योग्य बाने वाली क्रिया से प्राप्त आय, 4. और कृषि के कार्य में आने वाले मकान की आय भी सम्मिलित की जाती है। भारतीय आयकर अधिनियम, 1961 के अनुच्छेद 10(1) के अनुसार कृषि आय केन्द्र सरकार द्वारा लगाये गये आय कर से मुक्त है। परन्तु गैर-कृषि आय पर आयकर निर्धारण के लिये कृषि आय को कुल आय में जोड़ने का प्रावधान राज समिति की सिफारिशों के बाद 1973 से किया गया। परन्तु यहां कृषि आय पर करारोपण नहीं होता। वरन कर योग्य गैर-कृषि आय पर कर की सीमान्त दर मात्रा बढ़ जाती है।

तालिका-1(कृषि कराधान) करोड़ रु. में

वर्ष	भू-राजस्व	कृषि आयकर	योग	राज्यों की आय में कृषि करों का अंश प्रतिशत में
1950-51	48.0	4.0	52.0	18.6
1960-61	97.0	10.4	107.0	17.1
1970-71	113.0	10.0	123.0	5.4
1980-81	146.0	46.0	192.0	2.9
1994-95	1123.6	100.2	1223.8	0.9
1999-2000	1655.0	197.6	1852.6	1.0

कृषि आय पर करारोपण राज्य सरकारों का विषय है। कृषि आय पर कर लगाने का आधिकार राज्य सरकारों को सर्वप्रथम 1935 में दिया गया और बिहार सरकार ने सर्वप्रथम 1938 में कृषि आय पर कर लगाया। भारतीय संविधान के अनुसार कृषि आय पर कर लगाने का अधिकार एकमात्र राज्य सरकारों के पास है। विभिन्न राज्य सरकारें कृषि आय पर कर लगाती हैं. कई राज्यों जैसे - असम, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल में कृषि आय कर लगाया जाता है। कृषि आय कर भी राज्यों द्वारा लगाया और एकत्र किया जाता है।

गैर-कृषि आयकर अर्थात् व्यक्तिगत आय कर और निगम कर की तुलना में कृषि आय कर की प्राप्ति निरपेक्ष वृद्धि हुई है परन्तु इसकी प्राप्तियों का भी राज्यों की कुल कर प्राप्तियों में सापेक्षिक महत्व घटा है। 1950-51 में लगभग 1.0 प्रतिशत था जो 1984-85 में घटकर 0.4 प्रतिशत हो गया। तालिका-1

में भू-राजस्व और कृषि आयकर की विभिन्न वर्षों की प्राप्तियों को दिखाया गया है। अन्य राजकीय करों की आय में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होने के कारण कृषि कराधान से प्राप्त आय का अंश लगातार घटता जा रहा है।

17.2.3 कर भार में अंतक्षेत्रीय असमानता - भारत में कृषि क्षेत्र और गैर-कृषि क्षेत्र के मध्य कर-भार में अत्यधिक विषमता व्याप्त है। कई शोधकताओं ने कृषि क्षेत्र पर कर के निरपेक्ष भार और कर भार की अंतक्षेत्रीय विषमता को मापने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में ई. टी. मैख्यू, वेद पी. गांधी और आई. एस. गुलाटी के निष्कर्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

मैथ्यू के अनुसार 1958-59 में प्रति व्यक्ति कृषि करारोपण का कुल भार रु0 14.52 था जो कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय का 6.8 प्रतिशत है। दूसरी और इसी वर्ष गैर कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति कुल कर भार रु0 46.0 था जौ गैर कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय का 9.2 प्रतिशत है। इसी प्रकार कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति शुद्द कर भार 1958-59 में रु0 6.83 था जो प्रति व्यक्ति आय का 3.2 प्रतिशत था। दूसरी और गैर कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति शुद्ध कर, गैर कृषि क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आय का 7.2 प्रतिशत रहा है। इस आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि भारत के कृषि क्षेत्र पर निरपेक्ष रूप से और सापेक्ष रूप से तथा आर्थिक विकास के लिये अतिरिक्त संसाधन एकत्र करने की दृष्टि से कर भार कम है।

कृषि कराधान के भार और करापात का अधिक व्यापक और स्पष्ट अध्ययन वेद पी. गांधी द्वारा किया गया। उन्होंने कुल कर भार तथा कर की औसत और सीमान्त दरों के आधार पर कर भार की अंतक्षेत्रीय असमानताओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। 1951-52 में प्रत्यक्ष और परोक्ष कृषि करों से 200 करोड़ रूपये प्राप्त हुए जबकि गैर कृषि क्षेत्र से 450 करोड़ रुपये प्राप्त हुए। दोनों क्षेत्रों की कर आय के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृषि क्षेत्र का अंशदान 45 प्रतिशत था। इन करों के रूप में 1968-69 में कृषि क्षेत्र से 900 करोड़ रुपये प्राप्त हुए जबकि गैर कृषि क्षेत्र से 2700 करोड़ रुपये प्राप्त हुये। इस प्रकार कृषि क्षेत्र का सापेक्षिक अंशदान घटकर 33 प्रतिशत हो गया। प्रति व्यक्ति करापात के दृष्टिकोण से 1950-51 में कृषि क्षेत्र और गैर कृषि क्षेत्र में प्रति व्यक्ति पर भार क्रमशः 80 रुपये और 41.8 रुपये था जो 1961-62 में क्रमशः

14.0 रुपये और 75.0 रुपये हो गया। एक अन्य अध्ययन के अनुसार कृषि और गैर कृषि क्षेत्र में 1969-70 में प्रति व्यक्ति करापात क्रमशः 30.0 रुपये और 200.0 रुपये रहा। वेद पी. गांधी ने अपने अध्ययन में क्षेत्रीय असमानताओं को प्रदर्शित करने के लिये सीमान्त कर भार का आकलन किया। सीमान्त कर भार किसी अवधि में अतिरिक्त करों का अतिरिक्त आय से अनुपात प्रदर्शित करता है।

वेद पी. गांधी के अनुसार 1950-51 और 1960-61 की अवधि में कृषि क्षेत्र में 1717 करोड़ रुपये अतिरिक्त आय हुई अतिरिक्त करारोपण 198 करोड़ रुपये रहा। इस प्रकार कृषि क्षेत्र में सीमान्त कर भार 11.5 प्रतिशत था। दूसरी और उक्त अवधि में गैर-कृषि क्षेत्र में 2420 करोड़ रूपये अतिरिक्त

आय हुई जिसमें अतिरिक्त करारोपण 499 करोड़ रुपये थी अर्थात् सीमान्त कर भार 20.6 प्रतिशत था।

इन अध्ययनों से कृषि क्षेत्र पर अपेक्षाकृत कम कर भार की स्थिति स्पष्ट है। भारत सरकार की प्रत्यक्ष कर जाँच समिति ने अंतक्षेत्रीय असमानता को स्पष्ट करते हुए यह विचार प्रकट किया कि यद्यपि कृषि क्षेत्र का राष्ट्रीय आय में योगदान लगभग 50 प्रतिशत है, परन्तु इसके द्वारा 113 करोड़ रुपये की राशि ही करों द्वारा एकत्र की जाती है। इसके विपरीत गैर कृषि क्षेत्र से उक्त धनराशि से लगभग 6 गुना अधिक धनराशि करों से एकत्र की जाती है। प्रत्यक्ष करों द्वारा कृषि आय का 1.0 प्रतिशत से भी कम अंश प्राप्त होता है जबकि गैर कृषि क्षेत्र में यह अंश अधिक है। नगरीय जनसंख्या पर कर का भार तुलनात्मक रूप से अधिक है। यह भार इतना अधिक है कि एक करदाता जिसकी आय 1.0 लाख रुपये वार्षिक है, कर देने के बाद उतनी ही आय बचा पाता है जितनी कि अत्यन्त कम कृषि आय वाला दूसरा व्यक्ति। कर जाँच समिति द्वारा दिये गये आँकड़े नगरीय क्षेत्र में अधिकर कर भार की स्थिति स्पष्ट करते हैं। कृषि तथा गैर कृषि क्षेत्र मे प्रत्यक्ष कर का विवरण निम्नलिखित तालिका-2 में दिया गया है। यह भी एक निश्चित तथ्य है कि नगरीय क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष करों का भार ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक है। उपरोक्त अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि कृषि क्षेत्र के समृद्ध वर्ग पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों का कुल भार गैर कृषि क्षेत्र की तुलना मे अत्यन्त कम है। यद्यपि लघु एवं सीमान्त कृषकों का कर भार सम स्थिति वाले नगरीय श्रमिकों एवं उत्पादकों के मध्य लगभग समान है।

तालिका-2 कृषि तथा गैर कृषि क्षेत्र में प्रत्यक्षकर का विवरण

वर्ष	कृषि क्षेत्र		गैर कृषि क्षेत्र	
	कुल प्रत्यक्ष कर (करोड़ रु. में)	कृषक आय में प्रत्यक्ष कर का प्रतिशत	कुल प्रत्यक्ष कर (करोड़ रु. में)	गैर कृषक आय में प्रत्यक्ष कर का प्रतिशत
1951-52	52.3	1.8	187.2	3.6
1961-62	104.6	1.5	334.9	4.4
1965-66	121.8	1.2	596.3	5.4
1966-67	100.2	0.8	655.1	5.3

कृषि करारोपण का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि आर्थिक विकास के लिये संसाधन संग्रह में कृषि करारोपण का योगदान अत्यन्त कम है। योजनाकाल में भारत में आर्थिक विकास के लिये संसाधन एकत्र करने में केन्द्र और राज्य सरकारों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों से अधिक राशि एकत्र की है। अपेक्षाकृत, अधिक जनसंख्या से कर लेंने के प्रयास किये गये हैं। परन्तु कृषि करारोपण अपर्याप्त, अक्षम और गैर-लोचशील ही बना है। प्रत्येक योजना में किये जाने वाले निवेश से कृषि क्षेत्र में सुधार

हुआ है। संस्थागत और तकनीकी आयामों से कृषि क्षेत्र जीवन-निर्वाह का व्यवसाय न रहकर अब लाभार्जन की स्थिति में आ गया है। संस्थागत साख संस्थाओं की साख सुविधा से नवीन कृषि निवेश कृषि क्षेत्र के लिये सुलभ हो गये। हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन और उत्पादिता बढ़ी है। इसके अतिरिक्त कृषि कीमतों में योजनाकाल में लगातार वृद्धि हुई है। समर्थित कीमतें लगातार बढ़ रही हैं। इससे कृषि उत्पादनों से लाभ होने लगा है। व्यापारिक फसलों के अंतर्गत क्षेत्र और उत्पादन बढ़ने से कृषकों को अधिक लाभ होने लगा है। इसलिये यह अपेक्षा किया जाना उचित ही है कि कृषि क्षेत्र को आर्थिक विकास के लिये अधिक संसाधन प्रदान करना चाहिये।

कृषि क्षेत्र पर गैर कृषि क्षेत्र की तुलना में कर अत्यन्त कम है। सिंचाई, विद्युत, उर्वरक कृषि यंत्र् , पौध संरक्षण, कृषि की सुधरी हुई विधियों आदि पर व्यय होने से कृषकों को अधिक लाभ हुआ है। विशेषकर बड़े कृषकों को अधिक लाभ मिला है। कृषि निवेशों का अधिक लाभ समाज के कमजोर वर्गों, खेतिहर मजदूरों, भूमिहीन मजदूरों, ग्रामीण शिल्पकारों और सीमान्त कृषकों को नहीं प्राप्त होता है। इसलिये ग्रामीण समाज में अंतर्वर्गीय विषमतायें बढ़ी हैं। कृषि विकास के लाभ शुष्क कृषि वाले और अधिक वर्षा वालें क्षेत्रों में अपेक्षाकृत कम प्राप्त हुआ है। अतः सामाजिक न्याय की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि भारत में विकसित कृषि क्षेत्रों और मध्यम तथा बड़ी जोत वालें कृषकों पर अधिक कर लगाया जाए। इस संदर्भ में सबसे सरल उपाय यह है कि भू-राजस्व को जोत आकार से सम्बद्ध करके प्रगतिशील बनाया जाये। इससे अधिक राजस्व प्राप्त होगा और सीमान्त छोटे कृषकों पर कर भार भी कम होगा। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि और सम्बन्धित क्रियाओं पर जो व्यय किया गया, इससे सृजित अवस्थापनागत सुविधाओं का लाभ विशेषकर बड़े कृषकों को मिला है। इसलिये यह न्यायपूर्ण है कि उन पर प्रगतिशील भूमि कर लगाया जाए।

17.2.4 कृषि पर अतिरिक्त करारोपण हेतु राज समिति के प्रस्ताव

कृषि क्षेत्र पर अतिरिक्त करारोपण की संभावना का पता लगाने और उसकी क्रियाविधि निशिचत करने के लिए केन्द्र सरकार ने फरवरी, 1972 में डा. के. एन. राज की अध्यक्षता में एक समिति गठित किया। कृषि आय एवं धन के करारोपण पर गठित इस समिति ने अक्टूबर, 1972 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत किया। समिति ने कृषि आय एवं धन के करारोपण के सन्दर्भ में मुख्य रूप से 5 सिफारिशें की। प्रथम, जिन कृषकों के पास आकलन योग्य कोई अन्य आय नहीं है उन पर प्रगतिशील जोतकर लगाया जाना चाहिए। द्वितीय, यदि कृषक के पास गैर-कृषि कर योग्य आय है तो आय की गणना करते समय कुल आय में कृषि आय को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। तृतीय, पशुपालन, मत्स्य पालन, मुर्गीपालन, डेयरी आदि की आयों पर भी कर लगाया जाना चाहिए। चतुर्थ, कृषि सम्पत्ति पर कर लगाया जाना चाहिए और पाँचवा कृषि भूमि के हस्तांतरण पर पूँजी लाभ कर लगाया जाना चाहिए।

17.2.5 कृषि जोत कर

राज समिति ने अपने विश्लेषण में भू-राजस्व के संदर्भ में दो विसंगतियों का उल्लेख किया। प्रथम, यह कि देश के विभिन्न भागों मे भू-राजस्व की दर कृषि उत्पादिता की दृष्टि से असमान है और द्वितीय, यह कि भू-राजस्व का निर्धरण निश्चित दर पर होता, अतः इसमें प्रगतिशीलता का तत्व नहीं है। इन विसंगतियों को ध्यान में रखते हुए राज समिति ने कृषि जोत कर का सुझाव दिया। कृषि जोतकर कृषि जोत के शुद्ध निर्धार्य मूल्य पर एक कर है। वस्तुतः यह शुद्ध कृषि आय पर कर है।

कृषि जोत कर के आकलन हेतु राज समिति ने यह सुझाव किया कि भूमि और जलवायु की समरूपता के आधार पर देश का विभिन्न सक्षम क्षेत्रों में विभाजन किया जाना चाहिए। पिछले 10 वर्षों के विभिन्न किस्म की फसलों के प्रति हेक्टर औसत उत्पादन के आधार पर विभिन्न फसलों का प्रति हेक्टर औसत उत्पादन ज्ञात किया जाना चाहिए तथा विगत तीन वर्षों की फसल कीमत का औसत आधार पर समग्र उत्पादन का मूल्यांकन किया जा सकता है। इससे विभिन्न फसलों के समग्र उत्पादन का मूल्यांकन किया जा सकता है। इससे विभिन्न फलसों के समग्र उत्पादन का कुल मूल्य ज्ञात हो जायेगा। कृषि के कुल उत्पादन मूल्य मे से सिंचाई और पूँजी क्षय की लागतों को छोड़कर भुगतान की गयी अन्य लागतों को घटा दिया जाता है। राज कमेटी के प्रस्ताव में भुगतान की हुयी लागतों को समग्र उत्पादन मूल्य की 40 से 60 प्रतिशत तक माना गया है। समग्र कृषि आय में से भुगतान की हुयी लागतों को घटाने के बाद प्रत्येक क्षेत्र के लिए प्रति हेक्टर कर योग्य आय प्राप्त हो जायेगी। कर योग्य आय में से राज समिति ने सिंचाई व्यय को घटाने का सुझव दिया। सिंचाई व्यय को घटाने की प्रक्रिया के सन्दर्भ में राज समिति ने सुझाव दिया कि यदि सिंचाई राजकीय स्रोत से हो रही है तो इसके लिए किये गये वास्तविक भुगतान को घटाना चाहिए। यदि सिंचाई निजी स्रोत से की जा रही है तो कुल निर्धार्य मूल्य का 20 प्रतिशत सिंचाई व्यय के लिए घटाया जाना चाहिए। समग्र उत्पादन मूल्य से भुगतान की हुयी लागतें और सिंचाई व्यय घटाने के बाद शेष बची राशि को समग्र निर्धार्य मूल्य कहा जाता है। पुनः राज समिति का सुझाव खा कि समग्र निर्धार्य मूल्य मे से प्रत्येक जोत के लिए 1000 या समग्र निर्धार्य मूल्य का 20 प्रतिशत विकास छूट के रूप में घटाया जाना चाहिए। समग्र निर्धार्य मूल्य में से विकास छूट घटाने के बाद बची शेष राशि को शुद्ध निर्धार्य मूल्य कहा जाता है। राज समिति ने कृषि जोत कर की गणना के लिए निम्नलिखित प्रारूप प्रस्तुत किया।

$$\text{कृषि जोत कर} = \frac{X}{2} \times \text{जोत के शुद्ध निर्धार्य मूल्य का प्रतिशत}$$

यहाँ, X = हजार रुपये की संख्या

शुद्ध निर्धार्य आय = कुल निर्धार्य आय - विकास शुल्क

कृषि जोतकर की गणना के लिए जो समिति ने उक्त प्रारूप के आधार पर निम्नलिखित उदाहरण दिया। माना जोत का निर्धार्य मूल्य 10,000 रुपये और विकास छूट 1000 रुपये हैं। इस आधार पर कृषि जोत कर की गणना की निम्नवत् की जा सकती है।

समग्र निर्धार्य आय = 10,000 रुपये
विकास छूट = 1000 रुपये
शुद्ध निर्धार्य आय = 9000 रुपये
X = 9

अब, कृषि जोत कर $= \frac{X}{2} \times \% \times 9000$

$= \frac{9}{2} \times \frac{1}{100} \times 9000 =$ 405 रुपये

कृषि जोत कर के संदर्भ में राज समिति ने सुझाव दिया कि इसे दो चरणों में लगाया जाना चाहिए। प्रथम चरण उन जोतों का भू-राजस्व समाप्त किया जाना चाहिए जिन पर शुद्ध निर्धार्य मूल्य 5000 रुपये से अधिक नहीं हो। द्वितीय चरण में 5000 रु. से कम निर्धार्य मूल्य वाली जोतों पर भू-राजस्व समाप्त करना चाहिए।

17.3 कृषि श्रम

जैसा कि आप सभी को ज्ञात है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें समस्त कार्यकारी जनसंक्या के 68 प्रतिशत लोगों को रोजगार मिलता है और जो देश की कुल राष्ट्रीय आय में लगभग 32 प्रतिशत योगदान करती है। कृषि देश की समस्त जनसंख्या की खाद्यान्न पूर्ति का मुख्य स्रोत है, साथ ही साथ यह उद्योगों के लिए आधारित कच्चे माल की पूर्ति भी करती है। यह कृषि श्रमिकों की समस्याओं और उनके सम्भव निराकरण का अध्ययन विकसित और विकासशील दोनों ही अर्थव्यवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण है। भारत जैसे देश मे यह अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यहां कृषि-उत्पाद की तकनीक मुख्यतः श्रम प्रधान है।

कृषि श्रमिकों से आशय उन ग्रामीण मजदूरों से है जो कृषि कार्य में मजदूरी पर लगे हैं। ग्रामीण जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग होने के कारण कृषि श्रमजीवी जनसंख्या की रोजगार परिस्थितियाँ कृषि विकास की गति को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं।

17.3.1 भारत में कृषि श्रम की वर्तमान स्थिति

भारत में कृषि श्रम जोकि मुख्यतः आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों द्वारा उपलब्ध कराया जाता है, को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

i. जमींदारी से बंधे हुए भूमिहीन श्रमिक

ii. व्यक्तिगत रूप में स्वतंत्र, किन्तु पूर्णतः औरों के लिए काम करने वाले भूमिहीन श्रमिक
iii. छोटे किसान जिनके आधीन अत्यन्त छोट-छोटे खेत हैं, वे अपना अधिकांश समय औरों के लिए काम करने में लगाते हैं।
iv. वे किसान जो आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त जोतों के स्वामी हैं किन्तु जिनके एक-दो बच्चे या आश्रित अन्य समृद्ध किसानों के यहां काम करते हैं।

17.3.2 कृषि श्रम का परिमाण - कृषि श्रमिकों की संख्या, आय और जीवन मान आदि के विषय में सही-सही आंकड़ें उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु समितियों और आयोगों की रिपोर्टों के रूप में थोड़ी बहुत जानकारी उपलब्ध है। 1960 में प्रकाशित कृषि श्रम जाँच की रिपोर्ट के अनुसार कुल ग्राम परिवारों में कृषि श्रमिक परिवार लगभग 25 प्रतिशत थे। इस जाँच के अनुसार ग्राम श्रमिकों में से 85 प्रतिशत अनियत श्रमिक थे, जो किसी भी किसान के यहां काम कर सकते थे। केवल 15 प्रतिशत श्रमिक विशेष भू-स्वामियों के यहां नियत श्रमिक के रूप में काम करते थे। आधे से अधिक श्रमिकों के पास बहुत थोड़ी सी भूमि थी। ऐसे श्रमिकों की संख्या वस्तुतः बहुत कम थी जिनके पास आर्थिक दृष्टि से लाभकर जोत थी, पर जो श्रम के फालतू होने के कारण दूसरे लोगों के यहाँ काम करते थे।

कृषि मजदूरों की भारी संख्या अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं अन्य पिछड़े वर्गों से है। एक अनुमान के अनुसार कुल कृषि-मजदूरों का 75 से 80 प्रतिशत अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित है। ग्रामीण श्रम के राष्ट्रीय आयोग (1991) के अनुसार 1987-88 के दौरान कुल 1.084 लाख ग्राम परिवारों में 430 लाख परिवार ग्रामीण-श्रम-परिवार थे और इनमें 333 लाख परिवार कृषि-श्रम-परिवार थे। सापेक्ष रूप में, कुल ग्रामीण परिवारों में ग्रामीण-श्रम-परिवारों का अनुपात 39.7 प्रतिशत और कृषि-श्रम-परिवारों का 30.7 प्रतिशत था। इसका अर्थ यह हुआ कि कृषि-श्रम-परिवारों की मात्रा 1987-88 में कुल ग्रामीण श्रम परिवारों के 77 प्रतिशत के बराबर थी।

1981 की जनगणना के आँकड़ों से पता चलता है कि कृषि-श्रमिकों की संख्या 644 लाख है। देश में कुल श्रमिकों (मुख्य एवं सीमान्त) की संख्या 2.246 लाख थी और इस प्रकार कृषि श्रमिक कुल श्रम-शक्ति का 26.3 प्रतिशत थे। 1961 मे कृषि-श्रमिकों की संख्या केवल 310 लाख थी। इससे जाहिर है कि कृषि श्रमिकों की तीव्र वृद्धि हुई है। ग्रामीण श्रम पर राष्ट्रीय आयोग ने उल्लेख किया है: ''सत्तर और अस्सी के दशकों के दौरान, ग्रामीण जनसंख्या में 2 प्रतिशत और 1.5 प्रतिशत की क्रमशः वृद्धि हुई है। किन्तु तद्रूरूप दशकों में कृषि-श्रमिकों की संख्या में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुई जो क्रमशः 4.1 प्रतिशत और 3.0 प्रतिशत प्रति वर्ष थी।''

सांतवीं ग्रामीण श्रम जाँच (1999-00) के अनुसार, पुरुष एवं स्त्रियों के लिए औसत भृति-रोजगार 222 दिन और 192 दिन प्रति वर्ष था। यह 1993-94 के दौरान औसत 235 दिन और 203 दिनों के

क्रमशः पुरुषों एवं स्त्रियों के लिए उपलब्ध भृति रोजगार से कम है। इससे साफ जाहिर है कि भृति-रोजगार के दिनों की संख्या में गिरावट आयी है।

यह भी देखा गया है कि कुल श्रम-शक्ति मे भृति-श्रम का अनुपात जो 1972-73 में 34.1 प्रतिशत था बढ़कर 1987-88 के दौरान 41.4 प्रतिशत हो गया। इसी अवधि के दौरान, कुल भृति-श्रम में अनियत भृत्ति-श्रम का अनुपात जो 1972-73 में 64.8 प्रतिशत था बढ़कर 1987-88 में 75.8 प्रतिशत हो गया। कृषि श्रम के अनियतीकरण की बढ़ती हुई प्रवृत्ति की व्याख्या करते हुए, ग्रामीण श्रम पर राष्ट्रीय आयोग ने साफ शब्दों में उल्लेख किया है: ''कृषि में तकनालाजीय परिवर्तन, छोटे किसानों का सीमान्तीकरण , पारम्परिक कुटीर उद्योगों की समाप्ति, स्फीति आदि कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण कारण तत्त्व हैं जो देश के विभिन्न क्षेत्रों मे अलग-अलग रूप में क्रियाशील हो रहे हैं और इनके परिणामस्वरूप कृषि-श्रमिकों की संख्या बदस्तूर बढ़ती जा रही है।"

भारत की जनगणना (1991) द्वारा उपलब्ध कराए गये आँकड़ों के अनुसार, कृषि-श्रमिकों की संख्यो जो 1951 में 275 लाख थी बढ़कर 1991 में 746 लाख हो गयी अर्थात् 40 वर्षों की अवधि में इसमें 171 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसी दौरान कृषि में लगे हुए कुल कामगारों (काश्तकार जमा कृषि-श्रमिक) की संख्या 1951 में 972 लाख से बढ़कर 191 में 1,853 लाख हो गयी अर्थात् 40 वर्षों मं लगभग 91 प्रतिशत की वृद्धि। इससे ग्रामीण श्रम पर राष्ट्रीय आयोग के इस विचार की पुष्टि हो जाती है कि हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप छोटे किसानों के सीमान्तीकरण और मुजारों की बेदखलियों के नतीजे के तौर पर भूमिहीन कृषि-श्रमिकों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई है। इस बात का ध्यान रखना होगा कि जनगणना के आँकड़ें मुख्य कामगारों तक सीमित हैं और इनमें अनियत श्रमिक शामिल नहीं किए गए। परिणामतः कृषि कामगारों में कृषि-श्रमिकों का अनुपात जो 1951 में 28.3 प्रतिशत था बढ़कर 1991 में 40.3 प्रतिशत हो गया।

भू वितरण के औपचारिक आँकड़ों से पता चलता है कि ग्रामीण परिवरों के पास या तो भूमि है ही नहीं या उनके पास एक हेक्टेयर के कम भूमि के अलाभकार टुकड़े हैं। कुल मिलाकर 16 प्रतिशत परिवारों के पास कृषि-आधीन क्षेत्रफल के केवल 8 प्रतिशत है। इनमें 22 प्रतिशत परिवार ऐसे हैं जिनके पास कोई भूमि नहीं है। अन्य 25 प्रतिशत के पास आधे हेक्टेअर (या 1.2 एकड़) के कम भूमि है। अतः ये सीमान्त किसान भूमिहीन किसानों की फोज में भर्ती होते चले जाते हैं। चूँकि ये निर्धनता रेखा की सीमा पर रहते हैं, ये धीरे-धीरे इसके नीचे खिसकते जाते हैं।

17.3.3 कृषि श्रमिकों की हीन आर्थिक दशा के कारण

कृषि श्रमिकों की दयनीय आर्थिक स्थिति के अनेक कारण हैं। उनकी कम मजदूरी और हीन आर्थिक स्थिति के कारणों में प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं -

(1) निम्न सामाजिक स्थिति - अधिकांश कृषि-श्रमिक युग-युग से उपेक्षित एवं दलित जातियों के सदस्य हैं। निम्न और दलित जातियों के लोग सामाजिक दृष्टि से बंधे एवं घुटे हुए हैं। इमने कभी भी दबंग बनने का साहस नहीं रहा। उनकी स्थिति निरीह-मूक पशुओं की सी रही है।

(2) असंगठित - कृषि श्रमिक अनपढ़ और अजागरूक हैं। वे गाँवों में बिखरे हुए असंगठित हुए असंगठित रूप से रहते हैं। वे अपने को संघों के रूप में संगठित नहीं कर पाए हैं। इनके विपरीत शहरों में श्रमिक अपने को संगठित करने में सफल हो सके हैं। नगरों में राजनीतिक दल भी श्रम-संघों ;संइवनत नदपवदेद्ध की गतिविधियों में रुचि लेते हैं। कृषि-श्रमिक इस लाभ से सर्वधा वंचित हैं, फलतः वे मदजूरी के सवाल को लेकर जमींदारों से सौदेबाजी नहीं कर सकते।

(3) मौसमी रोजगार - कृषि श्रमिक को सारा वर्ष लगातार काम नहीं मिल पाता। सातवें कृषि-श्रम की जाँच (1990-00) के अनुमान के अनुसार कृषि श्रमिक को वर्ष भर में केवल 222 दिन ही काम मिलता है और शेष समय बह बेकार रहता है। ग्राम क्षेत्रों में अल्प रोजगार ;न्दकमत.मउचसवलउमदजद्ध के अलावा बेकारी भी है। अल्परोजगार एवं बेकारी दनों भारतीय कृषि-श्रमिक की कम आय और हीन आर्थिक स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं।

(4) कृषि-भिन्न व्यवसायों की कमी - ग्रामों में कृषि भिन्न व्यवसायों की कमी भी कृषि-श्रमिकों की कम मजदूरी और हीन आर्थिक दशा के लिए जिम्मेदार है। ग्रामों में आबादी की निरन्तर वृद्धि के कारण भूमिहीन श्रमिकों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। किन्तु दूसरी और खेती-भिन्न काम-धन्धों की कमी तथा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में न आने-जाने के कारण जमीन पर आबादी का दबाब और भी अधिक होता जा रहा है।

(5) ग्राम-ऋणग्रस्ता ;त्नतंस प्दकमइजमकद्ध - कृषि श्रमिक बुरी तरह ऋण ग्रस्त हैं। साधारणतया, ये श्रमिक अपने भू-स्वामियों से ही ऋण लेते हैं इन्हें कम मजदूरी करने पर बाध्य होना पड़ता है। चूँकि उनके पास रेहन रखने के लिए कुछ भी नहीं होता, वे अपने आपको ही महाजनों और समृद्ध जमींदारों के पास रेहन रख देते हैं और बन्धुआ मजदूर बन जाते हैं।

17.3.4 कृषि श्रमिकों की दशा सुधारने के के लिए सुझाव

कृषि-श्रमिकों की दशा में सुधार करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं-

(1) कृषि दासता समाप्त करना - कृषि दासता जोकि भारत मे बहुत से भागों में विद्यमान है, समाप्त की जानी चाहिए। वस्तुतः भारत के संविधान में तो सभी प्रकार की दास-प्रथा का निषेध किया गया है। किन्तु शताब्दियों से चलती आ रही दासता आसानी से नहीं मिटाई जा सकती। इसका कारण यह है कि भारत के कृषि अनपढ़ और निस्सहाय हैं। दास-प्रथा की समाप्ति के उपायों में ग्राम-जनता का शिक्षण और उसे अपेक्षाकृत उन्नत अवसर उपलब्ध कराना मुख्य है।

(2) कृषि क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी नियमों को उचित ढंग से लागू करना - पंजाब, हरियाणा और केरल को छोड़कर देश के शेष भागों में कषि-श्रमिकों को बहुत कम मजदूरी मिलती है। उनकी

मजदूरी बढ़ाना नितान्त आवश्यक है क्योंकि बिना इसके उनकी आर्थिक दशा सुधारी नहीं जा सकती। न्यूनतम मजदूरी कानून बना देना भर पर्याप्त नहीं, उसे लागू करने के उपाय किए जाने चाहिए।

(3) भूमिहीन कृषि-श्रमिकों को पुनः बसाना - कृषि-दासता की दशा सुधारने के लिए भूमिहीन कृषि श्रमिकों को भूमि देना आवश्यक है। इसके अनेक ढ़ंग हो सकते हैं, जिनमें एक यह है कि नई सुधरी भूमि केवल इन्हें बाँट दी जाए। दूसरा उपाय यह है कि विद्यमान भूमि को ही सब लोगों में फिर बाँट दिया जाए। ऐसा स्वेच्छा से भी हो सकता है और अनिवार्य भी। भूदान आन्दोलन का उद्देश्य भूपतियों से भूमिहीनों को स्वैच्छिक रूप में जमीन दिलाना था।

(4) कृषि में सुधार - भारतीय कृषि के मौसमी स्वरूप के कारण कृषि-श्रमिकों को पूर्वकालिक रोजगार नहीं मिल पाता। कृषि कार्य बढ़ाने के लिए सघन खेती ;प्दजमदेपअम बनसजपअंजपवदद्ध और सिंचाई के विस्तार दोनों की अत्यन्त आवश्यता है। इन उपायों से दोहरी फसल होने लगेगी, जिससे श्रमिक को वर्ष भर कार्य मिल सकेगा इसके अतिरिक्त, श्रमिक की उत्पादिता में भी वृद्धि होगी, जिससे उसकी मजदूरी भी बढ़ेगी।

(5) सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम - ग्राम श्रमिकों को काम दिलाने और ग्रम-श्रम का पूरा-पूरा उपयोग करने के उपायों से बढ़िया उपाय सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम है। सरकार गाँवों में अपनी परियोजनाएँ इस ढंग से अमल मे ला सकती है कि रीते मौसम (off-season) मे खाली श्रमिकों को काम मिल सकेष सड़के बनाना, तालाबों तथा नहरों की खुदाई और उन्हें गहरा करना, जल-संग्रहन वनारोपण आदि ऐसी परियोजनाएं हैं।

(6) कृषि-श्रमिकों के किसान संघ संगठित करना - जहाँ कहीं भी कृषि श्रमिकों को किसान संघों के रूप में संगठित कर लिया गया, वहाँ उनकी मजदूरी सुरक्षित का जा सकी है और उन्हें शक्तिशाली जमीदारों एवं महाजनों के शोषण से बचाया जा सका। अतः आवश्यकता इस बात की है कि फार्म-श्रमिकों के संगठन पर बल दिया जाए और सरकार को ऐसे श्रम-संघों की स्थापना में सक्रिय कार्यभाग निभाना चाहिए।

17.3.5 कृषि श्रम से सम्बन्ध में सरकार द्वारा किये गये उपाय -

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् केन्द्र तथा राज्य सरकारें दोनों ने ही कृषि श्रमिकों की दशा उन्नत करने के विषय में प्रसंसनीय कार्य किया है। कृषि श्रमिक की मजदूरी बढ़ाने के विषय में कुछ उपाय किए गए हैं, जिनमें मुख्य ये हैं -

(1) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम - 1948 में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम बनाया गया था। इस अधिनियम के आधीन प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा तीन वर्षो में कृषि श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी स्थानीय लागत ;सवबंस बवेजद्ध और जीवन -मान को ध्यान में रखकर नियत की जाती है। चूँकि

देश के अलग-अलग भागों मं स्थिति अलग-अलग है और विधान के अनुसार एक राज्य में मजदूरी दरें अलग-अलग निश्चित की गई हैं। बहुत से राज्यों में मजदूरी की न्यूनतम दर चालू दरों के भी कम नियत की गई है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम व्यवहार में कृषि-श्रमिकों की मजदूरी बढ़ाने मे सफल नहीं हो सका।

(2) अन्य वैधानिक उपाय - विधान बनाकर जमींदारी प्रथा सभी राज्यों में समाप्त कर दी गई। इससे सम्बद्ध सभी प्रकार का शोषण भी देश भर मे मिट गया है। इसके अतिरिक्त काश्तकारों और जमदूरों के हितों की रक्षा करने तथा जिस जमीन पर वे खेती करते हैं, इसे प्राप्त करने में उसकी मदद करने के लिए बहुत से राज्यों में काश्तकारी कानून बना दिए गए हैं।

(3) श्रम सहकारी समितियों ;संइवनत बव.वचमतंजपअमेद्ध का संगठन - दूसरी योजना में श्रम सहकारी सेवा सहकारों के निर्माण को प्रोत्सहान देने का प्रयत्न किया गया था. इन सहकारों के सदस्य जो कि श्रमिक होते हैं, सड़के बनाने, नहरें और तालाब खोदने तथा जंगल लगाने आदि सरकारी कामों का ठेका लेते हैं। ये सहकार रीते मौसम (off-season) में कृषि श्रमिकों को रोजगार प्रदान करते हैं तथा निजी ठेकेदारों के शोषण से उनकी रक्षा कर सकते हैं।

(4) रोजगार गारन्टी योजना - महाराष्ट्र सरकार ने रोजगार गारण्टी योजना चालू की जिसके आधीन कोई काम करने योग्य व्यक्ति अपने जिले के जिलाधीश या उसके द्वारा अधिकृत किसी छोटे अफसर को रोजगार के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकता है। इस योजना के अनुसार सरकार को प्रार्थी को उसके निवास स्थान के 5 किलोमीटर के बीच रोजगार उपलब्ध कराना होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार को विभिन्न सार्वजनिक निर्माण प्रोग्राम सम्बन्धी योजनाएँ (अर्थात् सिंचाई, सड़क निर्माण आदि) तैयार रखनी होंगी। इनमें मजदूरी की दर ऐसी नहीं होगी जिससे कृषि क्रियाओं में सामान्य रोजगार प्राप्त श्रमिक आकर्षित हो सकें। यह सभी व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने का अभिनन्दनीय कदम है।

महाराष्ट्र की सरकार द्वारा सुझाये गए उपाय का अनुकरण करते हुए केन्द्र सरकार ने 2005 में रोजगार गारंटी कानून बनाया है। इसके आधीन प्रत्येक ग्रामीण बेरोजगार परिवार को 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराने का वचन दिया गया है। केन्द्रीय स्तर पर यह एक अद्वितीय कदम है। राज्य सरकारों को इस कानून को लागू करने का निर्देश दिया गया है। इस पर व्यय की 90 प्रतिशत राशि केन्द्र सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जायेगी। राज्य सरकारें किस हद तक इस कानून के आधार पर गारंटीकृत रोजगार उपलब्ध कराती हैं। यह कार्यान्वयन की सफलता पर निर्भर करेगा।

(5) बन्धुआ श्रम का उन्मूलन - भारतीय संविधान में बन्धुआ श्रम दास्ता प्रथा का एक रूप है और यह अपराध माना गया है। इसी कारण 1975 में 20-सूत्री कार्यक्रम के आधीन इसे समाप्त करने ओर कृषि मजदूरों की दसा सुधारने के कई उपाय किए गए।

भारत में भूमिहीन मजदूर जो कुल श्रम-शक्ति का लगभग 26 प्रतिशत हैं, की दशा बहुत ही दयनीय रही है। भूमिहीन श्रमिक समाज का सबसे अधिक शोषित वर्ग है। उनकी आर्थिक दशा को सुधारने और उनके कल्याण को प्रोन्नत करने की और ठोस उपाय करने की आवश्यकता है।

(6) कृषि श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना - कृषि श्रमिक सामाजिक सुरक्षा योजना 1 जुलाई 2001 से शुरु की गयी। इस योजना में 3 रुपये प्रतिदिन का प्रीमियम है जिसमें से 1 रुपया प्रतिदिन अर्थात् (365 रुपये वार्षिक) श्रमिकों द्वारा भुगतान किया जाना है तथा शेष 2 रुपया प्रतिदिन अर्थात् (730 रुपया वार्षिक) केन्द्र सरकार द्वारा दिए जाने का प्रावधान है। इस योजना के लाभ हैं-

1- 60 वर्ष से कम आयु में मृत्यु होने की दशा में 26,000 रुपये, दुर्घटना से मृत्यु अथवा स्थायी अपंगता होने की दशा में 50,000 रुपये देने का प्रावधान है।

2- 60 वर्ष तक जीवित रहने की दशा में 100 रुपये से 1900 रुपये प्रतिमाह पेंशन तथा मृत्यु के बाद 13,000 रुपये से 2.50 लाख रूपये की एकमुश्त राशि बीमित श्रमिक के परिवार को देने का प्रावधान है।

17.3.6 कृषि मजदूर और न्यूनतम मजदूरी - 1948 में न्यूनतम मजदूरी कानून लागू होने के पश्चात् सरकार पर यह दबाव डाला गया कि इस कानून का क्षेत्र विस्तार किया गया किन्तु फिर भी कुछ ऐसे राज्य हैं जिनमें कृषि-श्रम के अधिकतम भाग इस कानून के आधीन न लाए जा सकें। जिन राज्यों में यह कानून लागू भी किया गया, उसमें न्यूनतम मजदूरी के निश्चयन एवं पालन के लिए एक-सी मशीनरी कायम नहीं की गई। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि (1) यह कानून प्रत्येक राज्य में मृत-अधिनियम ही रहा है। (2) कृषि में न्यूनतम मजदूरी को बहुत समय से संशोधित नहीं किया गया। (3) लगभग हर जगह, वास्तविक मजदूरी अधिक कामकाज वाले मौसम में न्यूनतम मजदूरी से अधिक हो जाती है और कम कामकाज वाले मौसम में न्यूनतम मजदूरी से कम हो जाती। (4) इस कानून की प्रभावी रूप में पालना करने की मशीनरी बिल्कुल अपर्याप्त है। इस कानून के आधीन न ही मुकदमा चलाया जा सकता है और परिणामतः न ही इसमें सफलता प्राप्त है (5) कानून को लागू करने का अन्य कठिनाइयों में मुख्यतः कृषि मजदूरों में दरिद्रता एवं अनक्षरता, वर्तमान कानून सम्बन्धी जानकारी का अभाव, कृषि फार्मों का बिखरा होना, रोजगार का अनियमित होना, कृषि श्रम का असंगठित होना आदि हैं।

मई 1987 में हुए श्रम मंत्रियों के सम्मेलन में यह सिफारिश की कि न्यूनतम मजदूरी निर्धनता-रेखा के साथ सम्बन्धित होना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए राज्यों को 15 मई, 1990 को यह सलाह दी गई कि न्यूनतम मजदूरी 15 रुपये प्रतिदिन होगी जिसके नीचे प्रत्येक रोजगार के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित नहीं की जाएगी। किन्तु ग्राम श्रम पर राष्ट्रीय आयोग ने 20 रुपये प्रतिदिन की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की सिफारिश की।

इन सिफारिशों के परिपालन के लिए, सामान्य न्यूनतम मजदूरी की एक नई धारणा कल्पित की गई जिसमें सामान्य श्रमिकों के लिए खाद्य, ईंधन एवं मकान के रूप में श्रमिकों की अनिवार्यताएं उपलब्ध कराने का निर्णय किया गया जो न्यूनतम मजदूरी कानून के आधीन नहीं आते ते। ध्यान देने योग्य बात यह है कि ग्रामीण निर्धनता का उन्मूलन न्यूनतम मजदूरी की गारन्टी पर निर्भर करता है।

दिसम्बर 1998 में भारत सरकार द्वारा जारी एक अधिसूचना के अनुसार केन्द्र सरकार ने सभी राज्य एवं संघीय क्षेत्रों की सरकारों को निर्देश दिया कि वे असंगिठित क्षेत्र में बुनियादी निर्वाह मजदूरी 40 रुपये प्रतिदिन से कम न्यूनतम मजदूरी निश्चित न करें।

श्रम मंत्रालय ने फरवरी 2004 मं सभी राज्यों को यह सुझाव दिया कि वे सभी अनुसूचित रोजगारों में न्यूनतम मजदूरी को संशोधित करें और इसे 66 रुपये प्रतिदिन से कम न रखें। 31 दिसम्बर 2004 तक उपलब्ध सूचना के अनुसार विभिन्न राज्जीय सरकारों द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी की न्यूनतम एवं अधिकतम दरें तालिका-3 में दी गयी हैं-

तालिका-3

विभिन्न राज्यों में न्यूनतम एवं अधिकतम मजदूरी दरें (2008-09)

राज्य	प्रतिदिन न्यूनतम दर (रु.)	न्यूनतम मजदूरी की अधिकम दर (रु.)
1. केरल	72.00	328.00
2. महाराष्ट्र	46.13	201.30
3. तमिलनाडु	57.94	158.70
4. पश्चिम बंगाल	57.01	126.42
5. उत्तर प्रदेश	76.31	115.27
6. कर्नाटक	76.96	132.10
7. गुजरात	55.00	115.80
8. हरियाणा	138.00	138.00
9. असम	54.80	76.60
10. पंजाब	102.60	104.31
11. मध्य प्रदेश	88.20	133.65
12. छत्तीसगढ़	69.00	103.28
13. बिहार	75.00	89.00
14. जम्मू तथा कश्मीर	66.00	66.00
15. उड़ीसा	70.00	70.00
अखिल भारत	78.00	186.00

स्रोत भारत सरकार, श्रम और रोजगार मंत्रालय, वार्षिक रिपोर्ट (2008-09)

ध्यान देने योग्य बात यह है कि न्यूनतम मजदूरी का निश्चयन इस बात की कोई गारंटी नहीं कि वह कृषि-मजदूरों को दी जाएगी। यह तो इस बात पर निर्भर करता है कि राज्य क्या कार्यभाग अदा करता है और कृषि श्रमिकों में किस हद कर संघीकरण हुआ है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कृषि श्रम ग्रामीण जनसंख्या का सब से गरीब वर्ग है। ग्रामीण श्रम के राष्ट्रीय आयोग ने यह बात रिकार्ड की है कि 1987-88 में सामान्य ग्रामीण निर्धनता अनुपात के 33.4 प्रतिशत के विरुद्ध ग्रामीण-श्रम-परिवारों में आयोग के अनुसार निर्धनता अनुपात लगभग 57 प्रतिशत था। अतः आयोग ने कई सिफारिशें की हैं ताकि यह वर्ग जो शताब्दियों से घोर निर्धनता में जीवन व्यतीय कर रहा है, निर्धनता स्तर से ऊपर उठ सके। यह सत्य है कि जहाँ कृषि-श्रम ने हरित क्रान्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, कुछ राज्यों को छोड़ जिनमें मजदूरी में वृद्धि के रूप में कुछ लाभ प्राप्त हुआ है, इसकी सामान्य दशा में उन्नति नहीं हुई है। कृषि-श्रमिकों की सहायता के लिए एक ओर विकास की रोजगार-प्रधान रणनीति की सिफारिश की है और दूसरी ओर कृषि-श्रमिकों के मजदूर संघों की व्यवस्था का सुझाव दिया है ताकि उनकी सौदाशक्ति उन्नत की जा सके। इन प्रयासों की सहायता के लिये आयोग ने संकेत किया है कि केन्द्र सरकार को सामाजिक सुरक्षा की योजना चालू करने के विधान की पहल करनी चाहिए।

ग्रामीण श्रम के राष्ट्रीय आयोग की सिफारिशों के पश्चात् केन्द्र सरकार ने कृषि-श्रमिकों के केन्द्रीय विधान का मसौदा तैयार किया है और इसे राज्यीय श्रम मंत्रियों के 42वें सम्मेलन में 7 जुलाई, 1993 को वितरित किया ताकि उनकी राय जान सके। इस बात बड़ी उत्साहवर्धक है कि केन्द्र सरकार ग्रामीण-श्रम के राष्ट्रीय आयोग की सिफारिशों के कारण जागी है ताकि हमारे समाज के गरीबों में सबसे गरीब वर्ग की दशा सुधारने के लिए कुछ कदम उठा सके।

17.4 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1 - कृषि कराधान से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न 2 - कृषि आय पर संक्षिप्त नोट तैयार कीजिए?

प्रश्न 3 - कृषि पर अतिरिक्त करारोपण हेतु राजसमिति ने कौन से प्रस्ताव दिए? संक्षेप में बताइये।

प्रश्न 4 - भारत में कृषि श्रम के कितने प्रकार हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1.बाल श्रम उन्मूलन योजना का सम्बन्ध है -

a. कृषि उद्योग मं लगे बाल श्रमिकों से
b. खतरनाक उद्योगों में लगे बाल श्रमिकों से
c. कृषि कार्यों में लगे बाल श्रमिकों से

d. उपर्युक्त सभी

Ans. – (b)

2.भारत में अधिकांश अदृश्य बेरोजगारी पायी जाती है -

a.कृषि में , b.उद्योग में , c.व्यापार में , d.यातायात में

Ans. – (a)

17.5 सारांश

सम्पूर्ण इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ गये होंगे कि कृषि कराधान के माध्यम से जहां एक और धनी किसानों की आय में स्थिरीकरण आया है वहीं दूसरी ओर गरीब किसानों को आर्थिक सहायता पहुँचा कर सरकार उन्हें लाभान्वित करने का प्रयास कर रही है। 21 जनवरी 2004 को किसान कॉल सेन्टर की स्थापनी की गयी जिसमें किसान बिना शुल्क दिए 1551 नम्बर डायल करके कृषि सम्बन्ध जानकारी प्राप्त कर सकता है। इसका एक उदाहरण है।

वही कृषि श्रमिकों की सामाजिक और आर्थिक दशा को सुधारने के लिए भी सरकार ने कई सार्थक कदम उठाए हैं। जिसमें कृषि श्रमिक सुरक्षा योजना 2001 को आज विशेष, महत्व दिया जा रहा है। अतः स्पष्ट है कि कृषि और किसान भारतीय अर्थव्यवस्था के दो प्रमुख स्तम्भ हैं।

17.6 संदर्भ ग्रन्थ

1. Report iof the First Agriculatural Labour Enquiry Committee (1951), Government of India.
2. NIRD : (1986); Rural Development in India – Some Facts, Hyderabad.
3. Sen Amartya (1983), Development, Which Way Now Economic Journal.
4. Haq, Mahabubul : (1997); Human Development in South Asia, Oxford University Press, New Delhi.
5. Government of India; Report of the National Commission on Agrivulture (1976).
6. J. W. Mellow; Economics of Agriculatural Development.
7. E. T. Mathew : Agricultural Taxation and Economic Development of India,
8. Govenment of India; Direct Tax Enquiry Committee, pg. 45
9. Taxation of Agriculaural Land, EPW, Annual No. 1973

17.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि कराधान से आप क्या समझते हैं?भारतीय कृषि श्रमिकों की समस्याओं का उल्लेख कीजिए इन समस्याओं के निदान हेतु आप क्या सुझाव देंगे?
2. श्रम से क्या आशय है? कृषि श्रमिकों की स्थिति सुधारने के लिए सरकार ने कौन-कौन से कदम उठाये हैं?

इकाई 18: औद्योगिक विकास एवं नीतियाँ

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 योजनाकाल में भारत का औद्योगिक विकास
18.4 औद्योगिक समृद्धि के चरण
18.5 औद्योगिक नीति
18.6 औद्योगिक नीति का अर्थ
18.7 औद्योगिक नीति की आवश्यकताएं
18.8 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत की औद्योगिक नीति
18.9 सारांश
18.10 शब्दावली
18.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
18.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री?
18.14 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थशास्त्र से सम्बन्धित यह अठारहवीं इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय कृषि नीति क्या है? विश्व व्यापार संगठन इसे किस तरह से प्रभावित करता है।

देश के औद्योगिक विकास में औद्योगिक नीतियों एवं पंचवर्षीय योजना के महत्व को जानते हुए भारतीय अर्थशास्त्रियों ने अनेक औद्योगिक नीतियाँ बनायीं है। इन नीतियों के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र को स्पष्ट रूप से विभाजित किया गया है। प्रस्तुत इकाई में विस्तार से औद्योगिक नीतियों एवं पंचवर्षीय योजनाओं में भारतीय औद्योगिक विकास का विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप औद्योगिक नीति एवं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास तथा इसकी आवश्यकता एवं महत्व को समझा सकेंगे। औद्योगीकरण से सम्बन्धित विचारधारा या दृष्टिकोण का विश्लेषण कर सकेंगे।

18.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेगें कि:

- पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास कैसे हुआ।
- औद्योगिक नीति का अर्थ एवं इसकी आवश्यकता को समझा सकेंगे।
- विभिन्न औद्योगिक नीतियों के उद्देश्य को स्पष्ट कर सकेंगे।

18.3 योजनाकाल में भारत का औद्योगिक विकास

1947 में देश में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना एवं विकास के लिए 1951 में आयोजन अपनाने के बाद योजनाकर्त्ताओं ने देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ एवं संतुलित विकास प्रदान करने के लिए औद्योगिक विकास के प्रति विशेष रूचि दिखाई। इनके फलस्वरूप औद्योगिक अर्थव्यवस्था का आधार मजबूत हुआ। योजनाकाल में उद्योगों का विकास उत्साहवर्द्धक रहा है। विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत औद्योगिक विकास निम्न प्रकार हुआ है-

पहली पंचवर्षीय योजना (1951-56)

देश की अल्पविकसित अर्थव्यवस्था तथा आयोजन के पूर्व की परिस्थितियों को देखते हुए योजनाकर्ताओं ने देश की प्रथम पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास को नहीं, बल्कि कृषि विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देने का निर्णय लिया। अतः इस योजना में कृषि क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान दिया गया था। फिर भी इस योजना के अन्तर्गत औद्योगिक विकास की उपेक्षा नहीं की गई थी।

इस योजना के अन्तर्गत केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा किया गया कुल व्यय रू0 2069 करोड़ था। सार्वजनिक क्षेत्र के विकास कार्यक्रमों पर किया गया कुल व्यय निम्न तालिका से स्पष्ट है:

तालिका-1: प्रथम पंचवर्षीय योजना में किया गया कुल व्यय

मद	रू0 करोड़	प्रतिशत
कृषि एवं जन-समुदाय विकास	361	17.5
सिंचाई	168	8.1
बहुउद्देशीय सिंचाई एवं ऊर्जा परियोजना	266	12.9
ऊर्जा	127	6.1
परिवहन एवं संचार	497	24.0
उद्योग	173	8.4
सामाजिक सेवाएं	340	16.4
पुनर्वास	85	4.1
अन्य	52	2.5
कुल व्यय	2069	100

स्रोतः प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) भारत सरकार, योजना आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली।

इस योजना के अन्तर्गत उद्योग पर किया गया व्यय रू0 173 करोड़ था जिसमें से रू0 140 करोड़ वृहद उद्योगों में लगाया गया और रू0 27 करोड़ कुटीर एवं लघु उद्योगों में लगाया गया। विज्ञान एवं औद्योगिक अनुसंधान और खनिज पदार्थ के विकास के लिए रू0 6 करोड़ व्यय किए गये। इस योजना में औद्योगिक विकास के लिए कुल विनिमय रू0 477 करोड़ था।

प्रगति: पहली पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास मुख्य रूप से उपभोक्ता वस्तु, उद्योग जैसे सूती वस्त्र, चीनी, नमक, कागज आदि उद्योग तक सीमित था। मध्यवर्ती उद्योग जैसे कोयला, सीमेण्ट, इस्पात, ऊर्जा शक्ति, अलौह धातुएँ, रसायन इत्यादि भी थे परन्तु उनकी उत्पादन (सीमेण्ट को छोड़कर) आवश्यकता से काफी कम थी। पूँजीगत वस्तु उद्योग की शुरूआत की गई थी। इस योजनाकाल में अनेक आधारभूत उद्योगों सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किए गए- जैसे हिन्दुस्तान शिपयार्ड, हिन्दुस्तान मशीन, टूल्स, सिन्दरी फर्टिलाइजर फैक्ट्री (अमोनियम सल्फेट) हिन्दुस्तान एंटीबॉयाटिक्स, हिन्दुस्तान केबिल्स, हिन्दुस्तान इंसैक्टिसाइड्स, इंट्रीगल कोच फैक्ट्री, यू0पी0 गवर्नमेण्ट सीमेंट फैक्ट्री तथा नेपा (न्यूजप्रिंट) निजी क्षेत्र में भी बाइसिकल, टाइपराइटर्स, डीजल पम्प एवं इंजन मशीनरी औजार आदि के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। इस अवधि में औद्योगिक उत्पादन में 74 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61)

प्रथम पंचवर्षीय योजनाकाल में कृषि क्षेत्र में काफी प्रगति होने के कारण देश में तीव्र औद्योगिक विकास के लिए स्थितियाँ अब कहीं अधिक अनुकूल थी। फलस्वरूप दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिकरण पर विशेष बल दिया गया। इस योजना का कुल व्यय रू0 4800 करोड़ था जिसमें से रू0 3800 करोड़ पूँजीगत उद्योगों के विकास के लिए रखा गया शेष राशि रू0 1000 करोड़ चालू विकास खर्च के लिए रखा गया। सार्वजनिक क्षेत्र के बड़े पैमाने के उद्योग जिसमें खनन, अनुसंधान इत्यादि के लिए रू0 690 करोड़ निर्धारित किए गये।

इस योजना के अन्तर्गत आधारभूत उद्योग जैसे लोहा एवं इस्पात, कोयला, उर्वरक, इंजीनियरिग, उद्योग एवं भारी इलेक्ट्रिकल कल-पूर्जों व मशीनों के विकास पर बल दिया गया। ग्रामीण एवं लघु और कुटीर उद्योगों के विकास के लिए रू0 200 करोड़ निर्धारित किए गये। इसमें से रू0 59.5 करोड़ और रू0 55 करोड़ हैण्डलूम उद्योग एंव लघु पैमाने के उद्योग के लिए खर्च किए गये तथा रू0 55.5 करोड़ खादी एवं ग्रामीण उद्योग पर व्यय किये गये। इस योजना में उन उद्योगों के विकास को महत्व दिया गया जो देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़, आत्मनिर्भर बनाने में मदद कर सकें। ये उद्योग थे-इस्पात, पूँजीगत उद्योग, मशीन टूल्स आदि। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के साथ-साथ निजी क्षेत्र के उद्योगों में भी रू0 575 करोड़ नया विनिवेश इस उम्मीद से किया गया कि ये उद्योग योजना के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करेंगे।

प्रगति -

1. सार्वजनिक क्षेत्र में तीन बड़े इस्पात कारखानों की स्थापना भिलाई, राउरकेला, और दुर्गापुर में लगाये गये।
2. सार्वजनिक क्षेत्र ने लोहा व इस्पात, लिग्नाइट, उर्वरक, रेलवे इंजन व डिब्बे, मशीन टूल्स, भारी रसायन, जहाज निर्माण, एंटिबायोटिक्स इत्यादि का उत्पादन शुरू कर दिया।
3. इस योजना में विनिर्माण क्षेत्र में उत्पादन की वृद्धि दर का लक्ष्य 10.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया था लेकिन 7.25 प्रति वर्ष प्राप्त किया जा सका।
4. इस योजना में मूल उद्योगों का विकास तीव्र गति से हुआ।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66)

पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास का आधार बनाने का लक्ष्य रखा गया वही तीसरी पंचवर्षीय योजना में इस आधार को और मजबूत बनाने और इसका आगे विस्तार एवं उत्पादक उद्योगों की विद्यमान क्षमताओं को पूर्ण उपयोग करने एवं नवीन क्षमताओं का सृजन करने का प्रयास किया गया। इस योजनाकाल में उन औद्योगिक परियोजनाओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी जिन्हें

विदेशी विनिमय संकट के कारण कुछ समय के लिए स्थगित करना पड़ा था। उत्पादन क्षमता में तीव्र गति से विस्तार सुनिश्चित करने के लिए उत्पादन उद्योगों (भारी मशीनरी तथा इंजीनियरिंग, लोहा व इस्पात, उर्वरक तथा पेट्रोलियम) को प्राथमिकता की दृष्टि से दूसरा स्थान प्रदान किया गया। तीसरे स्थान पर आधारभूत कच्चे पदार्थ जैसे अल्युमीनियम, खनिज तथा रासायनिक तत्वों के उत्पादन को रखा गया। इसके अतिरिक्त औद्योगिक विस्तार के कार्यक्रम पर बल दिया गया विशेषकर पूँजीगत एवं उत्पादक उद्योग जिसमें प्रबन्धन क्षमता को बढ़ाना, तकनीकी विकास पर विशेष जोर दिया गया। इस योजना का कुल व्यय रू0 7500 करोड़ था।

प्रगति -

1. अल्युमीनियम, आटोमोबाइल्स, बिजली के ट्रांसफार्मस, मशीन टूल्स, डीजल इन्जन, वस्त्र उद्योग के लिए आवश्यक मशीनरी इत्यादि में 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष से भी अधिक संवृद्धि दर प्राप्त करने में सफलता मिली।
2. इस योजनाकाल के शुरूआत में तो औद्योगिक उत्पादन में काफी तेजी से वृद्धि हुई परन्तु अन्तिम वर्ष में उत्पादन में कमी आ गयी। कुल मिलाकर औद्यागिक उत्पादन में 6.8 प्रतिशत वार्षिक दर से वृद्धि हुई, जो निर्धारित लक्ष्य (10.7 प्रतिशत) से लगभग चार प्रतिशत कम थी।

वार्षिक योजनाएँ (1966-69)

तीसरी पंचवर्षीय योजना के बाद चौथी पंचवर्षीय योजना को तीन वर्षों के लिए स्थगित करना पड़ा और इस अवधि में (1966-69) में तीन वार्षिक योजनाओं का सहारा लिया गया। अन्तिम 8 वर्ष में (जिसमें तीसरी पंचवर्षीय योजना और वार्षिक योजना भी शामिल है) औद्योगिक प्रगति में काफी उतार-चढ़ाव देखने को मिला। प्रथम चार वर्ष औद्योगिक निवेश एवं संवृद्धि के अनुकूलतम थे परन्तु उसके बाद के तीन वर्षों में अर्थव्यवस्था में स्थिरता सी आ गयी। 1964-65 की अवधि में दो भयंकर सूखा एवं 1965 के युद्ध के कारण औद्योगिक संवृद्धि में गिरावट हुई।

प्रगति -

1. 1968-69 के अन्त में 1,40,000 लघु पैमाने की इकाईयों का पंजीकरण हुआ।
2. 1961-69 के दौरान सहकारी औद्योगिक इकाईयों जिसमें हैण्डलूम, हैण्डीक्राफ्ट आदि शामिल थी। इनकी संख्या 37,000 से बढ़कर 51,000 तक पहुँच गयी। इनके सदस्यों की संख्या भी 2.92 मिलियन से बढ़कर 3.88 मिलियन हो गयी। इनके बिक्री में भी वृद्धि दर्ज हुई जो 111.9 करोड़ से बढ़कर 331.9 करोड़ हो गयी।
3. 1967-68 में कृषि उत्पादन में वृद्धि होने के कारण औद्योगिक प्रगति में सुधार हुआ।
4. 1968 में ही आगत क्रान्ति (अर्थात्, बीज, उर्वरक, सिंचाई) हुई जिसे हरित क्रान्ति के नाम से जानते है।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74)

चौथी योजना के अन्तर्गत औद्योगिक ढ़ाँचे के असंतुलन को दूर करने एवं सृजित क्षमता को अधिकतम उपयोग मे लाये जाने पर विशेष बल दिया गया। इस योजना काल का कुल व्यय रू0 24882 करोड़ निर्धारित किया गया। कुल व्यय में से रू0 15902 करोड़ और रू0 8980 करोड़ सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के लिए क्रमशः निर्धारित किया गया। निवेश के लिए रू0 13655 करोड़ और उत्पादक पूँजी के लिए 22635 करोड़ रूपये के व्यय की व्यवस्था की गयी। 2247 करोड़ रूपये चालू व्यय के लिए निर्धारित की गयी। इस योजना में औद्योगिक निवेश के लिए निम्न उद्देश्य रखे गयेः (1) पहले से चल रहे विनियोग कार्यों को पूरा करना, (2) भावी विकास की आवश्यकतानुसार वर्तमान क्षमता में वृद्धि लाना, विशेष रूप से आयात-प्रतिस्थापन एवं निर्यात-संवर्धन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त मात्रा में जरूरी चीजों को देश में उपलब्ध करने के लिए व्यवस्था, (3) घरेलू उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए नये उद्योगों की स्थापना अथवा उद्योगों के लिए नये आधारों को निर्माण करना।

प्रगति - औद्योगिक उत्पादन में मात्र 3.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 8.10 प्रतिशत प्रति वर्ष था। इस धीमी विकास के कई कारण जिम्मेदार थे जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैः (1) माँग की कमी, (2) आधारभूत कच्चे माल की कमी, (3) मजदूरों में बढ़ती हुई कीमतों के कारण असन्तोष (4) परिवहन सम्बन्धी कठिनाइयाँ, (5) ऊर्जा शक्ति की कमी।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना (1974-79)

चौथी योजना के काल में औद्योगिक क्षेत्र में हुई असन्तोषजनक प्रगति को ध्यान में रखते हुए पाँचवी पंचवर्षीय योजना मे आत्म निर्भरता तथा संवृद्धि के साथ सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को प्राथमिकता दी गयी। निवेश और उत्पादन के निम्न पैटर्न की संकल्पना की गयीः (1) दीर्घकालिक आर्थिक विकास की दृष्टि से प्रमुख क्षेत्र या आधार मूलक क्षेत्र उद्योग जैसे इस्पात, अलौह धातु, उर्वरक, खनिज तेल, कोयला और मशीन निर्माण उद्योगों के विस्तार को उच्च प्राथमिकता दी गयी। निर्यात संवर्धन उद्योग, लोक-उपभोग वस्तुओं की पर्याप्त आपूर्ति, ग्रामीण व लघु उद्योगों को बढ़ावा, औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए इलाकों का विकास, तथा अनावश्यक वस्तुएँ के उत्पादन पर रोक लगायी गई। पाँचवी योजना का कुल व्यय 39,426 करोड़ रूपये था जिसमें औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 8,989 करोड़ रूपये (22.8 प्रतिशत) था।

प्रगति -

1. औद्योगिक संवृद्धि का लक्ष्य 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया था जबकि उपलब्धि 5.9 प्रति वर्ष रही।
2. औद्योगिक सम्बन्धों में बिगाड़ तथा असन्तोषजनक प्रबन्धन।
3. इस योजना के राष्ट्रीय खाद्यान्न सुरक्षा प्रणाली के कारण 1979 के सूखे को बिना खाद्यान्न आयात के ही काबू पा लिया गया।

छठीं पंचवर्षीय योजना (1980-85)

छठीं पंचवर्षीय योजना में गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रम चलाये गये। इस योजना के अन्तर्गत आधारभूत ढाँचा एवं औद्योगिक विकास को बहुत ऊँची प्राथमिकता दी गयी। उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम प्रयोग, उत्पादन एवं उत्पादकता में सुधार, प्रविधि का विकास आदि पर बहुत जोर दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास पर अधिक बल दिया गया। औद्योगिक विकास के सन्दर्भ में इन बातों पर विशेष ध्यान दिया गया- (1) उपभोग वस्तुओं एवं पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाना, (2) उत्पादन तकनीकी में सुधार लाने के लिए अनुसंधान की समुचित व्यवस्था करना, तथा (3) पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए नये उपायों की खोज करना अथवा उपयुक्त कार्य-नीतियाँ तैयार करना आदि। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के लिए 97500 करोड़ रूपये 1979-80 के कीमत पर निर्धारित किया गया।

प्रगति -

1. औद्योगिक उत्पादन में 5 गुना की वृद्धि दर्ज की गयी।
2. औद्योगिक उत्पादन में वार्षिक वृद्धि दर लगभग 6.2 प्रतिशत थी, जो 6.9 प्रतिशत के निर्धारित लक्ष्य से थोड़ी कम थी।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)

सामाजिक न्याय, आत्मनिर्भरता, आधुनिकीकरण के साथ आर्थिक संवृद्धि तथा उत्पादकता में सुधार के निर्देशक सिद्धान्तों के अनुसार सांतवी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक क्षेत्र के लिए निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गये: (1) उचित कीमतों पर और अच्छे किस्म की लोक-उपभोग की वस्तुओं की पर्याप्त आपूर्ति को सुनश्चिति करना, (2) व्यापक घरेलू बाजार तथा निर्यात संभाव्यता वाले उद्योगों के विकास पर जोर देना, (3) उपलब्ध सुविधाओं का पुनर्गठन और तकनीकी सुधार के सहार भरपूर प्रयोग करना, (4) नये एवं उभरते हुए उद्योग का विकास करना जैसे- इलेक्ट्रानिक्स एवं कम्प्यूटर उद्योग आदि तथा (5) महत्वपूर्ण क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता एवं कुशल और प्रशिक्षित श्रमिकों के रोजगार सृजन की दिशा में एकीकृत नीति अपनाना। इस योजना के अन्तर्गत रोजगार सृजन एवं उत्पादन में वृद्धि के अलावा सामाजिक आर्थिक उद्देश्य भी रखे गये थे जैसे संवृद्धि का क्षेत्रीय फैलाव, ग्रामीण और लघु उद्योगों के विकास को बढ़ावा देना तथा एकाधिकार को रोकना आदि।

प्रगति -

1. योजना के प्रथम दो वर्षों में प्रगति संतोषजनक रही। दोनो वर्षों में प्रगति लक्ष्य से अधिक रही। वार्षिक वृद्धि दर 1985-86 में 8.7 प्रतिशत और 1981-87 में 9.1 प्रतिशत थी।
2. इस योजनाकाल में औद्योगिक उत्पादन में हुई वार्षिक वृद्धि दर 8.5 प्रतिशत थी, जो कि 8.3 प्रतिशत के निर्धारित लक्ष्य से थोड़ी सी अधिक थी।

वार्षिक योजना (1991-92)

इस योजना अवधि में 22 जुलाई 1991 को औद्योगिक नीति बनाई गयी इसके अन्तर्गत जो 17 उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र मे थे उनको घटा कर 8 कर दिया गया। शेष उद्योग निजी क्षेत्र के लिए खोल दिये गए।

प्रगति -

1. मार्च 31, 1991 में भारत सरकार का 246 केन्द्रीय लोक क्षेत्र उद्यम का स्वामित्व था। जिसमें कुल निवेश 1.13,234 करोड़ था। इन उद्यमों में से मात्र 236 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम कार्यरत थे जिसमें 101,702 करोड़ की पूँजी लगी थी और 23.1 लाख कर्मचारी थे। इसमे से 131 उद्यम 1990-91 की अवधि मे 5,731 करोड़ का लाभ कमाये तथा 109 उद्यमों को 3064 करोड़ रूपये की हानि हुई।
2. 1991 मे ही नयी आर्थिक नीति का निर्माण हुआ जिसे उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के नाम से जाना गया।
3. अगस्त 1991 में लघु, सूक्ष्म एवं ग्रामीण उद्योग के लिए पैकेज नीति तैयार की गयी।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97)

आठवीं पंचवर्षीय योजना में आर्थिक सुधार एवं उदारीकरण का दौर आरम्भ हुआ जिसमें वर्ष 1991 में प्रस्तुत उदारीकृत औद्योगिक नीति के अधीन आठवीं योजना में मात्रात्मक लक्ष्यों पर कम जोर दिया गया। विभिन्न क्षेत्रों में वांछित संवृद्धि प्राप्त करने के लिए इस योजना में औद्योगिक, व्यापार तथा राजकोषीय नीतियों में आवश्यक फेर बदल तथा करों व शुल्कों में परिवर्तनों का सहारा लेने की बात की गई न कि आयातों/निर्यातो पर मात्रात्मक प्रतिबन्ध अथवा लाइसेसिंग पद्धति का सहारा। 1991 में अपनाई गई नई औद्योगिक नीति के नये उदारीकृत रूप में निजी क्षेत्र पर अधिक जोर दिया गया जिसके कारण सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक कार्यक्रमों के लिए परिव्यय कम कर दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र अब अधिकाधिक रूप से मूलभूत तथा कोर उद्योगों तक ही केन्द्रित कर दिया गया।

प्रगति

1. औद्योगिक क्षेत्र के लिए आठवीं योजना में 7.3 प्रतिशत प्रति वर्ष संवृद्धि का लक्ष्य रखा गया जबकि उपलब्धि 7.4 प्रतिशत प्राप्ति प्रति वर्ष रही।
2. उत्पादन वृद्धि दर 1992-93 में 4.2 प्रतिशत थी जबकि 1996-97 में अनुमानित वृद्धि दर (8.7 प्रतिशत) के आधार पर इस योजना के दौरान वृद्धि दर 8.1 प्रतिशत आँकी गयी जो निर्धारित औद्योगिक विकास के वार्षिक लक्ष्य 8.2 प्रतिशत के लगभग बराबर थी।

नौवी पंचवर्षीय योजना (1997-2002)

नौवीं पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य 'न्यायपूर्ण वितरण एवं समानता के साथ विकास' रचा गया। विभिन्न कारणों से इस योजना में सर्वोच्च प्राथमिकता उर्जा के विकास को दी गयी। उसके बाद

प्राथमिकता क्रम में समाज सेवा, कृषि और परिवहन का स्थान रहा। इस प्रकार उद्योग को दी गयी प्राथमिकता अपेक्षाकृत काफी नीची रही। नौंवी योजना में औद्योगिक सवृद्धि का लक्ष्य 8.2 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया। इस योजना में औद्योगिक विकास के लिए निम्न नीतियों को अपनाने की बात की गई: (1) पर्याप्त मात्रा में तथा उपयुक्त किस्म की आधारिक संरचना प्रदान करना, (2) औद्योगिक और वित्तीय पुनः संरचना बोर्ड के कामकाज की समीक्षा करना और उसमें ऐसे परिवर्तन लाना जिससे कि बीमार औद्योगिक इकाईयों को पुनः जीवनदान दिया जा सके तथा जिन बीमार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को पुनः जीवित करना संभव नहीं है उन्हें बन्द करने के लिए आवश्यक कदम उठाना (3) उत्तर-पूर्वी राज्यों के औद्योगिक विकास के लिए एक विशिष्ट पैकेज कार्यक्रम अपनाना, (4) पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों के विकास के लिए विशिष्ट कदम उठाना, (5) असंगठित औद्योगिक क्षेत्रों के विकास के लिए एक ही स्थान पर प्रशिक्षण, कौशल में सुधार काम करने के औजारों में सुधार की व्यवस्था करना। (6) लघु क्षेत्र की इकाईयों के उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि के लिए प्रौद्योगिक एवं साख की उपयुक्त मात्रा उपलब्ध कराना।

प्रगति

1. इस योजना के दौरान विकास दर 6.5 प्रतिशत प्रति वर्ष रखी गयी थी लेकिन प्राप्ति केवल 5.5 प्रतिशत रही।
2. विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के प्रभाव में इस योजना काल में प्रगति असन्तोषजनक रही।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007)

उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के दौर में इस योजना काल में उद्योग और खनन के लिए 58,938 करोड़ रूपये का परिव्यय रखा गया था जो कुल योजना परिव्यय 15,25,639 करोड़ रूपये का मात्र 3.9 प्रतिशत था। इस सन्दर्भ में दसवीं योजना के दस्तावेज का यह कथन महत्वपूर्ण है: ''देश की औद्योगिक विकास युक्ति में इस प्रकार परिवर्तन किए जा रहे है जिससे निजी क्षेत्र उत्पादन, रोजगार तथा आय-सृजन के क्षेत्र में अपनी 'सम्पूर्ण उद्यम-क्षमता' को पूरी तरह प्राप्त कर सके। जब तक आर्थिक वातावरण निजी क्षेत्र के उत्पादन में हिस्सेदारी को बढ़ाने के लिए पूरी तरह से सहयोग नहीं करता तब तक औद्योगिक विकास व संवृद्धि संभव नहीं है।'' औद्योगिक विकास की दर 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया। दसवीं योजना के औद्योगिक उद्देश्य निम्नलिखित थेः (1) ग्रामीण कृषि व्यवस्था को नगरीय औद्योगिक व्यवस्था में बदलना, (2) औद्योगिक विकास के द्वारा कुशल श्रमिकों के लिए औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार सृजन करना, (3) विश्व निर्यात में भारतीय विनिर्मित वस्तुओं के हिस्से में वृद्धि करना, (4) औद्योगिक विकास के द्वारा उत्पन्न क्षेत्रीय विषमताओं को कम करना।

प्रगति

1. निजी क्षेत्र के उद्योगों का विकास हुआ।
2. अर्थव्यवस्था के तीनों प्रमुख क्षेत्रों कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्र में वृद्धि दरें निर्धारित किए गए लक्ष्यों के वृद्धि काफी निकट रही, (a) उद्योग एवं सेवाओं के क्षेत्र में सालाना

वृद्धि क्रमशः 8.90 प्रतिशत व 9.40 प्रतिशत प्रति वर्ष का लक्ष्य था, इन क्षेत्रों में क्रमशः 9.17 प्रतिशत व 9.30 प्रतिशत की सालाना वृद्धि प्राप्त की गयी। (b) इस योजना में निवेश की दर सकल घरेलू उत्पाद का 32.1 रही है, जबकि लक्ष्य 28.41 प्रतिशत का था।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012)

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का केन्द्रीय लक्ष्य है - ''तीव्र गति के साथ आर्थिक समावेशी विकास'' इस पंचवर्षीय योजना का कुल अनुमानित व्यय 36,44,718 करोड़ रूपये था जिसमें केन्द्र सरकार और राज्य व केन्द्रशासित प्रदेश का क्रमशः 2156571 करोड़ रू0 व 1488147 करोड़ रूपया का भागीदारी था। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में सकल घरेलू उत्पादन का 9.0 प्रतिशत संवृद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का भौतिक लक्ष्य तालिका 19.1 में दिया गया है।

तालिका-1: प्रथम पंचवर्षीय योजना में किया गया कुल व्यय

मदें	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11	2011-12	CAGR
उत्पादन (चालू कीमत पर करोड़ रू0 में)	6836213	816705	977144	1169112	1398803	15.4%
रोजगारी (व्यक्ति, लाख में)	322.28	338.39	355.31	373.08	391-73	4%

Source: Government of India, Planning Commission, XIth Five Year Plan, Vol.III, New Delhi.

CAGR : Compound Annual Growth Rate.

इस योजना के मुख्य औद्योगिक लक्ष्य निम्नलिखित है:

1. 9 प्रतिशत प्रति वर्ष संवृद्धि दर के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह अनुमान लगाया गया है कि उद्योग और विनिर्माण को प्रति वर्ष 9.8 प्रतिशत की औसत दर से वृद्धि करनी होगी।
2. वर्ष 2015 तक उद्योगों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सुरक्षा एवं प्रदूषण के मानक को अपनाना।
3. जहाज निर्माण के क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास के लिए 170 करोड़ रूपये का आवंटन किया गया।
4. खनन मंत्रालय को 8404 करोड़ रूपये आवंटित किए गये
5. सार्वजनिक क्षेत्र के संसाधनों को सकल घरेलू उत्पादन का 9.46 प्रतिशत जो दसवी पंचवर्षीय योजना में थी को बढ़ाकर ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में 13.54 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया है।

18.4 औद्योगिक संवृद्धि के चरण

औद्योगिक संवृद्धि को अध्ययन की दृष्टि से तीन चरणों में बाँटा जाता है जिसे चार्ट 19.4.1 के द्वारा दर्शाया गया है-

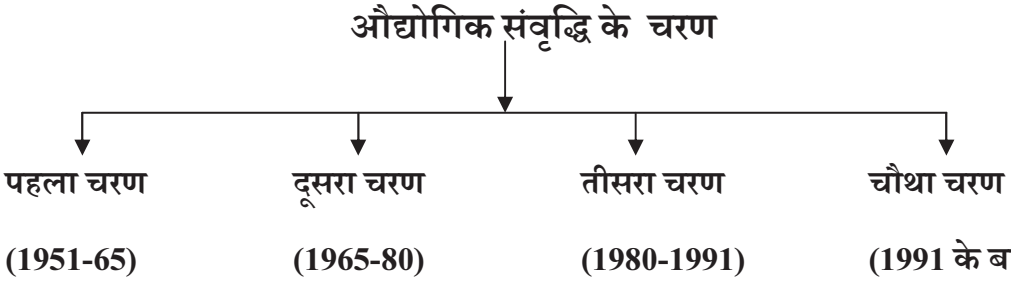

औद्योगिक संवृद्धि का पहला चरण (1951-65)

औद्योगिक संवृद्धि के पहले चरण में प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं का काल आता है। इस चरण में औद्योगिक विकास के लिए मजबूत आधार तैयार किया गया। हैरोड-डोमर मॉडल पर आधारित प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास व असंतुलन को दूर करने की रणनीति बनायी गयी। महालानोविस मॉडल पर आधारित दूसरी पंचवर्षीय योजना एवं जॉन सैण्डी एवं चक्रवर्ती मॉडल पर आधारित तीसरी पंचवर्षीय योजना में पूँजीगत वस्तु उद्योगों तथा मूलभूत उद्योगों के विकास पर विशेष जोर दिया गया। पहली तीन योजनाओं में औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी हुई और यह दर पहली योजना में 5.7 प्रतिशत बढ़कर दूसरी योजना में 7.2 प्रतिशत तथा तीसरी पंचवर्षीय योजना में 9.0 प्रतिशत हो गयी।

औद्योगिक संवृद्धि का दूसरा चरण (1965-80)

औद्योगिक संवृद्धि दर 1966 से 1976 की अवधि में मात्र 4.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही। 1966-80 की अवधि में पूँजीगत वस्तु उद्योगों तथा मूल उद्योगों की संवृद्धि दरों में गिरावट आयी थी। इसका कारण था संरचनात्मक प्रतिगमन अर्थात इस अवधि में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तौर पर उच्च आय वर्गों के लिए विलासिता की उपभोग वस्तुओं का उत्पादन किया गया। उदाहरण के लिए महंगे कपड़े, मदिरा, परफ्यूम व कास्मेटिक्स, इलेक्ट्रानिक वस्तुएं और घड़ियाँ इत्यादि। 1965 से 1980 के बीच औद्योगिक क्षेत्र में मंदी व संरचनात्मक प्रतिगमन के लिए अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग कारकों को जिम्मेदार ठहराया जो निम्नलिखित है-

(क) सरकार ने बाह्य कारकों जैसे 1965 व 1971 के युद्ध, 1973 के तेल संकट, सुखे की स्थिति, आधारिक संरचना (विशेष तौर पर बिजली व परिवहन) को जिम्मेदार ठहराया।

(ख) के0एन0 राज ने कृषि क्षेत्र में अपर्याप्त संवृद्धि होने के कारण औद्योगिक वस्तुओं की माँग में कमी को जिम्मेदार ठहराया।

(ग) पी0 पटनायक और एस0के0 राव के अनुसार दूसरे चरण में जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश कम हुआ वहीं दूसरी तरफ निजी क्षेत्र में निवेश के लिए प्रोत्साहन कम हुआ।

औद्योगिक संवृद्धि तीसरा चरण (1980-1991)

इस काल को मोटे रूप में औद्योगिक पुनरूत्थान का काल कहा जाता है। 1980-81 के आधार वर्ष पर आधारित औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर 1981-85 में 6.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी जो सातवीं योजना (1985-90) में बढ़कर 8.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गयी तथा 1990-91 में घटकर 8.3 प्रतिशत रह गयी। 1980 के दशक में औद्योगिक पुनरूत्थान के निम्नलिखित कारण थे:

(क) सरकार की उदार औद्योगिक व व्यापार नीतियों ने वस्तुओं की पूर्ति को बढ़ाने में मदद किया।

(ख) उदार राजकोषीय नीति अपनाने से निर्मित्त वस्तुओं की माँग में वृद्धि हुई। उदार राजकोषीय व्यवस्था के मुख्य तत्व थे (1) बजट घाटा, (2) ऊँची ब्याज दरों पर अधिक ऋण लेना, तथा (3) निर्बचत में वृद्धि।

(ग) कृषि एवं सेवा क्षेत्र के विकास से अस्सी के दशक में औद्योगिक पुनरूत्थान में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं की माँग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(घ) आधारिक संरचना में निवेश में वृद्धि के साथ-साथ दक्षता में सुधार ने औद्योगिक पुनरूत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1979-80 से 1984-85 के बीच आधारिक संरचना में निवेश 9.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही जबकि 1986-87 में यह निवेश बढ़कर 18.3 प्रतिशत हो गया।

औद्योगिक संवृद्धि का चौथा चरण (1991 के बाद की अवधि)

1991 से आर्थिक उदारीकरण के एक नये युग की शुरूवात हुई। इस नयी आर्थिक नीति में तीन बिन्दु सम्मिलित थे-(1) सार्वजनिक क्षेत्र को संकुचित कर निजीकरण की नीति, (2) आयात-निर्यात के लिए परमिट प्रणाली के स्थान पर विश्वव्यापीकरण की नीति,(3) औद्योगिक लाइसेंसिंग और कार्यवाही नियमों व नियंत्रणों में व्यापक उदारीकरण की नीति।

1990 के दशक के उत्तरार्ध में (अर्थात् नौंवी योजना के दौरान) औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर 5.0 प्रतिशत प्रति वर्ष रही जबकि 1990 के दशक के पूर्वाद्ध (अर्थात् आठवीं योजना के दौरान) की औद्योगिक संवृद्धि दर 7.4 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। उदारीकरण के बाद के दशक में औद्योगिक उत्पादन में काफी वार्षिक उतार-चढ़ाव दिखायी देते हैं। हालांकि वर्ष 2005-06 में औद्योगिक संवृद्धि दर 8.2 प्रतिशत थी। 1991 के बाद की उदारीकरण की अवधि में (जिसे सुधार अवधि भी कहा जाता है) औद्योगिक प्रगति असंतोषजनक थी।

इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे-

1. कमजोर आधारिक संरचना-आधारिक संरचना जैसे परिवहन व्यवस्था, बिजली, सड़क, बंदरगाह इत्यादि के कमजोर होने के कारण औद्योगिक विकास पर बुरा असर पड़ा, उत्पादन की लागतों में वृद्धि और विदेशी उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करने में देशी औद्योगिक इकाईयों कमजोर पड़ गई।
2. उपभोक्ताओं की मांग में कमी- 1990 के दशक में कृषि क्षेत्र में संवृद्धि दर में कमी आने के कारण ग्रामीणों की क्रय शक्ति में कमी आयी फलस्वरूप औद्योगिक वस्तुओं की माँग की भी संकुचित हो गयी। इसके अतिरिक्त आय के वितरण में असमानता, रोजगार संवृद्धि में गिरावट, शेयर बाजार में घोटाले तथा वास्तविक परिसंपदा की कीमतों में शिथिलता के कारण जनता के हाथ में क्रय शकित के कम हो जाने के कारण मांग में कमी होने लगी।
3. पूँजी निर्माण में कमी- सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में पूँजी निर्माण औद्योगिक विकास की गति को उछाल देता है। पूँजी निर्माण में प्रत्यक्ष वृद्धि होने से जनता द्वारा वस्तुओं की मांग में वृद्धि आती है और परोक्ष रूप में जनता द्वारा उद्योग निवेश में वृद्धि आती है। परन्तु 1990 के दशक में पूँजी निर्माण में कमी देखने को आयी। इसका कारण था अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा भारत सरकार को 1991 में समष्टि आर्थिक समायोजन कार्यक्रम अपनाने को विवश किया जिसके कारण सार्वजनिक व्यय में भारी कटौती करनी पड़ी।

इसके अतिरिक्त विदेशी प्रतिस्पर्धा, पूँजी बाजार का अविकसित होना, घरेलू उद्योगों की अधिक उत्पादन लागत, निर्यातों में कमी, 1997 के मध्य में पूर्व एशियाई देशों में आये आर्थिक संकट के कारण इन देशों की मुद्राओं का अवमूल्यन हुआ जिससे भारतीय निर्यात अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इन देशों के निर्यातों की तुलना में अधिक महंगे हो गये। प्रशुल्क संरचना में विसंगतियों के कारण घरेलू उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

18.5 औद्योगिक नीति

औद्योगिक विकास और इसका स्वरूप बहुत बड़ी सीमा तक सरकार की औद्योगिक नीति पर निर्भर करता है। इसलिए औद्योगिक नीति का अर्थ, एवं औद्योगिक नीति की आवश्यकता क्यों पड़ती है। इसकी जानकारी होना नितान्त आवश्यक है।

18.6 औद्योगिक नीति का अर्थ

औद्योगिक नीति से तात्पर्य सरकार द्वारा की जाने वाली ऐसी औपचारिक घोषणा से है जिसके द्वारा सरकार औद्योगिक विकास के प्रति दृष्टिकोण एवं उद्देश्यों का उल्लेख करती है। सामान्यतः किसी भी औद्योगिक नीति के तीन प्रमुख भाग/अंग होते है जिसे चार्ट के द्वारा दर्शाया गया है-

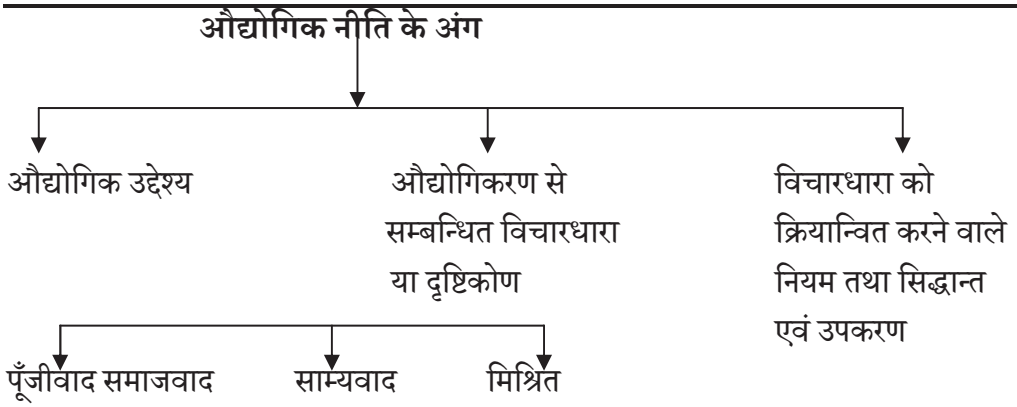

औद्योगिक उद्देश्य किसी भी देश के लोगों की आकांक्षाओं देश के संसाधनों, वहाँ की समस्याओं एवं समाज की चिन्तन या विचारधारा पर किया जाता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में निजी लाभ प्राप्त करने का उद्देश्य प्रमुख होता है इसलिए यह निजी सम्पत्ति के प्रति आस्था एवं बाजार-उन्मुख संसाधनों पर आधारित होता है। सामान्यतः पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में विकास की गति और उसका स्वरूप बाजार-शक्तियों पर निर्भर करते है। समाजवाद संसाधनों के समाजीकरण पर आधारित होता है। केन्द्रीय नियोजन इसकी प्रमुख शर्त होती है। साम्यवाद वर्गरहित समाज प्रणाली की बात करता है जहाँ समाज के सभी वर्गों की समानता प्राप्त हो। साम्यवाद का प्रमुख सिद्धान्त है-'प्रत्येक को क्षमता अनुसार कार्य करना चाहिए एवं आवश्यकता के अनुरूप उपभोग करना चाहिए मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत निजी क्षेत्र (बाजार) और सार्वजनिक क्षेत्र नियोजन के अनुरूप सामाजिक प्राथमिकताओं और निजी क्षेत्रों की क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए सरकार औद्योगिक उद्देश्य निश्चित करती है।

औद्योगिक नीति का तीसरा घटक औद्योगिक विचारधारा को क्रियान्वित करने वाले नियम तथा उपकरण से है जो नीति के पीछे निहित विचारधारा को ठोस रूप देते है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सरकार की ओर से हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि यह बाजार-मूलक अर्थव्यवस्था होती है। कभी-कभी बाजार की विकृतियों को दूर करने के लिए सरकार आवश्यक मौद्रिक व राजकोषीय नीति अपनाती है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में औद्योगिक संरचना एवं विकास की योजना केन्द्रीय नियोजन द्वारा किया जाता। सरकार उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं दंड जैसे उपकरणों का भी प्रयोग करती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में बाजार तंत्र और सरकारी हस्तक्षेप, दोनों उपकरणों का प्रयोग करके उद्देश्यों की पूर्ति करती है। आवश्यकता पड़ने पर निजी क्षेत्र का नियंत्रण व नियमन भी करती है।

18.7 औद्योगिक नीति की आवश्यकता

औद्योगिकरण देश के संसाधनों का भरपूर उपयोग कर आर्थिक और सामाजिक विकास करने में मदद करता है। भारत जैसे बड़े देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली में औद्योगीकरण के विशाल कार्य के संचालन के लिए औद्योगिक नीति की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से पड़ती है:

1. आधारभूत एवं भारी उद्योग की स्थापन निजी क्षेत्र नहीं कर सकते।
2. सामाजिक आधारिक संरचना जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास आदि के विकास के लिए।
3. आर्थिक आधारिक संरचना जैसे परिवहन, संचार इत्यादि का विकास।
4. निजी क्षेत्र को नियंत्रण करने व प्रोत्साहन करने के लिए।
5. यह सुनिश्चित करने के लिए कि निजी क्षेत्र नियोजन में निर्धारित दिशा की ओर ही अनुगमन करें, उनका विनिमय करना आवश्यक होता है।

घरेलू उद्योगों पर नीतियों का गहरा प्रभाव पड़ता है। वैश्वीकरण के युग में घरेलू उद्योगों को विदेशी उद्योगों से सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान करने के लिए नीति की आवश्यकता पड़ती है। इसके अलावा यह सुनिश्चित एवं विदेशी क्षेत्र विकास कार्यक्रमों के अनुरूप कार्य कर रहे है या नहीं। इन तीनों क्षेत्र के बीच परस्पर सम्बन्ध बनाए रखने हेतु औद्यागिक नीति की आवश्यकता पड़ती है।

18.8 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात की औद्योगिक नीति

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र के विकास के सम्बन्ध में भारत सरकार ने अभी तक छः औद्योगिक नीति प्रस्तुत किए है-(1) औद्योगिक नीति, 1948, (2) औद्योगिक नीति, 1956 (ग) औद्योगिक नीति, 1977, (घ) औद्योगिक नीति, 1980 और (5) औद्योगिक नीति, 1991.

1.औद्योगिक नीति, 1948

भारत सरकार ने अपनी पहली औद्योगिक नीति 6 अप्रैल 1948 को घोषित की। इस नीति में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र दोनों की महत्वपूर्ण स्थान दिया गया तथा उद्योगों की चार श्रेणियों में विभाजित किया गया-

1. सरकार के अधिकार का क्षेत्र- इस श्रेणी में तीन उद्योग थे: (क) अस्त्र-शस्त्र व युद्ध सामग्री, (ख) परमाणु शक्ति का उत्पादन और नियंत्रण, तथा (ग) रेल परिवहन के स्वामित्व और प्रबन्धन।
2. सरकारी नियंत्रण व विनियमन का क्षेत्र- इस श्रेणी में राष्ट्रीय महत्व के 18 उद्योगों को शामिल किया गया जिनके विकास का उत्तरदायित्व सरकार ने अपने ऊपर नहीं लिया परन्तु इन पर काफी नियंत्रण रखा। इस श्रेणी में कुछ आधारमूलक उद्योगों को शामिल किया जैसे इंजिनियरिंग भारी मशीनें, उर्वरक, अलौह धातु उद्योग, सीमेन्ट, सूती वस्त्र, कागज, चीनी, खनीज से सम्बद्ध उद्योग आदि।
3. मिश्रित क्षेत्र- इस क्षेत्र में 6 उद्योग रखे गये जिनकी इकाई की स्थापना का उत्तरदायित्व सरकार द्वारा निश्चित किया गया, परन्तु पुराने इकाईयों को निजी क्षेत्र में ही बने रहने दिया गया। ये उद्योग थे: (क) कोयला, (ख) लोहा तथा इस्पात, (ग) वायुयान निर्माण,

(घ) जलयान निर्माण, (ङ) टेलीफोन, टेलीग्राफ तथा वायरलेस के यंत्र एवं उपकरणों का निर्माण (इसमें रेडियो सेट शामिल नहीं था) तथा (च) खनिज तेल।

4. निजी उद्यम के क्षेत्र- उपर्युक्त उद्योगों के अलावा शेष उद्योगों को निजी क्षेत्र को सौप दिया गया। परन्तु उद्योग विशेष की प्रगति असंतोषजनक होने पर सरकार को इस क्षेत्र में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार था।

इस नीति में मिश्रित एवं नियंत्रित अर्थव्यवस्था की नींव रखी गयी जिससे औद्योगिक विकास तीव्र गति से आगे बढ़ सके। रोजगार प्रदान करने की दृष्टि से लघु एवं कुटीर उद्योग को महत्व को भी स्वीकार किया गया।

2. औद्योगिक नीति, 1956

संसद 'समाज के समाजवादी ढंग' को आधारभूत सामाजिक और आर्थिक नीतियों के रूप में स्वीकार कर चुकी थी। इसके औद्योगिक आधार के लिए एवं दूसरी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार ने 30 अप्रैल, 1956 को दूसरी औद्योगिक नीति के प्रस्ताव को मंजूरी दी। इस औद्योगिक नीति के अन्तर्गत दोनों क्षेत्रों सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के सहअस्तित्व के साथ-साथ उनके बीच परस्पर सहयोग पर जोर दिया गया। 1948 के औद्योगिक नीति की तुलना में 1956 की औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार पर अधिक जोर दिया गया। 1948 की औद्योगिक नीति में लघु एवं कुटीर उद्योगों को ऊँची प्राथमिकता दी गयी परन्तु 1956 की औद्योगिक नीति के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि इसमें लघु एवं बड़े उद्योगों के विकास को समन्वित करने के लिए अधिक दृढ़ एवं ठोस प्रयास की व्यवस्था की गई। इस उद्योग नीति की तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है:

1. केन्द्रीय सरकार का अधिकार क्षेत्र- प्रथम श्रेणी, अर्थात् अनुसूचित 'क' के उद्योगों को केवल सरकार के लिए सुरक्षित कर दिया गया। इस श्रेणी में सुरक्षा संबंधी उपकरणों से संबंधित उद्योगों-(क) अस्त्रशस्त्र और सैन्य सामग्री, (ख) परमाणु शक्ति, (ग) रेल परिवहन के अतिरिक्त 14 अन्य बुनियादी उद्योगों को भी इस श्रेणी में शामिल कर लिया गया। इस प्रकार कुल उद्योगों की संख्या 17 हो गई। इसमें से 4 उद्योगों में सरकारी एकाधिकार की व्यवस्था की गई। ये उद्योग थे- (क) अस्त्र-शस्त्र और सैन्य सामग्री, (ख) परमाणु उर्जा, (ग) रेलवे तथा (घ) वायु परिवहन। बाकी के 13 उद्योगों में यद्यपि यह कहा गया कि नई इकाईयाँ सरकार द्वारा स्थापित की जाएंगी तथापि निजी क्षेत्र में कार्यरत इकाईयों को काम करते रहने की अनुमति दी गयी। इतना ही नहीं यह भी कहा गया कि राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए इन उद्योगों (लौह और इस्पात, भारी ढ़लाई, भारी मशीनें, भारी बिजली सामान उद्योग, कोयला, तेल, लौह धातुएं तथा तांबा, सीसा, जस्ता, खनिज, टेलीफोन, तार और रेडियो उपकरण, विद्युत का जनन और वितरण) में निजी क्षेत्र को नई इकाईयां लगाने की अनुमति भी दी जा सकती है।

2. मिश्रित क्षेत्र- दूसरी श्रेणी अर्थात् अनुसूची 'ख' में ऐसे उद्योग रखे गये जिन पर राज्य का अधिकार बढ़ता जाएगा और जिनमें साधारणतः राज्य नये उद्यमों की स्थापना करेगा किन्तु इसमें सरकारी प्रयास की कमी को निजी उद्यमी द्वारा पूरा किये जाने की अपेक्षा की गयी थी। इस श्रेणी में आने वाले 12 उद्योग थे, लघु खनिजों के अतिरिक्त खनिज, अल्युमीनियम, मशीन औजार, लौह मिश्रित धातु तथा औजार, इस्पात, आधारभूत वस्तुएं, औषधि का निर्माण, रंग बनाना, प्लास्टिक आदि, अन्य आवश्यक औषधियां उर्वरक, कृत्रिम रबर, कोल कार्बनाइजेशन, रासायनिक कागज की लुगदी, सड़क परिवहन तथा समुद्री परिवहन।

3. निजी उद्योग का क्षेत्र- तीसरी श्रेणी में वे उद्योग रखे गये जो अनुसूची 'क' और अनुसूची 'ख' में नहीं थे। सरकार इन उद्योगों की स्थापना में सामान्यतः प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेगी। वह निजी उद्योगपतियों को प्रोत्साहित करने के लिए परिवहन, ऊर्जा एवं वित्त जैसी सुविधाएं प्रदान करेगी। जरूरत पड़ने पर यदि सरकार चाहे तो इन उद्योगों भी अपनी इकाईयों की स्थापना कर सकती थी।

औद्योगिक नीति, विशेष तौर पर औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम, 1951 की विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा कड़ी आलोचना की गई तथा यह कहा गया कि इससे औद्योगिक विकास अवरूद्ध हुआ है तथा भ्रष्टाचार बढ़ा है। इसलिए सरकार ने 1970 तथा 1980 के दशक में औद्योगिक नीति के उदारीकरण की दिशा में कई कदम उठाए। इस प्रक्रिया में सबसे क्रान्तिकारी परिवर्तन 1991 में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण नीति के द्वारा किया गया।

3.औद्योगिक नीति, 1977

जनता सरकार द्वारा 23 दिसम्बर, 1977 को औद्योगिक नीति की घोषणा की गयी। नीति वक्तव्य में साफ कहा गया कि अभी तक की औद्योगिक नीति बड़े पैमाने के उद्योग पर ध्यान दिया गया इसलिए इस नीति में छोटे पैमाने के क्षेत्र के विकास पर बल दिया गया जैसे लघु तथा कुटीर उद्योग। लघु क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित किया गया-(क) कुटीर तथा घरेलू उद्योग, (ख) पिछी क्षेत्र तथा (ग) लघु उद्योग।

इस नीति के अन्तर्गत बड़े पैमाने के उद्योगों को जनसंख्या की मूल न्यूनतम आवश्यकताओं के कार्यक्रम के साथ जोड़ा गया ताकि वे लघु क्षेत्र के उद्योगों के विकास में मदद कर सकें। इसलिए इस नीति में बड़े पैमाने के उद्योग के विकास के लिए आधारभूत उद्योग, पूँजी वस्तु उद्योग एवं उच्च तकनालॉजी उद्योग के विकास को भी बढ़ावा दिया गया। सार्वजनिक उद्योगों को सामाजिक वस्तुओं के उत्पादन के साथ-साथ उपभोक्ताओं को अनिवार्य वस्तुओं के निरन्तर सम्भरण कायम करने में एक स्थायीकरण शक्ति के रूप में किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र को यह भी जिम्मेदारी सौपी गयी कि छोटे उद्योगों के विकास में मदद करें।

4. औद्योगिक नीति, 1980

कांग्रेस (इ) की सरकार 1956 की औद्योगिक नीति को आधार मानते हुए, छोटे, मध्यम तथा बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास को प्रोन्नत करने के लिए 23 जुलाई, 1980 को औद्योगिक नीति, 1980 की घोषणा की। इस नीति के तीन उद्देश्य थे: (1) आधुनिकीकरण, (2) स्वतः विस्तार तथा (3) पिछड़े क्षेत्रों का विस्तार। इस नीति की विशेषता थी कि आर्थिक संघवाद की धारणा को प्रोन्नत करके निजी क्षेत्र का औद्योगिक विकास में समन्वय कायम करना। समन्वित औद्योगिक विकास के लिए पिछड़े क्षेत्रों में जिला स्तर पर कुछ केन्द्रक संयंत्र स्थापित करने की योजना बनाई गयी जिनका उद्देश्य सहायक, छोटी तथा कुटीर इकाईयों को जितना संभव हो सके कायम करना होगा।

5. औद्योगिक नीति, 1990

राष्ट्रीय मोर्चा सरकार 1989 के अन्त में सत्ता में आने के बाद औद्योगिक नीति मई 1990 में देश के सामने रखी। गरीबी और बेरोजगारी को दूर करने के लिए तथा अर्थव्यवस्था के समुचित विकेन्द्रीकरण के लिए इस नीति में लघु क्षेत्र के उद्योगों एवं खेती पर आधारित उद्योगों के विकास को बढ़ावा दिया गया। इस नीति में निर्यात, विदेशी बाजार में भारतीय उद्योगों की प्रतिस्पर्धा शक्ति बढ़ाने के लिए काफी उपाय किये गए। इस नीति के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को और अधिक खुला रूप देने का प्रयास किया गया जिससे कि देश के उद्योग आधुनिक रूप धारण कर विश्व-प्रतियोगिता का भली प्रकार सामना कर सके।

6. औद्योगिक नीति, 1991

श्री नरसिम्हा राव के नेतृत्व में स्थापित कांग्रेस (इ) की सरकार ने जुलाई 24, 1991 को नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस नीति के अन्तर्गत बहुत से उदारवादी कदम उठाए गए- लाइसेंसिंग व्यवस्था के लगभग समाप्त कर दिया गया, बहुत से आरक्षित उद्योगों के द्वारा निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गये, एकाधिकार और प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम के अधीन उद्योगों की परिसम्पत्ति सीमा समाप्त कर दी गई तथा विदेशी फर्मों को और रियायतें दी गई। विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था का एकीकरण करने की नीति बनाई गई। इस नीति की मुख्य बातें निम्नलिखित थी-

1. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उपक्रमों में कमी की गई। इसमें समय केवल 4 उद्योग ही सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत शामिल किए गये है-(क) सुरक्षा, (ख) रेल परिवहन, (ग) आणविक ऊर्जा (घ) 1995 की सूची में दर्ज खनिज पदार्थ।
2. पाँच उद्योगों (शराब, सिगरेट, खतरनाक रसायन, सुरक्षा का सामान तथा औद्योगिक विस्फोटक) को छोड़कर लगभग सभी उद्योगों की लाइसेंसिंग से मुक्त कर दिया गया है।

3. एकाधिकार और प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम को उदार बनाया गया। अब नई इकाईयों की स्थापना, विस्तार, विलयन समामेलन तथा आधीनीकरण के लिए तथा निदेशकों की नियुक्ति के लिए केन्द्र सरकार से पूर्व अनुमति लेना आवश्यक नहीं रहा है।
4. विदेशी तकनीकी विशेषज्ञ नियुक्त करने अथवा देश में विकसित तकनीक का विदेशों में परीक्षण कराने के लिए विदेशी मुद्रा भुगतान की इजाजत लेने की आवश्यकता समाप्त कर दी गयी है।

अभ्यास प्रश्न-

1. लघुउत्तरीय प्रश्न-

क. मिश्रित अर्थव्यवस्था किसे कहते हैं?

ख. पूँजीवाद और समाजवाद में क्या अन्तर है?

ग. औद्योगिक नीति से आप क्या समझते है?

2. सत्य/असत्य बताईये-

क. प्रथम पंचवर्षीय योजना 1949 में बनायी गई थी।

ख. द्वितीय पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य कृषि विकास था।

ग. छठवीं पंचवर्षीय योजना में गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रम चलाये गये।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न-

क. ग्याहवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि है-

(अ) 1951-56 (ब) 1956-61

(स) 2002-2007 (द) 2007-2012

ख. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य-

(अ) प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि (ब) कृषि का विकास

(स) गरीबी उन्मूलन (द) तीव्र गति के साथ समावेशी विकास

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न-

क. पहली पंचवर्षीय योजना एवं दूसरी पंचवर्षीय योजना में क्रमशः किस क्षेत्र के विकास पर जोर दिया गया था।

ख. औद्योगिक संवृद्धि के प्रथम चरण का मुख्य उद्धेश्य क्या था?

ग. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की क्या अवधि है?

5. रिक्त स्थान भरिए -

क. द्वितीय पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य ..... था।

ख. पहली पंचवर्षीय योजना ..... शुरु की गई थी।

ग. पहली औद्योगिक नीति ..... शुरु की गई थी।

घ. औद्योगिक नीति 1991 में ..... की शुरुआत की गई।

18.9 सारांश

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप यह जान चुके है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए नियोजन की स्थापना की। नियोजन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पंचवर्षीय योजनाओं एवं औद्योगिक नीतियों का बनाया। प्रथम पंचवर्षीय योजना एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना में क्रमशः कृषि एवं उद्योग के विकास की रणनीति बनाई गई। इसी क्रम में ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में समावेशिता संवृद्धि पर जोर दिया गया। उद्योगों के विकास के लिए औद्योगिक नीति 1948 एवं 1956 में आधारभूत उद्योग, पूजी वस्तु उद्योग इत्यादि पर ध्यान दिया गया जबकि औद्योगिक नीति 1977 में छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया गया। औद्योगिक नीति 1991 में अर्थव्यवस्था का अन्य देश की अर्थव्यवस्था से एकीकरण की योजना बनाई। नई औद्योगिक नीति में उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण को अपनाकर अर्थव्यवस्था को खुली अर्थव्यवस्था बनाया गया। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक विकास में औद्योगिक नीति एवं पंचवर्षीय योजनाओं के महत्व को अभिव्यक्त कर सकेंगे।

18.10 शब्दावली

संवृद्धि: संवृद्धि प्रति व्यक्ति आय से सम्बन्ध रखती है।

विकास: विकास के अन्तर्गत प्रति व्यक्ति आय एवं न्याय भी शामिल होता है।

पूँजीवाद: पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में संसाधनों पर निजी व्यक्ति का स्वामित्व होता है और यह बाजार पर आधारित होती है। इसका उद्देश्य लाभ अर्जित करना होता है।

समाजवाद: समाजवादी अर्थव्यवस्था में संसाधनों पर समाज का अधिकार होता है। केन्द्रीय नियोजन इसकी प्रमुख शर्त होती है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था: मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्रों और सार्वजनिक क्षेत्र नियोजन के अनुरुप सामाजिक प्राथमिकताओं और निजी क्षेत्रों की क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए कार्य करते हैं।

साम्यवाद: साम्यवाद का प्रमुख सिद्धान्त है- 'प्रत्येक को क्षमतानुसार कार्य करना चाहिए एवं आवश्यकता के अनुरुप उपभोग करना चाहिए।' आधारभूत उद्योग: आधारभूत उद्योग अन्य उद्योगों की स्थापना में मदद करते हैं।

सामाजिक संरचना: सामाजिक संरचना के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आवास आदि शामिल हैं।

18.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1(क) मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत बाजारतंत्र और सरकारी हस्तक्षेप, दोनांे उपकरणों का प्रयोग करके उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। आवश्यकता पड़ने पर निजी क्षेत्र का नियंत्रण व नियमन भी किया जाता है।

(ख) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में निजी लाभ प्राप्त करने का उद्देश्य प्रमुख होता है। सामान्यतः इस अर्थव्यवस्था में विकास की गति और उसका स्वरूप बाजार शक्तियों पर निर्भर करते हैं, जबकि समाजवाद संसाधनों के सामाजिकरण पर आधारित होता है। केन्द्रिय नियोजन इसकी प्रमुख शर्त होती है।

(ग) औद्योगिक नीति से तात्पर्य सरकार द्वारा की जाने वाली ऐसी औपचारिक घोषणा से है जिसके द्वारा सरकार औद्योगिक विकास के प्रति दृष्टिकोण एवं उद्देश्यों का उल्लेख करती है।

2. (क) असत्य है। पहली योजना की अवधि 1951-56 है।

(ख) सत्य है।

(ग) सःत्य है।

3 (क) द

(ख) द

4 (क) पहली पंचवर्षीय योजना में कृषि एवं दूसरी पंचवर्षीय योजना में उद्योग के विकास को प्राथमिकता दी गई।

(ख)औद्योगिक संवृद्धि के पहले चरण में औद्योगिक विकास के लिए मजबूत आधार तैयार किये गये।

(ग)ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि 2007-2012 है।

5 (क) औद्योगीकरण

(ख) 1951-56

(ग) 6 अप्रैल, 1948

(घ) आर्थिक सुधार

18.12संदर्भ ग्रन्थ सूची

- दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम, के0पी0एम0 (2006), ''भारतीय अर्थव्यवस्था'', एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली.
- मिश्र, एस0के0 एवं पुरी बी0के0 (2007), ''भारतीय अर्थव्यवस्था'', हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई.
- अग्रवाल, एन (2007), ''भारतीय अर्थव्यवस्था: विकास एवं आयोजन'', न्यू एज इन जर्नल पब्लिशर्स.

18.13सहायक पाठ्य सामग्री

1. वी0सी0 सिन्हा (2011): अर्थशास्त्र, एस0वी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा.
2. एस.सी. जैन एवं जे.पी. मिश्रा: भारतीय अर्थव्यवस्था, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा.

18.14निबन्धात्मक प्रश्न

क. योजनाकाल में भारत के औद्योगिक विकास पर एक लेख लिखिए।

ख. औद्योगिक नीति से आप क्या समझते है? स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् औद्योगिक नीति का विश्लेषण कीजिए।

ग. औद्योगिक नीति 1991 की विशेषताएँ बताइए?

घ. औद्योगिक नीति की क्यों आवश्यकता पड़ती है तथा यह औद्योगिक विकास में कैसे मदद करती है, इसकी व्याख्या कीजिए?

इकाई 19: सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 सार्वजनिक उपक्रम का आशय
19.4 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम की विशेषताएँ
19.5 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम का विकास
19.6 भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व
19.7 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की समस्याएँ
19.8 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों के निम्न निष्पादन के कारण
19.9 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों के निष्पादनता में सुधार के लिए सुझाव
19.10 अभ्यास प्रश्न
19.11 सारांश
19.12 शब्दावली
19.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
19.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
19.16 निबंधात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्थ की खण्ड 5 औद्योगिक संरचना से सम्बन्धित यह उन्नीसवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि औद्योगिक नीति क्या है? यह आर्थिक विकास में कैसे मदद करती है। आप पंचवर्षीय योजनाओं के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक महत्व का विश्लेषण कर सकते हैं।

देश के आर्थिक विकास हेतु मजबूत आधारभूत ढांचा का होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि यह अन्य उद्योगों के विकास में मदद करते हैं। आधारिक संरचना के निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रस्तुत इकाई में सार्वजनिक उद्यमों की समस्या एवं आधारिक संरचना के निर्माण में इसके महत्व का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सार्वजनिक उद्यम और निजी उद्यम में अन्तर स्पष्ट कर पायेंगे। इसके अलावा सार्वजनिक उद्यमों के निष्पादनता में सुधार के लिए सरकार द्वारा उठाये गये कदमों का विश्लेषण कर सकेंगे।

19.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि-

- सार्वजनिक क्षेत्र किसे कहते हैं?
- भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक उद्यमों की क्या भूमिका होती है?
- सार्वजनिक उद्यमों की समस्याएँ एवं इनको दूर करने के उपाय की व्याख्या कर सकेंगे।

19.3 सार्वजनिक क्षेत्र का आशय

सार्वजनिक क्षेत्र को लोक उपक्रम भी कहते हैं। लोकउपक्रम या सार्वजनिक क्षेत्र से आशय किसी ऐसे औद्योगिक, वाणिज्यिक और व्यापारिक उपक्रम से है जिसका स्वामित्व, प्रबन्ध और संचालन केन्द्र, राज्य या स्थानीय सरकार अथवा किसी अन्य लोक संस्था के अधीन हो जिनके निर्णय प्रक्रिया में सार्वजनिक हित निहित होता है। इसकी उत्तरदेयता संसद के माध्यम से जनता के प्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। सरकारी स्वामित्व के अधीन होते हुए भी ये उपक्रम अपने प्रबन्धकीय व्यवस्था में काफी हद तक स्वायत्तशासी होते हैं। इनकी कार्यशैली का नियंत्रण एवं नियमन भी शीर्ष स्तर पर बैठे राजनितिज्ञों द्वारा ही किया जाता है। इनका कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत होता है।

19.4 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों की विशेषताएँ

सार्वजनिक उपक्रमों का स्वामित्व निजी हाथों में न होकर सरकार के हाथ में होता है। इनका उद्देश्य मात्र लाभ कमाना ही नहीं होता है बल्कि विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना भी होता है। ये उद्यमें जनता, सरकार एवं संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। इनके प्रबन्ध के सम्बन्ध में सरकारी प्रशासन की पद्धतियों एवं नियमों का पालन किया जाता है। सरकारी उद्यमों की वित्त व्यवस्था सरकार द्वारा बजट में व्यवस्था करके प्रदान की जाती है।

19.5 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम का विकास

1947 से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत वास्तव में सार्वजनिक क्षेत्र था ही नहीं। केवल उल्लेखनीय सरकारी उद्यम थे जैसे रेल, डाक, तार, पोर्ट ट्रस्ट, युद्ध सामग्री और विमान कारखाने और कुछ राजकीय प्रबन्ध वाले कारखाने तथा सरकारी नमक कारखाना, कुनीन बनाने का कारखाना इत्यादि। लेकिन इनका उद्देश्य यह था कि देश के प्रशासन को सुगम बनाए और ब्रिटिश उद्योगों तथा उनमें काम कर रहे मजदूरों के लिए भारत से कच्चा माल और खाद्य पदार्थ खरीदने तथा ब्रिटेन में बना माल इस देश में बेचने के ब्रिटिश व्यापारियों को मदद करना।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को औद्योगिक नीति, 1948 और औद्योगिक नीति, 1956 से गति मिली। इन दोनों औद्योगिक नीतियों में सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को महत्तव दिया गया इसके कारण निम्नलिखित थे-

(1) अर्थव्यवस्था का पिछड़ापन

(2) कमजोर आधार संरचना

(3) प्रबन्धकीय योग्यता की कमी

(4) पूँजी का अभाव

(5) दीर्घकालीन परिपाक अवधि की औद्योगिक इकाइयों में अपनी पूॅजी को जोखिम में डालने की शक्ति भी नहीं थी, तथा

(6) निजी क्षेत्र भी कमजोर थे।

उस समय यह विश्वास किया जाता था कि आर्थिक एवं सामाजिक विकास सरकार द्वारा आयोजित रूप से हस्तक्षेप करके ही किया जा सकता है। इसलिए कृषि एवं औद्योगिक के सुदृढ़ विकास के लिए आन्तरिक क्षेत्र , आधारभूत उद्योग आदि को सार्वजनिक क्षेत्र को सौंप दिया गया। औद्योगिक नीति, 1956 का अध्ययन से आपको स्पष्ट हो जायेगा कि सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र में कौन-

कौन से उद्योग सौंपे गये थे। 1948 व 1956 की औद्योगिक नीतियों में सार्वजनिक उद्यमों की स्थापना पर बल दिया गया जिसके फलस्वरूप हिन्दुस्तान शिपयार्ड, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, सिन्दरी फर्टिलाइजर, हिन्दुस्तान एण्टीबायोटिक्स, चित्तरंजन लोकोमोटिव, इण्डियन टेलीफोन इण्डस्ट्रीज, दुर्गापुर, राऊरकेला, भिलाई में इस्पात के कारखाने, आइल इण्डिया, हैवी इंजीनियरिंग कॉरपोरेशन, फर्टिलाइजर कॉपरेशन, भारतीय जीवन बीमा निगम व राज्य व्यापार निगम, तेल शोधक कारखाने आदि स्थापित किए गये।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास दो प्रकार से हुआ- (1) विद्यमान उपक्रमों के राष्ट्रीयकरण के द्वारा और नये उपक्रमों की स्थापना के द्वारा। सार्वजनिक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों को तीन भागों में बॉंटा जा सकता है-

(1) सार्वजनिक सेवाएँ - जैसे रेल, सड़क, डाक व तार, ऊर्जा, सिंचाई परियोजनाएँ आदि।

(2) विभागीय प्रतिष्ठान - जैसे चित्तरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, इन्टीग्रल कोच फैक्ट्री तथा प्रतिरक्षा उत्पादन से सम्बन्धित इकाइयॉं आदि तथा

(3) अन्य औद्योगिक प्रतिष्ठान आदि जिनकी समस्त पूँजी की पूर्ति सरकार द्वारा की जाती है।

1997 में भारत सरकार ने 9 सार्वजनिक उपक्रमों के नवरत्न का दर्जा दिया। अब यह नवरत्न कम्पनियों की संख्या 9 से बढ़कर 19 हो गयी है।

1. भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि.
2. भारत पेट्रोलियम कॉरपोरेशन लि.
3. हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉरपोरेशन लि.
4. भारतीय तेल निगम
5. महानगर टेलीफोन निगम लि.
6. तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम
7. राष्ट्रीय ताप विद्युत निगम
8. भारतीय इस्पात प्राधिकरण लि
9. भारतीय गैस प्राधिकरण लि.
10. भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लि.
11. हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लि.
12. पॉवर फाइनेंस कॉरपोरेखन
13. राष्ट्रीय खनिज विकास निगम
14. विद्युत करगा निगम
15. कोल इण्डिया लि0

16. पॉवर ग्रिड
17. नेशनल एल्यूमिनियम कं. लि.
18. ऑयल इण्डिया लि.
19. रूरल इलेक्ट्रिफिकेशन कॉरपोरेशन लि.

योजनाकाल में सार्वजनिक उपक्रमों का विकास

अवधि	उपक्रमों की संख्या	कुल विनियोजित पूँजी (करोड़ रुपये में)
1 अप्रैल 1952	05	29
1 अप्रैल 1961	47	948
1 अप्रैल 1980	179	18150
31 मार्च 1990	246	113896
31 मार्च 1997	236	201946
31 मार्च 2007	244	421089
2011-12		अनुमानित 3644718

19.6 भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्त्व

सार्वजनिक क्षेत्र पूँजी के विनियोग में, बुनियादी ढॉचे के विकास एवं औद्योगिक ढॉचे के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आर्थिक विकास के लिए बुनियादी एवं आधारभूत उद्योगों के विकास के लिए भारी पूँजी की आवश्यकता होती है जिसे निजी क्षेत्र पूरा करने में अपने को असमर्थ पाता है इन कार्यक्रमों में जोखिक भी अधिक होती है एवं तत्काल लाभ मिलना भी कठिन होता है। इच्छानुसार तीव्र औद्योगीकरण भी विभिन्न अवरोधों के कारण नहीं हो पाता है। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के महत्त्व को निम्नलिखित चार्ट द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

आर्थिक महत्त्व

किसी भी देश की विकास की महत्वपूर्ण शर्त है कि उस देश में बुनियादी आर्थिक संरचना (सिंचाई के साधन, बिजली, यातायात एवं संचार के साधन, शक्ति के स्रोत, रेल, सड़क, वायु परिवहन की व्यवस्था) का विकास तेजी के साथ होना चाहिए। बुनियादी आर्थिक संरचना के साथ-साथ आधारभूत उद्योगों का विकास होना जरूरी है। सरकार ने लोहा, भारी इंजिनियरिंग, कोयला, बिजली के भारी उपकरण, तेल एवं प्राकृतिक गैस, रसायन एवे औषधि, उर्वरक आदि उद्योगों की स्थापना कर औद्योगिक आधार को मजबूत बनाया है। निजी क्षेत्र बुनियादी एवं आधारभूत उद्योगों की स्थापना नहीं कर सका क्योंकि इसमें भारी पूॅजी की आवश्यकता पड़ती है और तत्काल लाभ नहीं

मिलता है। सार्वजनिक क्षेत्र में अक्सर औद्योगिक इकाइयों का आधार आर्थिक कार्यकुशलता को ध्यान में रखकर ही निर्धारित किया जाता है। इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा कुछ अन्य पश्चिमी यूरोप के देशों में बिजली, प्राकृतिक गैस, टेलीफोन तथा कुछ दूसरे लोकोपयोगी उद्योगों को पैमाने की किफायतों की दृष्टि से ही सार्वजनिक क्षेत्र में रखा गया है। भारत में विभिन्न बुनियादी उद्योगों की सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापना से प्राप्त होने वाली पैमाने की किफायतों से इन उद्योगों के सामाजिक लाभ में भी वृद्धि हुई है। सार्वजनिक क्षेत्र उद्योग क्षेत्रीय असमानताओं में कमी करते हैं, आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति का उचित मूल्य निर्धारित करते हैं तथा उच्च तकनीक पर आधारित उद्योगों का विकास करने में मदद करते है इसके अतिरिक्त टिकाऊ विकास में मदद करते हैं।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व

आर्थिक महत्त्व	सामाजिक महत्त्व	सामान्य महत्त्व
। बुनियादी ढॉचा व आधारभूत ढॉचे का निर्माण	। समाजवादी समाज की स्थापना	। अनुसंधान कार्य
। आर्थिक विकास	। लाभों का सार्वजनिक हित में प्रयोग	। भविष्य के लिए देश की आर्थिक व्यवस्था में ढॉचे का निर्धारण
। प्राकृतिक साधनों का सदुपयोग	। श्रमिकों एवं उपभोक्ताओं को लाभ	
। पूँजी निर्माण	। रोजगार में वृद्धि	
। एकाधिकार एवं केन्द्रीकरण पर नियंत्रण	। शहरीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन	
। क्षेत्रीय विकास में संतुलन	। समावेशी विकास	
। सुरक्षा उपयोगों के लिए		
। व्यापार संतुलन में सहायता		
। उचित मूल्य		
। टिकाऊ विकास		
। पैमाने की किफायतें		

सामाजिक महत्त्व

उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि से श्रमिकों को एवं उपभोक्ताओं को लाभ मिलता है। उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि से रोजगार में भी वृद्धि होती है। उपभोग पदार्थ का उत्पादन करने वाले उद्योगों में निजी क्षेत्र अक्सर अधिक दिलचस्पी रखता है परन्तु इन उद्योगों का विकास भी उत्पादन वस्तु उद्योगों द्वारा प्रदान की गयी 'सेवाओं' पर निर्भर करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उपभोग वस्तु उद्योगों का विकास काफी हद तक इंजीनियरिंग वस्तु व अन्य उत्पाद वस्तुओं पर निर्भर करता है क्योंकि उत्पाद वस्तु उद्योगों का विकास करने में निजी क्षेत्र की कोई रुचि नहीं होती इसलिए राज्य को हस्तक्षेप करना पड़ता है और स्वयं इन उद्योगों का विकास करना पड़ता है। समाजवादी समाज की स्थापना का व्रत भारत सरकार ने 1954 में ली थी। इसलिए समाजवादी समाज की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि औद्योगिक विकास का दायित्व पूर्णतया सरकार के हाथ में रहे। आर्थिक संवृद्धि का लाभ सभी को मिले एवं सभी की सहभागिता को आर्थिक विकास में सुनिश्चित करना ही समावेशी विकास कहता है। यह कार्य सार्वजनिक क्षेत्र के द्वारा ही संभव है।

सामान्य महत्त्व

निजी क्षेत्र अनुसंधान पर व्यक्त करने में असमर्थ होता है जबकि सार्वजनिक क्षेत्र अल्पकालीन हानि उठाकर भी अनुसंधान कार्य चालू रख सकता है। सरकारी उद्यम भविष्य को ध्यान में रखकर निवेश करती है ताकि अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया जा सके।

19.7 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम की समस्याएँ

भारत में सार्वजनिक उपक्रम का विकास हुआ है। ये सार्वजनिक उपक्रम राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास-विस्तार कार्यक्रम में महत्वपूर्ण योगदान दिये हैं। लेकिन इन सबके होते हुए भी इस क्षेत्र के सामने अनेक कठिनाइयॉं और समस्याएँ है जिनके कारण इसके विकास एवं सुचारू रूप से संचालन में भारी रूकावटें आ रही हैं। इनकी मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित हैं-

(1) नियंत्रण और स्वायत्ता- प्रबन्ध व्यवस्था सम्बन्धी समस्याओं की चर्चा करते समय 'नियंत्रण बनाम स्वायत्ता' का प्रश्न अक्सर उठाया जाता है। सार्वजनिक उद्यमों के नियंत्रण का अर्थ है कि वे अपने काम-काज के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी है क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र उद्योग में करदाताओं का पैसा खर्च किया जाता है। इसलिए करदाताओं को यह जानने का हक है कि उनका पैसा कहॉं और कैसे खर्च किया जा रहा है। क्योंकि करदाता के प्रतिनिधि संसद में है इसलिए सार्वजनिक उद्यमों को संसद के प्रति उत्तरदायी रखा गया है। नियंत्रण का अर्थ यह भी है कि संसद को यह अधिकार रहे कि सार्वजनिक क्षेत्र के काम पर विचार करके इनकी नीतियों और कार्यकलाप में आवश्यक सुधार के लिए कानूनी तौर पर ओदश जारी कर सकें।

स्वायत्तता का आशय यह है कि प्रबन्धकों को उस उद्यम के सामान्य कार्य-संचालन को बिना बाहरी हस्तक्षेप के काम करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो।

(2) सार्वजनिक उद्यमों की मूल्य नीति-निजी क्षेत्र के उद्यमों की मूल्य नीति का मात्र एक ही आधार होता है और वह है लाभ जबकि सार्वजनिक उद्यम के मूल्य नीति का आधार हमेशा लाभ नहीं होता है क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित उद्यमों की देश के आर्थिक विकास में विशेष भूमिका होती है इसलिए इनकी मूल्य नीति इस व्यापक लक्ष्य को ध्यान में रखकर ही निर्धारित की जाती है। सार्वजनिक क्षेत्र में उर्वरक और कीटनाशक दवाइयों का उत्पादन का उद्देश्य सरकार के लिए लाभ कमाना नहीं है बल्कि इनके उपयोग को बढ़ाकर कृषि के उत्पादन को बढ़ाना है। ऐसी स्थिति में सरकार का उत्तरदायित्व बन जाता है कि उर्वरक तथा कीटनाशक दवाइयों का मूल्य नीचे रखकर इन्हें समुचित मात्रा में कृषकों को उपलब्ध करावाए। फर्टिलाइजर कार्पोरेशन आफ इण्डिया, हिन्दुस्तान इन्सेक्टिसाइड्स और कुछ इसी प्रकार के दूसरे उद्यम इस नीति के अन्तर्गत जान-बूझकर मूल्य का स्तर नीचा रखने की नीति का पालन करते रहे हैं।

(3) कुशलता का अभाव-सार्वजनिक उद्यमों के रोजमर्रा के कामकाज में अक्सर राजनैतिक हस्तक्षेप होता है जिसका उनके प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों के मनोबल पर बुरा प्रभाव पड़ता है। आमतौर पर भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी इनका प्रबन्धन करते हैं जिन्हें प्रबन्धन के बारे में कोई जानकारी नहीं होती है और न ही इनमें प्रबन्ध व्यवस्था के लिए आवश्यक 'साहस' होता है और वे परिवर्तन व प्रयोग से घबराते हैं।

इसके अलावा सार्वजनिक उद्यमों में यह पाया गया है कि यह अपने उत्पादन क्षमता का अल्प प्रयोग करते हैं क्योंकि इनमें अधिक कार्य करने की प्रेरणाओं का अभाव पाया जाता है। इन सब उद्यमों में राजनैतिक हस्तक्षेप, कर्मचारियों की अधिक संख्या, परियोजना के आयोजन व निर्माण में कठिनाइयॉं जैसी समस्याएँ अक्सर पायी जाती है।

19.8 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम के निम्न निष्पादन के कारण

सार्वजनिक उपक्रम का यद्यपि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में सफलता मिली है परन्तु वह विनियोजित पूँजी की तुलना में पर्याप्त नहीं है। सार्वजनिक उपक्रमों के निम्न निष्पादनता के लिए निम्नलिखित कारणों को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है-

(1) सार्वजनिक उपक्रम अपनी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाते हैं।

(2) सार्वजनिक उद्यमों में व्याप्त लालफीताशाही के कारण उत्पादन, क्रय-विक्रय आदि निर्णय समय पर न होने के कारण इनकी निष्पादनता में कमी आती है।

(3) इन उद्यमों का प्रबन्धन प्रायः सरकारी अधिकारियों और राजनीतिज्ञों को सौंपा जाता है जो व्यापार के प्रबन्धन के बारे में जरा भी ज्ञान नहीं रखते हैं। इन उपक्रमों में उचित प्रबन्धकीय योग्यता के अभाव के कारण स्टाक की मात्रा सदा ही अधिक रहती है। अत्यधिक स्टाक रहने से पूँजी का एक बहुत बड़ा भाग इसमें विनियोजित रहता है जिससे लाभ कम हो जाता है।

(4) सार्वजनिक उद्यम जैसे इस्पात, इंजिनियरिंग, रसायन एवं उर्वरक में परिपक्तवता की अवधि लम्बी होने के कारण इन उद्यमों की लाभदायकता कम हो जाती है।

(5) सार्वजनिक उद्यमों में लाभ कम होने का प्रमुख कारण है कि इसके प्रबन्ध से सम्बन्धित व्यक्तियों को कोई व्यक्तिगत जोखिम नहीं रहता है। संस्थान चाहे लाभ पर चले या हानि पर, उन्हें अपने वेतन से मतलब होता है जो महीने के अन्त में मिल जाता है।

(6) यह उपक्रम श्रम कल्याण तथा सामाजिक सुविधाओं पर अधिक व्यय करते हैं। इन सभी कारणों से इनकी लाभदायकता कम रहती है।

(7) सार्वजनिक उद्यम प्रबन्धकीय एवं प्राविधिक कर्मचारियों के सम्बन्ध में अपने आन्तरिक साधन आवश्यक सीमा तक विकसित नहीं कर पाये हैं। परिणामतः इसे निरन्तर विदेशी विशेषज्ञों और सरकार से डेपुटेशन पर आये हुए कर्मचारियों पर निर्भर रहना पड़ता हैं

(8) सार्वजनिक उपक्रम उन स्थानों पर स्थापित किये जाते हैं जहॉ पर आवश्यक सुविधाओं का अभाव होता है। इसके कारण कच्चा माल प्राप्त करने एवं पक्का माल बाजार में भेजने की लागत का व्यय अधिक होने से इनके लाभ में कमी आती है।

(9) सरकार ने निजी क्षेत्र के रुग्ण इकाइयों का स्वामित्व अपने हाथ में ले लिया है। इनके अधीनीकरण से सार्वजनिक उद्यमों के लाभ में गिरावट आयी है।

(10) सार्वजनिक उपक्रमों की लाभदेयता के कम होने का कारण है- कर्मचारियों की मनोवृत्ति। ये कर्मचारी हानि को कम करने का प्रयास नहीं करते हैं। इसके विपरीत ये सरकारी कर्मचारियों की भॉति अधिक भत्ते व वेतन एवं सभी सुविधाओं की मांग करते हैं।

निजी क्षेत्र के उद्यम की तरह सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम लाभ नहीं कमा पाते। कभी-कभी सार्वजनिक उद्यम घाटे में भी चले जाते हैं। इसके बावजूद भी देश के आर्थिक एवं सामाजक विकास में इनका महत्वपूर्ण योगदान होता है। सार्वजनिक उद्यम इकाइयों के निष्पादन का मूल्यांकन केवल उनके द्वारा कमाये गये लाभ के द्वारा ही नहीं अपितु इस आधार पर होना चाहिए कि ये उद्यम अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं सेवाओं में क्या योगदान दिया है। इसलिए लाभ के स्थान पर उद्यम की कुल बिक्री का मूल्य देखना चाहिए क्योंकि ये उद्यम पूँजीगत या उत्पाद-वस्तु उद्योगों में निवेश करते हैं जो उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के उत्पादन में मदद करते हैं इसके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र केवल पूॅजी प्रधान नहीं है, इस्पात उद्योग में तो यह उत्पाद-प्रधान भी है। इसलिए उसमें वर्धित मूल्य अन्य उद्योगों (जैसे रासायनिक उद्योग) की तुलना में कम होता है।

सार्वजनिक उद्यमों का मूल्यांकन उसके सामाजिक लाभ एवं सामाजिक लागत की तुलना के द्वारा होना चाहिए न कि उसके लाभ की दर के आधार पर। जहॉ तक सार्वजनिक उद्यम के निष्पादन का सम्बन्ध है, सार्वजनिक क्षेत्र का निष्पादन संतोषजनक रहा है। देश की रोजगार स्थिति में सुधार लाने में सार्वजनिक क्षेत्र ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सार्वजनिक उद्यमों में रोजगार अवसरों में प्रति वर्ष 5 प्रतिशत की वृद्धि होती है जो निजी उद्योगों की तुलना में होने वाली वृद्धि से अधिक है। सार्वजनिक उद्यमों ने श्रमिकों के लिए सामाजिक सुविधाएँ उपलब्ध करायी है। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि सार्वजनिक उद्यम की इकाइयों की बजटीय साधन पर निर्भरता में कमी आयी है तथा आंतरिक साधन सृजन में वृद्धि हुई है। सार्वजनिक उद्यम दूसरी पंचवर्षीय योजना से लगातार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णायक भूमिका अदा की है जिसे उत्पादन के मूल्य द्वारा नहीं मापा जा सकता

है। निजी क्षेत्र को कभी भी इस तरह की जिम्मेदारी नहीं उठानी पड़ी। वस्तुतः वह अपनी तकनीकी क्षमताओं और तकनीकी विशेषज्ञों की आपूर्ति के लिए सार्वजनिक क्षेत्र पर निर्भर बना रहा।

19.9 सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों के निष्पादनता में सुधार के लिए सुझाव

सार्वजनिक उद्यमों के निष्पादनता में सुधार तभी संभव है जब ये उपक्रम अपने कार्य कुशलता, प्रबन्धन, वित्त व्यवस्था इत्यादि में सुधार लाए। विभिन्न प्रकार के उपाय अपनाकर इनकी लाभकारिता व कार्यकुशलता को बढ़ाया जा सकता है। उपाय निम्नलिखित है-

(1) कार्यकुशलता में सुधार- प्रबन्धन में सुधार लाकर उसे वैज्ञानिक एवं व्यवसायिक रुप देना जरूरी है। सार्वजनिक उद्यमों के उत्पादन की लागत बहुत अधिक होती है क्योंकि ये उत्पाद-वस्तुओं का उत्पादन करते हैं तथा इनकी स्थापना ऐसे स्थान पर होती है जहॉ सुविधाओं का अभाव पाया जाता है। लागते कम करने के लिए अनेक कदम उठाये जा सकते हैं। सबसे महत्वपूर्ण कदम- (क) उद्यमों की क्षमता का भरपूर उपयोग करना, (ख) क्रय-विक्रय की उचित व्यवस्था, और (ग) बेहतर प्रबन्ध एवं संगठनात्मक संयोजन द्वारा कार्यकुशलता में सुधार लाया जा सकता है।

(2) औद्योगिक सम्बन्ध में सुधार - औद्योगिक सम्बन्ध से आशय उद्यम में उत्पादन कार्य में लगे हुए व्यक्तियों के मानवीय सम्बन्धों से है। इनके सम्बन्धों में सुधार लाकर लोक उपक्रम के निष्पादन में वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। पॉचवी पंचवर्षीय योजना में तीन बातें अनिवार्य ठहरायी गयी हैं-(क) उच्चतर कार्य संचालन के लाभों के बंटवारे की उचित पद्धति का प्रबन्ध, उदाहरणतया एक सीमा तक श्रमिकों को शेयरधारी बनाने की आवश्यकता, (ख) कर्मचारियों के प्रतिनिधियों और प्रबन्धकों के बीच प्रभावकारी सौदाकारी सम्बन्धों के बारे में संस्थागत ढॉचे की व्यवस्था, तथा (ग) औद्योगिक लोकतंत्र की भावना पैदा करने के लिए सभी कर्मचारियों को शिक्षा की व्यवस्था आदि से गुणात्मक सुधार संभव है।

(3) कीमत निर्धारण नीति - सार्वजनिक उद्यमों की सबसे बड़ी समस्या कीमत निर्धारण नीति है। कीमत नीति के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी विचारधाराएँ सामने आती हैं, ये हैं-'लोक उपयोगिता' बनाम 'प्रतिफल दर' विचारधारा। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को पारम्परिक अर्थ में लोक उपयोगिता के तुल्य मानते हैं क्योंकि सार्वजनिक उद्यम आधारभूत उद्योगों की परिधि में आते हैं। अतः इनके उत्पादों की कीमत बहुत ऊँची रखी गयी, तो इससे अर्थव्यवस्था के अनेक अंगों में लागतें बढ़ जायेगी। वैश्वीकरण के दौर में सार्वजनिक उद्यमों को 'प्रतिफल दर' नीति भी अपनानी चाहिए। निर्माण व संचालन की व्यवस्था के साथ-साथ लागत को कीमत नीति से जोड़ना आवश्यक है। अगर उत्पाद का उद्देश्य सामाजिक हित की रक्षा करना न हो तो कीमत को लागत से ऊँची रख सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर 'न लाभ न हानि' को आधार बनाया जा सकता है।

सरकारी उपाय

(1) निजीकरण नीति- औद्योगिक नीति 1991 में सार्वजनिक क्षेत्र के सुधार के लिए चार प्रमुख कदम उठाये गये जिसमें से एक निजीकरण की नीति थी। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या में कमी कर दी गयी।

(2) विनिवेश नीति- सरकार ने नई औद्योगिक नीति के तहत साधन एकत्रण के लिए तथा सामान्य जनता व श्रमिकों की सार्वजनिक क्षेत्रों में भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ चुने हुए सार्वजनिक उद्यमों के शेयरों का विनिवेश किया। विनिवेश का मुख्य लक्ष्य बजट के लिए गैर-स्फीतिकारी बजट व वित्तीय साधन जुटाना है- अन्य सभी लक्ष्य इस लक्ष्य की तुलना में गौण है। सरकार ने मोटे तौर पर विनिवेश की दो विधियों का प्रयोग किया है- (क) विशिष्ट सार्वजनिक उद्यमों के शेयरों की बिक्री, तथा (ख) सार्वजनिक इकाइयों की निजी क्षेत्र के उद्यमियों के हाथ बिक्री। इसे स्ट्रैटेजिक बिक्री की संज्ञा दी जाती है।

(3) बाजार उन्मुखता - सार्वजनिक उद्यमों का कार्य संचालन बाजार कीमतों और प्रतियोतगिता के आधार पर करने के लिए इन उद्यमों को एकाधिकार आयोग के अन्तर्गत ला दिया गया है। अब निजी क्षेत्र की भॉति, अब सरकार सार्वजनिक उद्यमों के मामले भी औद्योगिक तथा वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड को सौंपा करेगी।

(4) अस्वस्थ इकाइयों के लिए नीति - 1991 की औद्योगिक नीति में सार्वजनिक उद्यमों को भी औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के दायरे में लाया गया है। यह निर्धारित करने की जिम्मेदारी बोर्ड को दी गयी है कि कौन सी अस्वस्थ सार्वजनिक इकाई का पुनर्गठन संभव है और किस इकाई को बन्द किया जाना है। इसके अलावा इस नीति में सार्वज्निक उद्यमों के प्रबन्धकों को अधिक अधिकार एवं स्वायत्तता प्रदान किया गया तथा उन्हें निष्पादन के लिए उत्तरदायी बनाने की व्यवस्था की गयी।

(5) मूल्य नीति - 1991 में नयी आर्थिक नीति की घोषणा के बाद सार्वजनिक उद्यमों की मूल्य नीति में स्पष्ट परिवर्तन हुआ है। नई नीति में बाजार-आधारित मूल्य नियमन नीति अपनाने की चेष्टा की गयी है। कई उपभोक्ता वस्तुओं पर से कीमत नियंत्रण हटा लिए गये हैं। सीमेन्ट और इस्पात के मूल्य विनियंत्रित कर दिए गये हैं। प्रशासित मूल्य को अब केवल लोकहित सेवाओं, परिवहन सेवाओं तथा कोयला व पेट्रोलियम तक सीमित कर दिया गया है।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) सार्वजनिक उद्यम की कार्यशैली का नियंत्रण एवं नियमन किसके द्वारा किया जाता है?

(ख) सार्वजनिक उद्यमों की मूल्य नीति का आधार बताइए।

(ग) औद्योगिक नीति 1991 में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम के सुधार के लिए चार प्रमुख कदम बताइये।

सत्य/असत्य बताइये-

(क) सार्वजनिक उपक्रमों का स्वामित्व निजी हाथो में होता है।

(ख) सार्वजनिक उपक्रमों का निर्णय प्रक्रिया सार्वजनिक हित निहित होता है।

(ग) सरकारी उद्यमों की वित्त व्यवस्था सरकार द्वारा बजट में व्यवस्था करके प्रदान की जाती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) सार्वजनिक उपक्रमों का दूसरा नाम है-

(अ) लोक उपक्रम (ब) निजी उपक्रम (स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

(ख) सार्वजनिक उपक्रम का उद्देश्य होता है-

(अ) लाभ कमाना (ब) आर्थिक विकास

(स) सामाजिक विकास (द) आर्थिक एवं सामाजिक विकास

(4) एक पंक्ति अथवा एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न-

(क) सार्वजनिक उपक्रम किसके प्रति उत्तरदायी होते हैं?

(ख) समाजवादी समाज की स्थापना का व्रत भारत सरकार ने कब ली थी?

(ग) सार्वजनिक उद्यमों का मूल्यांकन किस आधार पर होना चाहिए?

रिक्त स्थान भरिए-

(क) भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के विकास को ..... और ..... से गति मिली।

(ख) सार्वजनिक उद्यमों को औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड के दायरे में .....नीति में लाया गया।

(ग) सावर्जनिक उपक्रम के प्रबंध में ..... का पालन किया जाता है।

19.10 सारांश

भारत के वर्तमान आर्थिक ढॉचे को प्रायः मिश्रित अर्थव्यवस्था के नाम से पुकारा जाता है इस व्यवस्था में उत्पादन के दो क्षेत्र हैं, पहला सार्वजनिक क्षेत्र और दूसरा निजी क्षेत्र। सार्वजनिक क्षेत्र को लोक उपक्रम भी कहते हैं, इसका प्रबन्धन, संचालन एवं स्वामित्व केन्द्र, राज्य या स्थानीय सरकार अथवा किसी अन्य लोक संस्था के अधीन होता है। यह लाभ आधारित उद्योग नहीं होता है। इस उद्देश्य से आर्थिक एवं सामाजक ढॉचे का विकास करना है, जबकि निजी उद्यम का आधार लाभ ही होता है। सार्वज्निक उद्योग देश के बुनियादी आर्थिक संरचना एवं मजबूत औद्योगिक आधार प्रदान करते हैं। जैसा कि ए.एच. हैन्सन ने कहा है, 'यदि यह मान भी लिया जाय कि राज्य का काम केवल मूलभूत सेवाओं को प्रदान करना है तो भी विनिर्माण क्षेत्र, बिजली परिवहन, संचार इत्यादि क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता। उपभोग पदार्थों का उत्पादन करने वाले उद्योगों में निजी क्षेत्र अधिक दिलचस्पी रखता है परन्तु इन उद्योगों का विकास भी उत्पाद वस्तु

उद्योगों पर निर्भर करता है। उद्योगों का विकास भी उत्पाद वस्तु उद्योगों पर निर्भर करता है। इसलिए उपभोग वस्तु उद्योग का विकास काफी हद तक सार्वजनिक उद्यमों के विकास पर निर्भर करता है क्योंकि उत्पाद वस्तु उद्योग के विकास में निजी क्षेत्र की कोई रुची नहीं होती है इसलिए राज्य को हस्तक्षेप करना पड़ता है और स्वयं इन उद्योगों का विकास करना पड़ता है। सार्वजनिक उद्योग क्षेत्रीय असमानताओं में कमी लाते हैं, आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण पर नियंत्रण रखते हैं, रोजगार एवं श्रम कल्याण में वृद्धि करते हैं। इसके अतिरिक्त आवश्यक वस्तु के कीमतों को नियंत्रत्रित करने में मदद करते हैं।

19.11 शब्दावली

टिकाऊ विकास: टिकाऊ विकास को सम्पोषी विकास या सतत् विकास भी कहते हैं। ब्रूडलैण्ड आयोग के अनुसार टिकाऊ विकास ''विकास की वह प्रक्रिया है जिसमें वर्तमान की आवश्यकताएं, बिना भावी पिढ़ी की क्षमता, योग्यताओं से समझौता किये, पूरी की जाती है।''

समावेशी विकास: समावेशी विकास का सामान्य अर्थ है- आर्थिक विकास एवं सामाजिक विकास की मुख्य धारा में सबको जोड़ना है जिससे आर्थिक विकास से सभी लोग सामान्य रुप से लाभान्वित हो सकें।

पैमाने की किफायतें: पैमाने की किफायतें से तात्पर्य बड़े पैमाने पर वस्तु का उत्पादन करना है जिससे प्रति इकाई उत्पादन लागत में कमी आती है।

पूँजी निर्माण: पूँजी निर्माण से तात्पर्य किसी दी हुई अवधी में उपलब्ध पूँजीगत वस्तु जैसे मशीन, बिजली, शिक्षा, स्वास्थ्य, अनुसंधान आदि के उत्पादन में वृद्धि से है। दूसरे शब्दों में पूँजी निर्माण से तात्पर्य पूँजीगत वस्तु के उत्पादन में वृद्धि से है।

19.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) (क) सार्वजनिक उद्यम की कार्यशैली का नियंत्रण एवं नियमन शीर्ष स्तर पर बैठे राजनीतिज्ञों द्वारा किया जाता है।

(ख) सार्वजनिक उद्यमों की मूल्य नीति का आधार हमेशा लाभ नहीं होता है बल्कि देश के आर्थिक विकास को सुदृढ़ एवं समृद्ध बनाना होता है।

(ग) औद्योगिक नीति 1991 में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम के सुधार के लिए चार प्रमुख कदम थे- (1) निजीकरण नीति, (2) विनिवेश नीति, (3) बाजार उन्मुखता, तथा (4) अस्वस्थ इकाईयों के लिए नीति।

(2) (क) असत्य- सार्वजनिक उपक्रमों का स्वामित्व सरकार के हाथों में होता है।

(ख) सत्य

(ग) सत्य

(3) (क) (अ) लोक उपक्रम

(ख) (द) आर्थिक एवं सामाजिक विकास

(4) (क) सार्वजनिक उद्यम जनता, सरकार एवं संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(ख) समाजवादी समाज की स्थापना का व्रत भारत सरकार ने 1954 में किया था।

(ग) सार्वजनिक उद्यमों का मूल्यांकन सामाजिक लाभ एवं सामाजिक लागत की तुलना के द्वारा होना चाहिए न कि उसके लाभ के आधार पर।

(5) (क) औद्योगिक नीति, 1948 और औद्योगिक नीति, 1956

(ख) 1991 की औद्योगिक नीति

(ग) सरकारी प्रशासन की पद्धतियों एवं नियमों

19.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

- दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम् के.पी.एम. (2006), 'भारतीय अर्थव्यवस्था', एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली
- मिश्र, एस.के. एवं पुरी वी.के. (2007), 'भारतीय अर्थव्यवस्था', हिमालया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई
- अग्रवाल, एन. (2007), 'भारतीय अर्थव्यवस्था - विकास एवं आयोजन', न्यू एज इन जर्नल पब्लिशर्स

19.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एस.सी. जैन, 'भारतीय अर्थव्यवस्था', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
2. वी.सी. सिन्हा, 'अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

19.15 निबंधात्मक प्रश्न

(क) सार्वजनिक क्षेत्र किसे कहते हैं? इसके औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका को समझाइये।

(ख) सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम की क्या समस्यायें हैं? इन समस्याओं के समाधान हेतु उपाय बताइए।

(ग) सार्वजनिक उपक्रमों के निष्पादनता में कमी के कारण बताइए तथा निष्पादनता में सुधार के लिए उपाय की व्याख्या कीजिए।

इकाई 20: लघु क्षेत्र उद्यम

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 लघु उद्योग का अर्थ एवं परिभाषा
20.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में उद्योग का वर्गीकरण
20.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु क्षेत्र उद्योग का महत्व
20.6 लघु क्षेत्र उद्योग की समस्याएँ
20.7 लघु क्षेत्र उद्योगों की समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव
20.8 लघु उद्योगों के विकास के लिए सरकारी नीति
20.9 नयी लघु उद्योग नीति
20.10 सारांश
20.11 शब्दावली
20.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
20.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
20.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
20.15 निबन्धात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

लघु क्षेत्र उद्योग खण्ड 5 की भारतीय औद्योगिक संरचना से सम्बन्धित बीसवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई में आपने सार्वजनिक क्षेत्र उद्यम के बारे में जानकारी प्राप्त किए। अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि सार्वजनिक उद्यम किसे कहते हैं। इनकी क्या समस्या है। यह देश के आर्थिक विकास में कैसे मदद करते हैं।

अन्य समस्याओं के अतिरिक्त भारत की सबसे बड़ी समस्या बेरोजगारी की है। लघु क्षेत्र उद्योग बेरोजगारी जैसी समस्या को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि इन उद्योगों में कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। प्रस्तुत इकाई में लघु क्षेत्र उद्यम क्या है? इसके वर्गीकरण एवं आवश्यकता के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप लघु क्षेत्र उद्यम की परिभाषा बता पायेंगे। लघु क्षेत्र उद्यम रोजगार प्रदान करने में कैसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं एवं इनकी समस्याओ तथा नयी लघु उद्योग नीति के बारे में विस्तार से चर्चा कर सकेंगे।

20.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि-

- लघु उद्योग क्या है?
- लघु एवं कुटीर उद्योग में अन्तर स्पष्ट कर पायेंगे।
- लघु क्षेत्र के उद्योगों की समस्या एवं समाधान की व्याख्या कर सकेंगे।
- 1991 की नई लघु उद्योग नीति क्यों बनायी गयी?

21.3 लघु उद्योग का अर्थ

यद्यपि कुटीर उद्योगों को लघु उद्योग कहा जाता है लेकिन 1950 के राजकोषीय आयोग ने कुटीर तथा लघु उद्योगों में अन्तर स्पष्ट किया है। राजकोषीय आयोग के अनुसार कुटीर उद्योग वे उद्योग होते हैं जिनमें परिवार के सदस्य कार्य करते हैं। यह उद्योग पूर्णकालिक व्यवसाय के रुप में या अंशकालिक व्यवसाय के रुप में चलाये जाते हैं जिनमें परम्परागत विधियों एवं स्थानीय कच्चे माल का प्रयोग होता है तथा उत्पादित वस्तुओं को स्थानीय बाजार में बेचा जाता है। औद्योगिक विकास तथा विनियमन अधिनियम, 1955 में जिन उद्योगों को पंजीकरण से मुक्त रखा गया था उन उद्योगों को 'लघु अथवा छोटे पैमाने वाला क्षेत्र' कहा गया। जिन उद्योगों में विद्युत शक्ति का प्रयोग होता था, किन्तु मजदूरों की संख्या 50 से कम थी और जिन उद्योगों में विद्युत शक्ति का प्रयोग नहीं होता था

तथा श्रमिक संख्या 100 से कम थी, उनका पंजीकरण आवश्यक नहीं था। इस क्षेत्र को लघु उद्योग कहा गया। औद्योगिक विकास तथा निनियमन अधिनियम, 1955 में पंजीकरण से मुक्त रखा। इस क्षेत्र की परिधि से बाहर वाले उद्योगों को 'बड़े पैमाने के उद्योग' की संज्ञा दी गयी। बड़े पैमाने के उद्योग के अन्तर्गत उन उद्योगों को रखा गया जिनमें विद्युत शक्ति सहित 50 या इससे अधिक मजदूर और विद्युत शक्ति के बिना 100 अथवा उससे अधिक मजदूर काम करते हैं।

20.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योग का वर्गीकरण

छोटे, लघु एवं मझोले उद्यम विकास अधिनियम, 2006 के अन्तर्गत उद्योगों को दो श्रेणियों में बॉटा गया है जिसे चार्ट द्वारा दिखाया गया है-

अब आप समझ गये होंगे कि विनिर्माण उद्योग एवं सेवा उद्योग में क्या अन्तर है।

20.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु क्षेत्र उद्योग का महत्व

भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्था में लघु क्षेत्र के उद्योग आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक पहलुओं से औद्योगिक विकास की आधारशिला है। अतः सरकार को संतुलित अर्थव्यवस्था की दृष्टि से कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योग के विकास को महत्व प्रदान करना चाहिए। लघु क्षेत्र उद्यम का महत्व निम्नलिखित है-

(1) रोजगार में वृद्धि- भारत जैसे अर्द्धविकसित देश में जहॉ श्रमिक अधिक मात्रा में है और पूॅजी की कमी है। ऐसे पूॅजी अभाव एवं श्रम प्रधान देश में लघु उद्योग उपयुक्त है क्योंकि इन उद्योगों द्वारा कम पूॅजी के विनियोग से भी रोजगार में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है। 2001 में इस उद्याग में 19.2 मिलियन लागों का रोजगार प्रदान किया था। औद्योगिक क्षेत्र के कुल रोजगार का 80 प्रतिशत लोगों को रोजगार इसी उद्योग में मिला हुआ है।

(2) आय वितरण में समानता- बड़े उद्योगों की तुलना में लघु उद्योगों का स्वामित्व अधिक से अधिक हाथों में जाता है जिससे आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण नहीं होता है फलस्वरुप राष्ट्रीय आय का समान वितरण होता है।

(3) बड़े उद्योगों के लिए सहायक या पूरक- लघु उद्योग बड़े उद्योगों को कच्चा माल प्रदान करते हैं जिससे उपभोग वस्तुओं का निर्माण होता है। इस तरह से ये उद्योग बड़े उद्योग के पूरक होते हैं।

(4) तकनीकी ज्ञान की कम आवश्यकता - इन उद्योगों को चलाने के लिए आधुनिक तकनीकी की कम आवश्यकता होती है जिससे ग्रामीण व्यक्ति भी इस उद्योग को चला सकते हैं।

(5) आयात और निर्यात- लघु उद्योग स्थानीय संसाधनों का एवं परम्परागत तकनीकी के प्रयोग से वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिससे आयात पर निर्भरता कम होती है। ये उद्योग कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जैसे हाथी दांत पर काम, चन्दन की वस्तुएँ, पत्थर की मूर्तियॉं, धातु की मूर्तियॉं आदि तथा इनका निर्यात करते हैं जिससे विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

(6) वर्ग-संघर्ष से बचाव- छोटे उद्योग में परिवार के सदस्य ही कार्य करते हैं या बहुत कम मात्रा में मजदूरी के बदले में श्रमिक रखे जाते हैं। लघु उद्योगों में मालिक व मजदूरों में परस्पर सम्बन्ध भी अच्छे रहते हैं। फलस्वरूप वर्ग संघर्ष की सम्भावनाएँ कम रहती है।

(7) कृषि पर जनसंख्या के भार में कमी- भारत जैसे विकासशील देश में जहॉं जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है जिसके कारण कृषि पर दबाव भी बढ़ता जा रहा है ऐसी स्थिति में लघु उद्योग ही अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

(8) शीघ्र उत्पादक उद्योग- लघु उद्योग में स्थापना के तुरन्त बाद वस्तुओं का उत्पादन शुरू हो जाता है इसलिए इनको शीघ्र उत्पादक उद्योग भी कहते हैं। भारत में वस्तुओं की मॉंग की तुलना में बड़े उद्योग वस्तुओं की पूर्ति करने में असफल होते हैं क्योंकि वृहद उद्योगों की स्थापना एवं उनके द्वारा उत्पादन करने के समय में वर्षों का अन्तर होता है इसलिए लघु उद्योग वस्तुओं की मॉंग की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(9) शहरीकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव से सुरक्षा- ये उद्योग सामान्यतः स्थानीय होते हैं इसलिए बड़े उद्योगों की समस्याओं जैसे- आवास की समस्या, यातायात, पानी, जल निकासी, दूषित वातावरण जैसी समस्याओं से मुक्ति मिल जाती है।

(10) विकेन्द्रीकरण- लघु उद्योग विकेन्द्रीकरण का महत्वपूर्ण साधन है। भारत में मिल उद्योग का अभी तक जो विकास हो पाया है, वह मुख्यतः मुम्बई, अहमदाबाद, नागपुर, कोलाकाता आदि कुछ नगरों तक ही सीमित रहा है। परिणामस्वरूप देश में आर्थिक एवं सामाजिक विषमताएँ उत्पन्न हुई है। ऐसी समस्याओं के समाधान हेतु लघु उद्योग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लागत थोड़ी होने एवं आधारित संरचना जैसी सुविधाओं की कम जरुरत पड़ने के कारण ये उद्योग अपेक्षाकृत अधिक आसानी से देश के विभिन्न भागों में फैलाये जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त लघु उद्योग फूड प्रोसोसिंग क्षेत्र में भी अपना योगदान दे रहे हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लघु क्षेत्र उद्यम हमारी अर्थव्यवस्था की एक ऐसी महत्वपूर्ण इकाई है जिस पर भारतीय अर्थव्यवस्था की एक संतुलित क्षेत्रीय विकास की नींव रखी जा सकती है।

20.6 लघु उद्योग की समस्या

लघु एवं कुटीर उद्योगों को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनके परिणामस्वरुप कई इकाइयॉ बीमार हो जाती है तथा कई इकाइयॉ बन्द हो जाती है। लघु क्षेत्र उद्यम के विकास हेतु सरकार द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं फिर भी ये उद्योग कुछ आधारभूत, वित्तीय एवं बाजार व्यवस्था जैसी समस्याओं से ग्रसित है जिनके कारण ये उद्योग प्रगति नहीं कर पा रहे हैं। इन उद्योगों की प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित है-

(1) कच्चे माल की समस्या- इन उद्योगों की सबसे बड़ी समस्या कच्चे माल की है जो उन्हें उचित समय तथा उचित मूल्य पर नहीं मिल पाता है। अधिकांश कुटीर उद्योग कच्चे माल के लिए स्थानीय स्रोतों पर निर्भर रहते हैं। हथकरघा उद्योग सूत की पूर्ति के लिए स्थानीय व्यापारियों पर निर्भर रहता है। ये व्यापारी बुनकरों को प्रायः इस शर्त पर कच्चा माल बेचते हैं कि बुनकर कपड़ा उन्हीं को बेचेंगे। इस तरह बुनकरों का दोहरा शोषण होता है। एक ओर तो ये बुनकरों से कच्चे माल की अधिक कीमत लेते हैं और दूसरी ओर उन्हें तैयार माल की कम कीमत देते हैं।

(2) संगठित बाजार का अभाव- लघु क्षेत्र उद्यम के पास कोई संगठन नहीं है। प्रायः इन उद्योगों को वस्तुओं को बेचने के लिए चालबाज मध्यस्थों पर निर्भर रहना पड़ता है जो उनका शोषण करते हैं।

(3) वित्त की समस्या- छोटे आकार के होने के कारण इन उद्योगों को वित्तीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। व्यापारिक बैंकों से ऋण लेने में उन्हें वैधानिक कार्यवाहियॉ करनी पड़ती है और तत्पश्चात समय-समय पर रिटर्न भेजने पड़ते हैं। अतः इन कागजी समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए साहूकारों पर निर्भर हो जाते हैं जो उनका शोषण करना शुरू कर देते हैं।

(4) मशीनें और प्रौद्योगिक- शिक्षा के अभाव, बाजार की समस्या एवं परम्पागत तकनीक के प्रयोग से इन उद्योगों की उत्पादन लागत अधिक होती है। ये उद्योग शिक्षा व वित्त के अभाव में नई प्रौद्योगिक/तकनीक का प्रयोग नहीं कर पाते हैं।

(5) बड़े उद्योगों से प्रतियोगिता- बड़े पैमाने के उद्योग की तुलना में लघु क्षेत्र उद्योग के वस्तु महँगे होते हैं एवं इनकी कीस्म भी अच्छी नहीं होती है इसलिए लघु क्षेत्र उद्योग प्रतियोगिता में ठहर नहीं पाते।

(6) प्रमापीकरण का अभाव- इन उद्योगों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं में एकरुपता का अभाव रहता है। अतः प्रामाणिकता के अभाव के कारण इनके वस्तओं की कीमत में अन्तर पाया जाता है जिससे संगठित बाजार में इनकी बिक्री कठिन हो जाती हैं

(7) परम्परागत तकनीक- लघु क्षेत्र उद्योग परम्परागत तकनीक के प्रयोग से वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। परिणामस्वरुप इनकी लागत अधिक होती है इसलिए इन वस्तुओं की मांग में कमी आ

जाती है जिसके कारण इन उद्योगों के स्वामी न चाहते हुए भी उद्योग को बन्द करने के लिए विवश हो जाते हैं।

(8) औद्योगिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था- इन उद्योगों के स्वामी प्रशिक्षित नहीं होते हैं एवं इनमें प्रशिक्षण की कमी होती है जिससे अपनी क्षमताओं का भरपूर प्रयोग करने में असमर्थ होते हैं।

(9) सूचना व परामर्श का अभाव- इन उद्योगों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि इनसे सम्बन्धित परामर्श देने वाली संस्थाओं की भी कमी है।

(10) विद्युत शक्ति की कमी- लघु क्षेत्र उद्योगों को सस्ते दर पर बिजली न मिलने के कारण भी ये उद्योग दम तोड़ देते हैं।

(11) लघु उद्योग में रुग्णता- लघु इकाईयों के सन्दर्भ में दो मुख्य मुद्दे हैं- (1) बहुत सी ऐसी रुग्ण इकाइयॉं है जिनको चलाना संभव नहीं है, (2) ऐसी रुग्ण इकाइयॉं का पुनर्वास जिन्हें दोबारा चला सकने की सम्भावना है। लघु उद्योग की रुग्णता की समस्या अत्यन्त गंभीर है। मार्च 2004 के अन्त में देश में कुल 3.1 लाख लघु औद्योगिक इकाइयॉं रुग्णता का शिकार थी। इनमें सर्वाधिक इकाईयॉं बिहार में व दूसरे स्थान पर उत्तर प्रदेश में थी।

(12) अन्य समस्याएँ- लघु क्षेत्र उद्योग के विकास में कई कारक बाधक है जैसे बाजार स्थिति के बारे में अपूर्ण जानकारी, प्रबन्धकीय एवं तकनीकी कौशल की कमी, परिवहन की सुविधाओं का अभाव, विज्ञापन की कमी, स्थानीय ऊँचे कर, सामान्य शिक्षा का अभाव, अनुसंधान की कमी, बीमार इकाइयॉं तथा उद्योगों के मध्य आपसी संगठन का अभाव आदि। इन उद्योगों के विकास के लिए जो एजेंसिया बनाई गयी है उनमें परस्पर सहयोग एवं तालमेल का अभाव है।

20.7 लघु उद्योगों की समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव

लघु क्षेत्र उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ये उद्योग स्थानीय संसाधनों का दोहन करके रोजगार सृजन करते है तथा औद्योगिक विकेन्द्रीकरण को रोकने में मदद करते है। इसलिए इनकी समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव निम्नलिखित है-

(1) कच्चे माल की आपूर्ति- लघु क्षेत्र उद्योगों को सस्ते दर पर कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित होनी चाहिए।

(2) बाजार की सुविधाएँ- इन उद्योगों के उत्पादित माल के लिए बिक्री एवं विपणन जैसी सुविधाएँ सुनिश्चित होनी चाहिए। अतः इन उद्योगों के उत्पादों की बिक्री के लिए एक केन्द्रीय विक्रय संस्था की

स्थापना की जानी चाहिए जो विभिन्न संस्थाओं से निश्चित प्रमाप के अनुसार माल तैयार कराएं एवं बेचने की व्यवस्था करें।

(3) साख सुविधाएँ- लघु उद्योगों को साख की सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए तथा इनकी प्रक्रिया सरल होनी चाहिए जिससे कि ये साहूकारों के चंगुल में न फँस सके।

(4) उत्पादन तकनीकी में सुधार- अच्छी किस्म की वस्तुओं का उत्पादन एवं कम कीमत पर इनको उपलब्ध कराना तभी सम्भव है जब ये उद्योग अपनी उत्पादन तकनीक में सुधार लाए। इन उद्योगों के तकनीकों में सुधार लाकर इन्हें बड़े उद्योगों के प्रतियोगिता के लिए तैयार किया जा सकता है।

(5) लघु उद्योग प्रदर्शनियॉं - लघु उद्योग के उत्पाद के लिए प्रदर्शनियों की व्यवस्था करनी चाहिए। इन प्रदर्शनियों को केवल बड़े नगर तक ही सीमित न रखकर देश के विभिन्न भागों में लगाया जाना चाहिए जिससे उपभोक्ता इन उद्योगों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकें।

(6) विशाल एवं लघु उद्योगों में समन्वय - लघु एवं वृहद उद्योगों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए कागज उद्योग में लुगदी बनाने का कार्य लघु उद्योग क्षेत्रों को तथा कागज बनाने का कार्य विशाल उद्योगों को सौंपा जा सकता है।

(7) औद्योगिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था- लघु उद्योग के स्वामियों को एवं उनमें कार्य करने वाले कर्मचारियों को औद्योगिक प्रशिक्षण एवं शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए ताकि वे आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का सहजता से प्रयोग कर सकें। इन सबके लिए गांवों एवं कस्बों में प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करना चाहिए।

(8) उपयुक्त उद्योग का चयन- लघु उद्योग के विकास के लिए ऐसे उद्योगों को चुनना चाहिए जिनके भावी विकास की संभावनाएं अधिक हो और जो अन्ततः सक्षम ढंग से चलने वाले हो। उदाहरण के लिए उन उद्योगों का चयन करना चाहिए जिसमें कला कौशल की आवश्यकता हो, स्थानीय कच्चे माल का प्रयोग करती हो, प्रत्यक्ष उपभोग की वस्तुएँ हो या बड़े उद्योगों के लिए आगत की वस्तुएँ तैयार करती हो, इत्यादि उद्योगों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

(9) औद्योगिक सहकारी समितियों की स्थापना- लघु उद्योग की सबसे बड़ी समस्या यह है कि इनका कोई संगठन नहीं है। ये अपना कार्य अलग-अलग करते हैं। इन उद्योगों में लगे हुए लोगों को माल के खरीदने-बेचने में, उसके उत्पादन तथा ऋण आदि की प्राप्ति में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि ये लोग औद्योगिक सहकारी समितियों की स्थापना कर ल्ाो और इसके द्वारा संगठित होकर कार्य करें तो उत्पादन, बिक्री एवं कच्चे माल सम्बन्धी अनेक कठिनाइयॉं अपने आप दूर हो सकती हैं।

(10) उच्च कोटि तथा नवीनतम डिजाइनों की वस्तुएँ - इन लघु उद्योगों की उन्नति तभी संभव है जब ये उद्योग उच्च कोटि तथा नवीनतम डिजाइन की वस्तुओं का उत्पादन करे। इन उद्योगों के कारीगर कभी-कभी जानबूझकर घटिया किस्म का माल तैयार करते हैं। इससे लोगों का विश्वास इन उद्योगों से उठ जाता है और देश-विदेश की अनेक मण्डियॉं हाथ से निकल जाती है। इन सब कमियों को सरकार चाहे तो दूर कर सकती है। उच्चकोटी की शुद्ध वस्तुओं पर सरकारी मोहर लगाने की व्यवस्था करके। सरकारी मोहरों से चीजों की गुणवत्ता, कोटि एवं शुद्धता की गारण्टी हो जाती है। फलस्वरुप ये वस्तु बाजार में अपनी मॉंग बना लेते हैं।

लघु उद्योग का देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः ऐसे उपाय करना आवश्यक है जिससे संयुक्त रुप में सब कार्य एक योजना के आधार पर हो। यदि एक या दो ही कार्य को महत्त्व दिया गया तो लघु उद्योग कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर पायेंगे। यह भी ध्यान देना चाहिए कि लघु उद्योगों तथा बड़े पैमान के उद्योगों में प्रतियोगिता कम हो सके तथा इनमें समन्वय स्थापित हो सके। अगर समन्वय स्थापित करने में सफलता मिलती है तो देश में उत्पादन बढ़ेगा और क्षेत्रीय विकास होगा तथा रोजगार का सृजन होगा।

20.8 लघु उद्योगों के विकास के लिए सरकारी नीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार यह महसूस करने लगी कि लघु उद्योग बेरोजगारी और गरीबी को दूर करने एवं असमानताओं को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। योजना आयोग का भी यही मत है और पंचवर्षीय योजना में लघु उद्योग के लिए विस्तृत विकास कार्यक्रम अपनाए गए है। पहली योजना में लघु उद्योग के विकास के लिए 42 करोड़ रुपये की राशि थी जो नौवीं योजना में बढ़कर 4508 करोड़ हो गयी। इन उद्योगों की उन्नति के लिए सरकार ने तरह-तरह के राजकोषीय मौद्रिक तथा प्रशासनिक उपाय किए हैं। इसमें निम्नलिखित उपाय विशेष रुप से उल्लेखनीय है-

(1) अखिल भारतीय परिषद - लघु उद्योगों के विकास के लिए भारत सरकार ने विभिन्न प्रकार की संस्थाओं एवं समितियों की स्थापना की है जैसे (1) केन्द्रीय सिल्क परिषद (1945), (2) अखिल भारतीय हस्तशिल्प परिषद, 1952, (3) अखिल भारतीय हथकरघा परिषद, (4) अखिल भारतीय खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, 1955 (5) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, (6) लघु उद्योग विकास संगठन, (7) जिला उद्योग केन्द्र आदि। ये संस्थायें लघु एवं कुटीर उद्योगों को विविध तथा विशिष्ट जरुरतों को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था करती है।

(2) विपणन- लघु उद्योगों की निर्मित वस्तुओं की बिक्री के लिए सरकार ने राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम स्थापित किया है। ये निगम विदेशों से भी आर्डर प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। देश-विदेश में लघु उद्योगों द्वारा तैयार किए गए माल की खपत बढ़ाने के अतिरिक्त यह निगम आर्डर के अनुसार माल बनाने के लिए लघु उद्योगों को पूॅंजी व तकनीकी सहायता देने की व्यवस्था करते हैं। यह लघु

उद्योगों को उदार शर्तों पर मशीन देने का भी प्रबन्ध करते हैं तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलाते हैं। इसने बड़े नगरों में विक्रय डिपो स्थापित किए हैं। इसके अतिरिक्त खादी तथा ग्रामोद्योग द्वारा फुटकर दुकानें स्थापित की गयी हैं।

(3) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना- भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की साहयक संस्था के रुप में 2 अप्रैल, 1990 को भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना की गयी। इसका मुख्य कार्य लघु उद्योगों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है।

(4) औद्योगिक बस्तियॉं- कुटीर एवं लघु उद्योगों को सभी सुविधा (जैसे परिवहन, बिजली, पानी, गैस, अच्छे स्थान आदि की सामान्य सामूहिक सेवाओं) एक स्थान पर देने के लिए तथा उनका क्रमबद्ध विकास करने के लिए औद्योगिक बस्तियों की स्थापना हेतु केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को ऋण उपलब्ध करवाती है। इन बस्तियों का मुख्य उद्देश्य लघु उद्योगों को समर्थ बनाना है।

(5) लघु उद्योग बोर्ड- प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में जून, 1992 में सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों के लिए राष्ट्रीय बोर्ड का गठन किया गया। इस बोर्ड का मुख्य कार्य सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उपक्रमों के विकास के लिए सरकार को सलाह देना है।

(6) बड़े उद्योगों से प्रतियोगिता- भारतीय लघु उद्योगों के सामने बड़े पैमाने के उद्योगों से प्रतियोगिता की समस्या भी है। चूंकि बड़े पैमाने पर उत्पादित वस्तुएँ अपेक्षाकृत सस्ती होती है, इसलिए लघु उद्योगों की वस्तुओं की बिक्री बाजार में मुश्किल से हो पाती है। इसलिए सरकार ने लघु उद्योगों की सहायता के लिए कुछ क्षेत्रों को लघु उद्योग के लिए आरक्षित रखा है, इसके अतिरिक्त सरकार ने इन उद्योगों को अतिरिक्त छूट व अनुदान प्रदान किया है तथा मिल उद्योगों पर उप कर लगाना और इन उद्योगों की उत्पादन मात्रा को सीमित करना आदि उपाय किए गये हैं।

(7) तकनीकी सहायता- लघु उद्योग को तकनीकी सहायता प्रदान करने के लिए सरकार ने वर्ष 1954 में लघु उद्योग विकास संगठन की स्थापना की। जिसके अन्तर्गत 30 लघु उद्योग सेवा संस्थान, 28 शाखा संस्थान तथा 4 क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र, 7 फील्ड परीक्षक केन्द्र, 6 प्रक्रिया एवं उत्पाद विकास केन्द्र, 2 विशिष्ट प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये गये हैं। लघु उद्योग विकास संगठन की निम्नलिखित योजनाएं चल रही हैं- (1) ऋण गारण्टी योजना, (2) प्रौद्योगिकी विकास के लिए ऋण से जुड़ी पूँजीगत सब्सिडी योजना, (3) समन्वित आधारभूत संरचना विकास योजना, (4) लघु उद्योग सूचना तथा संसाधन केन्द्र नेटवर्क, (5) प्रौद्योगिकी उन्नयन एवं आधुनिकीकरण योजना, तथा (6) विपणन विकास योजना आदि।

(8) ग्रामीण औद्योगिक परियोजनाएँ- यह योजना केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रारम्भ की गयी है इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण वातावरण में लाभदायक इकाइयों की स्थापना करने की तकनीक का विकास

करना तथा विभिन्न क्षेत्र में विद्यमान असमानताओं को कम करना और लाभप्रद रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है।

(9) औद्योगिक सहकारी समितियॉं- सरकार और योजना आयोग इस बात को स्वीकार करती है कि औद्योगिक सहकारी समितियॉं लघु उद्योग के स्वस्थ एवं तीव्र विकास में काफी योगदान दे सकती है। इन समितियों का मुख्य उद्देश्य उद्योगों द्वारा उत्पादित माल के थोक व्यापार एवं निर्यात में सहायता प्रदान करना है।

(10) करों में रियायत- सरकार द्वारा लघु उद्योग के उत्पादन पर करों में छूट प्रदान की जाती है और यदि कहीं कर लगाये भी जाते हैं तो इनकी दरें अत्यधिक कम रहती है।

इन उपायों के अतिरिक्त सरकार ने राष्ट्रीय समता कोष की स्थापना की, खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग की स्थापना, कच्चे माल एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था, लघु उद्योगों के लिए ऋण गारण्टी फण्ड, लघु उद्यमी क्रेडिट कार्ड योजना, एकीकृत ढॉंचागत विकास केन्द्रों की स्थापना, ऋण व्यवस्था, निर्यात समर्थन, सरकारी खरीद में लघु उद्योगों की प्राथमिकता एवं लघु उद्योग संवर्धन के लिए उठाए गए अन्य कदम आदि।

20.9 नयी लघु उद्योग नीति, 1991

भारत सरकार ने लघु उद्योगों के विकास के लिए अगस्त 1991 में एक नई नीति की घोषणा की है। इस नई नीति का उद्देश्य है लघु क्षेत्र उद्योग में उत्पादन क्षमता को अधिक मजबूत बनाना, ताकि यह क्षेत्र उत्पादन, रोजगार तथा निर्यात की वृद्धि में अर्थव्यवस्था अपना संपूर्ण योगदान दे सके। नई उद्योग नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है-

(1) विनियोग सीमा- लघु उद्योग के क्षेत्र के लिए निवेश सीमा एक करोड़ रुपये है। प्रौद्योगिकी उन्नयन में सहायता पहुंचाने के लिए 71 उच्च प्रौद्योगिकी/निर्यातोन्मुखी वस्तुओं से सम्बन्ध उद्योगों में निवेश की सीमा को बढ़ाकर 5 करोड़ रुपये कर दिया गया है।

(2) व्यापक नीति पैकेज- प्रधानमंत्री ने 30 अगस्त, 2000 को लघु उद्योग क्षेत्र तथा अति लघु उद्योग क्षेत्र के लिए व्यापक नीति पैकेज की घोषणा की जिसके मुख्य तत्व अग्रलिखित है- (1) लघु उद्योग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा में सुधार लाने के लिए उत्पादन शुल्क की 50 लाख रुपये की छूट सीमा को बढ़ाकर एक करोड़ रुपये करना, (2) लघु उद्योगों की तीसरी गणना करना जिसमें रुगणता और उसके कारणों को भी शामिल किया जायेगा, (3) उद्योग से सम्बन्धित क्षेत्र तथा व्यवसाय उद्यम में निवेश के मौजूदा 5 लाख रुपये की सीमा को बढ़ाकर 10 लाख रुपये करना, (4) प्रत्येक लघु उद्योगों के सम्बन्ध में दसवीं योजना के अन्त तक ISO 9000 प्रमापन प्राप्त करने के लिए 75,000 रुपये प्रदान करने की चालू योजना को जारी रखना, (5) लघु उद्योग संघों को परीक्षण प्रयोगशालाओं के विकास तथा संचालन के लिए प्रोत्साहित करना, (6) मंत्र्ाीमंडल के सचिव की अध्यक्षता में एक समूह

का गठन करना जो इस क्षेत्र में लागू कानूनों व नियमों की गहराई से जांच करे तथा जिन नियमों वे कानूनों की सार्थकता नहीं रह गयी है उन्हें समाप्त करने के लिए आवश्यक सुझाव दे, (7) चालू समेकित आधारभूत विकास योजना को और क्षेत्रों में लागू करना तथा सारे देश में इसका विस्तार इस प्रकार करना कि 50 प्रतिशत आरक्षण ग्रामीण क्षेत्र के लिए हो तथा 50 प्रतिशत अति लघु क्षेत्र को उपलब्ध हो तथा, (8) प्रधानमंत्री रोजगार योजना (जो सूक्ष्म उद्यम की स्थापना के लिए वित्तीय सहायता देती है तथा शिक्षित बेरोजगारों के लिए रोजगार अवसर प्रदान करती है) के अधीन परिवार की आय पात्र्ाता सीमा को 24000 रुपये प्रतिवर्ष से बढ़ाकर 40,000 रुपये प्रतिवर्ष करना।

(3) **अनारक्षण की नीति**- लघु क्षेत्र की 'प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति' को बढ़ाने के लिए अनारक्षण की नीति अपनायी गयी थी। अनारक्षण नीति के तहत लघु और कुटीर उद्योग के लिए आरक्षित मदों की संख्या जो जुलाई 1989 में 836 थी, वर्ष 2007 में मात्र्ाा 114 रह गयी।

(4) **उद्योगों का वर्गीकरण**- इस नीति के अनुसार उद्योगों को तीन भागों में विभाजित किया गया जिसे सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उपक्रम के नाम से पुकारा गया। सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उपक्रम को विनिर्माण और सेवा उद्योग में बॉटा गया। विनिर्माण उद्योग के अन्तर्गत 25 लाख रुपये से कम निवेश को सूक्ष्म उद्योग, 25-5 करोड़ रुपये तक के निवेश को लघु उद्यम तथा 5 करोड़ से 10 करोड़ रुपये तक के निवेश को मध्यम उपक्रम के दर्जे में रखा गया। सेवा क्षेत्र के अन्तर्गत 10 लाख रुपये तक के निवेश को सूक्ष्म, 10 लाख रुपये से लेकर 2 करोड़ रुपये तक के निवेश को लघु तथा 2 करोड़ रुपये से लेकर 5 करोड़ रुपये तक के निवेश को मध्यम उपक्रम के दर्जे में रखा गया।

(5) वित्तीय सहायता- नई नीति के लघु उद्योगों को प्राप्त होने वाली वित्तीय सहायता में निम्न प्रकार से विस्तार किया है- राष्ट्रीय कोष समता का विस्तार किया जायेगा, (2) आसान ऋण योजना का विस्तार करना।

राष्ट्रीय कोष समता के तहत 10 लाख रुपये तक की परियोजना को 15 प्रतिशत तक इक्विटी समर्थन अर्थात् सहायता दी जायेगी। आसान ऋण योजना का विस्तार करके उसमें 20 लाख रुपये तक की परियोजना जिसकी कार्यशील पूॅजी 10 लाख रुपये तक हो, को शामिल किया जायेगा।

(6) प्रौद्योगिकी में सुधार के लिए योजना- इस योजना के तहत वाणिज्यिक बैंकों, राज्य वित्त निगमों, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम द्वारा लघु उद्योगों को प्रौद्योगिकी सुधार के लिए 1 करोड़ रुपये तक दी जाने वाली ऋण राशि पर 15 प्रतिशत पूॅजी सहायता की अनुमति दी गयी है।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) औद्योगिक विकास तथा विनियमन अधिनियम, 1995 में किन उद्योगों को पंजीकरण से मुक्त रखा गया था।

(ख) कुटीर उद्योग किसे कहते हैं।

(ग) सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों के लिए स्थापित राष्ट्रीय बोर्ड का मुख्य कार्य बताइए।

सत्य/असत्य बताइये-

(क) औद्योगिक विकास तथा विनियमन अधिनियम, 1955 में लघु अथवा छोटे पैमाने वाला क्षेत्र को पंजीकरा से मुक्त रखा गया है।

(ख) सेवा क्षेत्र के अन्तर्गत 10 लाख रुपये तक के निवेश को मध्यम उपक्रम कहते हैं।

(ग) छोटे, लघु एवं मध्यम विकास अधिनियम, 2006 के अंतर्गत उद्योगों को विनिर्माण उद्योग और सेवा उद्योग में बॉटा गया है।

बहुविकल्पीय प्रश्न-

(क) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना कब हुआ।

(अ) 1990 (ब) 1951 (स) 1989 (द) 1992

(ख) विनिर्माण उद्योग के अन्तर्गत लघु उद्योग के निवेश की सीमा है-

(अ) 25 लाख रु. तक (ब) 25 लाख से 5 करोड़ रु. तक

(स) 5 करोड़ से 10 करोड़ रु. (द) 10 करोड़ से अधिक

एक पंक्ति अथवा एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न-

(क) प्रथम औद्योगिक नीति कब बनायी गयी।

(ख) सेवा क्षेत्र के अन्तर्गत 2 करोड़ रुपये से 5 करोड़ रुपये तक के निवेश को कौन-सा उद्यम कहते हैं।

(ग) विनिर्माण उद्योग और सेवा उद्योग को किन तीन उद्योगों में बॉटा गया है।

रिक्त स्थान भरिए-

(क) छोटे, लघु एवं मझोले उद्यम विकास अधिनियम, 2006 के अन्तर्गत उद्योगों को .... में बॉटा गया।

(ख) विनिर्माण उद्योग के अन्तर्गत 25 लाख रुपये से कम निवेश को ..... कहते हैं।

(ग) लघु उद्योग को तकनीकी सहायता प्रदान करने के लिए सरकार ने ..... में लघु उद्योग विकास संगठन की स्थापना की।

20.10 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको मालूम हो चुका है कि छोटे, लघु एवं मझोले उद्यम विकास अधिनियम, 2006 के अंतर्गत उद्योगों को विनिर्माण उद्योग और सेवा उद्योग में बॉटा गया। ये विभाजन निवेश की मात्रा पर आधारित है। ये उद्योग रोजगार सृजन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनकी समस्याओं के समाधान के लिए सरकार ने विभिन्न औद्योगिक नीतियों में उपाय सुझाए हैं। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप सरकार के विभिन्न नीतियों की व्याख्या कर सकेंगे।

20.11 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण-- विकेन्द्रीकरण से तात्पर्य उद्योगों का एक स्थान पर न होकर विभिन्न स्थान पर होने से है।

आगत-- अंतिम वस्तु के उत्पादन में लगे हुए वस्तु को आगत कहते हैं।

रुग्णता-- भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार एक औद्योगिक इकाई उस स्थिति में रुग्ण मानी जाती है जब इसे एक साल नकद हानियॉ हो जाती है और आगामी दो वर्षों में भी नकद हानि होने की सम्भावना रहती है। बैंक के निर्णयानुसार इसके वित्तीय ढॉचे में असंतुलन पाया जाता है अर्थात् चालू अनुपात 1:1 से कम होता है तथा कर्ज-शेयर पूॅजी अनुपात भी विपरीत होता जाता है।

साख-- बैंकों द्वारा दिया गया ऋण को साख कहते हैं।

विपणन --वस्तु के उत्पादन से लेकर वस्तु के अंतिम उपभोक्ता तक पहुँचाने की प्रक्रिया को विपणन कहते हैं।

20.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1)(क) लघु उद्योग अथवा छोटे पैमाने वाले उद्योग को औद्योगिक विकास तथा विनियमन अधिनियम, 1955 में पंजीकरण से मुक्त रखा गया।

(ख) जिस उद्योग में परिवार के सदस्य कार्य करते हैं उसे कुटीर उद्योग कहा जाता हे।

(ग) सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों के लिए स्थापित राष्ट्रीय बोर्ड का मुख्य कार्य इन उपक्रमों के विकास के लिए सरकार को सलाह देना है।

(2) (क) सत्य ,(ख) असत्य- सूक्ष्म उपक्रम कहते हैं। ,(ग) सत्य

(3) (क) (अ) 1990

(ख) (ब) 25 लाख रु. से 5 करोड़ रु. तक निवेश

(4) (क) 1948 ,(ख) मध्यम उपक्रम कहते हैं ,(ग) सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उपक्रम में बांटा गया है।

(5) (क) दो श्रेणियों ,(ख) सूक्ष्म उद्योग ,(ग) वर्ष 1954

20.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम् के.पी.एम. (2006), 'भारतीय अर्थव्यवस्था', एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली
2. मिश्र, एस.के. एवं पुरी वी.के. (2007), 'भारतीय अर्थव्यवस्था', हिमालया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई
3. अग्रवाल, एन. (2007), 'भारतीय अर्थव्यवस्था - विकास एवं आयोजन', न्यू एज इन जर्नल पब्लिशर्स

20.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. एस.सी. जैन, 'भारतीय अर्थव्यवस्था', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
2. वी.सी. सिन्हा, 'अर्थशास्त्र', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

20.15 निबंधात्मक प्रश्न

(क) लघु उद्योग का अर्थ बताइए। भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योग के वर्गीकरण को स्पष्ट कीजिए।

(ख) भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योग के महत्व की व्याख्या कीजिए तथा इसकी समस्याओं के समाधान हेतु उपाय सुझाइए।

(ग) नई लघु उद्योग 1991 पर एक निबंध लिखिए।

इकाई 21: भारी उद्योग एवं औद्योगिक समस्याएं

21.1 प्रस्तावना
21.2 उद्देश्य
21.3 भारत के प्रमुख भारी उद्योग
21.3.1 लोहा तथा इस्पात उद्योग
21.3.2 पटसन उद्योग
21.3.3 सीमेण्ट उद्योग
21.3.4 रसायन उद्योग
21.3.5 हथकरघा उद्योग
21.3.6 इलेक्ट्रानिक्स उद्योग
21.4 सारांश
21.5 शब्दावली
21.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
21.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
21.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
21.9 निबंधात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

भारी उद्योग एवं औद्योगिक समस्याएँ खण्ड पाँच की भारतीय औद्योगिक संरचना से सम्बन्धित इक्कीसवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई में आपने लघु क्षेत्र उद्यम के बारे में जानकारी प्राप्त किए। अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि लघु क्षेत्र उद्यम क्या है? इसका अर्थव्यवस्था के विकास में क्या महत्व है? प्रस्तुत इकाई में भारी उद्योग एवं औद्योगिक समस्याओं का अध्ययन करेंगे। अन्य उद्योगों में ये कैसे मदद करते है। इनकी जानकारी प्राप्त करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारी उद्योग की परिभाषा बता सकेंगे। अर्थव्यवस्था के विकास में इनकी भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे तथा इनकी समस्याओं की समझा सकेंगे।

21.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि-

- भारी उद्योग किसे कहते है?
- भारी उद्योग की क्या समस्याएँ है?
- देश के आर्थिक विकास में भारी उद्योगों के महत्वपूर्ण भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

21.3 भारत के प्रमुख भारी उद्योग:

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के स्वरूप को समझने में उसके औद्योगिक ढाँचे से काफी सहायता मिलती है। भारत में वृहत् पैमाने के उद्योगों की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई थी, लेकिन उनका वास्तविक विकास बीसवीं शताब्दी में हुआ है। भारत के दस राज्य-कल कारखाने उत्पादन का 83.2 प्रतिशत उत्पादन अपने यहाँ करते हैं। यह राज्य है: महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, उत्तर प्रदेश व गुजरात। आजादी से पहले देश में सूती वस्त्र, जूट, लोहा व इस्पात, चीनी तथा सीमेन्ट उद्योगों की स्थापना हुई थी। आयोजन काल में औद्योगिक ढाँचे में थोड़ा संतुलन आया है क्योंकि अनेक इंजीनियरिंग उद्योगों की स्थापना हुई है। इस इकाई में भारत के बड़े उद्योगों का अध्ययन किया जायेगा।

21.3.1 लोहा तथा इस्पात उद्योग:लोहा तथा इस्पात उद्योग आधारभूत उद्योगों में से एक महत्वपूर्ण उद्योग है। इसका कारण यह है कि लोहा व इस्पात उद्योग स्थापित होने पर कच्चे पदार्थ जैसे कोयला, कच्चा लोहा, मैगनीज, चूना इत्यादि की मांग बढ़ जाती है। इसलिए इन उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। इसके अलावा इस्पात और लोहे की उपलब्धि बढ़ने से मशीन टूल्स, भारी, इंजीनियरिंग, परिवहन तथा प्रतिरक्षा उद्योगों के विकास के लिए रास्ता खुल जाता है। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में उपर्युक्त प्रवृत्ति को पश्चगामी तथा अग्रगामी सम्बद्धता कहते हैं।

भारत में लोहा तथा इस्पात उद्योग बहुत प्राचीन है। दिल्ली में कुतुबमीनार के पास स्थापित लोहे की 'अशोक लाट' जिसकी स्थापना ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी में की गयी थी। कोणार्क का सूर्य मंदिर तथा पुरी के ज्ञान मंदिर में जो लोहे की छड़ें आज से 800 वर्ष पूर्व लगायी गयी थी। वे सभी भारतीय लोहा तथा इस्पात उद्योग के प्राचीन गौरव को साक्षी के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

आधुनिक तरीकों से लोहा व इस्पात के उत्पादन का सबसे प्रथम प्रयास झरिया के निकट बाराकर में 1875 में किया गया था। इस कारखाने में कच्चे लोहे का उत्तपादन शुरु हुआ। इसके पश्चात् निम्न कारखानों की स्थापना की गयी:

कारखाना	स्थापना वर्ष	स्थान
टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी	1907	जमशेदपुर
इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी	1919	बर्नपुर
मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स (सार्वजनिक क्षेत्र में पहली इकाई)	1923	भद्रावती

सरकार ने 1972 में इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया और 1976 में उसका स्वामित्व भी ले लिया। 1973 से पहले सार्वजनिक क्षेत्र के चार इस्पात कारखानों में से भिलाई, राउरकेला तथा दुर्गापुर स्थित कारखानों का स्वामित्व व प्रबन्ध हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड तथा बोकारों कारखाने का बोकारो स्टील लिमिटेड के राज्य में था। 1973 में सरकार ने स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड की स्थापना की। अब सार्वजनिक क्षेत्र के सभी इस्पात कारखानों का स्वामित्व व प्रबन्ध सेल के हाथ में है। राष्ट्रीय इस्पात निगम लिमिटेड का विखानापट्टनम कारखाना 1992 से उत्पादन में है। यह देश का सर्वाधिक एकीकृत व आधुनिक इस्पात कारखाना है। निजी क्षेत्र का सबसे पहला और एकीकृत इस्पात कारखाना जमशेदपुर स्थित टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी है। इसके अलावा निजी क्षेत्र में महत्वपूर्ण इस्पात कारखाने एस्सार, मुकन्द, लाड्स, जिंदल, निप्पन डेनरो इस्पात लिमिटेड तथा मारडिया स्टील लिमिटेड इत्यादि।

उद्योग की प्रमुख समस्याएँ एवं समाधान:

लोहा तथा इस्पात उद्योग की प्रमुख समस्यायें एवं समाधान निम्नलिखित हैं-

1.उत्तम कोयले तथा बिजली की कमी: लोहे को गलाने के लिए अच्छी किस्म का कोयला चाहिए जो गर्मी अधिक दे सके तथा जिसमें राख की मात्रा कम हो। इस्पात उद्योग की प्रगति के साथ-साथ पूर्ति की अपेक्षा कोयले की मांग में वृद्धि हुई है। वर्ष में कई बार इन कारखानों में कोयले का अकाल सा पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त बिजली कमीं के कारण भी इस्पात कारखानों को कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।

2.ऊँची लागत समस्या: उत्तम कोयले तथा बिजली की कमी के कारण घटिया किस्म के कोयले को उपयोग में लाना पड़ता है जिसमें राख का अंश अधिक हेाता है इससे उत्पादन कम हेाता है तथा लागत में वृद्धि होती है। इसके अलावा अकुशल श्रमिक, मुद्रास्फीति, उत्पादन कर, भाड़ा व कस्टम आदि में वृद्धि के कारण भी लागत में वृद्धि होती है।

3.आधुनिक तकनीकी एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव: भारत में आज भी पुरानी तकनीकों का प्रयोग किया जाता है जिससे ऊर्जा की खपत अपेक्षाकृत अधिक होती है। बोकारों तथा विशाखापट्टनम के कारखानों को छोड़कर शेष सभी कारखाने पिछड़ेपन की तकनीक समस्या से ग्रसित है। कोरिया तथा अन्य प्रमुख इस्पात उत्पादक देशों में श्रम-उत्पादकता 600-700 टन प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष की तुलना में भारत में श्रम उत्पादकता मात्र 90-100 टन प्रति व्यक्ति वर्ष है।

4.परिवहन की समस्या: इस उद्योग के कच्चे माल व तैयार मात्र सभी भारी वस्तु की श्रेणी में आते हैं जिन पर ढुलाई में भारी व्यय किया जाता है अच्छी परिवहन सुविधाओं के अभाव के कारण कच्चे मालों की पूर्ति में अनेक बाधाएं उपस्थित होती है।

5.अकुशल प्रबन्ध व्यवस्था: सार्वजनिक उद्यमों के प्रबन्धकों में अधिकतर लोग गैर-तकनीकी लोग होते हैं जो सही समय पर निर्णय नहीं ले पाते, प्रबन्धक कई तरह की सीमाओं में बंधकर काम करते हैं, राजनैतिक हस्तक्षेप होता है, मजदूर आन्दोलन एवं हड़तालें होती रहती है। इन सबसे इस्पात कारखानों की उत्पादकता एवं लाभप्रदता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

6.पूँजी की समस्या: लोहा तथा इस्पात उद्योग पूँजी प्रधान उद्योग होते हैं। इसके एक कारखाने की स्थापना के लिए हजारों करोड़ रूपये की लागत की मशीनों तथा अन्य पूँजीगत उपकरणों एवं विशेषज्ञों व आधुनिक तकनीक की आवश्यकता पड़ती है। भारत जैसे अल्प-विकसित देश में पूँजी की एवं आधुनिक तकनीक बहुत कमी है यही कारण है कि भारत को लोहा तथा इस्पात उद्योग के विकास के लिए विकसित देशों में वित्तीय एवं तकनीकी सहायता लेनी पड़ती है।

7.इस्पात के मूल्यों में वृद्धि: इस्पात एक आधारभूत वस्तु है जिसके उत्पादन तथा मूल्य पर अनेक उद्योगों का विकास निर्भर करता है। यदि इस्पात के मूल्य में वृद्धि होता है तो आश्रित उद्योगों के मूल्यों ने भी वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में मूल्य वृद्धि की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

इन सबके अलावा अन्य समस्यायें आती हैं जैसे- क्षमताओं का भरपूर उपयोग न करना, स्टाक का अधिक हो जाना, सस्ते आयात की समस्या इत्यादि।

समाधान:

उपरलिखित चुनौतियों एवं समस्याओं का सामना करने के लिए भारतीय इस्पात उद्योग ने बहुपक्षीय युक्ति अपनायी है जिसके मुख्य तत्व निम्नलिखित है-

1.उत्तम कोयले तथा बिजली का प्रबन्ध: इस समस्या के समाधान हेतु कोयला ढोने वाले कारखानों की स्थापना की जा रही है। बिजली की भट्टियाँ तैयार करके धन की समस्या का आंशिक समाधान

संभव है। सरकारी क्षेत्र में इस्पात कारखानों को धुला कोयला उपलब्ध कराने के लिए हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड के दुर्गापुर, दुगड़ा, पाथरडीह तथा भोजूडीह में अपने कायेला धुलाई घर है।

2.एकीकरण: जोखिमों का सामना करने के लिए भारतीय कम्पनियाँ पश्चात् एकीकरण कर रही है। अर्थात्, अंतिम इस्पात उत्पादन में प्रयोग किये जाने वाले अन्य उत्पादों का उत्पादन स्वयं करने लगी है।

3.रेल भाड़ों में कमीं: भारत सरकार द्वारा रेलों के इस उद्योग में काम आने वाले कच्चे माल व उद्योग द्वारा निर्मित माल के भाड़े में कमी कर उद्योग को राहत देनी चाहिए।

4.आधुनिक तकनीकी एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों की व्यवस्था: पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत आधुनिक तकनीकी एवं प्रशिक्षण जैसी सुविधाएँ की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये जा रहे हैं।

5.वित्त का नियोजन: लोहा तथा इस्पात उद्योग में भारी पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। भारत सरकार ने इस समस्या के समाधान हेतु बैंकों, वित्तीय कम्पनियाँ आदि से उचित दर पर ऋण की व्यवस्था की है।

लोहा तथा इस्पात उद्योग की वर्तमान स्थिति:

लोहा तथा इस्पात के कारखाने दो प्रकार के हैं-

(अ)एकीकृत इस्पात प्लांट्स: इनके अन्तर्गत इस्पात के बड़े कारखाने सम्मिलित

किये जाते हैं जो निम्नलिखित है-

1. भारतीय इस्पात प्राधिकरण लिमिटेड
2. टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी
3. राष्ट्रीय इस्पात निगम लि0
4. विशाखापत्तनम इस्पात संयत्र

(ब)लघु इस्पात सयंत्र: बिजली के इस्पात भट्टियों वाले कारखानों को लघु इस्पात संयंत्र कहा जाता है। इन उद्योगों में रद्दी (स्क्रेप) धातु और स्पंज लोहे से इस्पात तैयार किया जाता है। ये नरम इस्पात के साथ-साथ मिश्र इस्पात भी तैयार करते हैं।

इस समय देश में 8 एकीकृत इस्पात प्लाण्ट है जिनमें ये सात सार्वजनिक क्षेत्र में है- भिलाई, दुर्गापुर, राउरकेला, बोकारो, इण्डियन आयरन, विशाखापत्तनम, सलेम व एक निजी क्षेत्र में है और यह है

टाटा आयरन एण्ड स्टील। इन उद्योगो में 90,000 करोड़ रूपये की पूँजी लगी हुई है तथा 4.5 लाख व्यक्ति इसमें रोजगार पाये हुए हैं। 1950-51 में विक्रय योग्य इस्पात का उत्पादन केवल 10 लाख टन था जो वर्तमान में बढ़कर 370 लाख टन हो गया है। नई आर्थिक नीति 1991 के फलस्वरूप आज भारत लोहे एवं इस्पात का निर्यातक राष्ट्र बन गया है। 1999-2000 में लोहे एवं इस्पात का कुल निर्यात 29.98 लाख टन था जो वर्तमान में बढ़कर 48 लाख टन हो गया है।

21.3.2 पटसन उद्योग

पटसन उद्योग 1885 में आरम्भ कया गया। विदेशी मुद्रा अर्जित करने की इसकी क्षमता ही इसके महत्व का कारण है। भारत में आधुनिक पटसन उद्योग लगभग 145 वर्ष पुराना है। 1859 में सीताराम के निकट रिसरा नामक स्थान पर पहली मिल स्थापित हुई थी। 1947 में भारत विभाजन के फलस्वरूप 75 प्रतिशत कच्चा जूट उत्पादित करने वाला क्षेत्र बंग्लादेश में चला गया। इसलिए विभाजन के फलस्वरूप उद्योग के सामने कच्चे माल की समस्या उत्पन्न हो गयी। इस समस्या के निदान के लिए देश के भीतर ही उत्तम श्रेणी के पटसन के उत्पादन पर विशेष स्थान दिया गया।

पटसन उद्योग की समस्याएँ एवं समाधान:

इस उद्योग के सामने निम्नलिखित समस्याएं हैं जिसका समाधान अति आवश्यक हैः

1.पटसन की माँग में कमी: प्लास्टिक एवं संश्लिष्ट बोरियों की मांग में वृद्धि के कारण पटसन की बोरियों की मांग में भारी कमी आयी है। जहाँ एक ओर मांग बढ़ नहीं पा रहा है। वही दूसरी ओर बंग्लादेश तथा चीन जैसे उद्योगों से कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है।

2.अधिक उत्पादन लागत: भारतीय पटसन उद्योग में पुरानी तकनीकी एवं उपकरण के प्रयोग तथा कुशलता के अभाव के कारण उत्पादन लागत अधिक होती हैं।

3.अनिश्चित बिजली आपूर्ति: इस उद्योग की अन्य समस्याओं में सबसे बड़ी समस्या बिजली अनिश्चितता की है।

समाधान

इस उद्योग में प्रयोग किये जाने वाले सभी आवश्यक यंत्रों का देश में उत्पादन नहीं होता है, इसलिए उनका विदेशों से आयात करना होगा। भारत सरकार ने विदेशी विनिमय सम्बन्धी कठिनाईयों के होते हुए भी पटसन उद्योग में आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक मशीनों के आयात के लिए लाईसेंस देने में काफी उदारता से कार्य किया है। भारत सरकार ने पहली बार राष्ट्रीय जूट नीति 2005 की घोषणा की है जिसका उद्देश्य किसानों की कुशलता में सुधार लाकर पटसन के उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि लाना, उच्च श्रेणी के पटसन के उत्पादन के लिए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश एवं इस क्षेत्र में शोधकार्य को प्रोत्साहित करना, इस उद्योग की संवृद्धि में वृद्धि कर रोजगार सृजन करना, गुणवत्ता, डिजाइन एवं विपणन में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को प्राप्त करना आदि।

पटसन उद्योग की वर्तमान स्थिति

फरवरी 2010 की तुलना में फरवरी 2011 में कुल कपड़े का उत्पादन में 5.8 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। सबसे अधिक वृद्धि होजरी सेक्टर में हुआ है यह वृद्धि 9.1 प्रतिशत की है। अप्रैल से फरवरी 2010 की तुलना में अप्रैल-फरवरी 2011 में कुल कपड़े का उत्पादन में 4.5 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी। अप्रैल-फरवरी 2010 में पटसन का कुल उत्पादन 1103.9 हजार टन था जो अप्रैल-फरवरी 2011 में बढ़कर 1227.5 हजार टन हो गया। पिछले वर्ष की तुलना में 11-20 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

21.3.3 सीमेंट उद्योग

किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए तीन उद्योग आधारभूत उद्योग माने जाते हैं जिनमें लोहा इस्ताप उद्योग का स्थान प्रथम, कोयला उद्योग का द्वितीय व सीमेंट उद्योग का स्थान तृतीय है। आधुनिक युग में सभी परियोजनाएँ सीमेंट पर ही आधारित है।

भारत में सीमेंट बनाने का पहला कारखाना 1904 में मद्रास (चेन्नई) में साउथ इण्डिया इण्डस्ट्रियल लिमिटेड द्वारा स्थापित किया गया, लेकिन वह असफल रहा। अतः प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ तक सीमेंट का आयात किया जाता रहा। 1913-14 के बीच तीन बड़े सीमेंट के कारखाने मध्य प्रदेश के कटनी में, राजस्थान के लखेटी में तथा गुजरात में पोरबन्दर नामक स्थान पर स्थापित किये गये।

सरकार का सीमेंट के उत्पादन, वितरण तथा कीमत पर पूर्ण नियंत्रण था जिससे सीमेंट उद्योग के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ा। 1982 में घोषित आंशिक विनियंत्रण नीति का उद्देश्य काला बाजार को खत्म करना तथा खुले बाजार में सीमेंट की कीमतों का कम करना था। 1989 के बजट में सरकार ने सीमेंट को पूरी तरह से विनियंत्रित कर दिया। इस प्रकार सीमेंट उद्योग ने 'पूर्ण नियंत्रण से पूर्ण विनियंत्रण' का सफर तय किया है। 1991 में सीमेंट उद्योग को लाइसेंसिंग से मुक्त कर दिया गया। अभी भी यह उद्योग कुछ समस्याओं का सामना कर रहा है।

सीमेंट उद्योग की समस्याएँ

सीमेंट उद्योग के अध्ययन से आपको पता चलता है कि सीमेंट उद्योग 'पूर्ण नियत्रंण' से 'पूर्ण विनियंत्रण' का सफर किया है परन्तु अभी भी कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जैसा कि निम्न विवचेन से स्पष्ट है:

1.कच्चे माल की समस्या: सीमेंट उद्योग के उत्पादन के लिए उच्च किस्म का चूना, कोयला तथा जिप्सम आगतों की आवश्यकता पड़ती है। भारत में सीमेंट कारखानों के पास के क्षेत्र में अच्छी किस्म का चूना समाप्त हो चुका है। जिसके कारण कच्चा माल दूर से मंगवाना पड़ता है। फलस्वरूप परिवहन अधिक हो जाता है।

2.आर्थिक आकार एवं आधुनिकीकरण: आर्थिक आकार इस उद्योग की एक प्रमुख समस्या है। छोटे कारखाने बढ़ी हुई उत्पादन लागतों को सहन नहीं कर पाते। सीमेंट के पुराने कारखानों का आधुनिकीकरण करना भी एक समस्या है।

3.प्रशुल्कों का अत्यधिक भार: सीमेंट उद्योग पर कई तरह के प्रशुल्क जैसे-उच्च उत्पादन शुल्क, बिक्री कर, चूने व कोयले पर रायल्टी इत्यादि का अत्यधिक भार है इसके कारण सीमेंट का विक्रय मूल्य बढ़ जाता है।

4.ऊँची लागत: सीमेंट उद्योग में प्रयुक्त होने वाली आगते भिन्न-भिन्न स्थान पर फैले होने के कारण परिवहन लागत में वृद्धि हो जाती है फलस्वरूप सीमेंट की कीमत में भी वृद्धि होती है।

इन समस्याओं के अतिरिक्त बिजली की कमी, रेलवे वैगनों की कमी, परिवहन की समस्या अपर्याप्त माँग, क्षमता का अपूर्ण उपयोग, पुरानी उत्पादन तकनीक आदि समस्याएँ विद्यमान है।

समाधान

अभी तक सीमेंट के उत्पादन में चूना पत्थर का ही प्रयोग किया जा रहा है परन्तु इसके लिए अन्य कच्चे माल जैसे- स्लेग (लोहा एवं इसपात का अवशिष्ट भाग) आदि के प्रयोग की प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। सीमेंट के उत्पादन एवं गुणवत्ता में वृद्धि लाने के लिए आधुनिक मशीनों का इस्तेमाल करना चाहिए तथा सीमेंट उद्योगों को अपना शोध एवं विकास सम्बन्धी संस्थाएं स्थापित करनी होगी। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।

सीमेण्ट उद्योग की वर्तमान स्थिति

सीमेण्ट उद्योग में दो सेक्टर होते हैं-(प) वृहद प्लांट, (पप) छोटा सीमेण्ट प्लांट। जिस फैक्ट्री की इन्सटाल्ड कैपेसिटी 2,97,000 टन प्रति वर्ष (900 टन प्रति दिन से अधिक) होती है, उसे वृहद प्लांट कहते है तथा जिसकी क्षमता 297,000 टन प्रति वर्ष तक या इससे कम होती है तो इसे छोटा सीमेण्ट प्लांट कहते है। वर्तमान में 120 वृहद सीमेण्ट प्लांट है तथा 300 के करीब छोटे स्तर के सीमेण्ट प्लाण्ट है। वर्तमान में वृहद प्लाण्ट की क्षमता 112.01 मिलियन टन तथा छोटे प्लाण्ट की क्षमता 9 मिलियन टन है। सीमेण्ट कारपोरेशन आफ इण्डिया ही एकमात्र सार्वजनिक क्षेत्र का सीमेण्ट उद्योग है जिसकी 10 इकाई है।

21.3.4 रसायन उद्योग

रसायन उद्योग एक महत्वपूर्ण आधारभूत उद्योग है। किसी राष्ट्र की सुरक्षा, उद्योग का विकास, कृषि का विकास, दिन-प्रतिदिन की अनेक आवश्यकताएँ रासायनिक उद्योग पर ही निर्भर है। इस उद्योग के अन्तर्गत वे उद्योग आते है जो अन्य उद्योगों के लिए आधारभूत रासायनिक पदार्थ बनाते हैं। इसके अलावा वे उद्योग भी आते है जिनमें रासायनिक क्रियाओं द्वारा पदार्थ उत्पन्न किए जाते है जैसे-रंग और रोगन, वार्निश, प्लास्टिक, कृत्रिम रबड़, कृत्रिम रेशे, औषधियाँ, कीटनाशक दवाइयाँ, साबुन, पेण्ट, डी0डी0टी0, सल्फ्यूरिक एसिड, उर्वरक इत्यादि।

भारी रसायन में मुख्य रूप से तीन रसायन आते है-(प) गन्धक का तेजाब (पप) सोडा एश (पपप) कास्टिक सोडा। भारत में गन्धक के तेजाब की शुरूआत व सर्वप्रथम रासायनिक कारखानों की स्थापना 19वीं सदी के अन्तिम दशक में हुई। रासायनिक उद्योग का वास्तविक विकास 20वीं सदी के प्रथम दशक में हुआ जिसकी स्थापना का श्रेय श्री वाल्टी एण्ड कम्पनी, पश्चिम बंगाल, पैरी एण्ड कम्पनी, मद्रास, बंगाल केमिकल्स एण्ड फार्मेस्यूटिकल्स, कोलकात्ता को है। फास्टफेटयुक्त उर्वरक

का उत्पादन भी मद्रास (चेन्नई) के पास 1906 में आरम्भ किया गया। नत्रजनयुक्त उर्वरक की शुरूआत 1947 में हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में रसायन उद्योग में निरन्तर उन्नति हुई है।

रसायन उद्योग की समस्याएँ

रसायन उद्योग का प्रचार व प्रसार तेजी से हो रहा है। परन्तु इस उद्योग की कुछ समस्याएँ है जो इसके विकास में अवरूद्ध उत्पन्न कर रही है वे समस्याएँ निम्नवत है:

1.कच्चे माल की समस्या को झेलना पड़ता है।

2.विदेशी उद्योगों से कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है।

3.उद्योग के विस्तार एवं विकास के लिए आवश्यक यंत्र एवं आधुनिक उपकरणों का अभाव है।

4.इस उद्योग में भारी पूँजी की आवश्यकता पड़ती है जिनको प्राप्त करना बहुत कठिन होता है, तथा

5.भारत जैसे विकासशील देश में अनुसंधान एवं विकास की सुविधाओं का अभाव है तथा प्रशिक्षित विशेषज्ञों की भी कमी है।

समाधान

रसायन उद्योग की समस्याओं के समाधान के लिए कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित होनी चाहिए तथा इसके निर्मित वस्तुओं की मांग में वृद्धि करनी होगी। इसके साथ आधुनिक उपकरणों, प्रशिक्षित कर्मचारियों एवं अनुसंधान व विकास जैसी सुविधाएं उपलब्ध करानी होगी। क्योंकि इस उद्योग में भारी पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। पूँजी जैसी समस्याओं के समाधान के लिए बैंक एवं वित्तीय संस्थाओं को आगे आना होगा।

21.3.5 हथकरघा उद्योग

हथकरघा उद्योग देश का एक प्रमुख पुराना एवं विकेन्द्रित उद्योग है। यह उद्योग देश में लगभग 6.5 विलियन लोगों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्रदान करता है। देश के वस्त्र उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले इस उद्योग के प्रमुख केन्द्र है:

1. मलमल के लिए चन्देरी, कोटा, रोहतक, वाराणसी, आरनी, मथुरा, सिकन्दराबाद, अम्बाला और मदुरै;
2. कम्बलों के लिए पानीपत, भदोई (उ0प्र0), देवगढ़ (राजस्थान), लुधियाना, चेन्नई और मदुरै आदि;
3. छींट के लिए मुसलीपट्टनम और कालहस्ती;
4. खादी के लिए अमरोहा, संडीला, टांडा, अकबरपुर, कालीकट, देवबन्द और पूणे, एवं
5. दरियों के लिए आगरा, बरेली, झाँसी, अलीगढ़, गोरखपुर, पुणे, कालीकट एवं अम्बाला।

समस्याएं

हथकरघा उद्योग एक रोजगारपरक विकेन्द्रित उद्योग है। इस उद्योग की समस्याएँ निम्नवत हैः

1. इस उद्योग में कच्चे माल की कमी है।
2. आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण बुनकरों की ऊँची दरों पर धागा खरीदना पड़ता है।

3. हैण्डलूम द्वारा निर्मित वस्त्र की लागत पावरलूम तथा मिल निर्मित वस्त्र से अधिक होती है जिसके कारण इनके मांग में कमी आ जाती है।
4. हैण्डलूम निर्मित वस्त्र उपभोक्ताओं की अभिरूचि के अनुकूल नहीं होते।

समाधान

भारत सरकार के वस्त्रालय मंत्रालय ने विभिन्न तरह की योजनाओं जैसे-आगत संबंधी योजना, विकासापरक योजना, कल्याणकारी योजनाओं के प्रभावी समर्थन से इस उद्योग को प्रतियोगिता में बनाए हुए है। भारत सरकार ने लच्छा रेशा बाध्यता आदेश द्वारा हैण्डलूम बुनकरों को कच्चे पदार्थ की उपलब्धता सुनिश्चित की है।

नई-नई डिजाइने निकालने के लिए अखिल भारतीय हथकरघा मण्डल ने डिजाइन केन्द्रों को प्रशिक्षण केन्द्रों में परिणत कर दिया है। इसके .अलावा मण्डल वे नई दिल्ली, वाराणसी, कोलकाता, लखनऊ, मुम्बई तथा चेन्नई में अनेक बुनकर केन्द्र स्थापित किए है। उच्चस्तरीय व नवाचार सम्बन्धित प्रायोगिक व व्यावहारिक प्रशिक्षण की भी समुचित व्यवस्था की गई है।

हथकरघा उद्योग का वर्तमान स्थिति

भारतीय हथकरघा उद्योग अपने प्रतियोगी देश चाइना, फीलिपाइन्स, ताईवान ओर कोटिया के तुलना में अच्छा प्रदर्शन करता है। ये देश मशीनों द्वारा व वस्तुओं का उत्पादन करते है जबकि भारतीयों के हथकरघा उद्योगों के वस्तुओं का पूरे विश्व में बाजार है जिससे इनकी अपनी अलग पहचान है। 2009-10 में इस उद्योग के निर्यात में मात्र 6.55 प्रतिशत की वृद्धि दर थी जबकि 2011 के अन्त तक 15.45 प्रतिशत की वृद्धि दर अनुमानित की गयी है।

21.3.6 इलेक्ट्रानिक्स उद्योग

इलेक्ट्रानिक्स उद्योग 1965 के करीब अंतरिक्ष एवं प्रतिरक्षा प्रविधि के नाम से शुरू की गयी थी। यह सरकार के द्वारा नियंत्रित थी, इसके बाद इलेक्ट्रानिक्स उद्योग ने उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में कदम रखा। 1984-1990 की अवधि में यह उद्योग काफी प्रगति किया।

भारतीय अर्थव्यवस्था में इलेक्ट्रानिक्स उद्योग सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग का आधारभूत उद्योग है। सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग के विकास में इस उद्योग का प्रमुख योगदान है। कम्प्यूटर एवं सहायक उपकरणों की सहायता से सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग ज्ञान का प्रसार करता है। आज सूचना एवं संचार क्रान्ति के माध्यम से देश आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के पथ पर अग्रसर है। आज के समय में इलेक्ट्रानिक्स की उत्पत्ति के साधनों में एक पृथक आगत के रूप में शामिल कर लिया गया है, ठीक उसी प्रकार जैसे लोहे का प्रयोग मशीनरी के लिए किया जाता है। इलेक्ट्रानिक्स का उपयोग सूचना प्रौद्योगिकी, विनिर्माण, शिक्षा, मनोरंजन, प्रतिरक्षा एवं व्यापार सहित अन्य क्षेत्रों में किया जा रहा है। इन उद्योग की प्रगति का अनुमान इस आधार पर लगाया जा सकता है कि आज इन्टरनेट के प्रयोग ने पूरे विश्व की समन्वित कर दिया है।

इलेक्ट्रानिक्स उद्योग की समस्याए

इस उद्योग की कुछ समस्याएँ है जो इनके विकास में अवरूद्ध उत्पन्न करती है ये समस्याएं निम्नवत है:

1. इलेक्ट्रानिक्स उद्योग में विश्व स्तर के आधारभूत ढांचे की कमी,
2. इस उद्योग के लिए सरकार की कोई स्पष्ट नीति नहीं है।
3. इस उद्योग हेतु अनुसंधान पर बहुत कम मात्रा में व्यय किया जाता है।
4. इस उद्योग के वस्तुओं के लिए बाजार उपलब्ध है परन्तु इनका पूरा उपयोग नहीं कर पा रहे है।

समाधान

भारत में इस उद्योग की समस्याओं के समाधान के अवसर बहुत है। इन अवसरों को तीन भागों में बांटा जा सकता है:

1.मानव शक्ति , 2. बाजार , 3. भारत सरकार के नीतियों द्वारा मदद

भारत हर साल 500 पी0एच0डी0, 2 लाख इन्जीनियर, 3 लाख गैर इंजीनियर स्नातकोत्तर और करीब 2 लाख 21 हजार स्नातक पैदा करता है। इसके अतिरिक्त भारतीय श्रमिक विश्व में सबसे सस्ते दर पर उपलब्ध होते है। उदाहरण के लिए इलेक्ट्रानिक्स उद्योग में प्रति वर्ष प्रति श्रमिक की औसत लागत डालर 3000 है। इन सबकी सहायता से इलेक्ट्रानिक्स उद्योग की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

इलेक्ट्रानिक्स उद्योग की प्रगति

1.	1965	-	अंतरिक्ष एवं प्रतिरक्षा
2.	1982	-	रंगीन टी0वी0
3.	1985	-	कम्प्यूटर और टेलीफोन एक्सचेन्ज
4.	1988	-	डीजिटल एक्सचेंज

वर्तमान स्थिति

इस समय इलेक्ट्रानिक्स उद्योग का कारोबार का मूल्य लगभग डालर 32 बिलियन है। 2010 तक यह करीब डालर 150 बिलियन तक पहुंचने का अनुमान लगाया गया है। हालांकि पूरे विश्व का भारत में 0.7 प्रतिशत हिस्सा है परन्तु भारत में इन वस्तुओं की मंाग तीव्र है। फलस्वरूप इस उद्योग में निवेश में तेजी से वृद्धि की जा रही है। वर्तमान समय में भारत में इलेक्ट्रानिक हार्डवेर उद्योग का उत्पादन का मूल्य डालर 11.6 बिलियन है। भारत इलेक्ट्रानिक वस्तुओं का निर्यात भी करता है। ये वस्तुएं है-

1. डिस्प्ले टेक्नालाजी
2. मनोरंजन इलेक्ट्रानिक
3. आप्टिकल स्टोरेज डिवाइस
4. पेसिव कम्पोनेन्ट

5. इलेक्ट्रानिकल कम्पोनेन्ट

इलेक्ट्रानिक वस्तुओं के निर्यात ने विश्व के अन्य कम्पनियों को अपनी तरफ आकर्षित किया है, फलस्वरूप ये कम्पनियाँ भारत में निवेश कर रही है। ये कम्पनिया है-नोकिया, सेमसंग, जबिल सर्किट, बुल इलेक्ट्रानिक्स सेलिस्टिका इत्यादि।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

(क)भारत में उन प्राचीन उद्योगों को बताइए जो लोहा तथा इस्पात उद्योग के गौरव को साक्षी रूप में प्रस्तुत करते है।

(ख) 1982 में घोषित सीमेण्ट उद्योग के लिए आंशिक विनियंत्रण नीति का उद्देश्य बताइए।

(ग) भारी रसायन में मुख्य रूप से तीन रसायन के नाम बताइए।

सत्य/असत्य बताई

(क) 1989 के बजट में सरकार ने सीमेण्ट को पूरी तरह से विनियंत्रित कर दिया।

(ख) सूचना प्रौद्योगिक उद्योग कम्पयूटर एवं सहायक उपकरणों की सहायता से ज्ञान प्रसार करता है।

(ग) बिजली के इस्पात भट्टियों वाले कारखाने को लघु इस्पात संयंत्र कहा जाता है।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित लौह तथा इस्पात उद्योग की पहली इकाई का नाम है-

(अ) स्टील आथोरिटी आफ इण्डिया लिमिटेड।

(ब) टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी।

(स) मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स।

(द) इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी।

(ख) कम्प्यूटर एवं सहायक उपकरण किस उद्योग के उपकरण है-

(अ) लोहा तथा इस्पात उद्योग (ब) हथकरघा उद्योग

(स) सीमेण्ट उद्योग (द) इलेक्ट्रानिक्स उद्योग

(ग) सीमेण्ट उद्योग को लाइसेन्स से कब मुक्त कर दिया गया।

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न-

(क) आधुनिक तरीकों से लोहा तथा इस्पात उद्योग के उत्पादन का सबसे प्रथम प्रयास कब किया गया था।

(ख) टाटा एण्ड आयरन स्टील की स्थापना किसने की थी।

(ग) निजी क्षेत्र के महत्वपूर्ण इस्पात कारखानों के नाम बताइये।

5. रिक्त स्थान भरिएं-

(क) टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी ..... में स्थायित की गयी।

(ख) पटसन उद्योग.....में आरम्भ किया गया।

(ग) पटसन उद्योग की पहली मिल ..... में सिरामपुर के निकट स्थापित हुई।

21.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद अब आप जान चुके है कि भारत में वृहद पैमाने के उद्योगों की शरूआत 19वीं शताब्दी के आरम्भ में हुई थी। लोहा तथा इस्पात उद्योग, सीमेण्ट उद्योग, हथकरघा उद्योग आदि को भारी उद्योग कहते है। ये उद्योग कच्चे माल, बिजली, आधुनिक तकनीक, पूँजी एवं आधुनिक उत्पादन लागत इत्यादि की समस्या को झेल रहे है। इन समस्याओं के समाधान हेतु सरकार ने आधुनिक प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना की है। पूँजी की समस्या के समाधान हेतु वित्तीय संस्थाएँ एवं बैंकों की स्थापना की गयी है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारी उद्योग एवं औद्योगिक समस्याओं की व्याख्या कर सकेंगे।

21.5 शब्दावली

पश्चात एकीकरण: अंतिम उत्पादन में प्रयोग किए जाने वाले अन्य उत्पादों का उत्पादन स्वयं करना।
आगत: अन्तिम वस्तु के निर्माण में प्रयोग किये जाने वाले वस्तु को आगत कहते हैं।
उत्पत्ति के साधन: भूमि, श्रमिक, पूँजी एवं साहसी को उत्पत्ति का साधन कहा जाता है।

21.6 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

1.(क) दिल्ली में स्थापित लोहे की अशोक लाल, कोणार्क का सूर्य मन्दिर तथा पूरी के ज्ञान मन्दिर में लगायी गयी लोहे की छड़े। भारतीय लोहा तथा इस्पात उद्योग के प्राचीन गौरव को साक्षी के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

(ख) काला बाजार को खत्म करना तथा खुले बाजार में सीमेण्ट की कीमतों को कम करना।

(ग) (1) गंधक का तेजाब, (2) सोडा एश (3) कास्टिक सोडा

2. (क) सत्य (ख) सत्य (ग) सत्य

3. (क) स-मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स (ख) द-इलेक्ट्रानिक्स उद्योग
(ग) स-1991 में

4. (क) 1875 (ख) जमशेदजी नोशेरवानजी टाटा
(ग) एस्सार, मुकन्द, लाड्स, जिंदल, निप्पन डेयरो इस्पात लिमिटेड आदि।

5. (क) 1907 (ख) 1885 (ग) 1859

21.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- भारत सरकार, 2005 वस्त्रालय मंत्रालय, राष्ट्रीय जूट नीति 2005.

- दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम, के0पी0एम0 (2006), ''भारतीय अर्थव्यवस्था'', एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली.
- मिश्र, एस0के0 एवं पुरी बी0के0 (2007), ''भारतीय अर्थव्यवस्था'', हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई.
- अग्रवाल, एन (2007), ''भारतीय अर्थव्यवस्था: विकास एवं आयोजन'', न्यू एज इन जर्नल पब्लिशर्स.

21.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. वी0सी0 सिन्हा (2011): अर्थशास्त्र, एस0वी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, आगरा.
2. एस.सी. जैन एवं जे.पी. मिश्रा: भारतीय अर्थव्यवस्था, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा.

21.9 निबन्धानात्मक प्रश्न

(क) लोहा तथा इस्पात उद्योग का भारतीय अर्थव्यवस्था में क्या महत्व है? तथा इस उद्योग की वर्तमान स्थिति की व्याख्या कीजिए।

(ख) हथकरघा उद्योग से आप क्या समझते है? इस उद्योग की समस्याओं का उल्लेख करते हुए इसके समाधान सुझाइये।

इकाई 22 भारतीय लोकवित्त

इकाई संरचना

22.0 प्रस्तावना
22.1 उद्देश्य
22.2 भारत में बजटरी व्यवस्था
22.3 बजट के भाग
22.4 राजस्व बजट तथा राजस्व व्यवहार
    22.4.1 राजस्व प्राप्तियां
    22.4.2 राजस्व व्यय
22.5 पूँजी बजट
22.6 सब्सिडी तथा अनुदान
22.7 बजटरी घाटा की विभिन्न अवधारणाएं
22.8 सार्वजनिक ऋण
22.9 सारांश
22.10 शब्दावली
22.11 अभ्यास प्रश्न व उत्तर
22.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
22.13 निबन्धात्मक प्रश्न

22.0 प्रस्तावना

भारतीय लोकवित्त की अध्ययन सामग्री का केन्द्र भारत सरकार की राजस्व एवं बजटरी नीतियां तथा गतिविधियां हैं। भारत सरकार के वित्तीय स्वास्थ्य, वित्तीय नीतियों तथा गतिविधियों का हमारी अर्थव्यवस्था पर इतना व्यापक और गहरा प्रभाव पड़ता है कि इनके बहुमुखी अध्ययन के बिना देश की अर्थव्यवस्था और समाज के लिए हितकर नीतियों की रचना करना असंभव है।

राजकोषीय या बजटरी नीति से आशय सरकार की सार्वजनिक व्यय, करारोपण, सार्वजनिक ऋण तथा उसके प्रबन्ध से सम्बन्धित उन नीतियों से है जिनका प्रयोग सरकार अर्थव्यवस्था में रोजगार, राष्ट्रीय उत्पादन (आय) आन्तरिक तथा वाह्य आर्थिक स्थिरता, आर्थिक समता आदि आर्थिक नीतियों के प्रमुख उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए करती है।

करारोपण, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण राजकोषीय नीति के तीन महत्वपूर्ण अस्त्र हैं। घाटा वित्तीयन को जो एक प्रकार की केन्द्रीय बैंक से ली जाने वाली ऋण व्यवस्था है जिसे सरकार देश के केन्द्रीय बैंक से नये नोटों के निर्गमन के द्वारा प्राप्त करती है, चौथे अस्त्र के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, पर यह एक विशुद्ध राजकोषीय अस्त्र नहीं है क्योंकि यह सरकारी व्यय तथा मुद्रा की पूर्ति दोनों को प्रभावित करती है। सार्वजनिक व्यय को बढ़ाना इसका राजकोषीय पहलू है। इसीलिए घाटे के वित्तीयन को हम राजकोषीय तथा मौद्रिक नीति की सीमा पर स्थित मानते हैं। सरकार राजकोषीय नीति के द्वारा निजी क्षेत्रों के लिए संसाधनों की उपलब्धता, आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका तथा संसाधनों के आवंटन तथा विनियोजन ढांचे को प्रभावित करती है।

22.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- भारतीय लोकवित्त के अन्तर्गत बजटरी व्यवहार के विभिन्न पहलुओं को समझ सकेंगे।
- यह जान सकेंगे कि भारत में बजटरी घाटे की विभिन्न अवधारणाएं क्या हैं।
- भारतीय लोकवित्त के बजटरी व्यवहार में सार्वजनिक ऋण की स्थिति का विश्लेषण कर सकेंगे।

22.2 भारत में बजटरी व्यवस्था

संविधान के अनुच्छेद 112 के अन्तर्गत प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए, जो अप्रैल 1 से 31 मार्च तक चलता है, केन्द्र सरकार की अनुमानित प्राप्तियों तथा व्ययों का एक विवरण पार्लियामेण्ट के सामने रखना आवश्यक होता है। इस वार्षिक वित्तीय विवरण को केन्द्र सरकार का बजट कहा

जाता है। बजट में तीन लगातार वर्षों के व्ययों तथा प्राप्तियों का विवरण दिया रहता है, आने वाले वर्ष के लिए बजट अनुमान, चालू वर्ष कं लिए संशोधित अनुमान तथा इसका कारण तथा एक वर्ष पीछे के लिए वास्तविक प्राप्तियां तथा व्यय। राज्य सरकारों के बजट के सम्बन्ध में व्यवस्था अनुच्छेद 202 में दी हैं। संविधान के अनुच्छेद 266 तथा 267 में बजट का ढँाचा दिया हुआ है जिसके अनुसार तीन प्रकार के खातों के रूप में सरकारी व्यवहार को प्रस्तुत किया जाता है।

22.2.1 संचित कोष- संचित कोष वह कोष है जिसमें सरकार की सम्पूर्ण राजस्व प्राप्ति, ट्रेजरी बिल्स, सरकारी ऋणों के निर्गमन, अर्थोपाय अग्रिमों तथा ऋणों की अदायगी से प्राप्त प्राप्तियों को प्रदर्शित किया जाता है। बिना पार्लियामेण्ट से अधिकृत हुए इस फण्ड से किसी भी रकम की निकासी नहीं हो सकती। किसी व्यय के लिए चाहे समेकित फण्ड से होने योग्य ही हो या जिसको पार्लियामेण्ट द्वारा स्वीकृत ही कर दिया गया हो तब तक रकम संचित फण्ड से नहीं निकाली जा सकती जब तक कि विनियोजन अधिनियम द्वारा इस व्यय को अधिकृत नहीं किया गया हो।

22.2.2 सार्वजनिक खाता-संविधान की धारा 266(2) के तहत संचित फण्ड से सम्बन्धित सामान्य स्वभाव की प्राप्तियों तथा व्ययों के अतिरिक्त कुछ ऐसे व्यवहार होते हैं जो सरकारी खाते में आते हैं। ये ऐसी प्राप्तियां होती हैं जो वास्तव में सरकार की नहीं होती हैं, बल्कि सरकार दूसरों के लिए अपने पास रखती है तथा जिन्हें बाद में उन्हें लौटा देती है। ऐसे व्यवहारों को सार्वजनिक खाते में प्रदर्शित किया जाता है और इससे निकालने के सम्बन्ध में (जब जमाकर्ता को भुगतान किया जाता है) पार्लियामेण्ट की स्वीकृति नहीं ली जाती।

22.2.3 आकस्मिक कोष- संविधान की धारा 267 के तहत आकस्मिक कोष एक प्रकार का आकस्मिक व्यय को पूरा करने के लिए राशि है जो केन्द्र सरकार के सम्बन्ध में राष्ट्रपति तथा राज्य सरकार के सम्बन्ध में राज्यपाल के पास प्रयोग के लिए रहता है जिससे कुछ आकस्मिक तथा अनिश्चित व्ययों की पूर्ति की जा सके जिन्हें पार्लियामेण्ट की स्वीकृति तक के लिए टाला नहीं जा सके। ऐसे व्ययों को आकस्मिक कोष से निकासी के द्वारा पूरा कर लिया जाता है, बाद में पार्लियामेण्ट से अधिकृत होने पर संचित फण्ड से निकालकर इसमें डाल दिया जाता है।

22.3 बजट के भाग-

अनुच्छेद 112(2) (ब) के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि सरकार राजस्व व्ययों तथा अन्य व्ययों के बीच अन्तर प्रदर्शित करे। इसलिए बजट को दो भागों में प्रस्तुत किया जाता है- राजस्व बजट तथा पूँजी बजट। राजस्व बजट तथा पूँजी बजट में प्रदर्शित सम्पूर्ण प्राप्तियां, संचित फण्ड की सम्पूर्ण प्राप्तियां प्रदर्शित करेंगी तथा राजस्व बजट में प्रदर्शित सम्पूर्ण व्यय संचित फण्ड के सम्पूर्ण व्यय या संवितरण प्रदर्शित करेंगे।

22.4 राजस्व बजट तथा राजस्व व्यवहार

चालू वित्तीय व्यवहार को राजस्व व्यवहार कहते हैं। राजस्व बजट के दो भाग होते हैं-

राजस्व प्राप्तियां

राजस्व व्यय

22.41 राजस्व प्राप्तियां- ऐसी प्राप्तियां जिनके लौटाने का दायित्व सरकार पर नहीं हो उन्हें हम राजस्व प्राप्तियां कहते हैं। इन प्राप्तियों के कारण सरकार की देयता में वृद्धि नहीं होती। ये राजस्व प्राप्तियां सरकार की आय होती हैं। 'प्राप्तियां' अधिक विस्तृत हैं जिसमें राजस्व प्राप्तियों के अतिरिक्त वे प्राप्तियां भी सम्मिलित हैं जिनके लौटाने का दायित्व सरकार के ऊपर होता है। राजस्व प्राप्तियां दो प्रकार की होती हैं- कर राजस्व तथा गैर-कर राजस्व।

कर राजस्व- कर एक प्रकार का अनिवार्य भुगतान है जो उस व्यक्ति को अनिवार्य रूप से सरकार को देना पड़ता है जो कर आधार से सम्बन्धित होता है तथा जिसके बदले करदाता को आवश्यक रूप से कोई लाभ नहीं प्राप्त होता। कर आधार से आशय उससे है जिसको आधार बनाकर कर लगाया जाता है जैसे आयकर का कर आधार है आय। यदि जिसकी आय सरकार द्वारा निर्धारित सीमा से ऊपर होगी उसे अनिवार्यतः कर देना पड़ेगा। कर दो प्रकार के होते हैं- प्रत्यक्ष कर एवं परोक्ष कर।

प्रत्यक्ष कर उन करों को कहते हैं जिनके मौद्रिक बोझ को दूसरों पर विवर्तित (टाला) नहीं किया जा सके जिनके सम्बन्ध में कर से उत्पन्न कराघात तथा करापात उसी व्यक्ति पर पड़ते हैं जिनके ऊपर सरकार कर लगाती है तथा जिन करों के बोझ को विवर्तित किया जा सकता है उन्हें परोक्ष कर कहते हैं।

प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों से सम्बन्धित सभी राजस्व समस्याओं का नियमन तथा नियन्त्रण राजस्व विभाग द्वारा होता है जो दो सांविधिक बोर्डों- सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ डाइरेक्ट टैक्सेज तथा सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ एक्साइज एण्ड कस्टम, द्वारा इसका नियमन होता है।

सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ डाइरेक्ट टैक्सेज का गठन सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ रेवेन्यू एक्ट 1963 के अन्तर्गत होता है। इसने 1 जनवरी, 1963 से कार्य करना शुरू किया। इसमें अध्यक्ष के अलावा 5 सदस्य होते हैं। यह प्रत्यक्ष करो की उगाही से जुड़े सभी मामलों का निपटारा करता है और प्रत्यक्ष कर से सम्बद्ध कानूनों के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है।

केन्द्र सरकार के प्रत्यक्ष कर

1. व्यक्तिगत आयकर
2. निगम कर
3. उपहार कर (समाप्त)
4. अस्तिकर (समाप्त)

5. व्यय कर (केल्डार) (समाप्त)
6. सम्पत्ति कर
7. पूँजी लाभ कर
8. लाभांश कर
9. ब्याज कर
10. फ्रिन्ज बेनिफिट (सीमान्त लाभ) कर - 2005-06 में शुरू
11. प्रतिभूति व्यवहार कर - 2006-07 में शुरू
12. बैंकिंग कैश ट्रैंजेक्शन कर - 2007-08 में शुरू तथा समाप्त
13. कमोडिटीज ट्रैंजेक्शन कर - 2008-09 में शुरू
14. लाभांश वितरण कर - 2007-08 से शुरू

केन्द्र सरकार के परोक्ष कर

1. संघीय उत्पाद शुल्क
2. सीमा शुल्क
3. सेवा कर
4. बिक्री कर
5. व्यय कर या होटल टैक्स

भारतीय आयकर का नियमन इनकमटैक्स ऐक्ट 1961 द्वारा होता है। 2011-12 बजट में व्यक्तिगत आय करारोपण में आमूल चूल परिवर्तन किया गया है जिसकी व्यवस्थाएं इस प्रकार हैं-

सारणी-22.1 भारत में वर्तमान आयकर ढॉचा

करदाता	करमुक्त आय रू0	10% कर	20% कर	30%कर
पुरूष	1,80,000	1,80,001-5,00,000	5,00,001-8,00,000	8,00,001- अधिक
महिलाएं	1,90,000	1,90,001- 5,00,000	5,00,001-8,00,000	8,00,001- अधिक
वरिष्ठ नागरिक	2,50,000	2,50,001- 5,00,000	5,00,001-8,00,000	8,00,001- अधिक

कर के साथ ही दो शब्द और प्रयोग में आते हैं-ड्यूटी या शुल्क, लेवी तथा फीस। ड्यूटी तो एक प्रकार का कर है, और बहुत देशों में इसे करारोपण ही कहा जाता है जैसे इक्साइज टैक्सेशन पर भारत में ड्यूटी प्रयोग में आती है जैसे उत्पादन शुल्क या सीमा शुल्क। जब बिना आवश्यक रूप से लाभ प्राप्त किये हुए कर आधार से सम्बन्धित होने के कारण भुगतान किया जाता है तो उसे तो हम कर कहते हैं पर जब सरकार द्वारा प्रदत्त किसी सेवा के बदले (जिसमें प्राप्त होने वाला लाभ स्पष्ट है) अनिवार्य अंशदान किया जाता है तो इसे फीस कहते हैं (भुगतान सम्बन्धी अनिवार्यता है यदि आप

उस सेवा का प्रयोग करते हैं) पर यदि सरकार द्वारा प्रदत्त कुछ स्पष्ट सुविधाओं जैसे सरकार द्वारा अवस्थापना के प्रयोग से या लाभ प्राप्त करके कोई आर्थिक क्रिया करते हैं जैसे उत्पादन क्रिया जिसमें उत्पादक सरकार द्वारा प्रदत्त सड़क संवहन, संचार, बैंकिंग आदि से परोक्ष रूप से लाभान्वित हुआ या आयात तथा निर्यात जिसमें वह इन सुविधाओं के अतिरिक्त पोर्ट या अन्य सुविधाओं से लाभान्वित हुआ, तो इनके प्रयोग से परोक्ष रूप से लाभान्वित होने के कारण जो अनिवार्य भुगतान करना होगा, वह भी कर होगा पर इसे 'ड्यूटी' कहते हैं जैसे इक्साइज ड्यूटी तथा कस्टम ड्यूटी।

कर, उपकर तथा अधिभार

कर एक प्रकार का अनिवार्य अंशदान है जिसे करदाता बिना किसी प्रतिफल के सरकार को कर आधार से सम्बन्धित होने के लिए देता है। किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए कर नहीं लगाया जाता जबकि उपकर तथा अधिभार दोनों ही किसी उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए राजस्व की उगाही के लिए लगाये जाते हैं। उपकर कर के साथ कर आधार पर ही किसी विशेष प्रयोजन के लिए लगाया गया कर है। जबकि अधिभार कर के ऊपर कर है जिसकी गणना कर दायित्व पर की जाती है। सामान्यतया अधिभार प्रत्यक्ष कर पर लगाया जाता है जबकि उपकर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों दोनों के साथ होता है। वैसे सिद्धान्ततः उपकर (शिक्षा) कर आधार पर लगाया जाता है जबकि अधिभार कर दायित्व पर लगाया जाता है। पर भारत में हाल में लगाया गया उपकर अधिभार की ही तरह कर दायित्व पर लगाया जा रहा है।

अधिभार तथा उपकर की प्राप्ति को राज्यों के वितरण योग्य पूल में नहीं डाला जाता है, इसके राजस्व को उन उद्देश्यों पर लगाया जाता है जिनके लिए इन्हें लगाया गया है।

22.42 राजस्व व्यय- राजस्व व्यय वे व्यय हैं जो सरकारी विभागों तथा सेवाओं को सामान्य रूप से चलाने, विगत वर्षो में लिए गए ऋणों पर ब्याज अदायगी तथा राज्य सरकारों को दियें जाने वाले अनुदान से सम्बन्धित होते हैं। स्पष्ट है ये ऐसे व्यय होंगे जिनके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति या पूं जी का सृजन नहीं होगा।

बजट प्रपत्र में राजस्व व्ययों के दो भागों में बांटा जाता है- योजनागत राजस्व व्यय तथा गैर योजनागत राजस्व व्यय। योजनागत व्यय केन्द्रिय योजना तथा राज्यों एवं संघ क्षेत्र की योजनाओं के दी गयी सहायता से सम्बन्धित होते है, इनके अतिरिक्त अन्य व्यय जो सरकार के सामान्य, सामाजिक तथा आर्थिक सेवाओं से सम्बन्धित होते है, गैर योजनागत व्यय होते है। किसी योजनागत व्यय का वह भाग जो उस वर्ष में पूरा नहीं होता बल्कि अगले वर्ष के टल जाता है उसे अगले वर्ष में गैर योजनागत व्यय मानते हैं।

यह मानना गलत है कि सभी आयोजन व्यय विकासात्मक व्यय होते हैं और सभी गैर योजना राजस्व व्यय गैर विकासात्मक होते हैं तथा यह भी मानना ठीक नहीं है कि आयोजन व्यय आवश्यक रूप से पूँजीगत व्यय होंगे तथा गैर योजना व्यय राजस्व व्यय होंगे।

गैर योजनागत राजस्व व्ययों को मोटे तौर पर चार वर्गों में बांटा जा सकता है-सामान्य सेवाओं पर व्यय, सामाजिक तथा सामुदायिक सेवाओं पर व्यय, आर्थिक सेवाओं पर व्यय तथा अन्य अनावंटनीय व्यय- सामान्य सेवाओं का सम्बन्ध देश की सुरक्षा तथा सरकार के सामान्य रूप से कार्य करने से है, सामाजिक तथा सामुदायिक सेवाएं उपभोक्ता के रूप में नागरिकों को आधारभूत सुविधाओं को पहुँचाने से सम्बन्धि है, आर्थिक सेवायें नागरिकों को उत्पादक के रूप में लाभ पहुंचाती हैं तथा जिन्हें हम किसी शीर्षक में नहीं रख पाते उन्हें अनावंटनीय में रख देते हैं। पर इन व्ययों में तीन प्रमुख व्यय हैं- (क) ब्याज अदायगी (ख) सुरक्षा तथा (ग) सब्सिडीज। भारत में सुरक्षा व्यय को हमेंशा ही गैर योजनागत व्यय माना जाता है तथा विकासात्मक व्यय के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। सीमा पर सड़कों के निर्माण पर व्यय भी गैर विकासात्मक माना जाता है। सुरक्षा गैर योजनागत राजस्व व्यय तथा गैर योजनागत पूँजी गत व्यय दोनों ही हो सकता है। उल्लेखनीय यह है कि राष्ट्रीय लेखांकन में सुरक्षा व्यय के उपभोग व्यय माना जाता है।

आर्थिक सर्वेक्षण में सार्वजनिक व्ययों को एक दूसरे आधार पर वर्गीकृत किया गया है और वह है- विकासात्मक तथा गैर विकासात्मक व्यय। प्रतिरक्षा, ब्याज अदायगी, कर वसूली व्यय, सब्सिडी, प्रशानिक व्यय आदि को गैर विकासात्मक व्ययों में रखतें है।

22.5 सब्सिडी तथा अनुदान

किसी भी वस्तु या सेवा को उसके उत्पादन लागत मूल्य या आर्थिक लागत मूल्य से कम पर आपूर्ति करने के दोनों के अन्तर को पूरा करने के लिए सरकार द्वारा जो व्यय किया जाता है उसे सब्सिडी कहते हैं। इस प्रकार

सब्सिडी = लागत - मूल्य जिसपर वस्तु या सेवा लोगों को दी गयी

ऐसी वस्तुएं तथा सेवाएं सामान्यतया मेरिट वस्तुएं होंगी। जब सरकार किसी वस्तु या सेवा की आपूर्ति नहीं करे बल्कि किसी व्यक्ति द्वारा की जाने वाली किसी क्रिया जैसे मकान बनवाना, ट्यूबवेल लगवाना, की लागत का कुछ भाग वहन कर ले तो इसे अनुदान कहते हैं। बजट की दृष्टि से सब्सिडी तथा अनुदान एक ही वर्ग के हैं, इसलिए इन्हें एक साथ एक साथ राजस्व खाते में दिखाया जाता है।

उल्लेखनीय है कि केन्द्र सरकार से केन्द्रीय करों में से राज्यों को हस्तान्तरण तथा अनुच्छेद 275 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार से राज्यों को दिये गये अनुदान को राजस्व व्यय मानते हैं। विदेशों को दिये गये अनुदान को गैर योजनागत राजस्व व्यय मानते हैं।

22.6 पूँजी बजट

पूँजी बजट में सरकार की पूँजीगत प्राप्तियां तथा पूँजीगत व्यय प्रदर्शित होते हैं। यह बजट सरकार की पूँजी आवश्यकता तथा उसके वित्तीयन के स्रोत पर प्रकाश डालती है। पूँजी आवश्यकता की पूर्ति के प्रमुख स्रोत हैं- राजस्व आधिक्य, आन्तरिक बाजार उधारी, अल्प बचत (गैर बाजार उधारी) तथा भविष्य निधि, ऋण तथा अग्रिमों की वापसी, विनिवेश, विदेशी ऋण तथा सहायता, विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे मुद्राकोष, एशियन विकास बैंक, विश्व बैंक आदि से प्राप्त सहायता। इन्हें पूँजीगत प्राप्तियां कहते हैं।

पूँजीगत व्ययों को दो भागों में रखा जाता है- योजनागत पूँजीगत व्यय तथा गैर योजनागत पूँजीगत व्यय। योजनागत व्यय केन्द्रीय योजना तथा राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों को दी जाने वाली केन्द्रीय सहायता से सम्बन्धित होता है।

ऋण अदायगी को पूँजीगत व्यय माना जाता है पर उस पर दिये जाने वाले ब्याज का भुगतान राजस्व व्यय होता है। इसी ऋण की वसूली से प्राप्ति पूँजीगत प्राप्ति है पर उस पर ब्याज की प्राप्ति पूँजीगत प्राप्ति नहीं बल्कि राजस्व प्राप्ति है। केन्द्र सरकार से राज्य सरकारों को दी जाने वाली अनुदान तथा सहायता को सामान्यतया राजस्व व्यय माना जाता है पर यदि यह अनुदान पूँजीगत योजना को पूरा करने के लिए हो तो पूँजी व्यय होगा।

गैर योजनागत पूँजीगत व्ययों को चार भागों में बांटा जा सकता है- सामान्य सेवाओं पर व्यय, सामाजिक तथा सामुदायिक सेवाओं पर व्यय आर्थिक सेवाओं पर पूँजीगत व्यय तथा ऋण एवं अग्रिमों के रूप में भुगतान।

पूँजीगत प्राप्तियां दो प्रकार की होती है- (क) ऐसी प्राप्तियां जो केन्द्र सरकार के दायित्व या ऋण में वृद्धि लाती हैं तथा (ख) ऐसी प्राप्तियां जो केन्द्र सरकार की सम्पत्तियों में कमी लाती हैं अर्थात् जो केन्द्र सरकार की सम्पत्तियों के बेचने से जैसे विनिवेश से प्राप्ति या किसी को दिये गये ऋण की वापसी से प्राप्त होती है। पूँजीगत व्ययों तथा राजस्व घाटा को पूरा करने के लिए पूँजीगत प्राप्तियों की आवश्यकता होती है।

22.7 बजटरी घाटा की विभिन्न अवधारणाएं

कोई भी सरकार अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित अपनी राजकीय क्रियाओं को सम्पादित करने के लिए कुछ सार्वजनिक व्यय करती है तथा इन व्ययों को पूरा करने के लिए कुछ धन प्राप्त करती है जिन्हें सार्वजनिक प्राप्तियां कहते हैं। सार्वजनिका घाटा वस्तुतः सार्वजनिक व्ययों तथा उनको पूरा करने के लिए सार्वजनिक प्राप्तियों के अन्तर से सम्बन्धित है।

सार्वजनिक व्ययों तथा सार्वजनिक प्राप्तियों से सम्बन्धित वित्तीय व्यवहारों को संक्षिप्त रूप में नीचे चार्ट में प्रदर्शित किया गया है-

सार्वजनिक वित्तीय व्यवहार

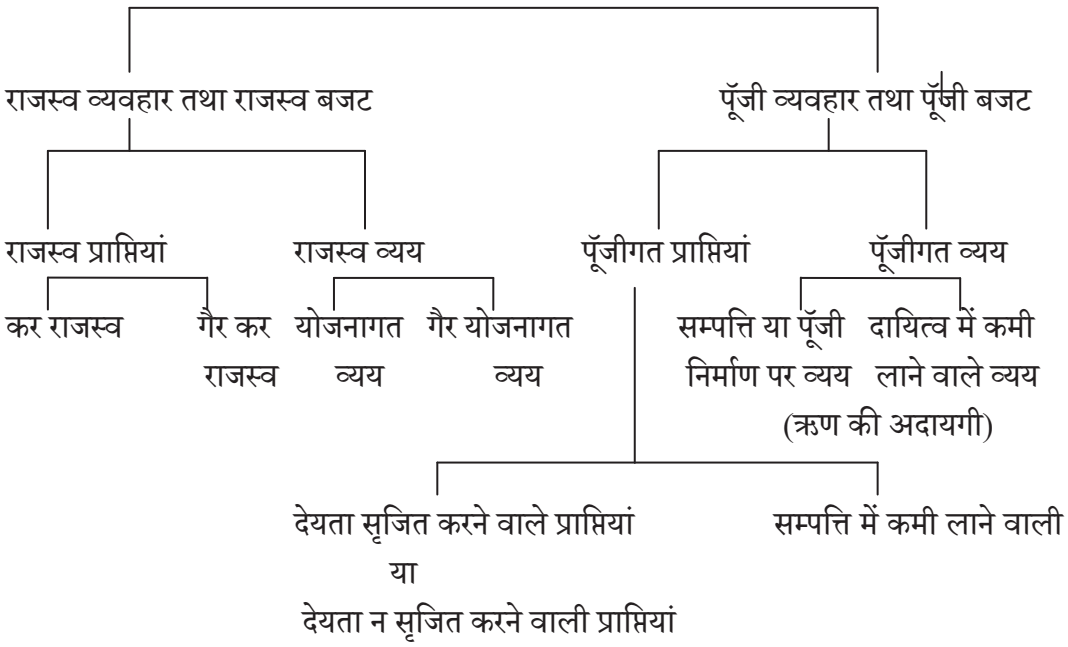

उपर्युक्त के आधार पर बजटरी व्यवहार से सम्बन्धित विभिन्न घाटे की अवधारणाएं निम्नलिखित हैं-

1. **राजस्व घाटा-** यदि कुल राजस्व व्यय की मात्रा कुल राजस्व प्राप्तियों से अधिक हो जाता है तब यह आधिक्य राजस्व घाटे को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार

राजस्व घाटा = कुल राजस्व व्यय - कुल राजस्व प्राप्ति

राजस्व घाटा = (आयोजन राजस्व व्यय + गैर आयोजन राजस्व व्यय)

- (कर राजस्व +गैर कर राजस्व)

राजस्व घाटा सरकार की अबचत प्रदर्शित करता है। इसका अर्थ हुआ सम्पत्ति में बिना किसी वृद्धि के केन्द्र सरकार के दायित्व में वृद्धि।

2. **बजटरी घाटा**-राजस्व खाते का घाटा तथा पूँजी खाते के घाटे को जोड़कर बजटरी घाटा प्राप्त होता है। इस प्रकार

बजटरी घाटा = राजस्व खाते का घाटा + पूँजी खाते का घाटा

= (कुल राजस्व व्यय - कुल राजस्व प्राप्ति) + (कुल पूँजीगत व्यय - कुल पूँजीगत प्राप्ति)

बजटरी घाटा = कुल व्यय - कुल प्राप्तियां

बजटरी घाटे की पूर्ति सरकार रिजर्व बैंक से अपनी नकदी की निकासी के द्वारा या ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स (90 दिनों की अवधि की अल्पकालिक प्रतिभूति) को रिजर्व बैंक को देकर करती है, इस स्थिति में,

बजटरी घाटा = रिजर्व बैंक की नकदी की निकासी + ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स की मात्रा में परिवर्तन

सामान्यतया नकदी की निकासी की नगण्यता के कारण बजटरी घाटा को आर्थिक समीक्षा में 1997-98 के पहले एडहाक ट्रेजरी बिल्स में परिवर्तन के द्वारा प्रदर्शित किया जाता था। यदि सरकार ट्रेजरी बिल्स के माध्यम से लिये जाने वाले ऋण पर रोक लगा दे जैसा 1997-98 के बजट से हुआ जबकि एडहाक ट्रेजरी बिल्स को समाप्त कर अर्थोपाय अग्रिम की प्रक्रिया शुरू की गयी तो इस स्थिति में बजटरी घाटा शून्य प्रदर्शित होगा इस स्थिति में बजटरी घाटा की धारणा का कोई महत्व नहीं होगा।

3. **राजकोषीय घाटा-** राजकोषीय घाटा बजट घाटे की वृहद् संकल्पना है यह धारणा केन्द्रीय सरकार की ऋणग्रस्तता पर राजकोषीय क्रियाओं के प्रभाव को प्रतिबिम्बित करती है। भारत में बजटरी व्यवहार में 'राजकोषीय घाटा' की अवधारणा के पहली बार प्रयोग का श्रेय डॉ0 मनमोहन सिंह को जाता है जिन्होंनें 1991 में अपनी केन्द्रीय बजट में यह धारणा सामने रखी। वैसे इस धारणा का सबसे पहले प्रयोग 'वर्ल्ड डेवेलपमेन्ट रिपोर्ट 1988' में PSBR (Public Sector Borrowing Requirement) के रूप में मिलता है। सुखमय चक्रवर्ती कमेटी (1985) ने अपनी रिपोर्ट में पहली बार यह मत व्यक्त किया कि बजटरी घाटा समग्र बजटरी व्यवहार से उत्पन्न सम्पूर्ण घाटा या सरकारी दायित्व में सम्पूर्ण वृद्धि प्रदर्शित नहीं करता। यह इस पर पूरा प्रकाश नहीं डालता कि सरकार बजटरी व्यवहार के कारण बाजार से कितना संसाधन निकाल रही है जो वास्तव में निजी क्षेत्र के लिए उपलब्ध होते जिसे हम टेक्निकल भाषा में संसाधनों की क्राउडिंग आउट कहते हैं।

राजकोषीय घाटा वह समग्र घाटा है जो वास्तव में सरकार की समग्र बजटरी आय तथा समग्र बजटरी व्यवहार से उत्पन्न कुल देयता प्रदर्शित करता है। उल्लेखनीय है समग्र आय से अभिप्राय उन प्राप्तियों से है जिनके कारण किसी प्रकार का दायित्व सरकार के ऊपर नहीं सृजित होता है, सभी प्राप्तियों से नहीं। सभी प्राप्तियों में देयता उत्पन्न करने वाली प्राप्तियों भी सम्मिलित होंगी। इस प्रकार

राजकोषीय घाटा = समग्र व्यय - समग्र आय

या राजकोषीय घाटा = समग्र व्यय - (समग्र राजस्व आय + समग्र पूँजीगत आय)

चूँकि समग्र पूँजीगत आय = समग्र पूँजीगत प्राप्ति - सार्वजनिक ऋण तथा अन्य देयताएं इसलिए,

राजकोषीय घाटा = समग्र व्यय - (समग्र राजस्व आय +समग्र पूँजीगत प्राप्ति - सार्वजनिक ऋण तथा अन्य देयताएं)

या राजकोषीय घाटा = समग्र व्यय - (समग्र प्राप्ति - सार्वजनिक ऋण तथा अन्य देयताएं)

या राजकोषीय घाटा = समग्र व्यय - समग्र प्राप्ति + सार्वजनिक ऋण तथा अन्य देयताएं

या राजकोषीय घाटा = बजटरी घाटा + सार्वजनिक ऋण तथा अन्य देयताएं)

इस प्रकार राजकोषीय घाटा सार्वजनिक ऋण में निबल वृद्धि प्रदर्शित करता है। यह अर्थव्यवस्था में संसाधन अंतराल भी प्रदर्शित करता है। अर्थव्यवस्था की दृष्टि से राजकोषीय घाटा की अवधारणा सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह न केवल सरकार की प्राप्तियों तथा व्ययों के बीच अन्तराल प्रदर्शित करता है बल्कि इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि किसी चालू वर्ष में सरकार द्वारा लिये जाने वाले सार्वजनिक ऋण की मात्रा क्या होगी तथा साथ ही इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि सरकार पूँजीबाजार से कितना संसाधन निकाल रही है जो अन्यथा व्यक्तिगत क्षेत्र के निवेश के लिए उपलब्ध रहे होते।

राजकोषीय घाटा को पूरा करने के लिए निम्नांकित स्रोत हैं-

i. आन्तरिक बाजार उधारी
ii. विदेशी ऋण
iii. अल्प बचत स्कीम
iv. विशिष्ट जमा
v. प्रवीडेण्ट फण्ड
vi. अन्य

इसमें से जितना (पूरा या आंशिक) समेकित फण्ड में जायेगा वही राजकोषीय घाटा को प्रभावित करेगा।

4. **प्राथमिक या मूल घाटा**-प्राथमिक घाटा वह राजकोषीय घाटा है जिसमें से ब्याज अदायगियां कम कर दी गयी हैं। भारतीय बजट में ब्याज अदायगी की राशि बहुत अधिक है, जिसके परिणामस्वरूप राजकोषीय घाटे की मात्रा प्राथमिक घाटे की तुलना में बहुत अधिक मात्रा में दिखाई पड़ती है। इसीलिए 1993-94 की बजट से मूल घाटा भी प्रदर्शित किया जा रहा है। मूल घाटा इस बात पर प्रकाश डालता है कि कुल घाटा में से कितना घाटा ऐसा है जो वर्तमान राजकोषीय गतिविधियों का परिणाम है।

इस प्रकार,प्राथमिक घाटा = सकल राजकोषीय घाटा - ब्याज दायित्व

5. **क्रियात्मक घाटा-** क्रियात्मक घाटा राजकोषीय घाटा को स्फीतिक समायोजन के बाद प्रदर्शित करने की धारणा है। स्फीति समायोजित राजकोषीय घाटा ही क्रियात्मक घाटा है।

   क्रियात्मक घाटा = सकल राजकोषीय घाटा - स्फीतिक समायोजन

6. **मौद्रीकृत घाटा**- घाटे की वह राशि जिसकी वित्तीय व्यवस्था नोट निर्गमन के द्वारा हो उसे मौद्रीकरण कहते हैं और उस घाटे को मौद्रिक घाटा कहते हैं।

मौद्रिक घाटा = बजटरी घाटा + सार्वजनिक ऋण के सम्बन्ध में रिजर्व बैंक का योगदान = ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स में वृद्धि + सार्वजनिक ऋण में रिजर्व बैंक के योगदान में वृद्धि

उल्लेखनीय है कि ट्रेजरी बिल्स रिजर्व बैंक के सार्वजनिक ऋण में योगदान के कारण मौद्रीकरण होगा। इस प्रकार ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स की समाप्ति के कारण प्रत्यक्ष मौद्रीकरण समाप्त होगा। पर मौद्रीकरण बना रह सकता है।

बजटरी घाटा की आपूर्ति, चूँकि ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स के निर्गमन द्वारा होगी, इसलिए बजटरी घाटा = मौद्रीकृत घाटा, पर यदि बजटरी घाटा शून्य हो तो मौद्रीकृत घाटा इस बात पर निर्भर करेगा कि सार्वजनिक ऋण में रिजर्व बैंक की धारिता कितनी है।

22.8 सार्वजनिक ऋण

वर्तमान भारतीय बजटरी व्यवहार के अनुसार केन्द्र सरकार के सार्वजनिक ऋण के अन्तर्गत तीन प्रकार की देयताएं आती हैं- (क) आन्तरिक ऋण (ख) विदेशी ऋण तथा (ग) अन्य देयताएं। आन्तरिक तथा विदेशी ऋण भारत के सार्वजनिक ऋण के अन्तर्गत आते हैं और इनका भुगतान भारतीय संचित कोष के अन्तर्गत सुरक्षित होता है। पर अन्य देयताएं सार्वजनिक खाते में दिखाई जाती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 292 के अन्तर्गत पार्लियामेंट सार्वजनिक ऋण की ऊपरी सीमा निर्धारित कर सकती है। इसी प्रकार की व्यवस्था 293 के अन्तर्गत राज्यों के ऋणों के सम्बन्ध में है जहॉ राज्य विधानसभा राज्यों के आन्तरिक ऋण पर ऊपरी सीमा निर्धारित कर सकती है।

राज्यों द्वारा लिये जाने वाले ऋणों के सम्बन्ध में दो शर्तें है एक तो राज्य केवल आन्तरिक ऋण ही ले सकते है दूसरे जबतक ऋणों के सम्बन्ध में राज्यों की केन्द्र सरकार के प्रति देयता हो तबतक ऋण की उगाही के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार से अनुमति लेनी अनिवार्य होगी। केन्द्र की ही तरह राज्य सरकारें भी अपनी आकस्मिक स्थिति से निपटने के लिए 'राज्य अर्थोपाय अग्रिम' के तहत रिजर्व बैंक से ऋण ले सकती है, जो शुरू से ही ऋण माना जाता है।

केन्द्र सरकार के आन्तरिक ऋण के अन्तर्गत बाजार उधारी, रिजर्व बैंक द्वारा निर्गत विशिष्ट प्रतिभूतियां, क्षतिपूरक तथा अन्य बाण्ड, रिजर्व बैंक द्वारा राज्य सरकारों, व्यापारिक बैंकों तथा अन्य

संस्थाओं को निर्गत ट्रेजरी बिल्स तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को निर्गत गैर परक्राम्य (छवद छमहवजपंइसम) तथा ब्याजरहित रूपया प्रतिभूतियां आती हैं। अन्य देयता के अन्तर्गत आन्तरिक तथा वाह्य ऋणों को छोड़कर सरकार की ब्याजयुक्त देयताएं आती हैं जैसे डाकघर बचत बैंक जमा खाता, प्राविडेण्ट फण्ड जमा, अल्प बचत योजना जमा, डाकघर प्रमाणपत्रों के माध्यम से ऋण आदि। ये देयताएं ऐसी हैं जो सरकार को एक ऋणी के रूप में नहीं प्राप्त होती हैं बल्कि सरकार के खाते में एक बैंक की भूमिका के रूप में प्राप्त होती है। ये देयताएं भारतीय संचित कोष के अन्तर्गत सुरक्षित नहीं होती हैं, बल्कि सार्वजनिक खाते के भाग के रूप में दिखाई जाती है।

सांविधिक व्यवस्था के अन्तर्गत रिजर्व बैंक केन्द्रीय सरकार का ऋण प्रबंध करता है जबकि समझौते के तहत राज्यों के ऋणों का प्रबंध करता है। सरकार अपनी राजकोषीय नीति के द्वारा सार्वजनिक ऋण का आकार निर्धारित करती है जबकि सार्वजनिक ऋण की संरचना, परिपक्कवता ढांचा ब्याज दर प्रतिभूतियों के स्वभाव आदि का निर्धारण रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है जिससे यह अर्थव्यवस्था की तरलता स्थिति तथा निवेशकों की आवश्यकता तथा अधिमान के अनुरूप हो तथा इसकी लागत न्यूनतम हो।

उल्लेखनीय है केन्द्रीय बजट 2007-08 में वित्तमंत्री ने सार्वजनिक ऋण प्रबंध को स्वतंत्र तथा स्वायत्त स्वरूप प्रदान करने के ऋण प्रबन्ध आफिस की स्थापना की घोषणा की जो इस दिशा में अत्यन्त ही धनात्मक कदम सिद्ध होगा। ऐसी स्थिति में ऋण प्रबन्ध रिजर्व बैंक से हट जाएगा।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न (क) - एक शब्द/वाक्य में उत्तर दीजिए-

(1) संविधान के किस अनुच्छेद मे बजट का ढांच दिया हुआ है?
(2) बजट व्यवहार के किस कोष में आकस्मिक व्यय को पूरा करने के लिए राशि होती है?
(3) सरकार की सम्पूर्ण राजस्व प्राप्तियों को किस कोष में प्रदर्शित किया जाता है?
(4) बजट को कितने भागों में प्रस्तुत किया जाता है?
(5) चालू वित्तीय व्यवहार को क्या कहते हैं?
(6) ऐसी प्राप्तियां जिन्हें लौटाने का दायित्व सरकार पर नहीं होता उन्हें क्या कहा जाता है?
(7) किस कर का करापात एवं कराघात एक ही व्यक्ति पर होता है?
(8) सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ डाइरेक्ट टैक्सेस ने कब से कार्य करना शुरू किया?
(9) भारत में व्यय कर लगाने का सुझाव किसने दिया था?
(10) भारत के वर्तमान आयकर ढांचे के अनुसार पुरूष करदाता के लिए करमुक्त आय की सीमा क्या है?
(11) कर आधार पर किसी विशेष प्रयोजन के लिए लगाया जाने वाला कर क्या कहलाता है?
(12) वस्तु या सेवा की लागत तथा उसकी वह कीमत जिस पर यह लागों को दी गयी का अन्तर क्या कहलाता है?

(13) ऋण अदायगी किस व्यय के अन्तर्गत आता है?
(14) कुल राजस्व व्यय तथा कुल राजस्व प्राप्तियों का अतर क्या कहलाता है?
(15) कुल व्यय तथा कुल प्राप्तियों के अन्तर को क्या कहते है?
(16) बजटरी घाटा तथा राजकोषीय घाटा का अन्तर क्या कहलाता है?
(17) यदि राजकोषीय घाटे में से ब्याज अदायगियां घटा दी जाय तो कौन सा घाटा प्राप्त होगा?
(18) सांविधिक व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार का ऋण प्रबन्ध कौन करता है?

प्रश्न (ख)- सत्य/असत्य बताइये-

(1) भारत का वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से 31 मार्च है।
(2) राज्य सरकारों के बजट के सम्बन्ध में व्यवस्थ अनुच्छेद 202 में दी है।
(3) राजस्व प्राप्तियां तथा पूँजीगत प्राप्तियां राजस्व बजट के दो भाग हैं।
(4) कर तथा उससे प्राप्त लाभ में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता।
(5) जिस कर के मौद्रिक बोझ को दूसरों पर टाला न जा सके उसे अप्रत्यक्ष कर कहते हैं।
(6) निगम कर केन्द्र सरकार का अप्रत्यक्ष कर है।
(7) उत्पाद शुल्क एवं सीमा शुल्क केन्द्र सरकार के परोक्ष कर हैं।
(8) राजस्व खाते का घाटा एवं पूँजी खाते के घाटे का योग राजकोषीय घाटा कहलाता है।
(9) स्फीति समायोजित घाटे को क्रियात्मक घाटा कहते हैं।
(10) भारतीय आयकर का नियमन इन्कम टैक्स ऐक्ट 1961 के द्वारा होता है।

22.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि भारतीय बजटरी व्यवस्था में तीन प्रकार के खातों के रूप में सरकारी व्यवहार को प्रस्तुत किया जाता है- संचित कोष, सार्वजनिक खाता एवं आकस्मिक कोष। बजट के दो भाग होते हैं- राजस्व बजट तथा पूँजी बजट। इन दोनों भागों से सम्बन्धित समस्त पहलुओं की विवेचना की जा सकती है। प्रत्यक्ष कर, अप्रत्यक्ष कर, उपकर, अधिभार तथा गैर-कर आय का विश्लेषण भी किया जा सकता है। राजस्व प्राप्तियों एवं राजस्व व्यय तथा पूँजीगत प्राप्तियों एवं पूँजीगत व्यय के विभिन्न मदों को समझ सकेंगे। यदि सरकार का व्यय उसके आय से अधिक हो तो बजट में घाटा उत्पन्न होता है। ये घाटे कई प्रकार के होते हैं जैसे- राजस्व घाटा, बजटरी घाटा, राजकोषीय घाटा, प्राथमिक घाटा, मौद्रिकृत घाटा आदि। भारतीय बजट में सार्वजनिक ऋण का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ये ऋण आन्तरिक तथा वाह्य दोनो हो सकतें हैं। इस प्रकार इस इकाई के अध्ययन से भारतीय लोकवित्त की बजटरी व्यवस्था को समझ सकेगें।

22.10 शब्दावली

बजट- सरकार का वार्षिक वित्तीय विवरण
संचित कोष- सरकार की सम्पूर्ण राजस्व प्राप्तियों का कोष

कर- सरकार को दिया गया अनिवार्य अंशदान जिसके बदले करदाता को कोई प्रत्यक्ष लाभ सरकार से नहीं मिलता हैं।

गैर-कर राजस्व - प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से सरकार की प्राप्तियां।

उपकर- किसी विशेष प्रयोजन के लिए लगाया जाने वाला कर

आर्थिक सर्वेक्षण- एक वित्तीय वर्ष में भारतीय अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों की स्थिति एवं मूल्यांकन का सरकारी प्रकाशन

22.11 अभ्यास प्रश्न व उत्तर

प्रश्न (क) - एक शब्द/वाक्य में उत्तर दीजिए-

उत्तर- (1) 266 एवं 267 (2) आकस्मिक कोष (3) संचित कोष (4) दो (5) राजस्व व्यवहार (6) राजस्व प्राप्तियां (7) प्रत्यक्ष कर (8) 1 जनवरी, 1963 (9) कैल्डर ने (10) रू0 1,80,000 (11) उपकर (12) सब्सिडी (13) पूँजीगत व्यय (14) राजस्व घाटा (15) बजटरी घाटा (16) सार्वजनिक ऋण तथा अन्य देयताएं (17) प्राथमिक घाटा (18) रिजर्व बैंक।

उत्तर- (1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य (5) असत्य (6) असत्य (7) सत्य (8) असत्य (9) सत्य (10) सत्य

22.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

7. H.L. Bhatia : Public Finance
8. B. Mishra : Economics of Public Finance
9. R.N. Tripathi: Fiscal Policy and Economic Development in India
10. R.N. Bhargava: Indian Public Finance
11. Govt. of India: Annual Budgets
12. Govt. of India: Economic Survey

22.13 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1-भारत के बजटरी व्यवस्था में सरकारी व्यवहार को प्रस्तुत करने वाले खातों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

प्रश्न 2-भारत सरकार के राजस्व बजट की प्राप्तियों और व्यय के मुख्य घटकों की समीक्षा कीजिए।

प्रश्न 3-भारत सरकार द्वारा प्रत्युक्त बजटीय और राजकोषीय घाटों की अवधारणाओं की समीक्षा करें।

प्रश्न 4-भारतीय बजटरी व्यवहार में सार्वजनिक ऋण पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई 23 केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध

इकाई संरचना

23.0 प्रस्तावना
23.1 उद्देश्य
23.2 साधनों का विभाजन
23.3 केन्द्र से राज्यों का साधन अन्तरण
23.4 वित्त आयोगों के माध्यम से अन्तरण
23.5 कर साधनों का विभाजन
  23.5.1 आय कर
  23.5.2 केन्द्रीय उत्पादन शुल्क
  23.5.3 अतिरिक्त उत्पादन शुल्क
  23.5.4 सम्पदा शुल्क
23.6 ग्यारहवें एवं बारहवें वित्त आयोग का अन्तरण फार्मूला
23.7 सहायक अनुदान
23.8 तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशें अवधि 2010-15
23.9 सारांश
23.10 शब्दावली
23.11 अभ्यास प्रश्न व उत्तर
23.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
23.13 निबन्धात्मक प्रश्न

23.0 प्रस्तावना

संघीय संवैधानिक व्यवस्था में केन्द्रीय और राज्य सरकारों के बीच सम्बन्ध स्पष्ट रूप से निर्धारित होते हैं। लेकिन संघीय वित्त व्यवस्था की कुछ विशिष्ट समस्याएं होती है जिनका समाधान आवश्यक होता है। सबसे पहले तो केन्द्रीय और राज्य सरकारों के बीच राजस्व के स्रोतों के विभाजन में इस बात को ध्यान में रखना होता है कि दोनों स्तर की सरकारों के साधन पर्याप्त हों ताकि वे अपने दायित्व के सभी कार्यों को पूरा कर सकें। लेकिन आधुनिक राज्यों में प्रायः यह सम्भव नहीं होता है क्योंकि अलग-अलग राज्यों की जरूरतों और उनके साधनों के बीच पूरी तरह संतुलन हो पाना बहुत मुश्किल होता है। इसलिए राज्यों और केन्द्र और विभिन्न राज्यों के बीच वित्तीय समायोजन की आवश्यकता पड़ती है। दूसरे, संघीय व्यवस्था में हर सरकार के स्वातंत्र वित्तीय अधिकार होने चाहिए। इसका अर्थ यह है कि हर सरकार के राजस्व के अलग-अलग स्रोत होने चाहिए ताकि वह स्वतंत्र रूप से कर लगा सके, ऋण ले सके, और अपने दायित्व के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए जरूरी व्यय कर सके। तीसरे, कराधान की दृष्टि से जहां तक सम्भव हो सभी राज्यों में लगभग एक सी व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि वित्तीय समायोजन की व्यवस्था के अन्तर्गत राज्यों को अनुदान की राशियां निर्धारित करते समय विवाद की गुंजाइश कम हो।

23.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- भारत में केन्द्र से राज्यों को साधनों के अन्तरण प्रणाली की स्थिति को समझ सकेंगे।
- आयकर के बंटवारे के सम्बन्ध में विभिन्न वित्त आयोगों की संस्तुतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों तथा उसके द्वारा कर राजस्व में राज्यों का हिस्सा निश्चित करने के लिए तय किए गये आधार को समझ सकेंगे।

23.2 साधनों का विभाजन

भारत में केन्द्रीय और राज्य सरकारों के बीच कराधान के अधिकारों का विभाजन करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि वे सभी कर जिनका सम्पूर्ण देश के आर्थिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाए जायें। ऐसे कर जिनका, उस राज्य के अलावा जो कर लगा रहा है, किसी अन्य राज्य के जीवन पर असर नहीं पड़ता, राज्य सरकारों द्वारा लगाए और एक़ित्रत किए जाने चाहिए। भारत में राजस्व के स्रोतों का केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजन कुछ इस तरह हुआ है कि केन्द्रीय सरकार के पास हमेंशा बड़ी मात्रा में अतिरिक्त साधन रहते हैं जबकि राज्यों के बजटों में

साधनों की कमी रहती है। इसलिए केन्द्र से राज्यों को कर विभाजन के द्वारा साधन-अन्तरण की व्यवस्था की गयी है। इसके अलावा संविधान की धारा 275 और 282 के अन्तर्गत केन्द्र से राज्यों को सहायक अनुदान की व्यवस्था है। धारा 275 के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार राज्यों को वित्त आयोग की सिफारिश पर सहायक अनुदान देती है। ये अनुदान राज्यों के राजस्व और व्यय के बीच अन्तर को पूरा करने के लिए दिए जाते है। धारा 282 के अन्तर्गत दिये जाने वाले अनुदान विवेकाधीन हैं। केन्द्रीय सरकार राज्यों को सूखा, बाढ़ आदि प्राकृतिक विपत्तियों के समय सहायक अनुदान इसी धारा के अन्तर्गत देती है। यदि कर-विभाजन और सहायक अनुदान द्वारा भी राज्य सरकारें अपने व्यय और राजस्व के बीच अन्तर को पूरा नहीं कर पातीं है वे संविधान की धारा 293 के अन्तर्गत केन्द्र से ऋण ले सकती हैं। इस तरह केन्द्र से राज्यों को साधनों का अन्तरण तीन प्रकार से होता है- ;पद्ध करों और शुल्कों का विभाजन ;पपद्ध सहायक अनुदान और ;पपपद्ध ऋण।

23.3 केन्द्र से राज्यों को साधन अन्तरण

आयोजन काल में केन्द्र से राज्यों को साधनों के अन्तरण में लगातार वृद्धि हुई है। दरअसल हर नई पंचवर्षीय योजना की अवधि में पहले वाली पंचवर्षीय योजना की अवधि की तुलना में केन्द्र से राज्यों को साधनों का अन्तरण प्रायः दुगुना या उससे भी अधिक रहा है। राज्य सरकारों के कुल व्ययों में इन अन्तरणों का भाग प्रायः 35 से 45 प्रतिशत के बीच रहा है। इस तथ्य से राज्यों की केन्द्र सरकार पर निर्भरता प्रकट होती है।

केन्द्र से राज्यों को कुल अन्तरण में सर्वाधिक अन्तरण करों और शुल्कों के रूप में रहा है। इस दृष्टि से दूसरा स्थान ऋणों का और तीसरा अनुदान का रहा है।

23.4 वित्त आयोगों के माध्यम से अन्तरण

विभाज्य करों और शुल्कों के केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजन से पहले यह तय करना जरूरी है कि विभाज्य राशि क्या हो और इन करों और शुल्कों के विभाजन का आधार क्या हो। भारतीय संविधान में यह तथ्य स्वीकार किया गया है सरकारों की बदलती हुई जरूरतों और परिस्थितियों के कारण केन्द्र और राज्यों के बीच के साधनों के विभाजन के आधार में समय-समय पर परिवर्तन की आवश्यकता होगी। अतः संविधान में केन्द्र और राज्यों के बीच साधनों के विभाजन के लिए कोई निश्चित सिद्धान्त अथवा नियम निर्धारित नहीं किये गये। इसके बजाय संविधान में व्यवस्था की गयी है कि हर पांचवे वर्ष या इससे पहले इन मुद्दों पर विचार करने के लिए एक वित्त आयोग की नियुक्ति की जानी चाहिए। वित्त आयोग की नियुक्ति संविधान की धारा 280 के अन्तर्गत की जाती है। वित्त आयोग मुख्य रूप से दो बातों में अपनी सिफारिशें देता है-

उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना जिनके आधार पर केन्द्र और राज्यों के विभाज्य करों का विभाजन हो। इस तरह वित्त आयोग सिफारिश करता है कि विभाज्य करों से प्राप्ति में केन्द्रीय और राज्य सरकारों का भाग कितना-कितना होगा।

उन सिद्धान्तों के बारे में सिफारिश करना जिनके आधार पर केन्द्रीय सरकार राज्यों को अनुदान देगी। वित्त आयोग अनुदान की राशि के बारे में अपनी सिफारिशें करता है।

राष्ट्रपति स्वस्थ वित्तीय व्यवस्था के लिए वित्त आयोग को किसी भी सम्बन्धित मसले पर सिफारिश देने के लिए आग्रह कर सकते हैं। अब तक तेरह वित्त आयोग अपना काम कर चुके हैं। तेरहवें वित्त आयोग का गठन 1 नवम्बर, 2007 को विजय केलकर की अध्यक्षता में किया गया। इस आयोग ने 2010 से 2015 की अवधि के लिए केन्द्र से राज्यों को संसाधनों के अन्तरण के बारे में सिफारिशें प्रस्तुत की है। सभी वित्त आयोगों ने केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाने वाले करों व शुल्कों, रेल किरायों और भाड़ों पर करों (1957 में पहली बार लगाए गये) से शुद्ध प्राप्तियों के आबंटन और राज्यों के बजट में घाटों को पूरा करने के लिए दिए जाने वाले अनुदानों के बारे में सिफारिशें की हैं। इसके अलावा कुछ आयोंगों ने राज्यों में प्रशासन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए केन्द्र से अनुदान देने की सिफारिशें की। दसवें वित्त आयोग ने विपत्ति सहायता फण्ड की योजना का भी पुनः मूल्यांकन किया तथा 31 मार्च, 1994 को राज्यों की ऋण स्थिति के अनुमान प्रस्तुत किये। दसवें, ग्यारहवें और बारहवें वित्त आयोगों ने केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाने वाले करों से प्राप्तियों से केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजन के विषय में सिफारिशें की हैं।

23.5 कर साधनों का विभाजन

मुख्य कर जिनका विभाजन केन्द्र और राज्यों के बीच होता है आय कर और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क हैं यद्यपि वित्त आयोग कुछ अन्य विभाज्य करों (उदाहरणार्थ, संपदा शुल्क) के बारे में भी अपनी सिफारिशें पेश करता रहा है।

23.5.1 आय-कर- आयकर से निबल प्राप्ति में राज्यों का भाग 55 प्रतिशत से 85 प्रतिशत के बीच में रहा है। सारणी-1 से स्पष्ट किया गया है कि पहले दस वित्त आयोगों ने आयकर से निवल प्राप्ति में राज्यों का भाग कितना रखनें की सिफारिश की थी।

विभिन्न राज्यों का आयकर में भाग निर्धारित करने के लिए विभिन्न वित्त आयोगों ने अलग-अलग आधारों की सिफारिश की थी। पहले वित्त आयोग ने सिफारिश की थी कि राज्यों के बीच आयकर की विभाज्य राशि का 80 प्रतिशत उनकी जनसंख्या के अनुपात में और 20 प्रतिशत कर एकत्रण के अनुपात में बांटा जाना चाहिए। दूसरे वित्त आयोग ने राज्यों के बीच आयकर विभाज्य राशि का 90 प्रतिशत उनकी जनसंख्या के अनुपात में और 10 प्रतिशत कर एकत्रण के अनुपात में बांटने की सिफारिश की थी। तीसरे और चौथे वित्त आयोग ने इस सम्बन्ध में पहले वित्त आयोग द्वारा

प्रस्तावित फार्मूले को ही अपनाया लेकिन पांचवे, छठे और सातवें वित्त आयोगों ने दूसरे वित्त आयोग द्वारा प्रस्तावित फार्मूले को अपनाने का सुझाव दिया। आठवें वित्त आयोग ने आयकर की विभाज्य राशि का 10 प्रतिशत राज्यों को कर एकत्रण के आधार पर प्रदान किया और बाकी के 90 प्रतिशत के विभाजन के लिए केवल जनसंख्या को आधार न लेकर, तीन आधार लिए: ;पद्ध जनसंख्या का आधार ;पपद्ध दूरी का आधार तथा ;पपपद्ध आय विलोम आधार जिसे आय-समायोजित कुल जनसंख्या आधार भी कहा जाता है। नौवें वित्त आयोग ने कर एकत्रण के आधार पर राज्यों को 10 प्रतिशत हिस्सा प्रदान किया परन्तु बाकी के 90 प्रतिशत का आबंटन करने के लिए आठवें आयोग द्वारा प्रस्तुत तीन आधारों के अलावा अपनी पहली रिपोर्ट में गरीबी के सूचकांक और दूसरी रिपोर्ट में पिछड़ेपन के सूचकांक को भी शामिल किया।

सारणी-23.1 आयकर के सम्बन्ध में वित्त आयोगों की सिफारिशें

(प्रतिशत)

वित्त आयोग	आयकर में राज्यों का भाग	राज्यों में आयकर का वितरण	
		जनसंख्या के आधार पर	एकत्र की गयी कर आय के आधार पर
पहला	55	80	20
दूसरा	60	90	10
तीसरा	66	80	20
चौथा	75	80	20
पांचवां	75	90	10
छठा	80	90	10
सातवें से नवें	85	90	10
दसवां	77.5	90	10

दसवें वित्त आयोग ने आय-कर विभाज्य राशि के राज्यों के बीच बंटवारे के लिए निम्नलिखित कसौटियों का प्रयोग किया-

1971 की जनसंख्या के आधार पर 20 प्रतिशत

सर्वोच्च प्रतिव्यक्ति आय वाले राज्य (पंजाब) से प्रतिव्यक्ति आय की दूरी के आधार पर 60 प्रतिशत

राज्य के क्षेत्रफल के आधार पर 5 प्रतिशत

आधारिक संरचना के सूचकांक के आधार पर 5 प्रतिशत तथा

राज्यों द्वारा किये गये कर प्रयासों के आधार पर 10 प्रतिशत (कर प्रयास को किसी भी राज्य के प्रतिव्यक्ति कर राजस्व से प्रतिव्यक्ति आय के अनुपात के रूप में परिभाषित किया गया है)।

23.5.2 केन्द्रीय उत्पाद शुल्क- केन्द्रीय उत्पाद शुल्क का केन्द्रीय और राज्य सरकारों के बीच विभाजन अनुमत है पहले वित्त आयोग ने केवल तीन वस्तुओं पर लगाये गये उत्पादन शुल्क का 40 प्रतिशत राज्यों में जनसंख्या के आधार पर बांटने की सिफारिश की। दूसरे और तीसरे वित्त आयोग ने इस क्षेत्र में वस्तुओं की संख्या को और बढ़ा दिया। चौथे वित्त आयोग ने 45 वस्तुएं शामिल की किन्तु राज्यों को इनसे प्राप्त कुल आय का 20 प्रतिशत देने की सिफारिश की जिसमें 80 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर और शेष राज्य के आर्थिक और सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर। पांचवे वित्त आयोग ने भी लगभग वही सिफारिशें की जो चौथे वित्त आयोग ने की थी। छठे वित्त आयोग ने भी उत्पादन शुल्क में राज्यों का भाग जो 20 प्रतिशत रखा परन्तु इसके वितरण का आधार बदल दिया- 75 प्रतिशत तो जनसंख्या के आधार पर और 25 प्रतिशत राज्य के पिछड़ेपन के आधार पर। सातवें वित्त आयोग ने राज्य का भाग उत्पादन शुल्क से प्राप्ति का 40 प्रतिशत निश्चित करने की और इसके वितरण के लिए नया फार्मूला अपनाने की सिफारिश की। आठवें वित्त आयोग ने राज्यों के भाग को बढ़ाकर 45 प्रतिशत कर दिया और 40 प्रतिशत का वितरण नये फार्मूले के आधार पर और 5 प्रतिशत घाटे वाले राज्यों के लिए रखा गया। नवें वित्त आयोग ने 45 प्रतिशत की समग्र प्राप्ति को एक समेकित राशि के रूप में वितरित करने का प्रस्ताव किया किन्तु दसवें वित्त आयोग ने संघीय उत्पादन शुल्कों की शुद्ध प्राप्तियों के भाग को बढ़ाकर 47.5 प्रतिशत कर दिया। उत्पादन शुल्कों के राज्यीय-भाग में वृद्धि का उद्देश्य आयकर में इनके भाग में की गयी कमी की क्षतिपूर्ति करना है।

23.5.3 अतिरिक्त उत्पादन शुल्क-ये शुल्क 1956 में राष्ट्रीय विकास परिषद में हुए एक समझौते के पालन में केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाते हैं। सामान्य उत्पादन शुल्कों के अतिरिक्त, केन्द्र बिक्री कर के एवज में सूती वस्त्रों, तम्बाकू और चीनी पर अतिरिक्त उत्पादन शुल्क भी लगाता रहा है और इनसे समग्र प्राप्तियों का वितरण राज्यों में किया जा रहा है। चंूकि अतिरिक्त उत्पादन शुल्क बिक्री कर के एवज में लगाए जाते हैं जो कि स्वयं उपभोग पर कर है, विभिन्न राज्यों के भाग इन वस्तुओं के उपभोग में उन राज्यों के भाग के अनुरूप ही है।

नवें वित्त आयोग ने यह संकेत दिया है कि इन वस्तुओं के राज्यवार उपभोग के आंकड़े उपलब्ध नहीं है और इसलिए अतिरिक्त उत्पादन शुल्कों से प्राप्त निवल आय में अलग-अलग राज्यों का भाग निर्धारित करने के लिए राज्य घरेलू उत्पाद और जनसंख्या के प्रयोग की सिफारिश की है। दसवें वित्त आयोग ने इस आवंटन योजना को बदल दिया है।

23.5.4 सम्पदा शुल्क-सम्पदा-शुल्क 1953 में लागू किया गया जिससे होने वाली समग्र आय राज्यों को हस्तान्तरित करने का निर्णय किया गया। द्वितीय वित्त आयोग ने यह सिफारिश की कि इसका। प्रतिशत संघीय क्षेत्रों को दिया जाए और शेष राज्यों में बॉट दिया जाए। चौथे, पॉचवें और छठे वित्त आयोग ने संघीय क्षेत्रों के भाग को बढ़ाकर 5 प्रतिशत करने की सिफारिश की। सातवें वित्त

आयोग ने यह सिफारिश की कि कृषि सम्पदा को छोड़ अन्य प्रकार की सम्पदा से प्राप्त होने वाले सम्पदा शुल्क का वितरण प्रत्येक राज्य में स्थित सम्पदाओं के कुल मूल्य के अनुपात में होना चाहिए। आठवें वित्त आयोग ने सम्पदा शुल्क के वितरण में कोई तब्दीली नहीं की।

चूँकि सम्पदा शुल्क को 1 अप्रैल, 1985 से समाप्त कर दिया गया और आगे सरकार का इसे पुनः लगाने का कोई इरादा नहीं है, अतः नौवे तथा बाद के वित्त आयोगों ने इस सम्बन्ध में कोई सिफारिशें नहीं की हैं।

23.6 ग्यारहवें एवं बारहवें वित्त आयोग का अन्तरण फार्मूला

ग्यारहवें वित्त आयोग ने सिफारिश की थी कि केन्द्रीय सरकार के निबल कर राजस्व का 28 प्रतिशत राज्यों को दिया जाना चाहिए। इसके अलावा अतिरिक्त उत्पादन शुल्क के बदले में निबल कर राजस्व का 1.5 प्रतिशत राज्यों को मिलना चाहिए। लेकिन जो राज्य चीनी, तम्बाकू और कपड़े पर किसी तरह का कर लगायेंगे उन्हें अतिरिक्त 1.5 प्रतिशत में कोई हिस्सा नहीं मिलेगा।

साधनों के अभाव की स्थिति का सामना करते हुए अनेक राज्यों ने बारहवें वित्त आयोग से आग्रह किया था कि केन्द्र द्वारा करों से एकत्रित धनराशि में उनका भाग 29.5 प्रतिशत से बढ़ाकर कम से कम 33 प्रतिशत तो कर ही देना चाहिए। बारहवें वित्त आयोग ने राज्यों की मांग कि केन्द्र द्वारा करों की प्राप्ति में उनका भाग कम से कम 33 प्रतिशत तो कर ही देना चाहिए असंगत मानते हुए तर्क दिया कि केन्द्र और राज्यों के बीच समता के उद्देश्य को प्राप्त करने के अनुदान अधिक प्रभावी तंत्र है। इस तर्क के बावजूद बारहवें वित्त आयोग ने केन्द्रीय करों कि वित्तरणीय धनराशि में राज्यों का भाग 29.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 30.5 प्रतिशत कर दिया। तथापि यदि कपड़े, तम्बाकू और चीनी पर लगाये जाने वाले उत्पादन शुल्क केन्द्रीय करों की वितरणीय धनराशि का हिस्सा नहीं बनते अथवा राज्यों को इन वस्तुओं पर बिक्री कर लगाने की अनुमति होती है तो केन्द्रीय करों की वितरणीय धनराशि में राज्यों का भाग 29.5 प्रतिशत ही रहेगा।

राज्यों को केन्द्र से मिलने वाले कर राजस्व में उनके हिस्सा के निर्धारण के लिए बारहवें वित्त आयोग ने ग्यारहवें वित्त आयोग से भिन्न फार्मूले की सिफारिश की सारणी-2 में केन्द्र से प्राप्त होने वाले कर राजस्व में राज्यो का भाग निर्धारित करनें के लिए आधार स्पष्ट किए गए है। इस सारणी के सावधानीपूर्वक अध्ययन से स्पष्ट है राज्यों के बीच कर राजस्व में उनकी वितरणीय धनराशि जिन आधारों पर बांटी जानी चाहिए वे आधार लगभग वही हैं जिनकी दसवें और ग्यारहवें वित्त आयोगों ने सिफारिश की थी लेकिन बारहवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित भार ठीक वही नहीं है जो दसवें और ग्यारहवें वित्त आयोगों ने तय किए थे। कर राजस्व की केन्द्र और राज्यों में विभाज्य धनराशि किस तरह राज्यों में विभाजित हो इसके लिए फार्मूला तय करते हुए बारहवें वित्त आयोग ने 'न्याय' और 'राजकोषीय कार्यकुशलता' के सिद्धान्तों के अपनाया। न्याय के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि राज्यों

को विभाज्य कर राजस्व में उनका भाग इस तरह तय किया जाय कि उनकी साधनों की कमी को दूर किया जा सके और केन्द्र से कर राजस्व के अन्तरण के बाद उनकी राजकोषीय स्थिति लगभग एक जैसी ही हो जाए। राजकोषीय कार्यकुशलता को बारहवें वित्त आयोग ने कर प्रयास और वित्तीय अनुशासन के रूप में देखा है।

सारणी-23.2 केन्द्र से प्राप्त होने वाले कर राजस्व में राज्यों का भाग निर्धारित करनें के लिए आधार (प्रतिशत)

आधार	दसवां वित्त आयोग	ग्यारहवां वित्त आयोग	बारहवां वित्त आयोग
1. जनसंख्या	20-0	10-0	25-0
2. प्रतिव्यक्ति आय की दूरी	60-0	62-5	50-0
3. क्षेत्रफल	5-0	7-5	10-0
4. बुनियादी संरचना का सूचकांक	5-0	7-5	&
5. कर प्रयास	10-0	5-0	7-5
6. वित्तीय अनुशासन	0-0	7-5	7-5
कुल	100-0	100-0	100-0

23.7 सहायक अनुदान

भारतीय संविधान की धाराएं 275 और 282 केन्द्र से राज्यों को सहायक अनुदानों के बारे में है। धारा 275 के अन्तर्गत उन राज्यों को अनुदान देने की व्यवस्था की गयी है जिन्हें सहायता की आवश्यकता हो। इनकी मात्रा वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर तय की जाती है। धारा 282 के अन्तर्गत किसी भी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अनुदान दिया जा सकता है और उसकी राशि केन्द्र सरकार अपने निर्णय द्वारा तय कर सकती है।

धारा 275 के अन्तर्गत राज्यों को अनुदान देने के लिए पहले वित्त आयोग ने मुख्य रूप से राज्यों की बजट सम्बन्धी आवश्यकताओं पर ही ध्यान दिया। दूसरे वित्त आयोग विकास की दृष्टि से राज्यों की आवश्यकताओं के अलावा चार सीमावर्ती राज्यों की विशेष जरूरतों को ध्यान में रखकर अनुदान की राशियां निर्धारित की । तीसरे वित्त आयोग ने सिफारिश की थी कि कर अन्तरण को मिलाकर केन्द्र से राज्यों को अनुदान की राशि उनके गैर योजना राजस्व घाटे की पूरी तरह और योजना राजस्व घाटे के 75 प्रतिशत की व्यवस्था कर सकने की स्थिति में होनी चाहिए। चौथे वित्त आयोग ने भी बजट सम्बन्धी घाटे को अनुदान का आधार बनाया जिसके वजह से बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े राज्यों को कोई अनुदान नहीं मिला। पांचवे वित्त आयोग ने भी इसी आधार को अपनाकर तय किया कि बिहार, गुजरात, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र , पंजाब और उत्तर प्रदेश को छोड़कर अन्य राज्यों को अनुदान दिया जाय।

छठे वित्त आयोग ने अनुदान की राशि में भारी वृद्धि की। इसने प्रशासन का स्तर सुधारने के लिए 815.84 करोड़ रूपये के अनुदान देने की सिफारिश की। सातवें वित्त आयोग की राय में केवल आठ राज्यों में गैर योजना राजस्व घाटा होने का अनुमान था। इन राज्यों को 1173.12 करोड़ रूपये का अनुदान देने की सिफारिश की गयी। इसके अलावा गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र और पंजाब को छोड़कर अन्य सभी राज्यों को गैर विकास क्षेत्रों और सामान्य प्रशासन स्तर ऊँचा करने के लिए 436.79 करोड़ रूपये अनुदान देने का सुझाव दिया गया।

आठवें वित्त आयोग ने राज्यों द्वारा दिये गये प्राप्तियों और व्ययों के अनुमानों पर विचार कर राजस्व घाटे की पूर्ति के लिए कुछ राज्यों को छोड़कर अन्य सभी राज्यों को 1690.93 करोड़ रूपये का अनुदान तथा प्रशासन का स्तर सुधारने के लिए 914.55 करोड़ रूपये का अनुदान देने की सिफारिश की।

नौवें वित्त आयोग में राज्यों को अनुदान की राशियां उनकी राजकोषीय आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित की गयी। किसी राज्य की राजकोषीय आवश्यकता आदर्शात्मक ढंग निर्धारित राजस्व प्राप्तियों और गैर योजना व्यय में अन्तर के बराबर मानी गयी। नौवें वित्त आयोग ने योजना तथा गैर योजना राजस्व घाटे की पूर्ति के लिए 15017 करोड़ रूपये तथा आपातकालीन राहतकोष में केन्द्र के योगदान के रूप में 603 करोड़ रूपये का विशेष अनुदान की संस्तुति की। साथ ही आयोग ने भोपाल गैस त्रासदी के पीड़ितों के लिए पुनर्वास एवं सहायता पर व्यय के लिए 122 करोड़ रूपये का अनुदान मध्य प्रदेश को स्वीकृत किया।

दसवें वित्त आयोग ने गैर योजना राजस्व खातों पर राज्यों के घाटे का अनुमान लगाया था तथा 7582.68 करोड़ रूपये सहायक अनुदान की सिफारिश की। घाटे को पूरा करने के अनुदानों के अलावा दसवें वित्त आयोग ने केन्द्र से राज्यों को प्रशासन के स्तर में सुधार तथा विशिष्ट समस्याओं के लिए 2608.50 करोड़ रूपये; विपत्ति सहायता के अधीन 4728.19 करोड़ रूपये तथा स्थानीय संस्थाओं को 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के अधीन दायित्वों को पूरा करने के लिए 5380.93 करोड़ रूपये अनुदान देने की सिफारिश की।

ग्यारहवें वित्त आयोग ने प्रत्येक राज्य के राजस्व घाटे का अनुमान लगाने के लिए कर और गैर कर राजस्व में वृद्धि की प्रवृत्ति के साथ-साथ व्यय की प्रवृत्ति पर गौर किया। इसके अलावा केन्द्र सरकार के कर और गैर कर राजस्व सम्बन्धी अनुमान और राज्यों को वित्तीय अन्तरण पर भी विचार किया गया। तत्पश्चात् प्रत्येक राज्य के घाटे का अनुमान लगाने के लिए कर एवं गैर कर राजस्व और व्यय में वृद्धि की मानकी दरें सभी राज्यों के समान रूप से लागू की गयी। इस सिद्धान्त का पालन करते हुए ग्यारहवें वित्त आयोग ने 25 राज्यों में से 15 राज्यों को गैर योजना राजस्व राज्य घोषित किया और इन राज्यों को संविधान की धारा 275(1) के अन्तर्गत 2000 से 2005 की अवधि के लिए 35,359 करोड़ रूपये गैर योजना राजस्व अनुदान की सिफारिश की। इस अनुदान की 85 प्रतिशत

राशि को संबन्धित राज्यों को दिया जा सकता है। 2000-05 के दौरान 11,007.59 करोड़ रूपये की राशि के विपत्ति राहत कोष की योजना जारी की गयी। इस कोष में केन्द्र का अंशदान 8,225.69 करोड़ रूपये का और राज्यों का अंशदान 2,751.90 करोड़ रूपये का था।

बारहवें वित्त आयोग ने पिछले सभी वित्त आयोगों की सिफारिशों की तुलना में एक महत्वपूर्ण सिफारिश की। इस आयोग ने केन्द्र से राज्यों को अन्तरण में सहायता अनुदान का भाग बढ़ाकर लगभग 19 प्रतिशत कर दिया। बारहवें वित्त आयोग ने सहायता अनुदान में वृद्धि के लिए दो कारण बताए। एक तो अनुदान में निश्चितता अधिक होती है और दूसरे उनके द्वारा निर्धारित लक्ष्य को पाना आसान होता है। बारहवें वित्त आयोग ने सम्बन्धित काल में गैर योजना राजस्व घाटे को पूरा करने के लिए 15 राज्यों को 56,856 करोड़ रूपये के अनुदान की सिफारिश की यह राशि कुल अनुदान की लगभग 40 प्रतिशत है। बारहवें वित्त आयोग ने राज्यों में सड़कों और इमारतों के रख-रखाव के लिए 20,000 करोड़ रूपये के अतिरिक्त अनुदान की सिफारिश की बारहवें वित्त आयोग ने विपदा सहायता कोष सम्बन्धी योजना को चालू रखने का सुझाव दिया। यही नहीं इस आयोग ने भी पिछले वित्त आयोगों की तरह यह सिफारिश की कि इस योजना के लिए केन्द्र व राज्यों धन सम्बन्धी योगदान 75 और 25 प्रतिशत होना चाहिए।

23.8 तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशें अवधि 2010-15

13 नवम्बर 2007 को जारी विज्ञप्ति में तेरहवें वित्त आयोग को निम्न विषयों पर सिफारिशें देने को कहा गया-केन्द्र से राज्यों को कर राशि का अन्तरण; राज्यों को सहायक अनुदान; विभिन्न राज्यों के समेकित फंड में वृद्धि के उपाय ताकि पंचायतों एवं नगरपालिकाओं को उपलब्ध संसाधनों में वृद्धि हो सके; केन्द्र व राज्य सरकारों के वित्त आधारों की समीक्षा तथा न्यायोचित संवृद्धि से संगत, स्थायी व वहनीय राजकोषीय वातारण बनाने के लिए सुझाव। बाद में वित्त आयोग को कुछ अन्य विषयों पर भी सुझाव देने के लिए कहा गया जैसे राजकोषीय समायोजन के लिए पथ की समीक्षा; राजकोषीय समेकन से प्राप्त लाभों को 2010 से 2015 के बीच की अवधि में बनाए रखने के लिए सुझाव जिनमें केन्द्र सरकार द्वारा जारी तेल खाद्य व उर्वरक बांडों को राजकोषीय लेखा-खाते में शामिल करने की आवश्यकता को ध्यान में रखा गया हो; तथा केन्द्र सरकार की अन्य देयताओं का घाटे-संबंधित लक्ष्यों पर प्रभाव।

कर साधनों का विभाजन

तेरहवे वित्त आयोग ने इस बात की ओर ध्यान आकिर्षत किया है समयोपरि केन्द्र के कर राजस्व में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है खासतौर पर रायल्टी से दूरसंचार क्षेत्र से। भविष्य में गैर-राजस्व में संभावित वृद्धि देखते हुए कहा जा सकता है कि केन्द्र के संसाधनों में अधिक वृद्धि होगी। इसके अलाव, केन्द्रीय करों की प्रफुल्लता संयुक्त कर राज्स्व की प्रफुल्लता से अधिक है। आगे आने वाले वर्षों में

केन्द्र द्वारा लागू की गई कई योजनओं कारण (जैसे सर्वशिक्षा अभियान, मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा सुविधा का अधिकार इत्यादि) भी राज्य सरकारों के खर्चा में काफी वृद्धि होगी क्योंकि इन योजनाओं में राज्य सरकारारें को भी केन्द्रीय संसाधनों के बराबर संसाधन खर्च करने होते हैं। ग्रामीण व शहरी आधारित संरचना की व्यवस्था, पर्यावरण की सुरक्षा, छठे वेतन आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन इत्यादि के कारण भी राज्य सरकारों के व्यय में और ज्यादा वृद्धि अपेक्षित है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए तेरहवें वित्त आयोग ने केन्द्र सरकार के करों में राज्य सरकारों का हिस्सा बढ़ाकर 32 प्रतिशत कर दिया है। केन्द्र सरकार के करों में राज्य सरकारों का हिस्सा तय करने के लिए तेरहवें वित्त आयोग ने सेवा कर को विभाज्य धनराशि का हिस्सा माना है।

परन्तु वित्त आयोग ने राज्य सरकारों की इस मांग को स्वीकार नहीं किया है कि केन्द्र द्वारा लगाये गये उपकर तथा अधिशुल्कों को विभाज्य धनराशि में शामिल किया जाय। पर साथ ही आयोग ने यह सुझाव भी दिया है कि केन्द्र अपने द्वारा लगाये जाने वाले अधिशुल्कों तथा उपकरों की समीक्षा करे तथा कुल कर राजस्व में उनके महत्व में कमी करने की चेष्टा करे।

ग्यारहवें वित्त आयोग ने पहली बार यह सुझाव दिया था कि केन्द्र से राज्य सरकारों को होने वाले राजस्व खाते पर कुल अन्तरणों को केन्द्र सरकार की कुल कर प्राप्तियों का ज्यादा से ज्यादा 37.5 प्रतिशत तक रखा जाय। इस उच्चतम सीमा को बारहवें वित्त आयोग ने बढ़ाकर 38.0 प्रतिशत कर दिया था। अब तेरहवें वित्त आयोग ने इस उच्चतम सीमा को 39.5 प्रतिशत का दिया है।

कर राजस्व में राज्यों का हिस्सा निश्चित करने के लिए आधार-

तेरहवें वित्त आयोग का मानना है कि कर राजस्व के आबंटन के उसके सुझाव ''आवश्यकता, राजकोषीय अभाव तथा बेहतर निष्पादन के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन के सिद्धान्तों पर आधारित है।'' आयोग द्वारा निर्धारित आधार और उनका परस्पर भाग सारणी-3 में दिया गया है।

सारणी-23.3 केन्द्र से प्राप्त होने वाले राजस्व में राज्यों का भाग निर्धारित करने के लिए तेरहवें वित्त आयोग द्वारा तय किये गये आधार

आधार	प्रतिशत
जनसंख्या (1971)	25.0
क्षेत्रफल	10.0
राजकोषीय क्षमता की दूरी	47.5
वित्तीय अनुशासन	17.5
कुल	100.0

राजकोषीय क्षमता की दूरी एक नया आधार है जिसे तेरहवें वित्त आयोग ने अपनाया है। किसी राज्य की 'राजकोषीय क्षमता की दूरी' ज्ञात करने के लिए उसके प्रति व्यक्ति राजस्व की हरियाणा के प्रति व्यक्ति राजस्व से दूरी ली गई है। इस प्रकार सभी राज्यों के लिए जो राजकोषीय दूरी प्राप्त हुई वह राजकोषीय आधार पर प्रत्येक राज्य के प्रति व्यक्ति राजस्व अधिकार का माप है। तेरहवें वित्त आयोग ने राजकोषीय क्षमता की दूरी के आधार को 47.5 प्रतिशत भार प्रदान किया है।

तेरहवें वित्त आयोग की कर वितरण योजना के आधार पर बारहवें वित्त आयोग की तुलना में प्रत्येक राज्य के लिए अन्तरण के सकल राज्य घरेलू उत्पाद के साथ अनुपात में वृद्धि हुई है। इसलिए व्यक्तिगत तौर पर प्रत्येक राज्य को वित्त आयोग द्वारा किये गये प्रस्तावित कर वितरण से लाभ हुआ है।

सहायक अनुदान- सहायक अनुदान वित्त आयोग द्वारा किये गये अन्तरणों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होते है। सहायक अनुदानों का आकार विभिन्न वित्त आयोगों ने अलग-अलग निर्धारित किया है- कुल अन्तरणों में सहायक अनुदानों का हिस्सा कम से कम 7.7 प्रतिशत (सातवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित स्तर) से लेकर अधिकतम 26.1 प्रतिशत (छठे वित्त आयोग द्वारा निर्धारित स्तर) के बीच रहा है। बारहवें वित्त आयोग ने कुल अन्तरणों में सहायक अनुदान का हिस्सा 18.9 प्रतिशत तय किया था। तेरहवें वित्त आयोग ने सहायक अनुदान की राशि 3,18,581 करोड़ रूपये निर्धारित की है जो कुल अन्तरणों का 18.03 प्रतिशत है।

जहॉ तक विपत्ति राहत का सम्बन्ध है, तेरहवें वित्त आयोग ने राष्ट्रीय विपत्ति प्रत्युत्तर कोष तथा राज्य विपत्ति प्रत्युत्तर कोष के गठन का सुझाव दिया है। आयोग ने सुझाव दिया है की पहले से काम कर रहे विपदा सहायता कोष को राज्य विपत्ति प्रत्युत्तर कोष में मिला दिया जाय। राज्य विपत्ति प्रत्युत्तर कोष में केन्द्र और राज्यों के बीच सहायक अनुदान का केन्द्र और सामान्य राज्यों के बीच आवंटन 75: 25 के अनुपात में तथा विशेष राज्यों के सन्दर्भ में 90: 10 के अनुपात में होगा। विपत्ति राहत के लिए कुल अनुदान 26373 करोड़ रूपये है। स्थानीय निकायों के लिए सहायक अनुदान की राशि 2010-15 की पूरी अवधि में 87,519 करोड़ रूपये रखी गयी है। आयोग ने धारणीय विकास के संगत पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं जलवायु परिवर्तन के प्रबन्धन की आवश्यकता के लिए 15,000 करोड़ रूपये की व्यवस्था की है।

राजकोषीय समेकन के लिए संसोधित लक्ष्य व मार्ग- तेरहवें वित्त आयोग ने राजकोषीय समेकन के लिए कई सुझाव दिये हैं। इनमें से कुछ मुख्य सुझाव निम्नलिखित है-

केन्द्र सरकार का राजस्व घाटा लगातार इस प्रकार कम किया जाना चाहिए कि वह धीरे-धीरे समाप्त हो जाए तथा 2014-15 में राजस्व अतिरेक की स्थिति आ जाए।

केन्द्र और राज्य सरकारों का संयुक्त ऋण 2014-15 तक सकल घरेलू उत्पाद के 68.0 प्रतिशत तक कम किया जाए।

मध्यकालीन राजकोषीय योजना में संशोधन किया जाय ताकि यह केवल एक प्राप्ति योग्य लक्ष्य न रहकर प्रतिबद्धता का संकेतक हो।

राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं प्रबन्ध अधिनियम ;थ्त्ठड ।बजद्ध में उन प्रघातों का स्पष्ट उल्लेख हो जिनके कारण थ्त्ठड लक्ष्यों में ढील देने की व्यवस्था हो।

समष्टि आर्थिक प्रघातों की स्थिति में बजाय इसके की राज्यों की उधार लेने की सीमा में वृद्धि की जाय तथा उन्हें और उधार लेने की छूट दी जाए, केन्द्र सरकार को चाहिए कि वह स्वयं उधार ले और फिर इसका वितरण राज्यों के बीच उस कर वितरण फार्मूले की मदद से करे जिसका सुझाव वित्त आयोग ने दिया हो।

राज्यों को संसाधनों का कुल अन्तरण- 2010-15 की अवधि के लिए तेरहवें वित्त आयोग ने केन्द्र से राज्यों को कुल 17,76,676 करोड़ रूपये के संसाधन अन्तरण की सिफारिश की है। इसमें करों व शुल्कों का हिस्सा 14,48,096 करोड़ रूपये तथा सहायक अनुदान का हिस्सा 3,18,581 करोड़ रूपये है।

अभ्यास प्रश्न व उत्तर

प्रश्न - एक शब्द/वाक्य में उत्तर दीजिए-

(1) किस धारा के अन्तर्गत सरकार राज्यों को वित्त आयोगों की सिफारिश पर अनुदान देती है?

(2) वित्त आयोग की नियुक्ति संविधान की किस धारा के अन्तर्गत की जाती है?

(3) केन्द्र और राज्यों के बीच साधनों का विभाजन किस के सिफारिश पर होता है?

(4) अब तक कितने वित्त आयोग बनाये जा चुके हैं?

(5) तेरहवें वित्त आयोग का गठन कब किया गया?

(6) तेरहवें वित्त आयोग के अध्यक्ष कौन हैं?

(7) किन करों का विभाजन केन्द्र और राज्यों के बीच होता है?

(8) बारहवें वित्त आयोग ने केन्द्रीय वितरणीय करों में राज्यों का भाग 29.5 प्रतिशत से बढ़ाकर कितना कर दिया?

(9) केन्द्र से प्राप्त होने वाले कर राजस्व में राज्यों का भाग निर्धारित करनें के लिए बारहवें वित्त आयोग ने सर्वाधिक भार किसे दिया?

(10) तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिश की अवधि क्या है?

(11) तेरहवें वित्त आयोग ने केन्द्र सरकार के करों में राज्य सरकारों का हिस्सा कितना कर दिया है?

(12) केन्द्र से प्राप्त होने वाले राजस्व में राज्यों का भाग निर्धारित करने के लिए तेरहवें वित्त आयोग ने किस एक नये आधार को अपनाया है?

(13) तेरहवें वित्त आयोग ने अपने अन्तरण फार्मूले में किस वर्ष की जनसंख्या को आधार माना है?

(14) राजकोषीय क्षमता की दूरी ज्ञात करने के लिए किस राज्य के प्रति व्यक्ति आय से दूरी ली गयी है?

(15) तेरहवें वित्त आयोग द्वारा निर्धारित सहायक अनुदान की राशि कुल अन्तरणों का कितने प्रतिशत है?

23.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि भारत में केन्द्र और राज्यों के बीच संसाधनों का बंटवारा वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर होता है। अब तक भारत में 13 वित्त आयोगों का गठन किया जा चुका है। तेरहवें वित्त आयोग के सिफारिश की अवधि 2010-15 है तथा इस आयोग के अध्यक्ष विजय केलकर हैं। आयोजन काल में केन्द्र से राज्यों को साधनों के अन्तरण में लगातार वृद्धि हुई है जिससे राज्यों की केन्द्र सरकार पर निर्भरता प्रकट होती है। सभी वित्त आयोगों ने केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाने वाले करों व शुल्कों, रेल किरायों और भाड़ों पर करों से शुद्ध प्राप्तियों के आबंटन और राज्यों के बजट में घाटों को पूरा करने के लिए दिए जाने वाले अनुदानों के बारे में सिफारिशें की हैं। इस इकाई के अध्ययन से केन्द्र से प्राप्त होने वाले कर राजस्व में राज्यों का भाग निर्धारित करनें के लिए दसवें, ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें वित्त आयोग द्वारा तय किये गये आधार का विश्लेषण कर सकेंगे।

23.10 शब्दावली

वित्त आयोग- राज्यों को संसाधनों के बंटवारे हेतु संविधान की धारा 280 के अन्तर्गत स्थापित आयोग

अन्तरण- हस्तान्तरण

उत्पाद शुल्क- केन्द्र सरकार द्वारा वस्तुओं के उत्पादन पर लगाया जाने वाला कर

प्रति व्यक्ति आय की दूरी- सर्वोच्च प्रति व्यक्ति आय वाले राज्य से प्रति व्यक्ति आय की दूरी

कर प्रयास- किसी भी राज्य के प्रति व्यक्ति कर राजस्व से प्रति व्यक्ति आय का अनुपात

23.11 अभ्यास प्रश्न व उत्तर

उत्तर- (1) धारा 275 (2) धारा 280 (3) वित्त आयोग (4) 13 (5) 1 नवम्बर, 2007 (6) विजय केलकर (7) आय कर एवं उत्पाद शुल्क (8) 30.5 प्रतिशत (9) प्रतिव्यक्ति आय की दूरी (10) 2010-15 (11) 32 प्रतिशत (12) राजकोषीय क्षमता की दूरी (13) 1971 (14) हरियाणा (15) 18.03 प्रतिशत।

23.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

- H.L. Bhatia: Centre-State Financial Relations in India
- B. Mishra : Economics of Public Finance

- R.N. Tripathi: Fiscal Policy and Economic Development in India
- R.N. Bhargava: Indian Public Finance
- S.K. Mishra & V.K. Puri: Indian Economy
- Rudra Dutt & K.P.M. Sundaram: Indian Economy
- Govt. of India: Report of the Various Finance Commissions

23.13 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1-भारत में संविधान के अन्तर्गत केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के वर्तमान वित्तीय सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए। क्या आप इसे सन्तोषजनक मानते हैं?

प्रश्न 2-वर्तमान में भारत में केन्द्र से राज्यों को साधनों के अन्तरण प्रणाली का परीक्षण कीजिए।

प्रश्न 3-वित्त आयोग द्वारा केन्द्र और राज्यों के राजस्व और व्यय के पूर्वानुमानों में मानकीकृत आधार अपनाने पर व्याख्यात्मक नोट लिखें। इन आधारों का प्रयोग कहॉ तक सार्थक कहा जा सकता है?

प्रश्न 4-तेरहवें वित्त आयोग की मुख्य सिफारिशों पर प्रकाश डालिए।

इकाई-24 भारतीय मौद्रिक प्रणाली

इकाई संरचना

24.0 प्रस्तावना
24.1 उद्देश्य
24.2 भारत में रजतमान (सन् 1835 से 1898 तक)
    24.2.1 भारत में रजतमान का पतन
    24.2.2 हर्शल समिति
24.3 भारत में स्वर्ण विनिमय मान
    24.3.1 फाउलर समिति
    24.3.2 चैम्बरलेन आयोग
    24.3.3 स्वर्ण विनिमय मान का खण्डन
24.4 हिल्टन यंग आयोग
24.5 भारत में कागजी मुद्रा प्रणाली
    24.5.1 प्रथम विश्व युद्ध तथा कागजी मुद्रा
    24.5.2 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया तथा कागजी मुद्रा
24.6 स्वतन्त्रता के बाद भारतीय मुद्रा प्रणाली
24.7 भारत में मुद्रा पूर्ति की अवधारणा
24.8 तरलता समायोजन सुविधा
24.9 सारांश
24.10 शब्दावली
24.11 अभ्यास प्रश्न व उत्तर
24.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
24.13 निबन्धात्मक प्रश्न

24.0 प्रस्तावना

भारतीय मौद्रिक प्रणाली में मुद्रा का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ मे भारत में कोई प्रमाणिक सिक्का नहीं था। 1835 के पूर्व अंग्रजी भारत में अनेक प्रकार के स्वर्ण तथा रजत के सिक्के संचलनशील थे जिनके मध्य कोई निश्चित वैध अनुपात निर्धारित नहीं था। इससे देश में वाणिज्य तथा उद्योग को अनेक कठिनाईयों का अनुभव करना पड़ता था क्योंकि देश में उद्योग तथा विकास के लिए स्थिर मुद्रामान का होना अत्यावश्यक है।

24.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- स्वतन्त्रता के पूर्व तथा पश्चात् भारतीय मुद्रा चलन प्रणाली की विवेचना को समझ सकेंगे।
- भारतीय मुद्रा प्रणाली में वर्तमान मुद्रा पूर्ति की अवधारणा को समझ सकेंगे।

24.2 भारत में रजतमान (सन् 1835 से 1898 तक)

1835 में इस्ट इंडिया कम्पनी ने अंग्रेजी भारत में पूर्णकाय रजत मुद्रामान को स्थापित करने का प्रयास किया तथा 1835 के मुद्रा अधिनियम के अन्तर्गत भारत में रजत मान की स्थापना की। इस मान की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार थीं-

1. इस कानून के अन्तर्गत सरकार टकसालों में रूपये की ढलाई स्वतंत्र एवं अपरिमित हुआ करती थी।
2. चांदी के रूपये का वजन 180 ग्रेन था और इसकी शुद्धता 11/12 थी।
3. रूपये को असीमित विधि ग्राह्य करार दे दिया था।
4. सरकारी टकसालों में सोने के सिक्कों की ढलाई तो हो सकती थी परन्तु वे कानूनी ग्राह्य नहीं थे। सन् 1841 में लोगों की मांग पर सरकार ने लोगों की मुहरों को सरकारी भुगतानों के रूप में 15: 1 के अनुपात में स्वीकार करना आरम्भ कर दिया था।

24.2.1 भारत में रजत मान का पतन- 1871 तक भारत में रजत मान ठीक प्रकार प्रचलित रहा था। परन्तु 1871 के बाद चांदी के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य में गिरावट के कारण भारत सरकार को निम्नलिखित कारणों से काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था-

भारत सरकार को प्रतिवर्ष इंग्लैण्ड की सरकार को गृह व्यय के रूप काफी भुगतान करना पड़ता था। चांदी का स्वर्ण मूल्य कम हो जाने के कारण भुगतान करने के लिए अधिक मात्रा में चांदी

का निर्यात करना आवश्यक हो गया था तथा इस कारण से सरकारी व्यय में काफी वृद्धि हो गयी थी। सरकारी व्यय में वृद्धि होने के हेतु घाटे की पूर्ति करने के लिए करों में वृद्धि करना आवश्यक हो गया था तथा जनता की आर्थिक कठिनाईयों में वृद्धि हो गयी थी।

चांदी के बाजार मूल्य में निरन्तर कमी होते रहने के कारण रूपये की विदेशी विनिमय दर में उच्चावचन होने लगे थे। विदेशी विनिमय दर में परिवर्तन होने के कारण देश का विदेशी व्यापार अनिश्चित तथा अस्थिर हो गया था। इससे देश के निर्यात व्यापार को गहरी हानि हुई थी।

उन यूरोपीय अधिकारियों ने जो अपने परिवारों को यूरोप में रूपया भेजते थे, रूपये की विदेशी विनिमय दर में कमी होने के कारण होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति करने की भारत सरकार से मांग की थी।

रूपये की विदेशी विनिमय दर गिरने तथा अनिश्चित हो जाने के कारण देश में विदेशी पूँजी का आयात कम हो गया था।

भारत सरकार को अंग्रेज अधिकारियों की सेवाओं को प्राप्त करना कठिन हो गया था क्योंकि भारतीय रूपये की स्टर्लिंग मूल्य में कमी हो जाने के कारण उनको भारतीय मुद्रा में अधिक वेतन देना आवश्यक हो गया था।

24.2.2 हर्शल समिति- 1892 ई0 में ब्रुसेल्स में हुए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा सम्मेलन की असफलता के पश्चात् सरकार ने लार्ड हर्शल की अध्यक्षता में एक समिति देश की मुद्रा प्रणाली तथा विनिमय स्थिति पर विशेष रूप से सरकारी टकसालों में चांदी की मुक्त सिक्का ढलाई को समाप्त करने के प्रश्न पर विचार करके सरकार को सुझाव देने के उद्देश्य से नियुक्त की। सरकार द्वारा हर्शल समिति को भारतीय मुद्रा प्रणाली सम्बन्धी निम्नलिखित तीन समस्याओं पर अपने सुझाव देने को कहा गया था।

चांदी के स्वर्ण मूल्य में कमी होने के कारण भारत सरकार की वित्तीय कठिनाईयों को किस प्रकार समाप्त किया जाना चाहिए?

रूपये की विदेशी विनिमय दर में कमी होने के कारण देश में वाणिज्य को होने वाली हानि को रोकने के लिए क्या उपाय किये जाने चाहिए?

भारतीय रूपये की विदेशी विनिमय दर गिरने से भारत में रहने वाले अंग्रेज अधिकारियों की कठिनाईयों के प्रश्न पर सुझाव देना।

हर्शल समिति ने उपरोक्त तीनों समस्याओं का अध्ययन करने के पश्चात् सरकार को निम्नलिखित सुझाव दिये थे-

देश में सरकारी टकसालों में रजत तथा स्वर्ण की मुक्त सिक्का ढलाई समाप्त की जानी चाहिए। परन्तु सरकार को जनता की मांग पर स्वर्ण के बदले में 1 शिलिंग 4 पेंस की दर पर रूपयों के मुद्रण करने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। सरकारी टकसालों में चांदी की खुली सिक्का ढलाई को समाप्त करने का उद्देश्य रूपयों की पूर्ति को सीमित करना तथा रूपये के विनिमय मूल्य में गिरावट को रोकना था। देश में चांदी का रूपया वैध मुद्रा होनी चाहिए।

भारत सरकार ने हर्शल समिति के सुझावों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से 1893 में नया मुद्रा अधिनियम बनाया था। 1893 के मुद्रा अधिनियम के अनुसार यद्यपि सरकारी टकसालों में जनता के लिए चांदी की मुक्त खुली सिक्का ढलाई समाप्त कर दी गई थी परन्तु सरकार को अपनी आवश्यकता के लिए रूपयों को मुद्रण करने का अधिकार प्राप्त था। इस समय सरकार ने तीन विज्ञप्तियां भी जारी की थीं। प्रथम विज्ञप्ति के अनुसार सरकार की स्वर्ण के सिक्कों अथवा स्वर्ण के बदले में 16 पेंस प्रति रूपये की दर चांदी के रूपये देने की जिम्मेदारी थी। दूसरी विज्ञप्ति के अनुसार सार्वजनिक ऋण का भुगतान स्वर्ण की मोहरों के द्वारा 16 पैसे प्रति रूपये की दर से किया जा सकता था। तीसरी विज्ञप्ति के अनुसार 16 पेंस प्रति रूपये की दर पर स्वर्ण के बदले में कागजी मुद्रा कार्यालय के द्वारा कागजी मुद्रा का प्रचालन किया जा सकता था।

1893 के मुद्रा अधिनियम तथा विज्ञप्तियों का प्रमुख उद्देश्य देश में रूपये की पूर्ति को सीमित रख कर इसके पौंड-स्टर्लिंग मूल्य को 16 पैसे पर स्थिर रखना था तथा इसके पश्चात् देश में स्वर्ण मान को अपनाया था। उपरोक्त उपयों के निम्नलिखित चार उद्देश्य थे-

1. रूपये के विनिमय मूल्य को गिरने से रोकना तथा इसे उपर उठाना।
2. देश में विदेशी पूॅजी के आयात को प्रोत्साहित करना।
3. देश में जनता को स्वर्ण मुद्रा से परिचित कराना।
4. चांदी के आयात को हतोत्साहित करना।

उपरोक्त सभी उपाय संक्रमिक थे तथा इन उपायों को अपनाने का मुख्य उद्देश्य देश में कुछ समय पश्चात् स्वर्ण मान को अपनाना था।

24.3 भारत में स्वर्ण विनिमय मान

यद्यपि 1890 में रूपये की विनिमय दर 1 सिलिंग 4 पैसे निश्चित की गयी थी, परन्तु कुछ कारणों से यह दर स्थाई न रह सकी। 1894 में भारत की विनिमय दर में गिरावट आनी शुरू हो गयी और घटते-घटते 1 शिलिंग 1 पैसे पर पहुंच गयी। रूपये की विनिमय दर को बढ़ाने के लिए भारत सरकार ने मुद्रा-अवस्फीति की नीति को अपनाया था। इसके परिणामस्वरूप भारत के व्यापारियों को बहुत असुविधा हुई और उन्होंने सरकार को मुद्रा व्यवस्था में सुधार करने के लिए सुझाव दिया।

परिणामतः भारत सरकार ने देश में स्वर्ण मान की स्थापना तथा विनिमय की दर को स्थिर रखने के लिए ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की।

24.3.1 फाउलर समिति- अप्रैल 1898 में सर हैनरी फाउलर की अध्यक्षता में समूची मुद्रा प्रणाली का अध्ययन करने तथा उसमें सुधार हेतु एक कमेटी नियुक्त की गयी। फाउलर समिति की मुख्य सिफारिशें निम्न थीं-

यद्यपि स्वर्ण मोहर देश में असीमित वैध मुद्रा होनी चाहिए परन्तु इसके साथ-साथ रजत का रूपया भी असीमित वैध मुद्रा होना चाहिए।
सरकार को देश में स्वर्ण मोहरों तथा अर्द्ध-मोहरों का मुद्रण करने के लिए टकसाल स्थापित करनी चाहिए।
चांदी के रूपये का मुद्रण उस समय तक नहीं होना चाहिए जबतक संचलनशील कुल मुद्रा की मात्रा काफी अधिक न हो जावे।
लंदन में एक स्वर्णमान रक्षित कोष स्थापित किया जाना चाहिए।
सरकार को चांदी के रूपयों तथा कागजी मुद्रा के बदले में स्वर्ण को खरीदना चाहिए परन्तु उस समय तक जब तक कि सरकार को काफी कोष प्राप्त नहीं हो जाता है। कागजी मुद्रा तथा चांदी के रूपयों का स्वर्ण में विमोचन नहीं करना चाहिए।
रूपये का पौंड-स्टर्लिंग मूल्य 1 शिलिंग 4 पेंस निर्धारित होना चाहिए।
सरकार ने समिति की उपरोक्त सिफारिशों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से उपयुक्त कानून बनाया था। दुर्भाग्यवश अंग्रेज सरकार के देश में स्वर्ण सिक्कों का मुद्रण करने के लिए अलग टकसाल स्थापित करने के विरोध में होने के कारण तथा भारतीय जनता के स्वर्ण सिक्कों के प्रति उदासीन होने के कारण इन सिफारिशों को व्यावहारिक रूप प्रदान नहीं किया जा सका तथा भारत सरकार को इन आकस्मिक कठिनाइयों के कारण बड़ी निराशा हुई थी। देश के विदेशी व्यापार को स्थिर करने तथा गृह व्यय के भुगतान की समस्या का समाधान करने के उद्देश्य से भारत सरकार रूपये की विनिमय दर को 1 शिलिंग 4 पेंस पर स्थिर करने के लिए अति इच्छुक थी। परिणामस्वरूप भारत में स्वर्ण विनिमय मान को अपनाया गया था। 1893 से लेकर 1898 तक का भारतीय मुद्रा का इतिहास केवल इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि अनेक असफल प्रयोगों के द्वारा भारत सरकार अन्ततः देश में स्वर्ण विनिमय मान को अपनाने में सफल हो गयी थी।

24.3.2 चेम्बरलेन आयोग- चेम्बरलेन आयोग की नियुक्ति अप्रैल 1914 में सर जोसेफ ऑस्टन चेम्बरलेन की अध्यक्षता में की गयी थी। आयोग रूपये की विनिमय दर को स्थिर रखने की रीतियों की जांच करने तथा सरकार को यह बताने के लिए प्रचलित मुद्र मान देश के हित में था अथवा नहीं, नियुक्त किया गया था। देश में स्वर्ण विनिमय मान को सुचारू रूप से चलाने के लिए कुशल मुद्रा प्राधिकरण का होना अत्यन्त आवश्यक था। भारत में जो सरकारी अधिकारी इस मुद्रा मान का प्रबन्ध करते थे उनको बाजार तथा व्यापार के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं था। यदि रिजर्व बैंक

ऑफ इण्डिया की स्थापना कुछ समय पहले हो गयी होती तो भारत में स्वर्ण विनिमय मान का अधिक परीक्षण किया जा सकता था। परन्तु यह होते हुए भी सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स ने, जो चेम्बरलेन आयोग के सदस्य थे, 1914 में इस मुद्रा मान की प्रशंसा की थी बीसवीं शताब्दी के काल में राष्ट्रसंघ के आर्थिक आयोग ने भी छोटे देशों से स्वर्ण विनिमय मान को अपनाने की सिफारिश की थी।

24.3.3 स्वर्ण विनिमय मान का खण्डन- भारत में यद्यपि स्वर्ण विनिमय मान 1900 से लेकर 1917 तक विद्यमान रहा था परन्तु 1917 के मध्य में इसका परित्याग कर दिया गया था। भारत में स्वर्ण विनिमय मान की सफलता भारतीय रूपये की संकेतिक विशेषता तथा 1 शिलिंग 4 पेंस की विनिमय दर स्थिरता पर निर्भर थी। प्रथम महायुद्ध की अवधि में भारत को अत्यधिक अनुकूल भुगतान शेष का अनुभव होने के कारण अधिक मात्रा में रूपयों को मुद्रण करने की आवश्यकता थी। परन्तु इसी काल में चांदी की अधिक मांग होने के कारण चांदी की कीमत बढ़ गयी थी।चांदी की कीमत में वृद्धि होने के कारण रूपये का वास्तविक मूल्य इसके वैधानिक मूल्य से अधिक हो गया था तथा लोगों ने रूपये को पिघलाकर धातु प्राप्त करना आरम्भ कर दिया था। ऐसी स्थिति में सरकार ने यह अनुभव किया था कि 1 शिलिंग 4 पेंस की विनिमय दर पर कौंसिल पत्रों का बेंचना सम्भव नहीं था फलस्वरूप सरकार को अगस्त 1917 में रूपये की विनिमय दर में वृद्धि करनी पड़ी तथा विनिमय दर को 1 शिलिंग 4 पेंस से बढ़ाकर 1 शिलिंग 5 पेंस कर दिया गया था।

चांदी के मूल्य में वृद्धि होने तथा रूपये का वास्तविक मूल्य अधिक होने के साथ-साथ इसके स्टर्लिंग मूल्य में भी वृद्धि होती गयी थी तथा 1920 के आरम्भ में यह बढ़कर 2 शिलिंग 10 1ध्2 पेंस हो गया था। रूपये की स्टर्लिंग विनिमय दर अस्थिर होने पर देश में स्वर्ण विनिमय मान का खण्डन हो गया। स्वर्ण विनिमय मान के खण्डन होने तथा तत्पश्चात् विनिमय दर के निरन्तर बढ़ते रहने के कारण देश के वाणिज्य तथा उद्योग को बहुत बड़ा धक्का लगा था तथा भारतीय मुद्रा का धातु रक्षित कोष जो 1914 में कुल मुद्रा का 79 प्रतिशत था 1919 में घटकर 50 प्रतिशत रह गया था।

24.4 हिल्टन यंग आयोग-

25 अगस्त 1925 को भारत सरकार ने लेफ्टिनेन्ट कर्नल हिल्टन यंग की अध्यक्षता में एक आयोग की नियुक्ति की, जिसके कुल 11 सदस्य थे, जिनमें चार भारतीय थे। इस कमीशन को मुख्य रूप से तीन बातों से सम्बन्धित सुझाव देने थे-

1. देश के लिए एक उपयुक्त मुद्रा प्रणाली के सम्बन्ध में
2. विनिमय दर की स्थिरता के सम्बन्ध में
3. देश में केन्द्रीय बैंक स्थापित करने के विषय में

हिल्टन यंग आयोग ने अपनी रिपोर्ट जुलाई 1925 में पेश की इसकी सिफारिशों का देश की मुद्रा विनिमय तथा बैंकिग व्यवस्था के विकास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। आयोग के मुख्य निम्न थे-

1. देश में स्वर्ण धातुमान अपनाया जाय
2. रूपये की विनिमय दर 1 शिलिंग 6 पेंस रखी जाय
3. देश में एक केन्द्रीय बैंक-रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया- की स्थापना की जाए।

सरकार ने हिल्टन यंग आयोग के सभी स्वीकार कर लिए थे परन्तु व्यावहारिक रूप में यह कहना कठिन है भारतीय मुद्रा प्रणाली का विकास पूर्णतया हिल्टन आयोग के सुझावों के अनुसार हुआ। आयोग ने स्वर्ण धातुमान का सुझाव रूपये का स्वर्ण के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से दिया था। परन्तु व्यवहार में सरकार ने रूपये का सम्बन्ध सोने के अतिरिक्त स्टर्लिंग से भी रखा। इस प्रकार भारत में स्थापित स्वर्ण धातुमान तथा स्टर्लिग विनिमय मान का मिला जुला रूप मुद्रा मान था। रूपये के मूल्य पर स्टर्लिंग के मूल्य में परिवर्तनों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। रूपये को स्टर्लिग अथवा स्वर्ण में बदलना सरकार की इच्छा पर निर्भर था। व्यवहार में रूपया स्टर्लिंग में ही परिवर्तनीय था और स्टर्लिंग स्वर्ण पर आधारित होने के कारण रूपया परोक्ष रूप में स्वर्ण में परिवर्तनशील था। 1931 में ब्रिटेन द्वारा स्वर्ण मान का परित्याग कर देने पर भारत में स्टर्लिग विनिमय मान प्रत्यक्ष रूप में अपना लिया गया। इस प्रकार नाम मात्र का स्वर्णधातु मान भी चार वर्ष बाद ही समाप्त कर देना पड़ा।

18 पेंस की विनिमय दर, जिसे सरकार आयोग के सुझाव पर अपनाया, रूपये की स्वाभाविक दर नहीं कही जा सकती, क्योंकि इसने देश में गम्भीर वाद-विवाद को जन्म दिया और केवल सरकार के सहारे यह दर टिक सकी।

आयोग के रिजर्व बैंक की स्थापना सम्बन्धी सुझाव को अवश्य सफलता मिली, परन्तु इस सुझाव को भी 1935 में ही कार्यान्वित किया जा सका।

यह बात अवश्य सत्य है कि हिल्टन यंग कमीशन की सिफारिशें तथा उनसे सम्बन्धित विवादों नें भारतीय मुद्रा के इतिहास को काफी विषय सामग्री प्रदान की है, परन्तु यह कहना कठिन है कि भारतीय मुद्रा प्रणाली का विकास आयोग के वास्तविक उद्देश्यों के अनुसार ही हुआ।

24.5 भारत में कागजी मुद्रा प्रणाली

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 1861 में कागजी मुद्रा जारी करने का कार्य बम्बई, मद्रास तथा बंगाल के प्रेसीडेंसी बैंकों तथा कुछ अन्य बैंकों को सौंपा था। 1861 में भारत में कागजी मुद्रा अधिनियम, 1861 पारित किया गया था और सरकार ने नोट निर्गमन का अधिकार अपने हाथ में ले लिया था। उस समय नोट निर्गमन का 'मुद्रा सिद्धान्त' लागू किया गया था। इस सिद्धान्त के अनुसार

जितने मूल्य के नोट सरकार छापेगी उतने मूल्य के सोना चांदी को कोष में रखना अनिवार्य कर दिया गया था। केवल 4 करोड़ रूपये के नोटों के पीछे आड़ के रूप में सरकारी प्रतिभूतियों को रखने की प्रथा थी। इसमें भी समय-समय पर परिवर्तन किये गये थे। 1890 में 10 करोड़ रूपये की सरकारी प्रतिभूतियां रखने की प्रथा थी।

1903 में 5 रूपये के नोट, 1910 में 10 रूपये तथा 20 रूपये के नोट तथा 1911 में 100 का नोट निर्गमित किया गया। इन नोटों को सर्वमान्य वैध मुद्रा घोषित किया गया था।

24.5.1 प्रथम विश्व युद्ध तथा कागजी मुद्रा-प्रथम विश्व युद्ध के समय जनता का विश्वास कागजी मुद्रा में कम होने लगा था क्योंकि एक ओर तो लोग मुद्रा को चांदी में परिवर्तित करने की मांग कर रहे थे तथा दूसरी और युद्धकाल में व्यापारिक गतिशीलता बढ़ जाने से भी मुद्रा मांग बढ़ रही थी। सरकार मुद्रा की बढ़ती हुई मांग की पूर्ति करने में असमर्थता प्रकट कर रही थी। परन्तु सरकार ने आड़ के रूप में चांदी रखने की परवाह नहीं की थी और कागजी नोटों की पूर्ति बढ़ा दी थी। सितम्बर 1919 सरकारी प्रतिभूतियों की आड़ के आधार पर नोटों को निर्गमित करने की सीमा बढ़ाकर 120 करोड़ रूपये कर दी थी।

24.5.2 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया तथा कागजी मुद्रा-देश में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना का सुझाव हिल्टन यंग आयोग ने दिया था। 1931 में बैंकिंग जांच समिति ने रिजर्व बैंक की स्थापना पर पुनः जोर दिया था। 6 अगस्त,1934 को भारतीय विधान सभा में पारित प्रस्ताव के अनुसार 1 अप्रैल 1935 को रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना हुई थी। इस बैंक की स्थापना से इसे कागजी मुद्रा का निर्गमन करने का अधिकार प्राप्त हो गया था। देश में साख मुद्रा एवं मुद्रा के नियन्त्रण का अधिकार भी इस बैंक को सौपा गया था।

24.6 स्वतंत्रता के बाद भारतीय मुद्रा प्रणाली

न्यूनतम निधि प्रणाली-देश की मुद्रा प्रणाली के अध्ययन में नोट प्रचालन पद्धति के अध्ययन का भी महत्व है। एक रूपये के नोट को छोड़कर अन्य सभी मूल्यांक के नोटों का प्रचलन रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा किया जाता है। इन नोटो का भुगतान भारत सरकार द्वारा प्रत्याभूत होता है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का प्रचालन विभाग मुद्रा अधिनियम के अनुसार उचित रक्षित कोष के आधार पर देश में कागजी मुद्रा का प्रचालन करता है। मुद्रा अधिनियम के अनुसार रिजर्व बैंक के नोटों के प्रचालन के पीछे 40 प्रतिशत एवं विदेशी ऋणपत्रों तथा शेष 60 प्रतिशत रूपया ऋणपत्रों को आड़ के रूप में रखना पड़ता था। दूसरे शब्दों में देश की मुद्रा प्रणाली, आनुपातिक निधि प्रणाली पर आधारित थी।अक्टूबर 1956 तथा 1957 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम में आवश्यक संशोधन किये गए थे तथा आनुपातिक निधि प्रचालन को समाप्त करके इसके स्थान पर न्यूनतम निधि प्रणाली को अपनाया गया था। नोट प्रणाली की न्यूनतम निधि प्रणाली के अन्तर्गत निधि की मात्रा 200 करोड़

रूपये निर्धारित की गयी है। इसमें 115 करोड़ रूपये की स्वर्ण निधि तथा शेष 85 करोड़ रूपये की विदेशी प्रतिभूतियां होनी चाहिए। वर्तमान में देश में यही प्रणाली प्रचलित है।

रूपया तथा स्टर्लिंग- भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता प्राप्त कर ली है। 1947 में भारत की मुद्रा रूपये का स्वर्ण मूल्य 0.268601 ग्रेन शुद्ध स्वर्ण घोषित किया गया था। भारत का रूपया अब स्वतंत्र मुद्रा बन गया है। 25 सितम्बर 1975 को भारत सरकार ने रूपये का पौंड-स्टर्लिंग से सम्बन्ध विच्छेद करके रूपये को स्वतंत्र मुद्रा घोषित कर दिया था। देश में वर्तमान मुद्रा प्रणाली का प्रबन्धन रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के द्वारा किया जाता है। वर्तमान में रिजर्व बैंक का देश के मुद्रा बाजार पर पूर्ण नियन्त्रण है। वर्तमान मुद्रा प्रणाली अपरिवर्तनशील कागजी मुद्रा प्रणाली पर आधारित है।

दशमिक प्रणाली का प्रारम्भ- भारतीय मुद्रा प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि भारतीय मुद्रण (संशोधन) अधिनियम, 1957 के अनुसार 31 अप्रैल, 1957 से देश में मुद्रण की दशमलवीय प्रणाली में लागू कर दिया गया है। इस प्रणाली के लागू हो जाने से पुराने पैसे, अर्द्धआना, एक आना, दो आने, चार आने तथा आठ आने के सिक्कों के स्थान पर एक, दो, पांच, दस, बीस, पच्चीस तथा पचास पैसे के सिक्के लागू किए गए। नए मुद्रा प्रणाली में पचास तथा पचीस पैसे के सिक्के को छोड़कर अन्य सिक्कों को समाप्त कर दिया गया है। इस प्रणाली को अपनाने के कारण हिसाब-किताब करना काफी सरल हो गया है।

रूपये का अवमूल्यन-1949 में इंग्लैण्ड के भुगतान शेष घाटे की स्थिति काफी खराब हो गयी थी। विवश होकर इंग्लैण्ड ने अपनी मुद्रा पौंड-स्टर्लिंग का अवमूल्यन 18 सितम्बर 1949 को इसका डालर मूल्य 30.5 प्रतिशत कर दिया था। भारत के रूपये का गठबंधन इंग्लैण्ड की मुद्रा पौंड-स्टर्लिंग के साथ था इसलिए इंग्लैण्ड की इस कार्यवाही के तुरन्त बाद भारत ने 24 घंटे के अन्दर 19 सितम्बर 1949 को रूपये मूल्य विदेशी मुद्रा में 30.5 प्रतिशत कम करने की घोषणा की थी। मुद्रा अवमूल्यन के पश्चात् भारतीय रूपये डालर मूल्य 30.225 सेन्ट से घटकर 21 सेन्ट हो गया था। 6 जून 1966 को दुबारा रूपये का अवमूल्यन किया गया था और रूपये के वाह्य मूल्य 36.5 प्रतिशत कम कर दिया गया था। 1966 में रूपये के अवमूल्यन के बाद अमेरिकी डालर तथा रूपये की विनिमय दर 1 रूपया =13.33 सेन्ट हो गयी थी। वर्ष 1991 में भारत सरकार ने रूपये के मूल्य में दो चरणों में अवमूल्यन की घोषणा की जिससे रूपये की औसत विनिमय दर 22.8 प्रतिशत गिर गयी। भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार द्वारा विनिमय दर की इस कमी को अवमूल्यन न कहकर विनिमय दर समायोजन की संज्ञा दी गयी।

बड़े नोटों का विमुद्रीकरण- सट्टेबाजी, काले धन तथा भ्रष्टाचार को रोकने की दृष्टि से 500, 1000 तथा 10000 रूपये के नोटों का विमुद्रीकरण कर दिया गया था परन्तु कुछ समय बाद सरकार ने बड़े नोटों का चलन पुनः प्रारम्भ कर दिया था। 16 जनवरी, 1978 को एक सरकारी अध्यादेश के द्वारा

भारत सरकार ने 1000, 5000, तथा 10000 रूपये नोटों का विमुद्रीकरण कर दिया था। यह निर्णय अर्थव्यवस्था में बढ़ती हुई प्रवृत्ति तथा गैर कानूनी सौदों पर अंकुश लगाने की दृष्टि से किया गया था।

रूपये तथा पौंड-स्टर्लिग का सम्बन्ध विच्छेद- भारत सरकार ने 1973 में अमेरिका द्वारा मुद्रा डालर का दोबारा अवमूल्यन कर दिये जाने के कारण रूपये को विदेशी विनिमय बाजार में तैरते हुए अपनी मुद्रा को अन्य देशों से विनिमय दर तय करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया। 1 पौंड-स्टर्लिंग की 18.9677 रूपये विनिमय दर तय कर दी गयी थी। यह दर स्मिथसोनियन समझौते के अन्तर्गत निर्धारित की गयी थी। इस दर में 2.25 प्रतिशत तक ऊपर-नीचे होने की छूट दी गयी थी। भारत सरकार ने रूपये का पौंड-स्टर्लिंग से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया को यह अधिकार दिया गया था कि रूपये की विनिमय दर को विदेशी मुद्राओं की टोकरी से जोड़ दिया जाय।

24.7 भारत में मुद्रा पूर्ति की अवधारणा-

1. प्रथम एवं द्वितीय कार्यकारी समूह एवं मुद्रा पूर्ति की अवधारणा- रिजर्व बैंक ने पहली बार मुद्रा की पूर्ति की अवधारणा पर विचार करने के लिए 1961 में एक कार्यकारी समूह गठित किया जिसने अपनी रिपोर्ट 1964 में दी। रिजर्व बैंक द्वारा दूसरा कार्यकारी समूह 1977 में गठित किया गया जिसने के अंश के आधार पर निम्नांकित चार माप प्रस्तुत किये तथा जिसे उसी रूप में रिजर्व बैंक ने स्वीकार किया तथा इसे उसी रूप में अब भी प्रदर्शित करता है-

M_1 = (i) लोगों के पास करेंसी जिसमें रिजर्व बैंक चलन में पत्र मुद्रा, रूपये तथा छोटे सिक्के तथा बैंको के पास हाथ में नगदी सम्मिलित करता है।

(ii) सभी व्यापारिक तथा सहकारी बैंको के पास मांग जमाएं तथा

(iii) रिजर्व बैंक के पास अन्य जमाएं

M_2 = (i) **M_1** तथा

(ii) पोस्ट आफिस में सेविंग बैंक या बचत बैंक जमाएं

M_3 = (i) **M_1** तथा

(ii) बैंको तथा सहकारी बैंको की समय जमाएं

M_4 = (i) **M_3** तथा

(ii) पोस्ट आफिस की कुल जमाएं जिसमें राष्ट्रीय बचत पत्र, किसान विकास पत्र, इन्दिरा विकास पत्र, पी0 पी0 एफ0 आदि नहीं सम्मिलित।

2. वाई0 वी0 रेड्डी कमेटी (तीसरा कार्यकारी समूह) तथा पूर्ति की अवधारणा- 1992 के बाद वित्तीय क्षेत्र में हुए परिवर्तनों के सन्दर्भ में तथा मौद्रिक समुच्चयों पर पड़ने वाले प्रभावों की ब्याख्या के लिए वाई0 वी0 रेड्डी की अध्यक्षता में एक कमेटी 1997 में गठित की गयी जिसने अपनी रिपोर्ट जून 24, 1998 को दे दी। रिजर्व बैंक ने कमेटी की सिफारिशों तथा सुझावों को मान लिया। कमेटी की प्रमुख संस्तुतियां इस प्रकार है-

i. कमेटी ने यह सुझाव दिया कि मौद्रिक समुच्चयों को फिर से परिभाषित किया जाना चाहिए, कुछ को साप्ताहिक रूप में तथा कुछ समुच्चयों को पाक्षिक स्तर पर तैयार किया जाना चाहिए।
ii. कमेटी ने सुझाव दिया कि डाकघर बचत बैंक को समुच्चय M_2 से निकाल दिया जाना चाहिए। इसे नये नगदी निधि तरलता समुच्चय L_1 में सम्मिलित किया जाना चाहिए।
iii. कमेटी ने चार नये मौद्रिक समुच्चयों की चर्चा की है- M_0, M_1, M_2तथा M_3 तथा तीन सर्वथा नये नकदी निधि समुच्चयों- L_1, L_2 तथा L_3 की चर्चा की है। मौद्रिक तथा नकदी समुच्चय इस प्रकार है-

मौद्रिक समुच्चय

$\mathbf{M_0}$ = चलन में मुद्रा + बैंको का RBI के पास जमा + RBI के पास अन्य जमा

समिति के अनुसार $\mathbf{M_0}$ को साप्ताहिक स्तर पर तैयार किया जायेगा। $\mathbf{M_0}$ को समिति ने आधार मुद्रा या प्रारक्षित मुद्रा कहा।

$\mathbf{M_1}$ = जनता के साथ चलन + बैंकिंग क्षेत्र में जमा + RBI के साथ अन्य जमा

= जनता के साथ चलन +बैंकिंग क्षेत्र के पास चालू जमा +बैंकों के पास बचत बैंक जमा का वह भाग जो मांग दायित्व हों + RBI के पास अन्य जमा

$\mathbf{M_2}$ = $\mathbf{M_1}$ + बैंकिंग क्षेत्र के पास बचत बैंक जमा का वह भाग जो समय दायित्व हो + बैंको द्वारा निर्गत जमा प्रमाण पत्र + बैंकिंग प्रणाली में एक वर्ष तक और एक वर्ष अवधि सहित संविदात्मक परिपक्वता वाली सावधिक जमा राशियां

= जनता के पास करेंसी + बैंकिंग क्षेत्र में चालू जमा +बैंकिंग क्षेत्र का सम्पूर्ण बचत बैंक जमा + बैंकिंग प्रणाली में एक वर्ष तक और एक वर्ष अवधि सहित संविदात्मक परिपक्वता वाली सावधिक जमा राशियां

$\mathbf{M_3} = \mathbf{M_2}$ + बैंकिंग प्रणाली द्वारा गैर निक्षेपी वित्तीय निगमें मांगे गये उधार

कमेटी ने एक नये वित्तीय समुच्चय का सुझाव दिया जिसे उन्होंनें 'तरलता समुच्चय' कहा। तरलता समुच्चय के अन्तर्गत उन वित्तीय व्यवहारों को रखेंगे जो बैंक जमा के समान ही लगते हैं पर जिन्हें मौद्रिक सम्पत्ति के समकक्ष रखना उचित नहीं होगा क्योंकि इससे सम्बन्धित वित्तीय संस्थाएं बैंक के समान नहीं होती हैं वित्तीय संस्थाएं वास्तव में गैर मौद्रिक वित्तीय मध्यस्थ होती है जो बैंक की तरह साख सृजन नहीं कर सकतीं हैं। जहां बैंकों की अधिकांश सम्पत्तियां अल्पकालीन होती है वहीं इन वित्तीय संस्थाओं की सम्पत्तियां अधिकांशतया दीर्घकालीन होती है। बैंकिंग तथा गैर मौद्रिक वित्तीय संस्थाओं के बीच अन्तर के कारण समिति ने मौद्रिक समुच्चयों से अलग तरलता समुच्चय की बात कही, जो इस प्रकार होगी-

तरलता समुच्चय

L_1 = M_3 (नई) +पोस्ट आफिस बचत बैंक जमा का सम्पूर्ण भाग (राष्ट्रीय बचत पत्र को छोड़कर)

L_2 = L_1 + विकास वित्तीय संस्थाओं के पास सावधि जमा + विकास वित्तीय संस्थाओं द्वारा निर्गत जमा प्रमाण पत्र

L_3 = L_2 + गैर बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों के पास सार्वजनिक जमा

उल्लेखनीय है कि रेड्डी कमेटी की तरलता समग्रों की धारणा को रिजर्व बैंक ने स्वीकार कर लिया। आर बी आई बुलेटिन 2000 से ही L_1, L_2 तथा L_3 सम्बन्धी आंकड़े प्रकाशित कर रही है। पर रिजर्व बैंक मुद्रा समुच्चयों के सम्बन्ध में 1977 से चली आ रही M_1, M_2 तथा M_3 की धारणा अब भी स्वीकार करता है और यही आर्थिक समीक्षा में भी प्रकाशित होता है।

3. मुद्रा की पूर्ति एवं मुद्रा गुणक दृष्टिकोण - इस दृष्टिकोण के अनुसार यदि प्रारक्षित मुद्रा (M_0) में मुद्रा गुणक (m) का गुणा कर दें तो हमें मुद्रा की पूर्ति (M_s) प्राप्त हो जायेगी अर्थात् M_s = $m.M_0$। स्पष्ट है यदि मुद्रा गुणक का मूल्य स्थिर हो तो M_0 में होने वाला परिवर्तन M_s में परिवर्तन लायेगा और यदि m का मूल्य अनेक कारकों से प्रभावित हो तो मुद्रा की पूर्ति में होने वाला परिवर्तन दो बातों पर निर्भर करेगा- M_0 में होने वाले परिवर्तन तथा मुद्रागुणक को प्रभावित करने वाले कारक।

प्रारक्षित मुद्रा उन वित्तीय सम्पत्तियों को प्रदर्शित करता है जिन्हें रिजर्व बैंक अपने क्रियाशीलन के दौरान प्राप्त करता है तथा जो व्यापारिक बैंको द्वारा साख मुद्रा के सृजन के आधार के रूप में या रिजर्व के रूप में प्रयोग में लाई जाती है। इसीलिए इस मुद्रा को आधार मुद्रा भी कहते हैं। अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति प्रारक्षित मुद्रा (RM)की कई गुना होगी। प्रारक्षित मुद्रा की वृद्धि के कारण मुद्रा की पूर्ति में कितनी गुनी वृद्धि होगी इसे हम मुद्रा गुणक कहते हैं। इस प्रकार मुद्रा गुणक प्रार्रिक्षत मुद्रा (RM)में वृद्धि तथा मुद्रा की पूर्ति (M_3) में वृद्धि के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करता है।

$$\text{मुद्रा गुणक} = = \frac{M_3}{\text{RM}} \text{ या } \frac{M_3}{\text{M}_0}$$

मुद्रा गुणक का मूल्य जो मार्च 2007 में 4.67 हो गया था 1 जनवरी 2008 को यह अनुपात 4.66 रहा।

24.8 तरलता समायोजन योजना

नरसिंहम् समिति के संस्तुति को ध्यान में रखते हुए कि रिजर्व बैंक ने अन्तरिम तरलता समायोजन सुविधा जिसमें रीपो तथा प्रतिकूल रीपो दरों की आवधिक पुनर्निधारण सम्मिलित हैं, के द्वारा बाजार को समर्थन प्रदान करने के लिए 21 अप्रैल 1999 को सामान्य पुनर्वित्त सुविधा के स्थान पर अन्तरिम समायोजन सुविधा लागू की जिसे जून 2000 से पूर्णतया लागू कर दिया गया हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत रिजर्व बैंक ब्याज की भिन्न-भिन्न दरों पर बाजार में तरलता की आपूर्ति करता है तथा जब आवश्यक होता है तो निर्धारित दरों पर इसे समायोजित करता है जिससे मुद्रा बाजार की ब्याज दरों में स्थिरता कायम रह सके। व्यवहारिक तौर पर एल0 ए0 एफ0 का संचालन रीपो सम्पार्शिवक उधारी ओ0 एम0 ओ0 तथा निर्यात ऋण पुनर्वित्त के सम्मिश्रण के माध्यम से होता है। अल्पकालीन तरलता प्रबन्धन के लिए इसक बहुतायत से प्रयोग हुआ है।

29 मार्च 2004 से एक नई संशोधित एल0 ए0 एफ0 स्कीम लागू की गयी, जिसकी प्रमुख बातें इस प्रकार थीं-

i. 7 दिनी रीपो प्रतिदिन किया जायेगा।
ii. एक दिन पहले पूर्वनिर्धारित (स्थिर) रीपो प्रतिदिन होगा।
iii. एक दिन पहले निश्चित स्थिर दर पर उल्टा रीपो निलामी।

इस प्रकार नई स्कीम में आर0 बी0 आई0 द्वारा रीपो दर समय-समय पर निर्धारित की जायेगी। उल्टी रीपो की दर सामान्य रीपो दर से 1.5 प्रतिशत अधिक होगी। नई स्कीम के तहत LAF की अवधि को 7 दिन से घटाकर एक दिन कर दिया गया है।

नकदी प्रबन्धन को अधिक प्रभावी बनाने के लिए 28 नवम्बर, 2005 को रिजर्व बैंक ने दूसरी LAF सुविधा शुरू की। पर दिनी प्रतिकूल रीपो की 3000 करोड़ रूपये की ऊपरी सीमा हटाने के बाद अगस्त 6, 2007 से दूसरे LAF को समाप्त कर दिया गया है।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न - एक शब्द/वाक्य में उत्तर दीजिए-

(1) ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अंग्रजी भारत में पूर्णकाय रजत मुद्रामान को कब स्थापित किया?

(2) फाउलर समिति का गठन कब किया गया?

(3) हिल्टन यंग आयोग की स्थापना कब की गयी?

(4) भारत में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना का सुझाव किसने दिया?

(5) रिजर्व बैंक की स्थापना कब हुई?

(6) वर्तमान में भारत में नोट निर्गमन की कौन सी प्रणाली लागू है?

(7) न्यूनतम कोष प्रणाली के अन्तर्गत निधि की मात्रा कितनी निर्धारित की गयी है?

(8) भारत सरकार ने रूपये का पौंड-स्टर्लिंग से सम्बन्ध विच्छेद कब किया?

(9) भारतीय रूपये का पहली बार अवमूल्यन कब किया गया?

(10) 1966 के अवमूल्यन में भारतीय रूपये के मूल्य में कितनी कमी की गयी थी?

(11) मुद्रा पूर्ति के सम्बन्ध में तीसरे कार्यकारी समूह को किस समिति के नाम से जाना जाता है?

(12) वाई0 वी0 रेड्डी समिति ने कितने प्रकार के मुद्रा मापों की चर्चा की?

(13) प्रारक्षित मुद्रा की वृद्धि के कारण मुद्रा की पूर्ति में जितनी गुनी वृद्धि होती है उसे क्या कहते हैं?

(14) जनवरी, 2008 में मुद्रा गुणक का मान क्या था?

(15) तरलता समायोजन योजना कब लागू किया गया?

(16) मुद्रा पूर्ति की विस्तृत माप किसे कहा जाता है?

(17) 1991 मे रूपये का अवमूल्यन कितने चरणों में किया गया?

(18) भारत में 100 रूपये का नोट पहली बार कब निर्गमित किया गया?

24.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि भारतीय मौद्रिक प्रणाली में रजतमान एवं स्वर्णमान का पतन हो चुका है तथा वर्तमान में कागजी मुद्रा प्रचलन में है। भारत में नोट निर्गमन का पूर्ण एकाधिकार रिजर्व बैंक के पास है। रिजर्व बैंक वर्तमान में न्यूनतम कोष प्रणाली के आधार पर नोटों का निर्गमन करता है जिसके पीछे 200 करोड़ रूपये का कोष रखना अनिवार्य है। भारत में विभिन्न मुद्रामानों को लागू करने के सम्बन्ध में बनी विभिन्न समितियों का भी विश्लेषण किया जा सकता है। भारत में मुद्रा पूर्ति की चार अवधारणाएं हैं- M_1, M_2, M_3 तथा M_4 । M_3 को विस्तृत मुद्रा कहा जाता है। मुद्रा पूर्ति के सम्बन्ध में मुद्रा गुणक की अवधारणा महत्वपूर्ण है। वर्तमान में भारत में मुद्रा गुणक का मान 4.66 है। इस प्रकार इस इकाई के अध्ययन से भारतीय मौद्रिक प्रणाली के अन्तर्गत रजतमान से लेकर कागजी मुद्रा के प्रचलन एवं मुद्रा पूर्ति की विभिन्न अवधारणाओं को समझ सकेंगे।

24.10 शब्दावली

रजतमान- इस स्थिति में मौद्रिक इकाई का मूल्य चॉदी में निश्चित किया जाता है और उसे कायम रखा जाता है। इस मान के अन्तर्गत चॉदी के सिक्के प्रचलन में होते हैं।

स्वर्णमान- इस स्थिति में देश की मुद्रा इकाई प्रामाणिक सिक्कों के रूप में स्वर्ण की बनी होती है अथवा निर्धारित शुद्धता के स्वर्ण में परिवर्तनशील होती है।

साख मुद्रा- व्यापारिक बैंकों द्वारा सृजित मुद्रा अर्थात जनता की जमाओं पर काटा जाने वाला चेक।

अवमूल्यन- देश की मुद्रा का विदेशी मुद्रा के रूप में मूल्य में कमी

विमुद्रीकरण- इसके अन्तर्गत सरकार पुरानी मुद्रा को समाप्त कर नई मुद्रा चालू कर देती है।

मौद्रिक समुच्चय- विभिन्न प्रकार की मुद्रा मापों जैसे- M_1, M_2, M_3 तथा M_4 का समूह

24.11 अभ्यास प्रश्न व उत्तर

उत्तर- (1) 1835 (2) 1898 (3) 1925 (4) हिल्टन यंग आयोग ने (5) 1935 (6) न्यूनतम कोष प्रणाली (7) 200 करोड़ रूपये (8) 1975 (9) 1949 (10) 36.5 प्रतिशत (11) वाई0 वी0 रेड्डी समिति (12) चार- M_1, M_2, M_3 तथा M_4 (13) मुद्रा गुणक (14) 4.66 (15) 1999 (16) M_3 (17) दो चरणों में (18) 1911।

24.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. D.K. Malhotra: History and Problems of Indian Currency
2. S.B. Gupta: Monetary Economics
3. M.C. Vaishya: Monetary Economics
4. M.L. Seth: Money and Banking
5. K.N. Raj: Monetary Policy of th Reserve Bank of India
6. Reserve Bank of India: RBI Bulletin
7. Reserve Bank of India: Reports on Currency and Finance
8. Govt. of India: Economic Survey

24.13 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1-भारत में पत्र मुद्रा जारी करने की वर्तमान प्रणाली की व्याख्या कीजिए। देश में किस संस्था द्वारा पत्र मुद्रा जारी की जाती है?

प्रश्न 2-स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय मुद्रा चलन के इतिहास की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3-भारतीय मुद्रा प्रणाली में मुद्रा पूर्ति की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

इकाई 25 भारतीय मौद्रिक प्रणाली की संरचना

इकाई संरचना

25.0 प्रस्तावना
25.1 उद्देश्य
25.2 मुद्रा बाजार के प्रमुख प्रपत्र
25.3 प्रमुख बैंकिंग सेवा प्रणाली
25.4 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया
25.5 वाणिज्यिक या व्यापारिक बैंक
25.6 गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं
25.7 अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं
25.8 कोर बैंकिंग
25.9 सारांश
25.10 शब्दावली
25.11 अभ्यास प्रश्न व उत्तर
25.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
25.13 निबन्धात्मक प्रश्न

25.0 प्रस्तावना

आर्थिक मौद्रिक प्रणाली की संरचना का अध्ययन मुद्रा बाजार से सम्बन्धित है। मुद्रा बाजार भारतीय वित्तीय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह सामान्यतया एक वर्ष से कम अवधि के फण्ड तथा ऐसी वित्तीय सम्पत्तियों जो मुद्रा की नजदीकी स्थानापन्न है, के क्रय तथा विक्रय के लिए बाजार है। मुद्रा बाजार वह माध्यम है जिसके द्वारा रिजर्व बैंक अर्थव्यवस्था में तरलता की मात्रा नियन्त्रित करता है। आमतौर पर भारतीय मुद्रा बाजार को संगठित क्षेत्र और असंगठित क्षेत्र में वर्गीकृत किया जाता है।

संगठित मुद्रा बाजार में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को शीर्ष स्थिति प्राप्त है। वह मुद्रा बाजार में तरलता को नियंत्रित कर सकता है तथा ऋण की लागत तथा इसकी उपलब्धता को प्रभावित कर सकता है। इसलिए मुद्रा बाजार में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संगठित मुद्रा बाजार वाणिज्यिक बैंकों के कार्यों द्वारा अधिक प्रभावित होता हैं। रिजर्व बैंक, वाणिज्यिक बैंक तथा सहकारी बैंक संगठित मुद्रा बाजार के प्रमुख अंग है पर जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, सिक्योरिटीज टेडिंग कार्पोरेशन ऑफ इण्डिया तथा डिस्काउण्ट एण्ड फाइनेंस हाउस ऑफ इण्डिया भी संगठित मुद्रा बाजार में व्यवहार करते हैं पर प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेते हैं बल्कि बैंकों के माध्यम से भाग लेते हैं।

संगठित क्षेत्र के तीव्र विस्तार के बावजूद भी भारतीय मुद्रा बाजार में एक असंगठित क्षेत्र है। देशी बैंकर्स तथा ग्रामीण साहूकार इसके प्रमुख अंग है। असंगठित क्षेत्र में सर्वाधिक प्रचलित प्रपत्र हुण्डी है जो एक तरह से देशी विनिमय विपत्र है। बैंकिंग क्षेत्र के तीव्र विस्तार के बावजूद भी अब भी ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण साहूकारों पर आश्रितता बहुत अधिक पाई जाती है।

25.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- भारतीय मौद्रिक प्रणाली संरचना में मुद्रा बाजार के विभिन्न घटकों को समझ सकेंगे।
- भारतीय मौद्रिक प्रणाली संरचना में रिजर्व बैंक की स्थापना तथा उसके कार्यों को जान सकेंगे।
- भारतीय मौद्रिक प्रणाली संरचना में व्यापारिक बैंक तथा गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं की स्थिति को समझ सकेंगे।

25.2 मुद्रा बाजार के प्रमुख प्रपत्र

मुद्रा बाजार में कार्य करने वाली विभिन्न संस्थाओं पर विचार करने से पूर्व उन महत्वपूर्ण प्रपत्रों की चर्चा आवश्यक है जो बहुतायत से मुद्रा बाजार में प्रयोग में लाए जाते हैं, ये निम्न हैं-

कालमनी मार्केट - कालमनी मार्केट अत्यन्त ही अल्प अवधि वाले फण्ड का बाजार होता है। यहां उधार लेने तथा देने की क्रिया अत्यन्त अल्प अवधि के लिए होती है। इसकी अवधि एक दिन से 15 दिन की होती है। इस बाजार में उधार लेने वाले अथवा देने वाले की मांग पर ऋणों का भुगतान देय होता है। चूँकि काल ऋण अत्यन्त ही अल्प अवधि के होते हैं इसलिए इनकी तरलता नगदी के ही समान होती है। कालमनी मार्केट में सभी भाग नहीं ले सकते हैं, उसमें भी, भाग लेने वालों में भी कुछ को ही उधार लेने तथा देने दोनों की सुविधा होती है। कुछ को केवल उधार देने की ही सुविधा रहती है। सामान्यतया काल रेट को रातभर की दर के रूप में जाना जाता है जिसपर एक बैंक दूसरे बैंक को उधार देता है।

कालमनी मार्केट अत्यन्त ही प्रतियोगी तथा संवेदनशील बाजार होता है, कालमनी रेट का निर्धारण मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा होता है। इसमें मांग तथा पूर्ति के दबाव का तत्काल प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस बाजार में हमें नियमित मौसमी परिवर्तन होते दिखते हैं। कम व्यस्त मौसम (मई से सितम्बर) की तुलना में व्यस्त मौसम (अक्टूबर से अप्रैल) में इसमें तंगी अधिक होती है, पूर्ति के अपेक्षा मांग अधिक होती है और यह तंगी अपैल में सबसे अधिक होती है जो कि व्यस्त मौसम का व्यस्त महीना होता है।

ट्रेजरी बिल्स- भारत में ट्रेजरी बिल्स 1917 में पहली बार निर्गत की गई। ट्रेजरी बिल्स अल्प अवधि की प्रतिभूतियां होती है जिसके माध्यम से सरकार उधार लेती है। ये सर्वाधिक तरल प्रतिभूतियां होती हैं। इनका निर्गमन सरकार के लिए रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। ट्रेजरी बिल्स तीन प्रकार की हो सकती हैं-

(क) आन टैप बिल्स जिन्हे रिजर्व बैंक से जब चाहे तब खरीदा जा सकता है, जिसे 1 अप्रैल, 1997 से बन्द कर दिया गया।

(ख) नीलामी ट्रेजरी बिल्स सबसे अधिक सक्रिय मुद्रा बाजारीय विलेख है जिसे अप्रैल 1992 में शुरू किया गया। इन पर प्रतिफल की दर बाजार द्वारा निर्धारित होती है। इनकी पुनर्कटौती नहीं हो सकती। इस समय रिजर्व बैंक 91 तथा 364 दिन की ट्रेजरी बिल्स निर्गमित करता है, इनकी न्यूनतम राशि 25,000 रूपया तथा इसी भागफल में होती हैं।

(ग) ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स रिजर्व बैंक के नाम में ही निर्गमित होती हैं जो सरकार की अत्यन्त ही अस्थाई फण्ड सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति के लिए निर्गमित की जाती हैं। इनका प्रत्यक्ष तथा

तत्काल मौद्रीकरण हो जाता है क्योंकि इनके निर्गमित होने के साथ ही रिजर्व बैंक की सम्पत्ति बढ़ जाती है और अनुषंगी रूप में मुद्रा दायित्व में वृद्धि होती है। ये जनता या बैंकों के लिए नहीं होती है। इन ट्रेजरी बिलों को छोड़कर बाकी ट्रेजरी बिल्स नीलामी से बेची जाती हैं। ऐडहाक ट्रेजरी बिल्स का निर्गमन 1997-98 की बजट से बन्द कर दिया गया है जिसके स्थान पर अर्थोपाय अग्रिम की नई योजना लागू की गई है। 91 दिनी सामान्य ट्रेजरी बिल्स के अतिरिक्त सरकार 14 दिनी तथा 364 दिनी ट्रेजरी बिल्स का निर्गमन करती है।

व्यापारिक बिल बाजार - ट्रेजरी बिल मार्केट की ही तरह व्यापारिक बिलों जो अधिकांशतया तीन महीने की अवधि की होती है, के लिए भी एक अलग बिल मार्केट होता है जिसे हम व्यापारिक बिल बाजार कहतें है। व्यापारिक बिलों को हम 'विनिमय विपत्र' कहते हैं। विनिमया विपत्र एक पराक्राम्य विपत्र है जिसमें बिल को स्वीकार करने वाला जिसे आहारी कहते हैं, बिल को लिखने वाले के निर्देश पर एक निश्चित राशि एक निश्चित अवधि के बाद बिना शर्त भुगतान करना स्वीकार करता है।

विनिमय विपत्र अनेक प्रकार के हो सकते हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैं-

1. हुण्डी- हुण्डी एक प्रकार की देशी बिल्स है। हुण्डी दो प्रकार की हो सकती है- दर्शनी हुण्डी तथा मुद्दती हुण्डी। दर्शनी हुण्डी 'मांग विनिमय विपत्र' के समान होती है, जिनका भुगतान उसी समया करना पड़ता है जबकि ये भुगतान के लिए उपस्थित की जाती हैं मुद्दती हुण्डी समय विपत्र की तरह होती है जिसका भुगतान एक समयावधि के बाद होता है।
2. अनुग्रह विपत्र- जब बिना किसी प्रतिफल के एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति द्वारा पहले पर एक ही राशि का बिल लिखा जाय तथा दोनों ही बिल को कटौती कराके बैंक से रूपया प्राप्त कर लें इस प्रकार दोनों ही बिना किसी वास्तविक व्यवहार के लाभान्वित हो तो इस प्रकार के बिल को अनुग्रह विपत्र कहते हैं।
3. वाणिज्यिक प्रपत्र- मूलतः यू0 एस0 ए0 तथा यूरोप के वित्तीय बाजार का प्रपत्र था। बाघुल समिति की संस्तुति पर मार्च 27, 1989 को भारत में जमा प्रमाणपत्र के साथ वाणिज्यिक प्रपत्र के निर्गमन की अनुमति प्रदान की गई। वाणिज्यिक प्रपत्र एक प्रतिज्ञापत्र युक्त अल्प अवधि का प्रपत्र है जिसकी सात दिन से 90 दिन की परिपक्वता अवधि होती है। वाणिज्यिक प्रपत्र का निर्गमन बट्टा आधार पर होता है।
4. जमा प्रमाण पत्र - जमा प्रमाण पत्र एक विपणन योग्य प्रपत्र है जो इस एक निश्चित समयावधि के लिए सावधि जमा के स्वामित्व को प्रदर्शित करता है। यह प्रदर्शित करता है कि प्रमाण पत्र के उल्लिखित धनराशि की सावधि जमा बैंक के पास है। जमा प्रमाण पत्र सावधि जमा प्रमाण पत्र से भिन्न है तथा उत्तम है क्योंकि यह विपणन योग्य होता है जबकि सावधि जमा प्रमाण पत्र विपणन योग्य नहीं होता है। जमा प्रमाण पत्र को अंकित मूल्य से

कम पर बट्टे पर निर्गमित किया जाता है। बट्टे की दर का निर्धारण मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा होता है। सामान्यतया यह दर सावधि जमा की दर से ऊँची होती है।

अन्तर्बैंक भागीदारी प्रमाणपत्र- मुद्रा बाजार के तरलता के समस्या को समाप्त करने के लिए एक अतिरिक्त प्रपत्र अन्तर्बैंक भागीदारी प्रमाणपत्र की शुरूआत की गयी यह दो प्रकार की हो सकती है- जोखिम भागिता के साथ तथा जोखिम भागिता रहित। जोखिम भागितायुक्त अन्तर्बैंक भागीदारी प्रमाणपत्र 91 से 180 दिन के लिए उन अग्रिम के लिए निर्गत की जाती है जिनके अग्रिमों की सुरक्षा के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं हो। जोखिम भागिताहीन अन्तर्बैंक भागीदारी प्रमाणपत्र अधिक से अधिक 90 दिन के लिए निर्गत होती हैं।

25.3 प्रमुख बैंकिंग सेवा प्रणाली

भारत में विभिन्न वित्तीय संस्थाओं द्वारा विभिन्न प्रकार की बैंकिंग सेवा प्रणाली प्रारम्भ की गयी है जिनमें से निम्न प्रमुख हैं-

मर्चेन्ट बैंकिंग- मर्चेन्ट बैंकर्स उद्यमियों तथा निवेशकों के बीच काम करने वाले वित्तीय मध्यस्थ है। ये नये निर्गमनों का अभिगोपन तथा प्रबन्धन करते हैं, ये संसाधनों के इकट्ठा करने तथा अन्य वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में निगमों को राय देते हैं, पर ये विदेशी मर्चेट बैंकर्स की तरह बैंकिंग क्रियाएं जैसे जमा प्राप्त करना, उधार देना तथा विदेशी विनिमय सम्बन्धी सेवाएं देना, नहीं करते। 1993 के शुरू में मर्चेन्ट बैंकिंग को सेबी के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में ला दिया गया है जिससे उनकी कार्यप्रणाली अधिक पारदर्शा हो। कोई भी व्यक्ति मर्चेन्ट बैंक तबतक नहीं हो सकता जबतक कि उसने सेबी से पंजीयन प्रमाण पत्र नहीं प्राप्त कर लिया हो।

म्युचुअल बैंकिग- म्युचुअल फंड वितरण तथा रिटेल बैंकिंग सुविधा व्यापारिक बैंकों की सामान्य क्रियाओं का एक महत्वपूर्ण भाग बन गया है। आजकल म्युचुअल बैंकिंग की नई धारणा सामने आ रही है जिसमें बैंक ग्राहको नये उत्पाद तथा नयी सेवाओं को प्रवर्तित कर रही है जिसमें ग्राहक बैंकों के माध्यम से म्युचुअल फंड की सेवाओं का लाभ प्राप्त कर रहे हैं इसके अन्तर्गत म्युचुअल फंड ग्राहकों को एक विशिष्ट क्रेडिट कार्ड दे देते हैं जिसके द्वारा ग्राहक किसी स्कीम के तहत म्युचुअल फंड की निर्धारित सीमा के भीतर बैंक से ऋण प्राप्त कर सकता है। ग्राहकों को बैंकों तथा म्युचुअल फंड की सुविधा को अधिकतम करना ही म्युचुअल बैंकिंग की आधारभूत मान्यता है।

रिटेल बैंकिंग या परसनल बैंकिंग- कुछ समय पहले बैंक केवल उत्पादक क्रियाओं की पूर्ति के लिए ही ऋण लेते थे, उपभोग की आवश्यकता की पूर्ति के लिए इनके द्वारा ऋण नहीं दिया जाता था पर उनके लाभ के सीमा में कमी, बढ़ती लागत औद्योगिक मन्दी, छच्। में वृद्धि आदि के कारण बैंक अपने संसाधनों अब फुटकर उधारी में लगा रहे हैं। इस प्रकार की बैंकिंग क्रियाओं को रिटेल बैंकिंग

या परसनल बैंकिंग कहते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी, इन्टरनेट बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग, ए टी एम, डी मैट एकाउण्ट्स के कारण पिछले कुछ वर्षो में भारत में रिटेल बैंकिंग के क्षेत्र में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है।

एनीह्वेयर बैंकिंग- एनीह्वेयर बैंकिंग से आशय किसी भी स्थान से बैंकिंग सुविधा प्राप्त करने से है। यह सेवा ग्राहक की सुविधा के लिए टेक्नालॉजी पर आधारित सेवा है इसके अन्तर्गत ग्राहक, जिसका खाता बैंक की किसी शाखा में है, देश के भीतर बैंक की निर्दिष्ट किसी शाखा के साथ बैंकिंग व्यवहार कर सकता है। वह अपने खाता से रकम निकाल सकता है, उसमें जमा कर सकता है तथा अन्य बैंकिंग व्यवहार कर सकता है। इस प्रकार अब दूरी अर्थहीन है। तकनीकी विकास ने बैंकिंग दायरे को बहुत अधिक फैला दिया है।

ई-बैंकिंग या इन्टरनेट बैंकिंग- इन्टरनेट तथा वायरलेस तकनीक के विकास के फलस्वरूप बैंकिंग तथा वित्तीय सेवाओं के ढॉचे तथा स्वभाव में आमूलचूल परिवर्तन ला दिया है। इन्टरनेट बैंकिंग के अन्तर्गत बैंकिंग क्रियाएं- किसी एक खाते से दूसरे खाते में जमा, किसी व्यक्ति को भुगतान करना आदि इन्टरनेट के ही माध्यम से हो जाती हैं। ई-बैंकिंग अभी भारत में बिलकुल शैशवास्था में है किन्तु धीरे-धीरे इसका विकास और विस्तार पूरे देश में हो रहा है।

25.4 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया

केन्द्रीय बैंक की स्थापना का प्रथम प्रयास 1914 में चैम्बरलीन आयोग को जाता है, जिसमें एक सदस्य लार्ड कीन्स थे, चेम्बरलीन आयोग ने अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव दिया कि तीन प्रेसीडेंसी बैंकों को मिलाकर एक केन्द्रीय बैंक की स्थापना की जाय जिसका नाम इम्पीरियर बैंक रखा जाय। इसकी संस्तुति पर 1921 में इम्पीरियर बैंक की स्थापना की गयी। पर यह मुख्यतया एक व्यापारिक बैंक था जो केन्द्रीय बैंक के कुछ कार्य सरकारी बैंकर तथा बैंकों के बैंक का कार्य करता था। 1926 में हिल्टन यंग आयोग ने इस बात पर बल दिया कि केन्द्रीय बैंक की अलग से स्थापना की जाय जो केन्द्रीय बैंक के और कार्यों- नोट निर्गमन तथा विदेशी विनिमय कोष प्रबन्धन को भी सम्पादित करे। हिल्टन यंग आयोग पहला आयोग था जिसमें केन्द्रीय बैंक के रूप में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया नाम की संस्तुति की। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया बिल लेजिस्लेटिव असेम्बली में 1927 में रखा गया पर राजनैतिक मतभेदों के कारण पारित नहीं हो सका।

इण्डियन सेन्ट्रल बैंकिंग इंक्वायरी कमेटी 1931 ने फिर इसकी संस्तुति की तथा RBI बिल 1934 में पारित हुआ। रिजर्व बैंक ने रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट 1934 के तहत 1 अप्रैल 1935 से कार्य करना शुरू कर दिया। इसकी अधिकृत पूँजी 5 करोड़ रूपये रखी गयी। यह एक निजी क्षेत्रीय बैंक था। 1947 में देश के विभाजन के बाद जून 1948 तक इसने पाकिस्तान के सेन्ट्रल बैंक के रूप में भी कार्य किया। 1 जुलाई 1948 से इसने पाकिस्तान के सेन्ट्रल बैंक के रूप में कार्य करना बंद कर दिया और 1 जनवरी 1949 को इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

रिजर्व बैंक भारत का केन्द्रीय बैंक है 1 अप्रैल 1935 को रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना की गयी उस समय यह निश्चित किया गया कि इसकी अधिकृत पूँजी 5 करोड़ रूपये होगी। शुरू में इसकी लगभग सम्पूर्ण पूँजी निजी लोगों के हाथ में थी। 222000 रूपये के अंश ही सरकार के पास थे। सर आस्बोर्न स्मिथ त्ठप् के प्रथम गवर्नर थे वर्तमान में डी0 सुब्बाराव RBI के गवर्नर हैं।

रिजर्व बैंक के प्रमुख कार्य- रिजर्व बैंक के प्रमुख कार्य निम्न है-

पत्र मुद्रा का निर्गमन- रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट 1934 की धारा 22 के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को पत्र मुद्रा के निर्गमन के सम्बन्ध में एकाधिकार प्राप्त है। एक रूपया को छोड़कर बाकी सभी मूल्यों की पत्र मुद्राओं का निर्गमन रिजर्व बैंक करता है। 1956 तक रिजर्व बैंक पत्र मुद्रा का निर्गमन आनुपातिक कोष प्रणाली के आधार पर करता था जिसके अनुसार पत्र मुद्रा के कुल मूल्य का कम से कम 40 प्रतिशत भाग सोने के रूप में या विदेशी प्रतिभूतियों के रूप रखना रिजर्व बैंक के लिए अनिवार्य था। शेष 60 प्रतिशत रूपयों, भारत सरकार की प्रतिभूतियों तथा स्वीकृत विनिमय विपत्रों में रखना पड़ता था। 1956 में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट में संशोधन के द्वारा आनुपातिक कोष प्रणाली के स्थान पर पत्र मुद्रा निर्गमन की न्यूनतम कोष प्रणाली को अपनाया गया। इसके अन्तर्गत नोटों के मूल्य के पीछे कम से कम 400 करोड़ रूपये की विदेशी प्रतिभूतियां 115 करोड़ रूपये का सोना रखना अनिवार्य। 31 अक्टूबर 1957 के बाद रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट के संशोधन के अनुसार इसे घटाकर 200 करोड़ रूपया कर दिया गया। इसमें भी स्वर्ण की कम से कम 115 करोड़ रूपया होना अनिवार्य था।

सरकार के बैंक के रूप में कार्य -अन्य केन्द्रीय बैंकों की ही तरह रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया सरकार के बैंकर, एजेण्ट तथा परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है। रिजर्व बैंक केन्द्र सरकार को अल्पकालीन ऋण प्रदान करता है जिससे सरकार अपने सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक प्राप्ति के बीच अस्थाई घाटे को पूरा कर सके।

बैंकों के बैंक के रूप में कार्य- रिजर्व बैंक बैंकों के बैंक के रूप में कार्य करता है। रिजर्व बैंक अनुसूचित बैंकों के निरीक्षण, नियन्त्रण से लेकर आवश्यकता पड़नें पर उनको आर्थिक सहायता देने तक कार्य करता है। अतः रिजर्व बैंक अन्तिम ऋणदाता के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

साख नियन्त्रण कार्य- रिजर्व बैंक को व्यापरिक बैंकों द्वारा सृजित साख मुद्रा की मात्रा तथा प्रयोग को नियन्त्रित करने का पूर्ण अधिकार है। देश में व्याप्त भयावह मुद्रा स्फीति की स्थिति में रिजर्व बैंक के कार्य का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। रिजर्व बैंक के पास साख नियन्त्रण के सम्बन्ध उपलब्ध अस्त्रों को निम्न चार्ट द्वारा दर्शाया जा सकता है-

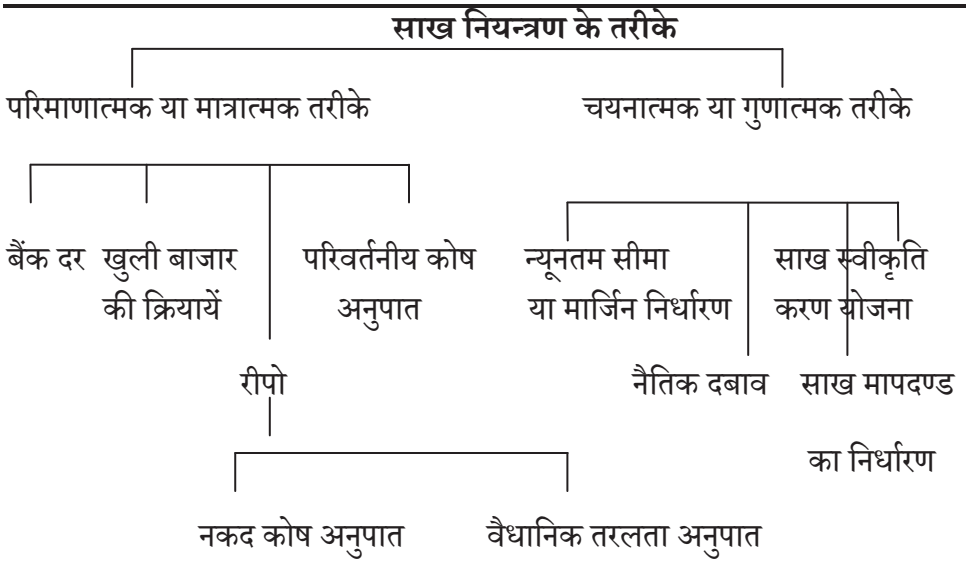

25.5 वाणिज्यिक या व्यापारिक बैंक

व्यापारिक बैंक एक वित्तीय संस्था है जो मुद्रा तथा साख में व्यापार करती है, जो न केवल मुद्रा को लोगों से जमा के रूप में स्वीकार करती है तथा आवश्यकता पड़ने पर उद्यमियों तथा साहसियों को उधार देती है बल्कि इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य साख सृजन के रूप में करती है।

व्यापारिक बैंक सामान्यतया चार प्रकार के जमा स्वीकार करते हैं-

i. सावधि जमा खाता जिसमें एक निश्चित लम्बे समय के लिए जमा स्वीकार किया जाता है, जितनी ही इसकी अवधि लम्बी होगी, व्याजदर उतनी ही ऊँची होगी और तरलता उतनी ही कम होगी।
ii. चालू खाता जिसमें जमाकर्ता अपनी जमा राशि में जब चाहे तब बैंक से धन निकाल सकता है। इस खाते पर निकासी पर कोई रोक नहीं होती। स्पष्ट है चालू खातें में रखे धन पर बैंक व्याज नहीं देता।
iii. बचत बैंक जमा जिसमें व्याज की दर कम होती है, इसमें निकासी के लिए चेक का प्रयोग किया जा सकता है।
iv. इन जमाओं के अतिरिक्त व्यापारिक बैंक आवर्ती जमा, गृह बचत जमा आदि जमा स्वीकार करते हैं।

बैंकों द्वारा प्राप्त सभी प्रकार के जमा बैंको की देयता होंगे।

बैंक जो जमा स्वीकार करते हैं उसे कहीं न कहीं विनियोग करते हैं जिसमें वे जमा पर देय व्याज के अतिरिक्त लाभ अर्जित कर सकें। पर अपने धन को विनियोजित करते समय बैंक तरलता, लाभ देयता तथा सुरक्षा के सिद्धान्तों से निर्देशित होता है।वह केवल लाभदेयता को ही ध्यान में नहीं रखता है, बल्कि वह यह भी देखता है कि जहॉ निवेश कर रहा है वहां उसका धन सुरक्षित है तथा साथ ही वह जब चाहे अति अल्प हानि पर उसे पुनः वापस प्राप्त कर सके। व्यापारिक बैंका सामान्यतया अल्पकालीन ऋण देते है। प्रायः ये निम्नांकित प्रकार के ऋण प्रदान करतें हैं।

1. **कालमुद्रा-** ये ऋण 1-2 दिन से 15 दिन के लिए दिये जाते हैं। तरलता की दृष्टि से यह सबसे अच्छा निवेश है।
2. **नकद साख-** इसके अन्तर्गत निश्चित प्रतिभूति के बदले ऋण दिया जाता है। बैंक देय ऋण से ऋणी का खाता खोल देता है तथा ऋणी आवश्यकतानुसार चेक से निकासी करता है। व्याज सम्पूर्ण स्वीकृत राशि पर नहीं लगता है, बल्कि उस मात्रा पर लगता है जितनी निकाली जाती है।
3. **बैंक अधिविकर्ष-** इसके अन्तर्गत बैंक अपने विश्वसनीय ग्राहकांे को उनके खातें में जमा की राशि से अधिक राशि की निकासी का अधिकार दे देता हैं। यह एक प्रकार का मांग जमा है जिसके द्वारा साख सृजन होगा।

बैंक द्वारा साख मुद्रा का सृजन-

बैंक द्वारा साख मुद्रा का सृजन व्यपारिक बैंक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। व्यापारिक बैंक जमा स्वीकार करने तथा ऋण देने की प्रक्रिया के दौरान साख मुद्रा का सृजन करतें हैं। मान लिजिए कोई व्यक्ति 10,000 रूपये से एक जमा खाता खोलता है। इस जमा को प्राथमिक जमा कहते हैं। बैंक अपने अनुभव के आधार पर मान लिजिए इस निष्कर्ष पर आता है कि एक बार में इसमें से निकासी 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। इस मांग को पूरा करने लिए जिससे इस व्यक्ति का कोई चेक पैसे के अभाव में वापस नहीं हो, वह पास $10000 \times \frac{1}{10} = 1000$ नगद रूप में रख लेगा। अब वह इस स्थिति में है कि 10,000-1000 = 9000 रूपये किसी उद्यमी को उधार दे सके। यदि कोई बैंक के पास 9000 रूपये के ऋण के लिए जाए तो बैंक उसे इतनी राशि उधार दे सकता है पर वह उधार देने के सम्बन्ध में उस व्यक्ति के नाम भी एक खाता खोल देता है और उसे एक चेक बुक देता है, जिससे वह जब चाहे रूपया 9000 की सीमा के भीतर निकासी कर सकता है। बैंक फिर अपने अनुभव के आधार पर कि अधिक से अधिक से अधिक 10 प्रतिशत ही एक बार निकासी होगी, इस 9000 का 10 प्रतिशत अर्थात् 900 रूपये अपने पास नगद रखेगा और शेष 8100 फिर किसी को इसी प्रकार खाता खोलकर ऋण दे सकेगा तथा यह क्रिया तबतक चलती जायेगी जबतक यह शून्य नहीं हो जायेगा। यदि इस क्रिया अन्त तक ले जाया जाय तो अतिरिक्त मांग जमा 90,000 रूपये के

बराबर होगी। स्पष्ट है बैंक अपने प्राथमिक जमा के आधार पर बहुत अधिक अतिरिक्त मांग जमा का सृजन कर पाता है यह अतिरिक्त मांग जमा का सृजन ही साख सृजन हुआ।

कितना साख सृजन बैंकिंग क्षेत्र द्वारा होगा यह बातों पर निर्भर करेगा- प्राथमिक जमा तथा जमा का वह भाग जो वाणिज्यिक बैंक को अपने को सुरक्षित रखने के लिए अपने पास नगद रूप में रखना पड़ता है या वांछित नगद जमा अनुपात तथा नगद शेष अनुपात जिसे उसे केन्द्रीय बैंक के पास वैधानिक रूप से रखना पड़ता है। जितनी ही प्राथमिक जमा की राशि अधिक होगी या नगद कोष अनुपात कम होगा उतना ही अधिक साख सृजन होगा। साख मुद्रा में जितनी गुनी वृद्धि होगी उसे हम साख गुणक कहते हैं जो परिवर्तनीय जमा अनुपात व्युत्क्रम होगा। उक्त उदाहरण के साख गुणक $1/10\%$ या $1/\frac{10}{100} = 10$।

25.6 गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं

त्ठप् एक्ट 1997 के अनुसार गैर बैंकिंग वित्तीय संस्था एक संस्था या कम्पनी है जिसका प्रमुख व्यवसाय किसी भी योजना के तहत जमा स्वीकार करना तथा उसे किसी रूप तथा तरीके से उधार देना हैं। इस आधार पर वे सभी निवेश कम्पनियां जो कम्पनी एक्ट में पंजीकृत हों वे सभी NBFCs में सम्मिलित हो जाएंगी। रिजर्व बैंक निम्नांकित क्रियाओं में लगी कम्पनियों को NBFCs की श्रेणी में रखता है- ;पद्ध इक्विपमेंट लीजिंग कम्पनी ;पपद्ध हायर पर्चेज फाइनेंस कम्पनी ;पपपद्ध हाउसिंग फाइनेंस कम्पनी ;पअद्ध इन्वेस्टमेंट कम्पनी जो प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय का व्यापार कर रही है। ;अद्ध लोन कम्पनी ;अपद्ध रेजीडुअरी नान बैंकिंग कम्पनी।

NBFCs रिजर्व बैंक के नियन्त्रण में आते है कम्पनीज अधिनियम के तहत नहीं। रिजर्व बैंक उन NBFCs के प्रति बहुत कड़ा रूख अपनाये है जो लागों से जमा स्वीकार करती हैं। रिजर्व बैंक के अनुसार ऐसी NBFCs जिन्हें गैर सार्वजनिक जमा कम्पनी के रूप में पंजीकृत किया गया है, उन्हें जमा स्वीकार इकाई के रूप में पंजीकरण के लिए 2 करोड़ रूपये की न्यूनतम पूॅजी रखना अनिवार्य होगी।

NBFCs के सम्बन्ध में पूॅजी पर्याप्तता अनुपात मापदण्ड को 1998 में लागू किया गया जिसके अनुसार NBFCs को जोखिम भारित सम्पत्तियों तथा चिट्ठा के मदों के जोखिम समायोजित मूल्य का कम से कम 12 प्रतिशत तथा 15 प्रतिशत अकोटिबद्ध जमा स्वीकार करने वाली तथा उधार देने वाली कम्पनी के सम्बन्ध में रखना अनिवार्य होगा जो अन्य बैंकिंग कम्पनियों के सम्बन्ध में RBI द्वारा निर्धारित 9 प्रतिशत किसी भी बिन्दु पर टीयर II की पूॅजी किसी भी समग्र बिन्दु पर टीयर II पूॅजी के 100 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। उल्लेखनीय है कि वांछित कैपिटल टु रिस्क वेटेड असेट रेशियो (CRAR) जो प्रति इकाई जोखिम भारित सम्पत्ति पर पूॅजी की मात्रा प्रदर्शित करता है,

NBFCs जमा के सम्बन्ध में 12 प्रतिशत है। ऐसी NBFCs की संख्या, जिनकी CRAR 12 प्रतिशत से कम थी मार्च 2006 में 37 थी घटकर 2007 में 13 रह गयी।

25.7 अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं

अखिल भारतीय वित्तीय संस्थायें वे संस्थायें है जो दीर्घकालीन विकासात्मक निवेश से सम्बन्धित हैं। आर्थिक समीक्षा 2003-04 के अनुसार इनके अन्तर्गत 5 अखिल भारतीय विकास, दो विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं तथा छः निवेश संस्थाओं केा सम्मिलित करता है। 2002-03 तक ICICI तथा UTI को भी इसके अन्तर्गत रखते थे पर इससे बाहर हो गये हैं। इस प्राकर इनके अन्तर्गत आने वाली प्रमुख संस्थायें इस प्रकार हैं- IFCI, IIBI, IDFC, SIDBI, NABARD, LIC, IFCI बेंचर, ICI बेन्चर आदि।

आर्थिक समीक्षा 2007-08 के अनुसार 2005-06 तथा 2006-07 के दौरान इन वित्तीय संस्थाओं द्वारा स्वीकृत ऋण में वृद्धि क्रमशः 41 प्रतिशत तथा 12.9 प्रतिशत रही। उल्लेखनीय है कि इनके सम्बन्ध मं मार्चान्त 2007 में पूॅजी पर्याप्तता अनुपात 9 प्रतिशतके मानक स्तर बहुत ऊंचा था। ज्ञातव्य है कि जमा के सम्बन्ध में पूॅजी पर्याप्तता अनुपात का मानक स्तर 12 प्रतिशत है।

भारत में विदेशी तथा वाणिज्यिक बैंकों को वर्तमान स्थिति

30 नवम्बर 2007 को भारत में विदेशी बैंकों की संख्या तथा उनकी भारत में संस्थाओं की संख्या 274 थी। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने यूनाइटेड ओवरशीज बैंक को मुम्बई में अपनी पहली शाखा खोलने की अनुमति दी है। रिजर्व बैंक ने बैंक आफ कनाडा को भी अपनी और शाखायें खोलने की अनुमति दी है। इस प्रकार केवल 1 नये बैंक को खोलने की स्वीकृति मिली है। इस प्रकार 31 मार्च 2008 को विदेशी बैंको की संख्या 29 + 1 = 30 है तथा इनकी भारत में स्थित शाखाओं की संख्या 274 है। उल्लेख्नीय है कि सर्वाधिक शाखाएं स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक की 83 है, दूसरे पर हांगकांग एण्ड शंघाई बैंकिंग कम्पनी लि0 की 47 तथा सिटी बैंक की 39 हैं।

WTO की व्यवस्था के अनुसार यह आवश्यक है भारत प्रत्येक वर्ष में विदेशी बैंकों की 12 शाखाओं को खोलने की अनुमति प्रदान करे। रिजर्व बैंक ने इससे अधिक ही किया है।

25.8 कोर बैंकिंग

कोर बैंकिंग का प्रयोग उन सेवाओं को व्यक्त करने के लिए करते हैं जो कुछ बैंकों की शाखाओं को एकदूसरे के साथ नेटवर्क से जुटने के कारण प्राप्त होती है। जब कुछ बैंको के बीच नेटवर्क हो तो ग्राहक का फण्ड किसी बैंक में हो तो वह किसी भी बैंक की शाखा में व्यवहार कर सकता है। इधर हाल के वर्षों में कोर बैंकिंग सेवाएं (ब्ठै) बहुत तेजी से बढ़ी है। इसक अन्तर्गत अनेंक

सेवाएं उपलब्ध करायी जाती है जैसे एनीव्हेयर बैंकिंग, प्रत्येक जगह पहुॅच तथा साधनों का तीव्रता से हस्तान्तरण। इस प्रकार इन्टरनेट बैंकिंग या ई-बैंकिंग एक ही बैंक की विभिन्न शाखाओं के बीच में नहीं हो बल्कि अलग-अलग बैंकों के बीच हो तो इसे कोर बैंकिंग कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न- एक शब्द/वाक्य में उत्तर दीजिए-

(1) मुद्रा बाजार को कितने क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जाता है?

(2) संगठित मुद्रा बाजार में किसे शीर्ष स्थिति प्राप्त है?

(3) असंगठित क्षेत्र के प्रमुख अंग कौन हैं?

(4) कालमनी मार्केट में उधार की अवधि कितनी होती है?

(5) भारत में टे°जरी बिल्स पहली बार कब निर्गमित की गयी थी?

(6) अर्थोपाय अग्रिम योजना कब लागू की गयी?

(7) किसी भी स्थान से बैंकिंग सुविधा प्राप्त करने को क्या कहते हैं?

(8) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट कब बना?

(9) रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कब किया गया?

(10) रिजर्व बैंक के प्रथम गवर्नर कौन थे?

(11) देश में साख नियन्त्रण का कार्य कौन करता है?

(12) साख नियन्त्रण के कितने तरीके होते हैं?

(13) साख मुद्रा का सृजन कौन करता है?

(14) साख सृजन का आधार क्या है?

(15) दीर्घकालीन विकासात्मक निवेश से सम्बन्धित संस्थाओं को क्या कहते हैं?

(16) रिजर्व बैंक ने पाकिस्तान के सेन्ट्रल बैंक के रूप में कब तक कार्य किया?

(17) रिजर्व बैंक के वर्तमान गवर्नर कौन हैं?

(18) प्राथमिक जमा में वृद्धि के कारण साख मुद्रा में जितनी गुनी वृद्धि होती है उसे क्या कहते हैं?

25.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि भारतीय मौद्रिक प्रणाली की संरचना मुद्रा बाजार से सम्बन्धित है। मुद्रा बाजार के दो क्षेत्र हैं- संगठित क्षेत्र एवं असंगठित क्षेत्र। संगठित क्षेत्र के अन्तर्गत रिजर्व बैंक को शीर्ष स्थान प्राप्त है, जो देश में मौद्रिक प्रणाली का नियन्त्रण एवं नियमन करता है। समस्त बैंकिंग संस्थाएं इसके नियन्त्रण में कार्य करती हैं। असंगठित क्षेत्र के अन्तर्गत प्रमुख रूप से देशी बैंकर एवं ग्रामीण साहूकार आते हैं। इसके अलावा कुछ अन्य अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं हैं जो मौद्रिक प्रणाली की संरचना के अंग हैं जैसे- IFCI, IIBI, IDFC, SIDBI, NABARD, LIC, IFCI बेंचर, ICI बेन्चर आदि। इस इकाई के अध्ययन से व्यापारिक बैंकों के कार्यों एवं उनके द्वारा साख सृजन की प्रक्रिया को भी समझा जा सकता है। विभिन्न प्रकार के प्रपत्रों, बैंकिंग प्रणालियों को भी समझ सकते हैं। इस प्रकार इस इकाई का अध्ययन भारतीय मौद्रिक प्रणाली की संरचना के अन्तर्गत रिजर्व बैंक, व्यापारिक बैंक, अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं आदि के क्रिया कलापों को समझने में अत्यन्त ही सहायक है।

25.10 शब्दावली

बैंक दर- यह वह दर है जिस पर देश का केन्द्रीय बैंक अपने सदस्य बैंकों की बिलों की पुनर्कटौती करता है अथवा प्रथम श्रेणी की प्रतिभूतियों की आड़ में उधार देता है।

नकद कोष अनुपात- किसी व्यापारिक बैंक की कुल जमाओं का वह भाग जिसे रिजर्व बैंक के पास अनिवार्य रूप से जमा करना पड़ता है।

वैधानिक तरलता अनुपात- किसी व्यापारिक बैंक की कुल जमाओं का वह भाग जो नकद, स्वर्ण या विदेशी मुद्रा के रूप में उसे अपने पास अनिवार्य रूप से रखना पड़ता है।

खुले बाजार की क्रियाएं- केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा बाजार में सरकारी तथा निजी संस्थाओं की प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय करना।

रीपो- ऐसा ब्याज दर जिस पर अल्पकालिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यापारिक बैंक रिजर्व बैंक से नकदी प्राप्त करते हैं।

25.11 अभ्यास प्रश्न व उत्तर

उत्तर- (1) दो (2) रिजर्व बैंक (3) देशी बैंकर्स एवं ग्रामीण साहूकार (4) 1-15 दिन (5) 1917 (6) 1997-98 (7) एनीव्हेयर बैंकिंग (8) 1934 (9) 1 जनवरी, 1949 (10) सर आस्बोर्न स्मिथ (11)

रिजर्व बैंक (12) दो- परिमाणात्मक एवं गुणात्मक (13) व्यापारिक बैंक (14) बैंकों की प्राथमिक जमा (15) अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं (16) 1948 (17) डी0 सुब्बाराव (18) साख मुद्रा।

25.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची एवं सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. B.C. Ghose: A Study of the Indian Money Market
2. D.K. Malhotra: History and Problems of Indian Currency
3. S.B. Gupta: Monetary Economics
4. M.C. Vaishya: Monetary Economics
5. M.L. Seth: Money and Banking
6. K.N. Raj: Monetary Policy of th Reserve Bank of India
7. Reserve Bank of India: RBI Bulletin
8. Reserve Bank of India: Reports on Currency and Finance
9. Govt. of India: Economic Survey

24.13 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1- भारतीय मौद्रिक प्रणाली संरचना में मुद्रा बाजार के प्रमुख प्रपत्रों की संक्षिप्त विवेवना कीजिए।

प्रश्न 2-रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना किन उद्देश्यों से की गयी थी? रिजर्व बैंक के विभिन्न कार्यो पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3-निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए-

- मर्चेन्ट बैंकिंग
- कोर बैंकिंग
- व्यापारिक बैंकों द्वारा साख सृजन
- गैर बैंकिंग वित्तीय संस्था

इकाई 26 भारत का विदेशी व्यापार

26.1 प्रस्तावना
26.2 उद्देश्य
26.3 वैदेशिक व्यापार की पृष्ठभूमि
26.4 ब्रिटिश शासन के युग में
26.5 स्वातंत्र्योपरान्त वैदेशिक व्यापार के उद्देश्य
26.6 वैदेशिक व्यापार का आधार
26.7 विकासीय आयातों की अनिवार्यता
26.8 व्यापार के प्रभावक तत्व
26.9 निर्यातों के लिए वैश्विक मांग और प्रतियोगिता
26.10 योजनाकाल में निर्यात-आयात मूल्य (अनुमान)
26.11 पेट्रोल आयात का भार
26.12 उदारीकरण और घटते निर्यात
26.13 खाड़ी युद्ध और आयात-मूल्य
26.14 आर्थिक मंदी का प्रभाव
26.15 भारतीय आयातों का स्वभाव
26.16 भारतीय निर्यात
26.17 नई प्रवृत्तियां
26.18 भारतीय वैदेशिक व्यापार की दिशाएं
26.19 भारतीय विदेशी व्यापार प्रगति पर
26.20 सारांश
26.21 शब्दावली
26.22 संदर्भ ग्रन्थ
26.23 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
26.24 निबन्धात्मक प्रश्न

26.1 प्रस्तावना

'विदेशी व्यापार' भी श्रम विभाजन सिद्धांत और विशिष्टीकरण व बड़े पैमाने के उत्पादन द्वारा जनित बचतों को आर्थिक समृद्धि के निमित्त उपयोग में लाने का तरीका है। इसे हम अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन और विशिष्टीकरण विधि कह सकते हैं। जिससे उत्पादन बड़ी माञा में होता है। जिसे देशों द्वारा आपस में बांटना भी होता है। यह कार्य अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय द्वारा सम्पन्न होता है। इस विनिमय से संलग्न देशों की वास्तविक आय में वृद्धि होती है और आर्थिक समृद्धि और अधिकतम मानवीय आर्थिक सन्तुष्टि का सृजन होता है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार न होता तो हमारा उपभोग और निवेश का दायरा इतना विस्तृत न होता जितना कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्रिया द्वारा आज संभव हुआ है। यह मात्र वस्तुओं के प्रत्यक्ष लेन-देन के माध्यम से ही नहीं अपितु एक देश द्वारा अपने संसाधनों के विदोहनोपरांत अर्जित आय व बचत को अन्य देशों की मदद, ऋण रूप में, प्रदान करके भी किया जाता है। प्रकृति प्रदत्त संसाधनों में नैसर्गिक तौर पर अन्तर्राष्ट्रीय भेद होते हैं जिससे विविध प्रकार के उत्पादन करने में दक्षता और लागत के अंतर जन्मते हैं। लागतों के अंतर से ही विशिष्टीकरण वाले क्षेत्रों का निर्धारण होता है और इन्हीं क्षेत्रों में (जहां लागतें कम हो) बहुत बड़े पैमाने का उत्पादन करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार क्रिया द्वारा लाभ को बांटा जाता है। इसमें कुल साधनों के व्यय में मानव श्रम, समय में, गुणात्मक श्रेष्ठता की दृष्टि से बड़ी बचतें होती हैं और मानव जाति तेजी से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम हो जाती हैं। इस तरह वैदेशिक व्यापार आर्थिक समृद्धि प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है।

26.2 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई में छात्र-छात्राओं को *व्यापार* के अर्थ से ही नहीं अपितु दो सार्वभौम देशों के मध्य वस्तुओं सेवाओं और विविध अदृश्य मदों के माध्यम से आर्थिक लेन-देन की प्रणाली से अवगत कराना है। *सामान्य व्यापार* तो देश के भीतर दो व्यक्तियों, दो क्षेत्रों अथवा दो संस्थाओं के बीच घटित आर्थिक लेन-देन या विनिमय है। इसमें उस देश की मुद्रा (करेंसी) का उपयोग होता है। यह देश के अपने नागरिकोंका अपनेही देशवासियों से होने वाला विनिमय है इसे हम 'क्षेत्रीय व्यापार' या 'आन्तरिक व्यापार' कहते हैं। किन्तु जब यह विनिमय किसी देश की सीमाओं के परे अन्य सार्वभौम देश से हो तो वहां पर व्यापार-रत देशों की अपनी-अपनी मुद्रा होती है और इन मुद्राओं को केवल अपने देश के भीतर 'विनिमय माध्यम' की स्वीकार्यता (मान्यता) प्राप्त होती है किसी बाहरी देश से लेन देन के लिए 'बकाया' को स्वर्ण अथवा अन्य बहुमूल्य धातु हस्तान्तरण द्वारा निबटाया जाता है। या अन्य विश्व-स्तर की दुर्लभ मुद्रा का उपयोग किया जाता है। (जैसे अमरीकी डालर या दीनार) यहां पर यह समझना आवश्यक है कि विदेशी व्यापार, स्वदेशी व्यापार से भिन्न है। स्वदेशी व्यापार अपनों के द्वारा अपनों से लेन-देन है जबकि विदेशी व्यापार अपनों और उनके बीच लेन-देन का विनिमय है। भारत का विदेशी व्यापार भारतीयों और गैर-भारतीयों के बीच विनिमय क्रियाहै। जब

भारत और सारे-विश्व के अन्य देशों से लेन-देन हो तो यह वैदेशिक या विदेशी व्यापार कहलाता है। यहां पर भारत के अन्य देशों से व्यापार की दशाओं, संरचना, दिशाओं, प्रवृत्तियों और तदर्थ उन्नयन नीतियोंसे अवगत होना हमारा उद्देश्य है।

26.3 भारतीय वैदेशिक व्यापार की पृष्ठभूमि से परिचय

भारतीय व्यापारी पुरातन काल से ही अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए प्रसिद्ध थे। भले ही तब आधुनिक व्यापारिक मार्गों का विकास नहीं था। यह व्यापारी जल अथव थल मार्गों से पूर्वी एशिया के देशों व मध्य-एशिया के देशों में भारतीय रेशम, फल, मेवे, जेवरात, वस्त्र, मसाले इत्यादि निर्यात करते थे। मध्यकाल में भारतीय निर्यात अरब के व्यापारियों के माध्यम से यूरोपीय मण्डियों तक पहुंचे थे। बाद में पुर्तगाली, फ्रान्सीसी, डच, ब्रिटिश व्यापारियों ने जल-मार्गों से आकर भारतीय उत्पादों को यूरोप में लोकप्रिय कर दिया था। स्वेजनहर (1869) के निर्माण ने इस अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को सरल भी किया और लागतों में कमी भी कर दी। हस्तकला के उत्पाद, वस्त्र, मसाले, रेशम, मेवे इत्यादि भारत से आयात किए जाने लगे थे। मार्गों के सुगम होने से मुनाफे बढ़े और योरुपीय व्यापारी इस ओर प्रलोभित हुए। भारत के निर्यात अधिक मूल्य के और आयात कम मूल्य के होने से भारत में स्वर्ण-रजत और कीमती पत्थरों की प्राप्ति होती थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतीय निर्यातों से अकूत धन अर्जित किया और ब्रिटिश उपनिवेश बननेके बाद तो भारत मात्र ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चे माल का निर्यातक बन गया और भारतीय उद्योगों का निरंतर विघटन होता रहा।

26.4 ब्रिटिश शासन के युग में भारत का विदेशी व्यापार

भारत प्राचीन काल से ही बहु-उद्देशीय व्यापार में महत्वपूर्ण सहभाजक रहा है। इसका व्यापारिक सम्बन्ध पड़ोस के सभी देशों में ही नहीं अपितु सुदूर तक जमीनी मार्ग से था। जल मार्ग से भी भारत पूर्वी व दक्षिण पूर्वी देशों से जुड़ा रहा था। व्यापार में मुगल काल में भी निरन्तर वृद्धि हुई थी किन्तु ब्रिटिश शासन काल में इस क्षेत्र में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। इसमें व्यापार की मात्रा, दिशा, संरचना उद्देश्य और प्रवृत्तियों के विविध परिवर्तन आये जिनका परिणाम भारत में व्याप्त घोर गरीबी और विकासहीन दशाओं में दृष्टिगत होता था। भारत उपनिवेशी युग में ब्रिटेन का गुलाम देश था जो कई शताब्दियों तक गुलाम रहा। गुलाम देश वही सब कुछ करने को बाध्य था जो उसके (आका) मालिक के हित में हो। भारत सरकार दरअसल अंग्रेजी सरकार थी और वही सबकुछ करती जिससे हर तरह ब्रिटिश लोगों और ब्रिटेन देश का कल्याण हो और गुलाम देश भारत कभी उठकर विद्रोह करने योग्य न रहे। अंग्रेजों को भारत से मुख्यतया चार आशाएं थीं- 1. सस्ते से सस्ता औद्योगिक कच्चा माल जिसे ब्रिटेन में स्थित कारखानों तक पहुंचाया जा सके। 2. सस्ते, सक्षम और आज्ञाकारी निरीह गुलाम जो ब्रिटेन की फौज बने। 3. भारत में विविध रूप में स्वर्ण, रजत, कीमती पन्ने, हीरे-जवाहरात तथा नकद बचतें जो राजदरबारों, नवाबों और अन्य स्रोतों से मिल सकते थे। 4. ब्रिटेन में निर्मित वस्तुएं व ब्रिटिश सेवाएं भारत ने मनचाहे दामों पर बेचने के लिए अंग्रेजों को खुली छूट होना। भारत के निर्यातों में ब्रिटेन का एकाधिकार था। ब्रिटेन जाने वाले निर्यातों पर यथा सम्भव कम मूल्य

दिया जाता था। भारत की मुद्रा को ब्रिटेन की मुद्रा से निश्चित मूल्य दर पर स्थिर कर दिया गया था। भारत के समृद्ध हस्तकला उद्योग जानबूझ कर उजाड़े गये ताकि ब्रिटेन की बनी वस्तुएं भारत में बेची जांय। भारत के सम्पन्न वर्ग अंग्रेजी संस्कृति के उपासक बनाये गये ताकि ब्रिटिश चीजें उन्हें पसंद हों। भारत कपास, जूट, कोयला, लोहा, अभ्रक, मैगनीज, चाय आदि का निर्यातक बना। भारतीय मुद्रा (रुपया) तत्कालीन प्रचलित मूल्यों पर अधिमूल्यित थी ताकि भारत के निर्यात का लाभ कम रहे, आयात वृद्धि प्रवृत्त रहे। यह स्थितियां स्वतंत्र भारत के लिए अनुकूल नहीं थीं।

26.5 स्वतंत्र भारत की वैदेशिक व्यापार नीतियां

19वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश (1875-1900) तक भारत में उद्योग लगाने और उत्पादन को यहां बेचकर लाभ चौगुना करना ज्यादा सरल हो गया था। ब्रिटिश पुरानी उत्पादन पद्धतियां व सज्जाएं भी इसमें भारत को बेची जा सकती थी। दैनिक जीवन की वस्तुएं भी आयात द्वारा पूरी की जा रही थीं। भारत ने जो युद्धकाल में ब्रिटिश सेवा की, उनसे स्टर्लिंग कोष जमा था, जिससे भारत अपनी विकास योजना प्रारम्भ कर सकता था। बड़े स्वतंत्र, अलौह धातुएं, खनिज, इंजीनियरिंग सामग्री आदि आयात करके प्रथम योजना प्रारम्भ हो सकती थी। भारत को अनाज व खाद्य की अन्य सामग्री आयात द्वारा ही पूरी करनी थी, इसलिए खाद्य-क्षेत्र व सिंचन क्षेत्र में प्रथम योजना ने महत्वपूर्ण योगदान करना था। स्वतंत्रा से भारत के व्यापार के उद्देश्य बदल गए। अब इसमें ब्रिटिश हित प्राधान्य पूर्ण प्राथमिकता में न रहे बल्कि भारत के राष्ट्रीय हित प्रमुख हो गए थे, इसलिए शनै: शनै: निर्यातों का स्वभाव, संरचना, दिशाएं भी बदलनी ही थीं। इसी प्रकार आयातों में संरचना, उद्देश्य, तकनीकी चयन और आयात की मण्डियों में भी परिवर्तन लाजमी था। अभी तक 80 प्रतिशत से अधिक आयात ब्रिटेन से आते थे जो स्वतंत्रता के बाद अन्य देशों में फैल गए। इस परिवर्तन को व्यापार का दिशात्मक परिवर्तन कहा जाता है। भारत धीरे-धीरे कच्चे माल का निर्यातक न रहकर पक्के निर्मित माल का निर्यातक बनने का प्रयास करने लगा। भारत औद्योगिक विकासार्थ मशीनों, पुर्जो व पूँजीगत सज्जाओं अवरचनाओं में आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हो रहा था। इसलिए भारत की व्यापार नीति में यथोचित परिवर्तन हुआ था।

26.6 वैदेशिक व्यापार का आधार

विनिमय सदैव ही आर्थिक लाभ का सृजक होता है। देश की सीमाओं के भीतर क्षेत्रों-उपक्षेत्रों के मध्य यदि विनिमय होता है तो उसे आंतरिक व्यापार कहा जाता है। राष्ट्रीय सीमाओं के पार के संदर्भ में यह विनिमय वैदेशिक व्यापार कहलाता है। विभिन्न देशों में प्राकृतिक संसाधनों, श्रमशक्ति-योग्यता और पूँजीगत सज्जा-साधनों की उपलब्धि एवं क्षमताओं में भिन्नता पाई जाती है। इसके परिणामस्वरुप किसी एक वस्तु अथवा सेवा के उत्पादन में दो देशों के बीच लागतों का जो अंतर हो जाता है वह निर्पेक्ष अथवा सापेक्ष हो सकता है। यह अंतर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के जन्म के लिए उत्तरदायी है। व्यापार द्वारा हम उन वस्तुओं या सेवाओं का आयात करते हैं जिन्हें अपने देश में बनाना अथवा पैदा करना विदेश से प्राप्त करने के सापेक्ष महंगा पड़ता है। हम उन वस्तुओं या

सेवाओं का आयात करते हैं जिन्हें अपने देश में बनाना अथवा पैदा करना विदेश से प्राप्त करने के सापेक्ष महंगा पड़ता है। हम उन वस्तुओं-सेवाओं का निर्यात करते हैं जिन्हें हम अन्य देशों के सापेक्ष कम लागत पर किसी सीमा तक उत्पादित कर सकते हैं। इन वस्तुओं को लगातार बड़े में निर्मित करने या पैदा करने से हम इन निर्यात-योग्य उत्पादनों में एक विशिष्टीकरण अर्जित करते हैं जिससे हमारी उत्पादन लागतें घटती जाती हैं। इन वस्तुओं के उत्पादन में दो देशों के बीच लागतों का अंतर बढ़ जाने से इन देशों के बीच व्यापार और भी अधिक लाभकारी हो जाता है। नई उत्पादन टेक्नालॉजी के आविष्कार व उपयोग से यह लागतों का अंतर और ज्यादा बढ़ जाता है जिससे व्यापारिक लाभ भी बढ़ता जाता है।

26.7 विकासीय आयातों की अनिवार्यता

अंग्रेजी शासन की विदाई के उपरांत 1949 में भारतीय मुद्रा- रुपए का अवमूल्यन करना पड़ा था ताकि भारतीय मुद्रा अन्य देशों में सस्ती होने से वे भारत से आयात करना श्रेयस्कर समझें। इससे भारतीय निर्यातों में अभूतपूर्व वृद्धि होगी और भारत अधिक वैदेशिक दुर्लभ मुद्राएं अर्जित कर सकेगा। यही भारत के विकास के लिए जरूरी आयात संभव करने को किया जा सकेगा। भारत को अपने उद्योगों में मशीनें आधुनिक करनी थी। अभी तक पुरानी मशीनें टूटी-फूटी और मरम्मत योग्य थीं। वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग, चीनी उद्योग आदि सभी में नए आयातों द्वारा प्रतिस्थापन करना था। प्रतिरक्षा क्षेत्र में भी आधुनिकीकरण जरूरी था। निर्माणक आयात जरूरी थे। यातायात व रेलवे की नयी सज्जाएं जोड़ना आवश्यक था। अनाज भी आयात करने थे ताकि मूल्यों का बढ़ना रोका जा सके।

अवमूल्यन से भी अपेक्षित लाभ न हो सका क्योंकि आर्थिक नियोजन काल में अर्थव्यवस्था के तीव्रतर विकासार्थ भारत को विकास सम्बन्धी आयातों की आवश्यकता बढ़ती गई और आयातों के लिए अवमूल्यन प्रेरित अधिक मूल्य चुकाना पड़ा। एक तो ज्यादा आयात आवश्यक हो गए दूसरा आयातों का मूल्य भारतीय मुद्रा अवमूल्यन से बढ़ गया। परिणामत: भारत की व्यापारिक बकाया ऋणात्मक(विरुद्ध) हो गई। यही क्रम नियोजन काल में बना ही रहा है। पेट्रोलियम के मूल्यों में वृद्धि और अधिकाधिक पेट्रोल व पदार्थों की भारतीय मांग ने आयात-वृद्धि के लिए दबाव बनाए रखा है।

26.8 व्यापार के प्रभावक तत्व

वैदेशिक व्यापार पर अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों की प्रवृत्तियों, घरेलू उत्पादक लागतों, विदेशी बाजारों में पूर्ति की दशाओं और स्वदेशी उत्पादन-लागतों का सीधा प्रभाव पड़ता है। औद्योगीकरण व यातायात-परिवहन विकास परियोजनाओं ने पेट्रोल-पेट्रोल पदार्थों की राष्ट्रीय मांग को वृद्धि-प्रवृत्त बनाए रखा। स्वदेशी पेट्रोल स्रोतों में उत्पादन-वृद्धि की सम्भावनाएं कम हो जाने से आयात पर दबाव बढ़ा। भले ही घरेलू स्रोतों से पेट्रोल पाने के लिए निरन्तर प्रयास हुए किन्तु वांछित वृद्धि संभव न हो सकी जिससे पेट्रोल एवं पदार्थों का निरन्तर अधिक मात्रा में आयात अपरिहार्य हो गया। सरकारी

आयात प्रतिस्थापना एवं निर्यात सम्वर्द्धन नीतियां अपनाई गई किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य-वृद्धि से आयात महंगे होते गए। 1969 से 1976 तक पेट्रोल के मूल्य में लगभग नौ गुना वृद्धि हो गई थी। एक ओर विकासार्थ पेट्रोल आयात व पेट्रो-उत्पाद आयात अपरिहार्य थे दूसरी ओर इन्हीं के मूल्य सर्वाधिक तीव्र गति से बढ़ते गए थे। इस कारण विवशता थी जिसने निरंतर व्यापारिक बकाया को भारत के विरुद्ध बनाए रखा था।

अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों में वृद्धि मात्र पेट्रोल में नहीं थी अपितु उर्वरक, कपास, अनाज, मशीनें, लौह-इस्पात, वस्त्रों के मूल्यों में भी अभिवृद्धि होती रही। भारतीय निर्यातों में सूती वस्त्र, चाय, बासमती, चावल, जूट-निर्मित पदार्थ, चीनी, चमड़े के उत्पाद, औद्योगिक रसायन, कॉफी, मशीनों, लघु-उपकरणों आदि के मूल्य भी बढ़ते थे किन्तु इनकी वृद्धि-दर पेट्रोल के सापेक्ष नगण्य थी। यह सवा गुने, डेढ़ गुने, दुगुने व ढाई गुने तक बढ़े थे। भारतीय निर्यातों में मसाले, मछली के उत्पाद, चाय, लौह-इस्पात, तम्बाकू, इंजीनियरिंग-पदार्थ उपकरण, चमड़े के उत्पाद, रसायन, काजू, खली, हस्तकला के उत्पाद आदि में 1961 से 1978 तक पांच गुनी मूल्य वृद्धि हो चुकी थी और भारतीय निर्यातकों ने लाभार्जन किया। सूती-वस्त्रों के निर्यात में उत्तरोत्तर वृद्धि हो चुकी थी और निर्यातकों ने पर्याप्त लाभार्जन किया। सूती-वस्त्रों के निर्यात में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई थी।

26.9 निर्यातों की मांग और प्रतियोगिता

निर्यात द्वारा लाभार्जन दो दशाओं पर निर्भर रहता है,

अ. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक प्रतियोगिता का स्तर।

ब. नए उत्पादों द्वारा, परम्परागत वस्तुओं की, विश्व की मण्डियों में प्रतिस्थापन दर।

भारतीय निर्यातों में, प्रतियोगी देशों द्वारा गला-काट प्रति-स्पर्द्धा होने से निर्यातों के मूल्य अपेक्षित तीव्र गति से नहीं बढ़ते हैं। जूट, चाय, सूती वस्त्र, कच्चा लौह, लघु-इंजीनियरिंग, चीनी, खाद्य अनाज, खली जैसे पदार्थों के उत्पादक लगभग सभी विकासशील देश होते हैं जिनको दुर्लभ मुद्राओं (डालर, पौण्ड, येन, गिल्डर, दीनार आदि) की कड़ी आवश्यकता रहती है। अत: वे सभी किसी तरह कम मूल्य पर भी अपने उत्पाद बेचना चाहते हैं। चाय, चावल, चीनी, लघु-उपकरण, वस्त्र आदि तो श्रीलंका व अन्य देश भी प्रस्तुत करते हैं। कई वस्तुओं में पाकिस्तान भी स्पर्धा करता है।

भारतीय चाय (दार्जिलिंग टी) अमरीका, कनाडा, आयरलैण्ड, ब्रिटेन, सूडान, आस्ट्रेलिया, जर्मनी, हालैण्ड में लोकप्रिय है। भारतीय साइकिलें, मशीनी उपकरण, सिलाई मशीनें, बिजली के सामान, इंजन, यातायात के वाहन आदि ईरान, ईराक, अफगानिस्तान, कुवैत, अरब, सीरिया, लीविया, मिश्र व दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में निर्यात होती हैं और अफ्रीका के देशों में भी भारतीय बाजार रहा है। चीन ने भारत से सभी बाजारों में घोर-प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ कर दी है। विद्युत उत्पाद व उपकरणों में चीन एक बड़ा सक्षम प्रतियोगी हो गया है। भारत के अन्दर भी यह चीनी निर्यात स्वदेशी उत्पादकों को उद्योग से बाहर कर रहे हैं। भारत की उत्पादन लागतें ज्यादा हैं। सूती वस्त्र, पोशाकें, तैयार कपड़ों,

फैशन-पहनावे की चीजों में भारतीय माल अमरीका, श्रीलंका, वर्मा, आस्ट्रेलिया, मलेशिया, ब्रिटेन, पूर्वी अफ्रीका, इथोपिया, इण्डोनेशिया, सूडान को निर्यात होता रहा है। यूरोपियन यूनियन देशों में वस्त्रों के कोटा प्रणाली से हट जाने के कारण वहां भारतीय वस्त्रों की मांग बढ़ी है। किन्तु वस्त्र निर्यात बाजार में भी भारत को हांग-कां, चीन, पाकिस्तान, ताइवान, जापान आदि देशों से घोर प्रतिस्पर्धा है जिससे भारत अपने मूल्य नहीं बढ़ा सकता है। ऐसे निर्यात जो उन चीजों के हैं जो चीजें एकाधिकार पूर्ण हैं या नई तकनीकों पर आधारित हैं, ऐसे निर्यात अधिक आय प्रदान करते हैं। विकासात्मक आयात विकास योजनाओं की सफलता के लिए आवश्यक होते हैं। इसी प्रकार प्रतिरक्षा की सज्जाएं और परिपोषक प्रकार के आयात जो चलती योजनाओं में लगी मशीनों के पुर्जे और प्रयुक्त सज्जाओं के प्रतिस्थान के लिए जरूरी है, आयात करने ही पड़ते हैं। औद्योगिक आधुनिकीकरण में नई मशीनों, उपकरणों आदि का आयात भी आवश्यक होता है। प्राय: इनके लिए एकाधिकारिक मूल्य भी चुकाना ही पड़ता है। परम्परागत निर्यातों में ज्यादा प्रतिस्पर्धा होने से, आय बहुत धीरे बढ़ती है।

26.10 योजनाकाल में निर्यात-आयात मूल्य

भारत के 58 वर्षीय अनुभव से हम आयात-निर्यात की प्रवृत्तियों का अनुमान कर सकते हैं यदि मूल्य स्तर को समयान्तर से समन्वित करें तो कुछ विश्वसनीय अनुमान प्राप्त हो सकते हैं।तालिका

भारतीय पंचवीर्षीय योजनाकाल में निर्यात-आयात मूल्य एवं व्यापार की बकाया(1951-52 से 2008-9)। (करोड़ रुपये)

अवधि	निर्यात	आयात	व्यापार शेष
1951-1955	3109	3651	542
1956-1961	3063	5402	2339
1961-1966	3735	6119	2384
1967-1969	3708	5775	2067
1969-1974	9049	9862	813
1974-1979	30066	36836	6770
1980-1985	44834	73415	28581
1985-1990	86910	125561	38651
1991-1995	282723	317491	34768
1995-2009	2534146	3922666	1388520

स्रोत - आर्थिक सर्वेक्षण, RBI बुलेटिन, इस्टर्न इकानोमिस्ट बुलेटिन से आगणित

खाद्यान्न दौर्लभ्य एवं प्रतिरक्षा के आयात:- तीसरी योजना (1962-66) में भारतीय व्यापार को खाद्यान्नों के दौर्लभ्य एवं प्रतिरक्षा आवश्यकताओं ने ऋणात्मक तौर पर प्रभावित किया। विवश होकर 1966 में भारतीय रुपये का अवमूल्यन (36.5 प्रतिशत) करना पड़ा था और देश के 59

उद्योगों में उदार आयात नीति लागू हुई जिससे ऋणात्मक व्यापार-शेष में वृद्धि हुई थी। अवमूल्यन से निर्यात भी बढ़े थे और 1968-70 के बीच खाद्यान्न उत्पादन सुधर जाने से आयातोंमें राहत हुई। इन वर्षों में आयात-प्रतिस्थापन एवं आयात परिसीमन से ऋणात्मक व्यापार शेष में कमी आ गई थी। 1973-74 में पेट्रोल-पदार्थों, इस्पात, अलौह धातुओं, उर्वरकों, अखबारी न्यूज प्रिंट जैसी चीजों के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य एकाएक बढ़ गए जिससे भारत के विदेशी आयातों का मूल्य बढ़ गया और व्यापार शेष भी अधिक ऋणात्मक हो गया। पांचवी योजना 1974-79 में भारत के आयात पेट्रोल, पेट्रो-पदार्थ, उर्वरक, खाद्यान्न अन्तर्राष्ट्रीय मण्डी में महंगे हो गए किन्तु भारत के निर्यात भी तेजी से बढ़े फिर भी व्यापार शेष ऋणात्मक रहा। 1977-78 वर्ष तक व्यापार का वार्षिक घाटा औसतन 740 करोड़ रुपया रहा।

26.12 पेट्रोल आयात का भार:

पेट्रोलियम के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य निरन्तर वृद्धि-प्रवृत्त रहे। जिससे छठी योजनाकाल में भी आयात का बिल एकाएक डेढ़ गुना हो गया। यह रु 6814 करोड़ (1978-79) से रु. 9142 करोड़ (1979-80) हो गया। निर्यातों की वृद्धि, आयात- मूल्य के सापेक्ष, रु. 6418 करोड़ तक पहुंच सकी। भले ही यह 12 प्रतिशत से अधिक वृद्धि थी। 1980-81 से 1983-84 आयात-मूल्यों में राहत रही। कुल मिलाकर 1981-85 के दौरान आयात रु. 14683 करोड़ वार्षिक औसत से हो सके। तद्नुसार व्यापारशेष का घाटा रु. 5716 करोड़ तक बना रहा था।

26.13 उदारीकरण तथा घटते निर्यात

सातवीं पंचवर्षीय योजना काल (1985-1989) भारतीय वैदेशिक व्यापार के लिए असमंजस का समय था, जबकि एक ओर तीव्र उदारीकरण नीति और दूसरी ओर निर्यातों के ढीलेपन की स्थिति ने व्यापार-घाटे को भयावह-सा बना दिया। कुल घाटा रु. 38651 करोड़ और औसत वार्षिक घाटा लगभग 7730 करोड़ रु. हो गया। आयात तो रु. 25114 करोड़ (वार्षिक) और निर्यात रु. 17382 करोड़ के रहे। भारत को व्यापारिक घाटे के मद्देनजर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष से 670 करोड़ डॉलर ऋण की प्रार्थना करनी पड़ी। आयात लाइसेन्स पर कुछ अंकुश भी लगाया गया।

26.14 खाड़ी युद्ध और आयात मूल्य :

भारत के विदेशी व्यापार में 1990-91 के बाद बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए थे। एक तो निर्यात वृद्धि 17.7 प्रतिशत वार्षिक दर से हुए दूसरा खाड़ी युद्ध के कारण आयात रु. 43193 करोड़ तक जा पहुंचे जबकि निर्यात रु. 32558 करोड़ (वार्षिक) तक पहुंच सके। 1990-91 में ही लगभग रु. 10635 करोड़ का व्यापार घाटा हो गया था। इस दौर में निर्यात-वृद्धि की दर घट गई और

आयात-वृद्धि दर बढ़ गई थी। 1993 से 1997 तक निर्यात-वृद्धि अच्छी आशाजनक (87 प्रतिशत) रही किन्तु उदारीकरण नीतियों से आयातों में अभूतपूर्व वृद्धि (102 प्रतिशत) हुई। परिणामत: व्यापारिक घाटा तीन गुना बढ़ गया।

26.15 आर्थिक मंदी का प्रभाव

नवीं व दसवीं योजनाओं में (1997-2002 और (2003-2007) में असाधारण आर्थिक मंदी विश्व स्तर पर हो गई जिसमें जापानी मन्दी, दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में आर्थिक संकट, और रूस में आर्थिक गिरावट का परिणाम सामने आया जिससे भारत के व्यापारिक पक्ष में भी कमी होनी ही थी। भारत के निर्यात खरीदने वाले देश भी अपने आयात घटाने लगे तो निर्यात-आय में कमी आई। 1999-2001 के दौरान निर्यात व्यापार ने पुन: जोर पकड़ा और वृद्धि होने लगी परन्तु आयात भी लगातार वृद्धि प्रवृत्त रहे और व्यापार रोष का घाटा बना ही रहा। दसवीं योजना (2003-7) तक भारतीय निर्यात निरन्तर बढ़ते रहे और कुल (45.8 प्रतिशत) वृद्धि लगभग डेढ़ गुने की थी तो आयातों में भी 52 प्रतिशत वृद्धि हो गई। व्यापारिक घाटा भी लगातार बढ़ता गया।

2006-07 तक भारत का वैदेशिक व्यापार-घाटा 2842.65 अरब रु. तक जा पहुंचा (63.17 अरब डालर) वार्षिक व्यापारिक घाटा रु 1404.5 अरब का था। यह नवम् योजना के व्यापार घाटे से चौगुना था। 2007-08 में यह रु. 356448 करोड़ हो गया था। 2008-09 तक यह घाटा रु 53280 करोड़ का हो चुका था। व्यापारिक घाटे का कारण आयातों की निरंतर वृद्धि थी।

1992-93 से 2001-02 तक भारतीय निर्यात औसतन 18.5 प्रतिशत प्रति वर्ष की गति से बढ़ रहे थे और आयात करीब 19.1 प्रतिशत की गति से चढ़े थे। वास्तव में भारतीय मुद्रा के अवमूल्यन ने आयात महंगे कर दिए थे जिससे व्यापारिक घाटा ज्यादा गति से बढ़ा था। पेट्रोल मांग ने व्यापारिक घाटे में वृद्धि की थी। मात्र 2002-03 में निर्यात आयातों से ज्यादा हो सके थे किन्तु यह अल्पकालिक स्थिति थी।

26.16 भारत के आयातों का स्वभाव

आयात					
अम्बारी आयात (खड़ी भार वाली)			गैर आम्बारी आयात		
पेट्रोल रक्षा- उत्पाद	उपभोग वस्तु खाद्यवस्तुएं, अनाज दाल, तेल चीनी आदि	उर्वरक, धातु कागज, रबड़, खनिज, लौह, इस्पात, वगैरह	पूँजीगत, वस्तु धातु, औजार मशीन, परिवहन के वाहन	कच्चेमाल, हीरे, पत्थर, रसायन, वस्त्र, सूत, कपड़े आदि	प्लास्टिक सामग्री, उपकरण, कोयला, कोक, रसायन,गैर धातु,खनिज आदि

भारत के आयातों में पेट्रोल, तेल, स्नेहकों, उर्वरकों, रसायन, औषधियों हीरे व बहुमूल्य पत्थर, धातुएं, विद्युत व अविद्युत मशीनें, परिवहन वाहन महत्वपूर्ण हैं। 1908-9 में यह सब प्रकार के आयात रु 13,74,436 करोड़ के थे जिसमें रु 419946 करोड़ के पेट्रोल-उत्पाद, 170200 करोड़ की धातुएं और 216511 करोड़ की पूँजीगत वस्तुएं मंगाई गई थी। खाद्यान्न तो मात्र 216 करोड़ रु के थे। 126137 करोड़ रु की मशीनें औद्योगिक विकास के लिए आयातित की गईं थी। 2008-2009 में कुल आयातों में लगभग 30.5 प्रतिशत अर्थात् रु. 419946 के खनिज तेल आयातित थे। 1,70,200 करोड़ रु. की धातुएं और रु. 9614 करोड़ मूल्य के रसायन-औषधियां मंगाई गईं। लगभग 76130 करोड़ रु. के हीरे व अन्य कीमती पत्थर पुनर्निर्यारत के निमित्त खरीदे गये थे। कुल उर्वरकों का आयात रु 59559 करोड़ का था। अधिकतर आयात, पुन: उत्पादन वृद्धि में सक्रिय योगदान के लिए खरीदे गए।

26.17 भारत के निर्यातों का स्वभाव

यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि किसी देश के निर्यातों की संरचना क्या है और इनकी मात्रा कितनी है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इनके मूल्यों की प्रवृत्ति कैसी है। परिष्कृत टेक्नालॉजी के उत्पाद सदैव ही उंचा मूल्य पाते हैं और इनकी मांग अधिक तथा प्रतिस्पर्धी कम होते हैं।

भारत के निर्यातों के प्रमुख पांच श्रेणियों में बांटा जाता है।

1. कृषिगत उत्पादों तथा प्राथमिक क्षेत्र के उत्पादों में चाय-कॉफी, तम्बाकू, काजू, मशाले, चीनी, कच्ची कपास, चावल, मछली, गोश्त, वनस्पति तेल, फल, सब्जियां, दालें, फूल आदि सम्मिलित हैं। भारतीय निर्यात में यह मात्र 9.25 प्रतिशत (2008-09) हैं।
2. खनिज, अयस्कों आदि में कच्चा मैगजीन, कच्चा लोहा, अभ्रक जैसी चीजें शामिल होती हैं। यह मात्र 4.2 प्रतिशत है। (2008-09)
3. निर्मित औद्योगिक उत्पादन जैसे सूती, ऊनी वस्त्र, सिले-सिलाए पोशाकें, पटसन की वस्तुएं, चमड़े के उत्पाद, हस्तशिल्प उत्पाद, हीरे-पन्ना आदि, रसायन व इंजीनियरिंग सामग्री, लौह तथा तैयार इस्पात या उत्पाद इत्यादि तीसरी श्रेणी में हैं। भारत के निर्यातों में इस श्रेणी के निर्यातों का भाग 2008-09 में 67.4 प्रतिशत हो गया जो निरंतर वृद्धि प्रवृत्त है। साफ्टवेयर निर्यात इसी श्रेणी में है।
4. खनिज तेल व स्नेहकों का हिस्सा 15.1 प्रतिशत मात्र है जो चौथी श्रेणी में है।
5. अन्य निर्यात मात्र 4 प्रतिशत हैं।

26.18 नई प्रवृत्तियां

विश्व की बड़ी मंडियों में भारतीय उत्पादों की ख्याति बढ़ी है और भारत के इंजीनियरिंग निर्यात रु 216,856 करोड़ (2008-09) के हो चुके हैं जो कुल भारतीय निर्यात का 25.8 प्रतिशत है। भारत अच्छे प्रकार की इस्पात का बड़ा उत्पादक है और इसे धातु रुप में निर्यात भी करता है किन्तु यदि भारत का औद्योगीकरण अधिक गति से प्रगति करेगा तो यह स्वयं ही इस्पात का उपयोग मशीनी-उत्पादन में करेगा और मशीनों के निर्यात को बढ़ाएगा। भारतीय निर्यातित मशीनरी की विश्वसनीयता निरंतन बढ़ रही है।

अर्थव्यवस्था में ज्यों-ज्यों विविधीकरण हो रहा है निर्यात भी आधुनिक गैर परम्परागत प्रकार के हो रहे हैं और परम्परागत निर्यातों का हिस्सा कुल निर्यात मूल्य में कम होता जाएगा। भारत तमाम विकासशील देशों में आधारभूत अब रचनाएं (सड़क, पुल, रेल, बन्दरगाह, टेली संचार व नागरिक निर्माण) बना रहा है जिसमें भारतीय उत्पाद उपयोग में लिए जा रहे हैं। भारत ने अच्छी ख्याति अर्जित की है।

26.19 भारतीय वैदेशिक व्यापार की दिशाएं

सोवियत संघ के विघटन के बाद भारत के विदेशी व्यापार में चुनौती का समय रहा किन्तु शीघ्र ही भारतीय उत्पादों का, विश्व के विविध देशों में सत्कार पूर्वक आयात किया जाने लगा। आजादी के समय भारत का व्यापार (80 प्रतिशत) इंग्लैण्ड से ही होता था किन्तु धीरे-धीरे यह विविध दशाओं की भिन्न-भिन्न अर्थव्यवस्थाओं में फैल गया और भारत के व्यापारिक सम्बन्ध प्रत्येक महाद्वीप के छोटे-बड़े देशों से स्थापित हो गए। प्राचुर्यमय आर्थिक क्रय शक्ति वाले देशों (फ्रांस, जर्मनी, यू.के., बेल्जियम, इटली आदि) तथा अमरीका-कनाडा में भारतीय निर्यातों का महत्वपूर्ण स्थान है। 2008-09 में भारतीय निर्यातों का 21.2 प्रतिशत भाग और आयातों का 14.1 प्रतिशत भाग योरुपीय संघ से हो रहा है। उत्तरीय अमरीका और कनाडा को 12.2 प्रतिशत भारतीय निर्यात और इनसे 6.9 प्रतिशत भारतीय आयात हो रहे हैं- आस्ट्रेलिया, जापान, स्विटजरलैण्ड (OECD) में भारतीय 2.8 प्रतिशत निर्यात और इनसे 10.2 प्रतिशत आयात आ रहे हैं। व्यापार का बड़ा भाग पेट्रोल-निर्यातक देशों में केन्द्रित है। ईरान, इण्डोनेशिया, सउदी अरब और अमीरात में 2008-09 में 21.1 भारतीय निर्यात गए और वहां से 32.1 प्रतिशत आयात आए। पूर्वी एशिया में चीन, हांगकांग, दक्षिण कोरिया, मलेशिया, सिंगापुर को 2008-09 में 27.7 प्रतिशत भारतीय निर्यात गए और 25.9 प्रतिशत आयात प्राप्त किए गए। अफ्रीका, लैटिन अमरीका में भी भारतीय निर्यात (4 प्रतिशत) और 2.1 प्रतिशत आयात होते हैं। सोवियत रूस से आयात घट गए हैं पूर्वी यूरोप की मण्डियों में भारत का व्यापार फैल रहा है। पोलैण्ड, रूमानिया, बुल्गारिया, चेकोस्लाविया,

यूगोस्लाविया के क्षेत्र में भारत का व्यापार जड़ें जमा चुका है। सार्क देश तो पड़ौसी मण्डियां हैं जहां भारतीय4.6 प्रतिशत निर्यात और 0.6 प्रतिशत आयात हैं।

26.20 भारतीय विदेशी व्यापार प्रगति पर

भारत को औद्यौगिक विकास में जहां परिष्कृत टेक्नालॉजी और आधुनिक आविष्कारों पर आधारित बड़ी मशीनें व उपकरण आदि चाहिए वहीं कच्चेमाल की बड़ी आवश्यकता रहती है। एशियाई अल्प विकसित देश भारतीय तैयार औद्योगिक माल तथा भारत के आयातित कच्चेमाल दोनों के लिए महत्व के हैं। उनके साथ पुरातन सांस्कृतिक व व्यापारिक सम्बन्ध भी रहे हैं। यह व्यापार फैल रहा है। भारत को विकासीय योजनाओं में भारी मशीनों, सूक्ष्म उपकरण, विज्ञानी विशिष्ट कौशल, प्रतिरक्षा सामग्री इत्यादि की जरूरत रहती है। इसमें यूरोपीय एवं अमरीकी पूर्तियां अनुकूल रहती हैं। जर्मनी, हॉलैण्ड, जापान, अमरीका, यू.के. आदि से भारत टेक्नोलॉजी आधारित पूँजीगत उत्पाद प्राप्त करता रहा है। अफ्रीका, लातीन अमरीका एशियाई देशों में भारत का व्यापार बढ़ रहा है। यू.ए.आर. से व्यापारिक साझेदारी सुदृढ़ है। जापान और आस्ट्रेलिया से आयात-निर्यात सम्बन्ध प्रगाढ़ हो रहे हैं। हांग-कांग, चीन, इण्डोनेशिया, मलेशिया के क्षेत्रों में भारतीय उत्पादों की अच्छी मांग है। चीनी-उत्पाद भारतीय मंडी में धूम मचाए हुए हैं। क्योंकि इनकी लागत कम है। 2007-08 में भारतीय निर्यात का 12.2 प्रतिशत चीन जाता था और वहां से आयातों का 6.9 प्रतिशत लिया जाता था। यूरोपीय संघ (फ्रांस, वेल्जियम, जर्मनी, यू.के., इटली) को 2008-09 में 21.2 प्रतिशत निर्यात और वहां से 14.1 आयात थे। आस्ट्रेलिया, जापान, स्विटजरलैण्ड को 2.8 प्रतिशत निर्यात जातेऔर 10.2 आयात होते थे। पेट्रोल निर्यातकों (ईरान, इंडोनेशिया, सऊदीअरब, यू.ए.ई.) को भारत के 21.प्रतिशत निर्यात जाते थे और 32.1 प्रतिशत आयात होते थे। एशियाई विकासशील देशों (चीन, हांगकांग, दक्षिण कोरिया, मलेशिया, सिंगापुर) को 27.7 प्रतिशत निर्यात और वहां से 25.5 प्रतिशत आयात होते हैं। सार्क देशों को भारतीय 4.6 प्रतिशत निर्यात होते हैं (2008-09) अफ्रीका-लैटिन अमरीका को 9.4 प्रतिशत निर्यात और वहां से 6 प्रतिशत आयात होते हैं। (यह विवरण भारत के व्यापारिक विविधीकरण का चित्र प्रस्तुत करता है जो हैण्डबुक ऑफ स्टैटिक्स ऑफ इंडियन इकानोमी (2009-10) तथा इकोनोमिक सर्वे 2009-10 पर आधारित है।)

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ

1. भारत में उदारीकरण से

अ. विदेशी व्यापार बढ़ा है

आ. विदेशी व्यापार घटा है

इ. यथावत रहा है

ई. बन्द हो गया है

2. भारत के प्राविधिक निर्यात कौन से हैं?

अ. कच्चा लोहा, खनिज तेल

आ. कपड़ा, पोशाक, जेवरात

इ. रसायन, साफ्टवेयर, इंजीनियरिंग डिजाइन

ई. हस्त शिल्प, यूरोनियम आदि

3. भारत के व्यापारिक बड़े साझेदार कौन हैं?

अ. सोवियत रूस, अफ्रीका, वियतनाम

आ. अमरीका, कनाडा, जापान

इ. ब्रिटेन, स्वीडन, लुक्षमवर्ग

ई. तेल निर्यातक: ईरान, इण्डोनेशिया, कुवैत, खाड़ी के देश, सउदी अरब

4. विदेशी व्यापार में भारत का कड़ा प्रतियोगी देश कौन है

अ. चीन

आ. अमरीका

इ. जर्मनी

ई. फ्रांस

5. विदेश व्यापार

अ. राज्यों के बीच होता है

ब. क्षेत्रों के बीच होता है

स. राष्ट्रों के बीच होता है

द. व्यक्तियों के बीच होता है

6. स्वतंत्रता के उपरान्त भारत के निर्यात

अ. तेजी से बन्द हो गए

ब. आयात से बढ़ गए

स. आयात-निर्यात दोनों बढ़ गए

द. निर्यात घटते गए

7. भारत के निर्यात में

अ. पेट्रोल सबसे ज्यादा है

ब. कृषिगत उत्पाद सबसे ज्यादा है

स. लोहा-कोयला सबसे ज्यादा है

द. निर्मित औद्योगिक उत्पाद सबसे ज्यादा है

8. विदेशी व्यापार के लिए आवश्यक है

अ. लागतों में निर्पेक्ष अन्तर

ब. लागतों में सापेक्ष अन्तर

स. लागत-अंतर न होना

द. लागतों का बढ़ते जाना

9. 2008-09 में भारत के आयात में सर्वाधिक है

अ. खाद्यान्न तथा खाद्य तेल

ब. बिना तराशे हीरे, पन्ना, पत्थर, आभूषण

स. मशीनरी, उपकरण, यंत्र आदि

द. पेट्रोल, पेट्रोल उत्पाद, उर्वरक आदि

10. विश्व व्यापार में भारत की हिस्सेदारी है

अ. 10 से 12 प्रतिशत

ब. 7-10 प्रतिशत

स. 4-7 प्रतिशत

द. 0-7 प्रतिशत

संक्षिप्त उत्तर वाले प्रश्न

1. भारतीय वैदेशिक व्यापार में व्यापार शेष सदैव विरुद्ध ही क्यों रहा?

2. यदि भारत में खनिज-तेल का अतुल भण्डार मिल जाए तो व्यापार किस तरह प्रभावित होगा?

3. वैदेशिक व्यापार में दिशात्मक विविधीकरण की प्रवृत्ति समझाइये?

4. भारत के मुख्य निर्यात कौन से हैं?

5. विकास प्रेरक आयात कौन से होते हैं?

6. निर्यात-प्रेरक आयात किन्हें कहा जाता है?

26.21 सारांश

वैदेशिक व्यापार, का कारण देशों के बीच उत्पादन लागत के सापेक्ष अंतर का होना है। निरपेक्ष अंतरों से भी व्यापार जन्मता है। विदेशी व्यापार वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विभाजन की विधा है। इस विभाजन से विशिष्टीकरण जन्मता है और बड़े पैमाने पर उत्पादन से विविध आंतरिक-वाह्य बचते आते हैं। यह देश की सीमा पार से विनिमय क्रिया का फैलना है। भारत प्राचीन युग से विदेशों में व्यापार करता रहा है। हस्तकला, सामग्री, रेशम उत्पाद, मेवे, वस्त्र, मसाले आदि का निर्यात करता था। आभूषण भी निर्यातित होते थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत से ब्रिटेन व यूरोप को निर्यात बढ़ा दिए और भारत कच्चेमाल निर्यातक देश बना। यहां से जूट, कपास, लोहा, कोयला, इमारती लकड़ी, मसाले, अन्न आदि निर्यात हुए। पक्का माल ब्रिटेन से भारत आता था। खनिजों का निर्यात स्वरूप बदल गया। विकासीय आयात मशीनें, उपकरण यंत्र, पेट्रोल, पेट्रो-उत्पाद आदि आयात हुए और कच्चा माल खालें, कृषि के उत्पाद, खनिज, निर्यात हुए। किन्तु अब भारत निर्मित माल निर्यात करता है और टेक्नालॉजी संदर्भी निर्यात करता है। कृषि पदार्थों के निर्यात कम होते गए हैं। व्यापार को अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य-स्तर, विकास की दर प्रतियोगी देश व प्रतियोगिता स्तर, आपदा व युद्ध घटनाएं, खाद्यान्न दौर्लभ्य, औद्योगीकरण गित, पेट्रोल की घरेलू पूर्ति स्तर आदि कई कारक प्रभावित करते हैं। आयात-निर्यात में शामिल वस्तुएं-सेवाएं बदलती रहती हैं क्योंकि विकास दिशा और विपण्यातिरेक की दशा भी प्रभावित करती है। स्थितियोंके अनुकूल व्यापारिक साझेदारी भी बदलती ही रहती है। भारतीय विदेशी व्यापार विश्व व्यापार का मात्र 0.7 प्रतिशत है।

26.21 शब्दावली

भुगतान संतुलन लेखाविधि) भुगतान संतुलन लेखाविधि दोहरे खाता प्रणाली :Double entry system) पर आधारित होती है । जिसके अनुसार प्रत्येक सौदे को जमा (Credit एवं देय या नाम ( )debitदोनों ओर लिखा जाता है । देय एवं जमा की प्रत्येक राशि समान होनी चाहिए । (

आर्थिक सौदेआर्थिक सौदे वे सौदे होते है जिनमें मूल्य का हस्तान्तरण होता है। जिसके अ :न्तर्गत एक देश को दूसरे देश से या तो भुगतान प्राप्त करना होता है अथवा दूसरे देश को भुगतान चुकाने की बात होती है।

सार्वजनिक क्षेत्र- सार्वजनिक क्षेत्र को लोक उपक्रम भी कहते हैं। लोक उपक्रम से आशय किसी ऐसे वाणिज्यिक और व्यापारिक उपक्रम से है जिसका स्वामित्व, प्रबन्ध और संचालन केन्द्र राज्य या स्थानीय सरकार अथवा किसी अन्य लोक संस्था के आधीन हो, जिनके निर्णय प्रक्रिया में सार्वजनिक हित निहित होता है। इसकी उत्तरदेयता संसद के माध्यम से जनता के अधीन होते हुए भी ये उपक्रम अपने प्रबंधकीय व्यवस्था में काफी हद तक स्वायत्तशासी होते हैं। इनकी कार्यशैली का नियंत्रण एवं नियमन भी शीर्ष स्तर पर बैठे राजनीतिज्ञों द्वारा ही किया जाता है। इनका कार्य क्षेत्र बहुत ही विस्तृत होता है। ये उपक्रम मात्र लाभ के लिए ही कार्य नहीं करती है बल्कि देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए भी कार्य करती है।

26.22 संदर्भ ग्रन्थ

1. दत्त गौरव एवं अश्विनी महाजन, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 48th Edition.
2. मिश्रा, एस.के. एवं वी.के. पुरी; प्राब्लम्स ऑफ इण्डियन इकॉनोमी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2010-2011
3. सरकार, जयगंता; इण्डियन इकानोमी: पालिसीज एण्ड प्रैक्टिसेज, प्रथम संस्करण (2007), पीयरसन एजुकेशन, 2007.
4. धीगड़ा, आई.सी, इण्डियन इकॉनोमी, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2009.
5. प्रकाश, बी, इण्डियन इकॉनोमी सिन्स 1991, इकानोमिक रिफौर्मस् एण्ड परफौर्मेन्सेज, प्रथम संस्करण, पियरसन एजूकेशन, 2009.
6. दत्त रुद्र एण्ड के.पी.एम. सुन्दरम, इण्डियन इकॉनोमी, 60 वां संस्करण, एस. चंद एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 2009.

26.23 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ

1. उदारीकरण से विदेशी व्यापार बढ़ा है।

2. प्राविधिक निर्यात रसायन, साफ्टवेयर, इंजीनियरिंग उपकरण हैं।
3. भारत के व्यापारिक साझेदारी (बड़े) तेल निर्यातक देश ईरान, इण्डोनेशिया, अरब, अमीरात, सउदी अरब हैं।
4. भारत का बड़ा प्रतियोगी देश चीन है।
5. विदेशी व्यापार स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच होता है।
6. स्वातंत्र्योत्तर भारत के निर्यात-आयात दोनों बढ़ गए।
7. भारत के निर्यात में निर्मित औद्योगिक उत्पाद सर्वाधिक मूल्य के हैं।
8. विदेशी व्यापार का कारण है लागतों में सापेक्ष अन्तर।
9. भारत के आयात में पेट्रोल, पेट्रोल उत्पाद, उर्वरक आदि ज्यादा हैं।

26.24 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भुगतान संतुलन की संरचना की व्याख्या कीजिए।
2. स्वतंत्रता के उपरान्त भारत के विदेशी व्यापार की चर्चा कीजिए।
3. क्या भुगतान संतुलन हमेशा संतुलित रहता है? इसकी व्याख्या कीजिए।

इकाई 27 भारत का भुगतान सन्तुलन

27.0 प्रस्तावना
27.2 उद्देश्य
27.3 भुगतान सन्तुलन की परिभाषा
27.4 भुगतान सन्तुलन एवं व्यापार शेष में भेद
27.4.1चालू खाते का शेष
27.4.2 पूँजी खाते का भुगतान शेष
27.4.3भुगतान शेष देश के व्यापार-स्वास्थ्य का द्योतक
27.5 योजनाकाल में भारत का भुगतान-शेष
27.6 भारतीय भुगतान शेष के प्रभावक तत्व
27.6.1अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मूल्य-प्रवृत्ति
27.6.2व्यापाररत देशों में व्याप्त प्रतिसारी या स्फीतिक स्थितियां
27.6.3 जनसंख्या वृद्धि
27.6.4 विदेशी अनुदान एवं ऋण
27.6.5 विकासात्मक आयात-दबाव
27.6.6 कृषि उत्पादन की अस्थिरता
27.6.7 विदेश में अर्जित आय का हस्तान्तरण
27.7 प्रतिकूल भुगतान से भविष्य की आशंकाएं
27.8 सारांश
27.9 शब्दावली
27.10 संदर्भ ग्रन्थ
27.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
27.12 निबन्धात्मक प्रश्न

27.1 प्रस्तावना

भुगतान सन्तुलन एक आर्थिक लेखा-जोखा होता है जो अधिकांशत: एक वर्ष की अवधि के संदर्भ में होता है। किसी भी देश के नागरिक अन्य देशों के नागरिकों से वस्तु, सेवा, पूँजी, ऋण, अनुदान, ब्याज, किराए और अन्य प्रकार के आर्थिक लेन-देन करते हैं। इन मौद्रिक सौदों को वर्षभर का हिसाब बनाकर मिलान किया जाता है कि अन्य से प्राप्त आर्थिक लेन और उनके दिए गए देन में क्या बराबरी है या देनदारी ज्यादा है या लेनदारी ज्यादा है। स्वदेश की मुद्रा में यह हिसाब बनाया जाता है। इस लेख की मुख्य मद तो वस्तुओं-सेवाओं के सौदे होते हैं जिनका आयात अथवा निर्यात संदर्भित अवधि में होता है। कुछ अदृश्य मदों के प्रवाह को भी इसमें जोड़ा जाता है और पूँजी के आदान-प्रदान का ब्यौरा, ब्याज प्रातप्तयां, देनदारी, जहाजरानी व पर्यटक सेवाओं का लेन-देन तथा विशेषज्ञों की सेवाओं का लेन-देन भी इस लेखे-जोखे में चढ़ाया जाता है। ऐसा ब्यौरा एक क्रमबद्ध तरीके से बनाया जाता है। इस राष्ट्रीय स्तर के हिसाब से ही भुगतान की बकाया (शेष) का ज्ञान होता है जो सरकार के लिए नीति-निर्धारण का आधार बनता है।

27.0 उद्देश्य

इस खण्ड में छात्र-छात्राओं को भुगतान सन्तुलन की महत्ता, उपयोगिता, सूक्ष्म अर्थ, व्यापार सन्तुलन से भिन्नता, चालू एवं पूँजी खातों से अवगत किया जाना है। इस विवरण से भारत में भुगतान स्थिति, प्रवृत्ति एवं दिशा का ज्ञान होना अपेक्षित है। भुगतान स्थिति को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों से परिचय आवश्यक है। यह समझना अपरिहार्य है कि भुगतान सन्तुलन को प्राय: व्यापार-स्वास्थ्य का द्योतक क्यों कहा जाता है। इस खण्ड के अंत में दिए गए वस्तुनिष्ठ प्रश्नों व संक्षिप्त उत्तर वाले प्रश्नों का उत्तर छात्र-छात्राओं को लिखकर अभ्यास करना है।

27.2 परिभाषा

भुगतान सन्तुलन वास्तव में व्यापारिक सम्बन्धों का द्योतक है। यह आयातित व निर्यातित वस्तुओं-सेवाओं के मूल्य के रूप में एक निश्चित अवधि संदर्भ में व्यक्त होता है। इसमें विविध अदृश्य मदों से प्राप्त आय जब जोड़ी जाती है तो यह व्यापार सन्तुलन कहा जाता है किन्तु यदि अदृश्य मदों के अलावा इसमें पूँजी का आदान-प्रदान, व्याज-भुगतान अथवा प्राप्ति, जहाजरानी सेवाएं, पर्यटन सेवाएं, विदेशी विशेषज्ञों पर व्यय, कम्पनी मुनाफे अथवा इस मद की आय भी जोड़ दिए जाते हैं तो यह भुगतान सन्तुलन का लेखा-जोखा कहलाता है। इसमें सारे विश्व से देश में प्राप्त वस्तुएं, सेवाएं, अदृश्य मदें, पूँजी हस्तान्तरण, भुगतान निवेश आदि को आगणित किया जाता है और विश्वभर को दिए गए निर्यात, सेवाएं, पूँजी, अदृश्य-सेवाएं, आदि के भुगतान जोड़े जाते हैं। विदेशियों से प्राप्त व उनको किए गए भुगतान का वर्षभर का लेखा भुगतान सन्तुलन है। इस लेखा-

विधि को मानक बहीखाता प्रणाली से ही किया जाता है जिसमें हर सौदे की दुहरी प्रविष्टि होती है। प्रत्येक सौदे को जमा और देय दोनों तरफ चढ़ाया जाता है। एक देश की देय राशि दूसरे देश की जमा राशि मानी जाती है। हर निर्यात पूँजी का बहिगर्मन है जो देय भी है और जमा भी है। इसलिए दुहरी प्रविष्टि होती है। भले ही अनुदान राशि को पुन: चुकाना अपेक्षित नहीं फिर भी इसे पूँजी बहिर्गमन मानकर प्रविष्टि की जाएगी दूसरी ओर अनुदान लिखकर 'देय-प्राप्ति' का सन्तुलन कर लिया जायेगा। भुगतान संन्तुलन दुहरी प्रविष्टि विधि के लेखे में सदैव सन्तुलित रहेगा किन्तु एकल प्रविष्टि विधि में लेन-देन के बीच अन्तर रहेगा। चालू खाते व पूँजी खाते का योग 'सकल सन्तुलन' है, जो हमेशा सन्तुलित होता है। जितनी राशि का असन्तुलन चालू खाते में हो उतने की प्रतिलोमी प्रविष्टि पूँजी खाते में कर ली जाती है। इसलिए भुगतान सदैव सन्तुलित माना जाता है। अगर हम चालू या पूँजी खाते में (मात्र एक में) देखें तो असन्तुलन स्पष्ट दीखेगा।

पूँजी खाते में प्राय: चार प्रकार के विवरण होते हैं- 1. प्राइवेट खाते के अल्पकालीन व दीर्घकालीन देय 2. अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के शेष 3. स्वर्ण हस्तांतरण 4. सरकारी खातों का शेष भुगतान।

प्राय: भुगतान संतुलन की स्थिति निरंतर विरुद्ध रहने की दशाएं पिछड़े देशों के संदर्भ में दीखती है। यह कई प्रकार का हो सकता है जैसे- (अ) चक्रीय (आ) चिरकालिक (इ) संरचनात्मक (ई) स्वल्पकालिक (उ) आधारभूत असंतुलन। यदि असंतुलन लगातार बना रहता है तो निदान के लिए विनिमय दरों में ही परिवर्तन करना पड़ेगा। अवमूल्यन अथवा अधिमूल्यन करना होगा और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से परामर्श करके कदम उठाने होंगे।

27.3 भुगतान संतुलन और व्यापार-शेष में अंतर

जब देशों के बीच विनिमय होता है तो यह मात्र वस्तुओं और दृश्य मदों का विनिमय नहीं होता है अपितु इसमें अदृश्य प्रकार की मदें भी होती हैं। इन अदृश्य मदों से भी आय सृजित होती है। कुल आयातित-निर्यातित वस्तुओं के मूल्य का योग करके हम 'व्यापार की बकाया' का ज्ञान करते हैं। किन्तु व्यापार की बकाया समस्त अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों का ज्ञान नहीं देती है इसमें वे भुगतान-योग्य दायित्वों सम्मिलित नहीं होते जो व्यापाररत देशों के मध्य अदृश्य मदों के लिए देय होते हैं। ऐसी मदों से आय भी निर्यात- आय के साथ जुड़ती है और दूसरे आयात करने वाले देश के आयातगत मूल्य में जुड़ती है। सेवाओं का मूल्य, एक अदृश्य मद है। जहाज जिसमें माल पहुंचाया गया उसका किराया भी अदृश्य मद है जिसकी शुद्ध आय भुगतान संतुलन में जोड़ी जाती है जिससे चालू खाते का भुगतान-शेष ज्ञात होता है। भुगतान शेष को दो भागों में विभक्त किया जाता है। (अ) चालू खाते का भुगतान शेष (आ) पूँजी-खाते का भुगतान शेष। चालू खाते के भुगतान शेष में वस्तुओं-सेवाओं के भुगतान, एक-पक्षीय भुगतान तथा दान सम्मिलित किए जाते हैं। इसमें सभी

अदृश्य मदें समाहित होती हैं। पूँजी खाते के भुगतान-शेष में व्यापाररत देश की अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय स्थिति से सम्बन्धित चालू खाते की समस्त मदें प्रदर्शित होती है। हर देश की विदेश में सम्पत्ति होती है और अन्य दायित्व होते हैं। पूँजी खाता इन्हें दिखाता है। प्राय: सभी देश, विदेशी स्थिर मुद्रा को अपने मौद्रिक भण्डार में आरक्षित रखते हैं जो देश की पूँजी Asset की तरह स्वीकारी जाती है। यदि इस विदेशी विश्वसनीय मुद्रा के भण्डार में कोई घट-बढ़ की जाती है तो इस मात्रा में उस देश के अन्तर्राट्रीय दायित्वों में परिवर्तन हो जाएगा। यह परिवर्तन धनात्मक अथवा ऋणात्मक हो सकता है किन्तु इससे सम्बन्धित देश के दायित्व की स्थिति का परिचय मिलता ही है। पूँजी खाते से इस स्थिति का ज्ञान हो जाता है। व्यापार-शेष मात्र के अध्ययन से इन बातों का पता नहीं लगता है। चालू खाते पर भुगतान शेष (balance of payment on current account) प्राप्त करने के लिए व्यापार शेष की राशि के साथ अदृश्य मदों की आय जोड़नी होगी तथा दान की राशि भी जोड़ी जाएगी। भुगतान शेष का दूसरा अंग पूँजी खाता है जो देश की अन्तर्राष्ट्रीय वित्त स्थिति में सुदृढ़ता या निर्बलता का प्रतीक होता है।

27.3.1 चालू खाते का शेष-अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार चालू खाते के देय-पक्ष में वस्तु आयात, विदेश यात्रा व्यय, परिवहन, बीमा संदर्भी भुगतान विदेशी कम्पनी मुनाफे विशेषज्ञों की फीस आदि को क्रमबद्ध तौर से जोड़ा जाना चाहिए। जबकि चालू खाते के जमा-पक्ष में निर्यात, पर्यटन आय, परिवहन, बीमा से आय, विदेशी पूँजी के लाभ तथा विशेषज्ञों की प्राप्य राशियां दिखाई जाती हैं। इस पूरे खाते के मिलान से कम या बकाया, जो हो, चालू खाते का शेष कहलाता है। चालू खाते में प्रविष्ट भुगतान पूँजी खाते से ही होते हैं।

27.3.2 पूँजी खाते में भुगतान शेष- आयात-निर्यात व सेवा के बदले मिलने वाली राशि व देय भुगतानों को संभव बनाने वाली मदें, सब पूँजी खाते में प्रविष्ट होती हैं। इसमें निजी खातों के अल्प अथवा दीर्घकालिक शेष होते हैं। इनके साथ अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सम्बद्ध भुगतान व प्राप्तियां, स्वर्ण हस्तांतरण तथा सरकारी खातों के शेषों के भुगतान दिखाए जाते हैं। निजी खातों में व्यक्तियों के पूँजी भुगतान और संस्थाओं व बैंकों के भुगतान सम्मिलित होते हैं।

27.3.3 व्यापार-स्वास्थ्य का द्योतक: भुगतान संतुलन- भुगतान संतुलन का साम्य कम से कम दीर्घकाल में परमावश्यक होता है। यदि इसमें लगातार घाटे या बचत की दशा बनी रहे तो देश की बाह्य पूँजीगत स्थिति में गड़बड़ का लक्षण है। इसमें दुर्बलता या दृढ़ता झलकती है। चक्रीय, चिरकालिक, संरचनात्मक, अस्थाई या स्थाई असंतुलन पर लगातार नजर रखी जाती है और नीति द्वारा इसमें सुधार किया जाता है। विनिमय दर को लचीला या नियंत्रित करना अवशोषण या मुद्रा कोष की सहायता से यह सम्भव किया जाता है।

26.4 योजना काल में भारत का भुगतान शेष

भारत ने द्विपक्षीय और बहुपक्षीय श्रोतों से वैदेशिक सहायता ली और वाणिज्कि उधार के द्वारा चालू खाते में घाटे के लिए वित्त प्रबंध किया। गैर निवासी भारतीयों ने अपनी जमा राशियों द्वारा सहारा दिया। अदृश्य मदों से भारत की आय ने भी सराहनीय योगदान दिया है जिससे भुगतान-शेष की समस्या पर सहारा मिला। योजनाकाल का संक्षिप्त विवरण यह स्पष्ट करता है कि भुगतान शेष सदा ही भारत के प्रतिकूल ही था।

भारत का भुगतान शेष (2001-2002 को छोड़कर) सदैव प्रतिकूल रहा।

क्रम	**योजनाएं**	**भुगतान शेष** (रु.) करोड़
1.	प्रथम	42
2.	द्वितीय	1725
3.	तृतीय	1950
4.	वार्षिक	2015
5.	चतुर्थ	100
6.	पंचम	3082
7.	षष्ठम	11384
8	सप्तम	41047
9.	अष्टम	62914
10.	नौवी	53175
11.	दसवीं	6611

योजनाकाल में भारत का 'भुगतान-शेष'- भारत में नियोजन 1951 से प्रभावी हुआ। प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951-52 से 1955-56 तक चली थी। इस काल में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटना चक्र भारत के भुगतान शेष को प्रभावित करता रहा। उदाहरण के लिए हम कोरिया-युद्ध से प्रेरित अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक तेजी (महंगाई) को ले सकते हैं। फिर अमरीका में कुछ प्रतिसार (recession) प्रवृत्ति घटित हुई। देश के भीतर संयोगवश समय पर अच्छी वृष्टि होने से कृषि उत्पादन बढ़ गया और इस जनित आय से उद्योग भी प्रगति पथ पर रहे। आशा का वातावरण व विकासीय उत्तेजना जागृत रही। भले ही खाद्यान्न आयात में इतनी तीव्र मांग न रही फिर भी सरकार आयात के

लिए उदार बनी रही तो आयात रु. 963 करोड़ के हो गए। भुगतान शेष रु. 163 करोड़ तक ऋणात्मक रहा। औसत वार्षिक भुगतान शेष 42 करोड़ रु. तक रहा।

इस योजना में व्यापार शेष ऋणात्मक (542 करोड़ रु.) था। शुद्ध अदृश्य मदों की आय रु. 500 करोड़, भुगतान शेष 42 करोड़ रु. था। द्वितीय योजना (1956-57-1960-61) में भारत के नियोजन का ढांचा बदल गया और औद्योगीकरण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। निवेश की व्यूह रचना में बड़े अवरचनात्मक उद्योगों (स्टील, सीमेण्ट) की स्थापना को प्राथमिकता देनी थी। इस कारण आयात बढ़ गए। व्यापार शेष 2339 करोड़ रु. तक जा पहुंचा। यह भी ऋणात्मक था। अदृश्य मदों से 614 करोड़ रु. का लाभ मिला फिर भी भुगतान-शेष रु. 1725 करोड़ से विपरीत रहा। तृतीय योजना काल में (1961-62-65-66) भी आयातों के मूल्य निर्यातों के मूल्य से ज्यादा थे और व्यापार-शेष रु. 2382 करोड़ से भारत के विपरीत रहा था। इसमें अदृश्य मदों की आय 432 करोड़ रुपया जोड़कर भुगतान-शेष रु. 1950 करोड़ था। 1966-67 से 1968-69 तक वार्षिक योजनाएं चलाईं गईं थीं। दृश्य मदों से भारत का इस दौरान व्यापार-शेष रु. 2067 करोड़ से ऋणात्मक रहा था। शुद्ध अदृश्य मदों में आय रु. 52 करोड़ जोड़कर भारत का भुगतान-शेष रु. 2015 करोड़ का था जो ऋणात्मक रहा। चौथी योजना 1969-1974) के लिए थी। इसमें निर्यात बढ़ाने के सबल प्रयास किए गये फिर भी व्यापार संतुलन रु.1564 करोड़ से विपरीत रहा था। अदृश्य मदों से शुद्ध आय रु. 1664 करोड़ जोड़कर यह भुगतान शेष की राशि मात्र 100 करोड़ रुपये रही, जो ऋणात्मक थी।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-1979) में भारत का व्यापारिक घाटा रु. 3179 करोड़ का रहा और अदृश्य मदों से आय रु. 6261 करोड़ थी जिसे जोड़कर शुद्ध भुगतान शेष 3082 करोड़ रु. से विपरीत रहा।

भारत की छठी पंचवर्षीय योजना (1980-1984) ने बहुत बड़ा आकार ले लिया था और उद्देश्य भी ज्यादा गहन हो गए थे। इस योजनाकाल में व्यापार का शुद्ध घाटा 30456 करोड़ रु. था और अदृश्य मदों से प्राप्त आय रु. 19072 करोड़ जोड़कर भुगतान शेष रु. 11384 करोड़ से विपरीत रहा। सातवीं योजना में भी कमोवेश ऋणात्मक भुगतान की स्थिति थी। 1985-1989 काल में 54204 करोड़ रु. का व्यापार घाटा था और अदृश्य मदों की आय 13175 करोड़ रु. थी, जिससे भुगतान शेष 41047 करोड़ रु. रहा जो ऋणात्मक था। आठवीं योजना (1992-97) में व्यापार घाटा निरन्तर व़ृद्धि प्रवृत्त रहा और अदृश्य मदों की शुद्ध आय तेजी से बढ़ी थी। कुल भुगतान शेष, और ज्यादा विपरीत हो गया था। इस काल में व्यापार घाटा रु. 149004 करोड़ और अदृश्य मदों की आय रु. 62914 करोड़ से विपरीत रहा।

भारत की नौवीं योजना 1997-98 से 2001-02 तक थी। इस अवधि में पहली बार 2001-02 में भारत का भुगतान शेष घनात्मक हो सका जो विदेशी पूँजी आने के कारण हो सकता है। इस काल में व्यापार घाटा रु. 3,02,334 करोड़ था। अदृश्य मदों की आय 2,49,159 करोड़ रु. थी और

भुगतान शेष 52,175 करोड़ रुपए से विपरीत रहा। दसवीं योजना (2002-07) काल में भारत के विदेशी व्यापार ने छलांग लगाई। व्यापार शेष 782788 करोड़ रु. से विपरीत था और अदृश्य मदों की आय रु. 776177 करोड़ थी। इसलिए भुगतान शेष रु. 6611 करोड़ रह गया था।

2008-09 में भारत का व्यापारगत घाटा 5,43,158 करोड़ रु. था और अदृश्य मद आय 4,11,544 करोड़ रु. थी और कुल मिलाकर भुगतान शेष 1,31,614 करोड़ रु. का था जो विपरीत था।

26.5 भारत के भुगतान शेष को प्रभावित करने वाले तत्व

यह एक गहन शोध का विषय है कि किसी देश के भुगतान शेष को कौन सी नीतियां, घटक, परिस्थितियां, तत्व, प्रवृत्तियां, दशाएं किस सीमा तक प्रभावित करती हैं? यह तो प्रत्येक व्यापारी देश में भिन्न-भिन्न भी हो सकते हैं और कुछ तत्व सभी के संदर्भ में लगभग सही रूप से लागू भी हो सकते हैं। कुछ तत्व जो भारतीय संदर्भ में सटीक तौर पर सही लगते हैं, निम्नांकित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य तत्व भी महत्वपूर्ण हो सकते हैं।

26.5.1 अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य प्रवृत्ति - भुगतान शेष विकासशील और विकसित देशों में भिन्न कारणों से प्रभावित होता है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वस्तुओं-सेवाओं के मूल्य व पूर्ति की दशाएं सबको प्रभावित करते हैं। जहां निर्यात महंगे बिके, वहां का भुगतान शेष सबको धनात्मक व अनुकूल रह सकते हैं। जिन्हें मंहगे आयात करने पड़े उनका भुगतान शेष विरुद्ध हो सकता है। पूर्ति की दशाएं यदि दौर्लभ्यपूर्ण या विपरीत रहे तो निर्यात करना कठिन हो जाएगा और निर्यात-आय घट जाएगी तथा भुगतान शेष भी विपरीत हो सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मूल्य प्रवृत्तियां व पूर्ति दशाएं दोनों ही महत्वपूर्ण है।

27.5.2 प्रतिसारी व स्फीतिक दशाएं- व्यापाररत देशों में व्याप्त अतिसारी अथवा स्फीतिक स्थितियां भुगतान शेष की मात्रा व दिशा को प्रभावित करती हैं। इनसे आय, मूल्य, पूर्तियां और आयात-निर्यात सब प्रभावित होते हैं। प्रत्येक देश में यह अलग-अलग होंगे। अतिसारी दशाओं में निर्यात बढ़ाए जाते हैं और स्फीतिक दशाओं में लागतें बढ़ जाने से निर्यात हतोत्साहित होते हैं जिससे व्यापार सन्तुलन डगमगाने लगता है। मुद्रास्फीति अथवा अतिसार आन्तरिक अथवा वैश्विक कारणों से हो सकती है। देश के भीतर आर्थिक प्रगति, आय वृद्धि, उपभोग के बढ़ने की प्रवृत्ति अथवा अन्यान्य कारणों से किसी देश में उपभोग-योग्य अथवा पूँजीगत वस्तु आयातों के लिए दबाव पैदा हो सकता है। पिछड़े देशों विशेषतया भारत में फसलें विनष्ट होने से खाद्यान्न दौर्लभ्य की दशा आयात के लिए दबाव बनाती है और व्यापार सन्तुलन प्रभावित होता है। निवेश-योजनाएं पूँजीगत वैदेशिक वस्तुओं के लिए दबाव बनाती है। जैसा भारत में ही देखा जा सकता है।

27.5.3 जनसंख्या वृद्धि- जनसंख्या वृद्धि भी भुगतान शेष को प्रभावित करती है क्योंकि इससे उपभोग-योग्य वस्तुओं की बेलोच मांग जन्म लेती है जिसकी पूर्ति सरकार की पहली प्राथमिकता हो जाती है। घरेलू उत्पादन का अधिकांश भाग स्वदेशी उपभोग में लग जाने से निर्यात के लिए वस्तुओं-सेवाओं की बचत संभव नहीं रह जाती है। कुछ देशों में उपभोग प्रवृत्ति इतनी ज्यादा होती है कि किसी भी हालत में उपभोग, आयात द्वारा प्राप्त सामग्री से ही होता है जैसा अमरीका में देखा जा सकता है। यदि निर्यात आय और अदृश्य स्रोतों की जनित आय बढ़ न सके तो भुगतान-शेष विरुद्ध हो ही जाता है।

27.5.4 विदेशी अनुदान और ऋण - भुगतान-शेष के अनुकूल अथवा विपरीत होने में बहुत बड़ा योगदान विदेशी सहायता, अनुदान, विदेशों से कर्जे, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों जैसे मुद्रा कोष, विश्व बैंक, वित्त निगम, एशियन बैंक, अफ्रीकी-एशियाई बैंक आदि के ऋण आदि का होता है। भारत के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण रहा है। ब्रिटेन, अमरीका, जापान, जर्मनी, स्वीडन इत्यादि ने भारत को अनुदान व सहायता दी है। जिससे भुगतान शेष की समस्या में प्रभाव पड़ा था। मुद्रा कोष ने व विश्व बैंक ने कई स्थितियों में सहायता दी है।

27.5.5 विकासात्मक आयात दबाव - विकासशील देशों को भुगतान असंतुलन की समस्या से प्राय: जूझना पड़ता है क्योंकि इन्हें अपनी विकास योजना में छोटे-बड़े कई उद्योग स्थापित करने में विदेशी आयात करना आवश्यक हो जाता है। नए कौशल, तकनीकें, मशीनें, पुर्जे और वाहन आदि के लिए वैदेशिक मुद्रा नहीं रहती किन्तु आयात अपरिहार्य हो जाते हैं। प्रत्येक वर्ष आयातित मशीनों के पुर्जे, उपकरण, आदाय, प्रतिस्थापन पुर्जे, स्पेयर-पार्ट, मंगाने ही पड़ते हैं जबकि वैदेशिक मुद्रा का दौर्लभ्य रहता है क्योंकि एक तो निर्यात कम होते हैं दूसरा निर्यातों का मूल्य कम होता है और तीसरा तत्व यह भी है कि इनके निर्यात स्वतंत्र स्पर्धा की स्थितियों में विक्रित होते हैं। प्राय: परिपोषक आयात की जरूरतें ही निर्यात मूल्य से ज्यादा हो जाती हैं।

सभी विकासशील देश अपने स्तर से आयात-नियंत्रण और आयात-प्रतिस्थापन की व्यूह रचना से मार्ग दर्शन पाते हैं। अनावश्यक विलासिता-उन्मुख आयातों पर कठोर नियंत्रण लगाते हैं किन्तु यह सदैव और पूर्णत: सफल नहीं होते। आयात बढ़ते ही जाते हैं अदृश्य मदें अधिक आय सृजित नहीं कर पाती हैं और भुगतान शेष सदैव विरुद्ध रहता है। भुगतान शेष सदैव विरुद्ध रहने से देश की मुद्रा का वैदेशिक मूल्य व्यवहारत: घटने लगता है जिससे अवमूल्यन की स्थितियां जन्म लेती हैं। इसलिए निर्यात सम्वर्द्धन के सभी उपाय किए जाते हैं किन्तु निर्यात आवश्यकता के अनुरूप नहीं बढ़ पाते हैं।

भुगतान शेष की विकट समस्या से राहत के लिए विदेशी ऋण लिए जाते हैं। इन ऋणों की पुनर्भुगतान किस्तें और ब्याज की राशियां चुकानी होती हैं जो विदेशी दुर्लभ मुद्रा में ही होता है। विदेशी मुद्रा-भण्डार के स्वल्प होने की दशा में यह ब्याज और किस्त नहीं चुकाई जा सकती। प्राय:

देश बड़ी ऊंची ब्याज दरों व शर्तों पर ऋण ले लेते हैं। इनसे ऋण-भार असह्य हो जाता है और भुगतान सन्तुलन सदा के लिए विरुद्ध ही रहता है और अन्तत: अवमूल्यन के लिए बाध्य होना पड़ता है। भारत के लिए पेट्रोलियम व उत्पादों का आयात ऐसी मद है जिसमें अर्जित विदेशी दुर्लभ मुद्रा का बड़ा भाग व्यय हो जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय विकास परिषद ने इस कठिनाई को देखते हुए पिछड़े देशों के लिए सस्ती दर पर दीर्घकालीन ऋणों की व्यवस्था प्रदान की है। भारत भी इससे लाभान्वित हुआ है।

दुर्लभ मुद्राओं का अर्जन पिछड़े देश के लिए तब संभव है जब वह ऐसा कच्चमाल, सेवा व अन्य सामग्री निर्यात करे जिसे दुर्लभ मुद्रा वाले देश क्रय करना चाहें किन्तु यह सदा ही संभव नहीं होगा। आयात करने की क्षमता मूलत: निर्यात कर सकने की क्षमता पर निर्भर होती है। यदि निर्यातगत पदार्थों की खरीद न हो तो निर्यात संभव ही नहीं होंगे और फलत: आयात कर सकने की क्षमता ही नहीं होगी।

5.6 कृषि उत्पादन की अस्थिरता

प्राय: पिछड़े देश खनिज, कृषिगत उत्पादन, श्रम-पूर्ति इत्यादि से दुलर्भ मुद्रा पाते हैं। कृषि उत्पादन तो प्राय: नैसर्गिक विदाओं, ओलावृष्टि, टिड्डी, मानसून व मौसम से आबद्ध रहते हैं। उत्पादन घट जाता है और निर्यात संभव नहीं रहता। स्वत: ही भुगतान शेष प्रभावित हो जाता है।

अदृश्य मदों से आय प्राय: भुगतान शेष के अनुकूल अथवा प्रतिकूल होने में गहन प्रभाव डालती है। विकसित देशों में टेक्निकल कन्सेलटेंसी, विशेष हुनर आदि बड़ी मात्रा में आय सृजित करती हैं। अमरीका, इग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, स्विट्जरलैण्ड आदि बड़े धनी देश मात्र पर्यटन गत आय से बहुत ज्यादा लाभान्वित होते हैं। पिछड़े देश भी प्राय: पर्यटन से अपना भुगतान संतुलन ठीक किए रहते हैं। नेपाल में पर्यटन एक महत्वपूर्ण स्रोत है। हांगकांग, सिंगापुर, मलेशिया व अन्य छोटे टापू वाले देश पर्यटन की अदृश्य आय से लाभान्वित होते हैं। भारत में पर्यटन विकसित नहीं है किन्तु यहां इसकी अपार संभावनाएं हैं। इस आय से वैदेशिक दुर्लभ भण्डार बढ़ाया जा सकता है जो भुगतान शेष को अनुकूल कर सकता है।

27.5.7 विदेश में अर्जित आय का हस्तांतरण- भारतीय जनशक्ति प्राय: मध्यपूर्व के देशों, तेल-निर्यातक देशों, औद्योगिक देशों और विकसित अर्थव्यवस्थाओं में प्रशिक्षित-अप्रशिक्षित मजदूरों की तथा इंजीनियर, डॉक्टर, व्यवसायियों की हैसियत से कार्यरत सेवायोजित रहते हैं। यह विदेशी मुद्रा अर्जित करके स्वदेश को भेजते हैं। यह बहुत बड़ी राशियां होती हैं। यह आय अदृश्य मद से आय में सम्मिलित है। इससे भुगतान शेष को अनुकूल करने में सहायता मिलती है। विदेशी विनियोजन में निवेशक विदेशी पूँजी से आर्थिक क्रियाओं का संयोजन करते हैं जो विदेशी मुद्रा

अर्जन में सहायक होते हैं। विदेशी निवेश भुगतान-शेष को अनुकूल करता है। जब यह पूँजी देश छोड़कर जाती है तो भुगतान-शेष विपरीत होता है।

विश्व व्यापार संगठन ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नये कार्य-सम्पादन के तौर-तरीकों व विधान को बदल दिया है। सभी सदस्य देश W.T.O. द्वारा निर्धारित नियमों व व्यवस्था के अधीन अपनी व्यापारिक नीतियां निर्धारित करते हैं। सभी देशों को एक न्यूनतम आयात-मात्रा बनाए रखने के लिए वचनबद्ध रहना पड़ता है जिसके बदले में वे अपने निर्यातों में सुविधाएं अर्जित करते हैं। यदि W.T.O. किसी देश को किसी मात्रा के आयात करने को दबाव डाले तो उस देश के भुगतान-शेष में अवश्य प्रभाव पड़ेगा।

तकनीकी उन्नयन की दिशा में जब कोई देश प्रयत्न करेगा तो उसे आधुनिक उत्पादन पद्धति से नई प्राविधि के अन्तर्गत उत्पादन करना होगा। इसमें उसे कुछ विशेष आयात करना ही पड़ेगा जो प्राय: एक श्रृंखलाबद्ध आयात होगा। इससे भुगतान शेष प्रभावित रहेगा, भले ही बाद में निर्यात बढ़ने से इसका निराकरण हो जाएगा। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और पोर्ट फोलियो निवेश के द्वारा विदेशी दुर्लभ मुद्रा प्राप्त होती है और भुगतान शेष अनुकूल होता है। विदेशी बाजार ऋणों से भारत को 2007-08 में लगभग 20.2 मिलियन अमरीकी डालर का सहारा मिला था। भारत में निर्यात सम्वर्धन के उपाय कारगर नहीं रहे हैं। 1998-99 में भुगतान घाटे को ठीक करने के लिए रिसर्जेंट इण्डिया बाण्ड द्वारा प्रवासी भारतीयों से 4.2 अरब अमरीकी डालर प्राप्त किए थे। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश ने भारत के भुगतान असंतुलन को ठीक करने में सहायता की है। भारतीय रुपए का वैदेशिक मूल्य 1998-2001 के दौरान अमरीकी डालर में गिरता जा रहा था। यह मूल्य की कमी 15.7 प्रतिशत थी। 1908-10 के बीच रुपए का यह वैदेशिक मूल्य फिर से गिरा है।

27.7 प्रतिकूल भुगतान संतुलन से भविष्य की आशंकाएं

यदि भारत अपने आयातों में उदारता बढ़ाता रहा और निर्यातों में वृद्धि समोचित दिर से न हो सकी तो एक घातक स्थिति तक पहुंचने का भय सदा बना रहेगा। घातक स्थिति से तात्पर्य यह है कि वैदेशिक मुद्रा भण्डार खाली हो जाय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सामान्य व विशेष सुविधाएं भी समाप्त हो जाय। जब मुद्राकोष के विशेष ऋण सुविधाएं ले चुके फिर भी भुगतान संतुलन प्रतिकूल ही रहे। ऐसी दशा उत्पन्न हो जाने पर तो विश्वभर में कोई भी देश उधार देने को तत्पर न होगा। पुराने ऋणों पर ब्याज व किश्त चुकाने के लिए लगातार ऋण की जरूरत पड़ेगी, यह दिवालिए की ओर संकेत होगा। भारत अभी इस दशा से दूर है किन्तु इसे निर्यात सम्वर्धन और आयात प्रतिस्थापन पर बल देना श्रेयस्कर होगा। वैदेशिक मुद्रा का विलासितापूर्ण व्यय रोका जाना चाहिए। खाद्यान्न व कच्चेमाल की आत्म-निर्भरता प्राप्त करना आवश्यक है। देश में शक्ति के साधन बढ़ाए

जाएं। उर्वरक, इस्पात, लोहे, सीमेण्ट आदि में आत्मनिर्भर बनें। पेट्रोल, गैस, स्नेहको की यथासंभव बचत करना जरूरी है।

अभ्यास प्रश्न

I. भुगतान संतुलन क्या है ?

1. देश की आमदनी का स्रोत है।
2. दो देशों की आपसी देनदारियों का ब्यौरा है।
3. किसी देश के, संसार के अन्य देशों से लेन व देनदारियों का निर्दिष्ट अवधि का लेखा-जोखा है।
4. यह आयात-निर्यात का अंतर है।

II. व्यापार संतुलन क्या है ?

1. आयात-निर्यात का मूल्यांतर।
2. अदृश्य आय मदों को घटाकर आयात-निर्यात का मौद्रिक मूल्य।
3. एक वर्ष में आयात-निर्यातगत वस्तु, सेवामूल्य तथा अदृश्य मदों की आय का योग।
4. व्यापार व गैर व्यापार का अंतर व्यापार संतुलन है।

III. योजनाकाल में भारत का भुगतान शेष

1. अनुकूल रहा है।
2. सदैव प्रतिकूल रहा है।
3. संतुलित-बराबरी का रहा है।
4. उपरोक्त कोई भी नहीं।

IV. भारत ने भुगतान संतुलन के घाटे को कैसे ठीक किया है

1. गैर निवासी भारतीयों की जमा-राशियों से, धनादेशों से आदि।
2. निर्यात सम्वर्धन द्वारा विदेशी आय में कई गुना बढ़ोत्तरी द्वारा।

3. मुद्राकोष सहायता से।
4. विदेशी निवेश वृद्धि से, ऋण अनुदानों से।

V. विकास नीतियों से भुगतान संतुलन कैसे प्रभावित रहा है ?

1. मशीनों, प्रतिरक्षा सामग्री, टेक्नालाजी, कच्चेमाल के आयात से भुगतान सन्तुलन विरुद्ध हुआ।
2. विकास नीति ने पेट्रोल व उत्पाद मांग चौगुनी कर दी।
3. विकासीय ऋणों द्वारा प्रभावित किया
4. उपरोक्त सभी कारणों से

VI. भुगतान संतुलन में मूलभूत असंतुलन क्यों होता है ?

1. जब निर्यात निरंतर बढ़ते हैं और आयात बढ़ते ही नहीं।
2. जब मुद्रा का वैदेशिक मूल्य ज्यादा रखा जाता है।
3. जब मुद्रा का मूल्य बहुत कम रखा जाता है।
4. जब देश में स्फीतिक या प्रतिसारी दशाएं दीर्घकाल तक बनी ही रहे।

VII. किस स्थिति में भुगतान संतुलन के चालू खाते में निष्क्रियता रहती है ?

1. प्रथम चरण में।
2. तृतीय चरण में।
3. द्वितीय चरण में।
4. किसी में नहीं।

VIII. अवमूल्यन कब लाभकारी होता है ?

1. यदि आयात की मांग अत्यधिक लोचदार हो।
2. यदि निर्यातों की मांग बेलोच हो।
3. जब स्वदेश की आयातों के लिए मांग बेलोच हो।
4. उपरोक्त सभी।

IX. भारत में भुगतान असंतुलन क्यों असंतुलित रहा है ?

1. विकासीय आयात, अनुरक्षण आयात, प्रतिरक्षा आयातों की मांग बेलोच रही।
2. भारत ने मुद्रा का अधिमूल्यन कर दिया।
3. भारत ऋणों पर ब्याज न चुका सका।
4. भारत को अनाज लगातार मगांना पड़ा।

X. क्या भारत के भुगतान संतुलन में चक्रीय असंतुलन के लक्षण है?

1. नहीं है।
2. लक्षण हैं जो स्थाई हैं।
3. कभी-कभी लक्षण दिखते हैं।
4. उपरोक्त में कोई नहीं।

27.8 सारांश

भुगतान संतुलन मूलत: व्यापारिक संबंधों का द्योतक है। इसमें चालू खाते के आयात-निर्यात का समायोजन होता है और पूँजी खाते के लेन-देन समायोजित होते हैं। अदृश्य मदों से आय को व्यापार संतुलन में समायोजित करके इसमें पूँजी खाते का समायोजन किया जाता है। अर्थात् पूँजी हस्तांतरण, ब्याज-भुगतान, जहाजरानी, पर्यटन की आय व निवेश राशियां भी जोड़ी जाती हैं। यह या तो बराबर होता है या असंतुलित होता है, चाहे धनात्मक हो या ऋणात्मक हो। यह देश की आर्थिक दशा को प्रदर्शित करता है। स्वर्ण हस्तांतरण, सरकारी खातोंके शेष, निजी खातों के शेष तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का शेष जोड़ा जाता है। यह हिसाब एक निर्दिष्ट अवधि के संदर्भ में बनाया जाता है। भारत में भुगतान संतुलन प्रतिकूल ही रहा है क्योंकि भारत के आयात बेलोच मांग वाले विकासीय आयात थे। प्रतिरक्षा, अनुरक्षण, विकासीय और विपदा, युद्ध आदि से असंतुलन बढ़ा है। अनाज का आयात करने से भी भुगतान संतुलन विरुद्ध रहा। आयात प्रतिस्थापन व नियंत्रण द्वारा इसे अनुकूल करने का प्रयास किया गया और विदेशी अनुदानों से इसे कम करने में सहायता मिली।

27.9 शब्दावली

आर्थिक सौदे आर्थिक सौदे वे सौदे होते है जिनमें मूल्य का हस्तान्तरण होता है :। जिसके अन्तर्गत एक देश को दूसरे देश से या तो भुगतान प्राप्त करना होता है अथवा दूसरे देश को भुगतान चुकाने की बात होती है ।

हस्तान्तरण भुगतान: हस्तान्तरण भुगतान एकतरफा हस्तान्तरण भुगतान होते है जो बिना किसी प्रतिफल के होते है तथा उनके पुनर्भुगतान का दायित्व नहीं होता है। उदाहरणार्थ, भारत के एक नागरिक का विदेश में रहने वाले किसी सम्बन्धी को उपहार में कुछ राशि या भेजना है। (डालर) इसके अतिरिक्त, पेन्सन, निजी प्रेषण)remittances) दान आदि भी हस्तान्तरण भुगतान के उदाहरण है।

दृश्य मदें: भौतिक वस्तुओं के आयात एवं निर्यात दृश्य मदें)visible items कहलाती है। (

अदृश्य मदें -सेवाओं तथा हस्तान्तरण भुगतान में सम्मिलित मदें अदृश्य मदें कहलाती है जैसे : बीमा -स्वदेशी एवं विदेशी कम्पनियों द्वारा दी गई सेवाएँ, जहाजरानी, बैंकिंग और भाड़ा आदि इसके अतिरिक्त स्कालरशिप, ब्याज, लाभ, रायल्टी राजनयिकों, मिलेट्री कर्मचारियों और दूतावासों एवं वैज्ञानिकों पर व्यय इत्यादि। अदृश्य मदों को बन्दरगाह पर रिकार्ड नहीं किया जाता है।

प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग: प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग से अभिप्राय किसी विदेशी नागरिक या संगठन द्वारा दूसरे देश में अपनी पूँजी द्वारा उत्पादन इकाई की स्थापना करने या खरीदने से है। ऐसे विनियोजन पर विनियोजक का स्वामित्व प्रबन्ध में नियंत्रण रहता है ।

27.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 2008-09 में भारतीय विदेशी व्यापार में भुगतान-शेष के विविध अंग क्या थे ?
2. निर्यात प्रेरक आयात नीति किसे कहते हैं ?
3. आयात-प्रतिस्थापन क्या होता है ?
4. 2002-07 की अवधि में क्या नीति संदर्भी पिरवर्तन आए ?
5. विशेष व्यापारिक प्रोत्साहन क्या है ?

27.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. दत्त गौरव एवं अश्विनी महाजन, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 48th Edition.

2. मिश्रा, एस.के. एवं वी.के. पुरी; प्राब्लम्स ऑफ इण्डियन इकॉनोमी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2010-2011
3. सरकार, जयगंता; इण्डियन इकानोमी: पालिसीज एण्ड प्रैक्टिसेज, प्रथम संस्करण (2007), पीयरसन एजुकेशन, 2007
4. धीगड़ा, आई.सी, इण्डियन इकॉनोमी, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2009
5. प्रकाश, बी, इण्डियन इकॉनोमी सिन्स 1991, इकानोमिक रिफौर्मस् एण्ड परफौर्मेन्सेज, प्रथम संस्करण, पियरसन एजूकेशन, 2009
6. दत्त रुद्र एण्ड के.पी.एम. सुन्दरम, इण्डियन इकॉनोमी, 60 वां संस्करण, एस. चंद एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 2009.

27.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के लिए किस उपाय का प्रयोग किया जाता है?
2. भुगतान संतुलन में असाम्य के प्रकार एवं कारणों की व्याख्या कीजिए।

इकाई- 28 भारत की व्यापारिक-नीति

28.1 प्रस्तावना
28.2 उद्देश्य
28.3 नीति से आशय
28.3.1 विकास प्रेरक आयातों की प्राथमिकता
28.3.2 निर्यात-प्रेरक आयात
28.3.3 पूँजी सम्वर्धक आयात
28.3.4 आयात प्रतिस्थापन के उद्देश्य
28.3.5 निर्यात अर्जित आयात की अनुमति
28.4 दुर्लभ मुद्रा क्षेत्रों को निर्यात
28.4.1 निर्यात संरचना में विविधीकरण
28.4.2 निर्यात-संघटकों का आयात
28.4.3 आयात पात्रता परियोजना
28.4.4 स्वदेशी कर मुक्ति द्वारा निर्यातवर्धन
28.4.5 सार्वजनिक क्षेत्र का आयात-एकाधिकार
28.4.6 100 प्रतिशत निर्यात-उन्मुख उत्पादन क्षेत्रों में प्रोत्साहन
28.4.7 निर्बाध-व्यापार व विशेष आयात अनुज्ञा
28.4.8 स्वतंत्र निर्यात-आयात प्रणाली (2006-07)
28.4.9 एक्सपोर्ट हाउस स्कीम (2002-07)
28.4.10 विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) व बैंकों का विदेशी विस्तार
28.5 अवरचना विकास में 100 प्रतिशत FDI सहभाजन
28.6 सारांश
28.7 शब्दावली
28.8 संदर्भ ग्रन्थ
28.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
28.10 निबन्धात्मक प्रश्न

28.1 प्रस्तावना

किसी भी देश के, विश्व के अन्य देशों से, जो आर्थिक सम्बन्ध होते हैं, उन्हें व्यापार के क्षेत्रों, व्यापार के प्रकार, आयात-निर्यात संरचना, अपनाए गए प्रोत्साहन या हतोत्साहन यंत्रों के माध्यम से समझा जा सकता है। सरकार के नीति विकल्पों में चयन, आर्थिक विकास के सोपान और राष्ट्र की आकांक्षाओं से ही होता है। हर देश की व्यापार नीति उसके साधनों, उनके उपयोग और विकास की इच्छा से ही प्रशस्त होती है। सभी देश व्यापारगत और भुगतान संतुलित रखने का यत्न करते हैं किन्तु विविध आंतरिक और बाह्य बाध्यताओं से विवश यह देश सदैव अपने उद्देश्यों में सर्वथा सफल नहीं हो पाते। सरकारें विविध नियंत्रणों, अवरोधकों, प्रभावक कदमों द्वारा ही नहीं अपितु प्रोत्साहनों, दिशा-निर्देशों, हतोत्साही आदेशों से वांछित दिशा, मात्रा व गुण की ओर व्यापार को मोड़ सकते हैं। प्रत्यक्ष हस्तक्षेप भी सरकारें करती हैं और प्रलोभनों का उपयोग भी करती हैं। भारत की व्यापार नीति में आयात-निर्यात, दोनों ही, सम्मिलित हैं। दोनों क्षेत्रों में जो सरकार का दृष्टिकोण व सरकार द्वारा किए गए उपाय हैं, व्यापार नीति में समाहित होते हैं।

28.2 इस खण्ड का उद्देश्य

इस खण्ड में विद्यार्थी व्यापार नीति के आशय, नीति-संदर्भ, आयातों के मुख्य प्रकारों से अवगत होंगे। नीति-विषयक विविध शब्दों और उद्देश्यों को समझ सकेंगे। सरकार द्वारा किसी भी विषय में जो दृष्टिकोण और कदम उठाए जाते हैं, नीति के भाग होते हैं। इसलिए सरकार द्वारा उठाए गए कदमों के संक्षिप्त विवरण से भी विद्यार्थी परिचित हो सकेंगे और अपना एक दृष्टिकोण बना सकेंगे।

28.3 नीति से आशय

नीति सूक्ष्म रूप से सरकार द्वारा किसी दूरगामी उद्देश्य की सिद्धि के निमित्त उठाए गए उपायों और प्रयत्नों का क्रमबद्ध एवं समन्वित जाल है जिसकी प्राप्ति हेतु प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप का उपयोग होता है और प्रोत्साहन या हतोत्साहन उपायों द्वारा उद्देश्य की प्राप्ति की जाती है। नीति के विविध सोपान व सीढ़ियां हो सकती हैं जो एक ही निश्चित उद्देश्य की ओर अग्रसर करती हैं। एक नीति अन्य कई नीतियों से समन्वित होती है। विकासनीति में कृषि, उद्योग, सेवा, खनिज, रोजगार, आय, अवरचनात्मक प्रगति की तरह कई नीतियां निहित हो सकती हैं। भारत की व्यापार नीति यह सुनिश्चित करती है कि आयात निर्यात, वैदेशिक ऋण, सहायता, अनुदान जैसे घटकों को कैसे संगठित करें कि भारत की आर्थिक प्रगति तेजी से हो। निवेशकों को कैसे और कितना सहभाजन प्रदान करें कि उनकी सहयोग लालसा बनी रहे। निर्यातों की लागत, स्पर्धात्मक दृष्टि से, प्रतियोगियों

से कैसे कम की जाय और गुणात्मकता में कैसे अभिवृद्धि हो। हर नीति के साथ उपाय अवश्य विवरणित होते हैं और प्रेरकों, प्रलोभनों, प्रोत्साहनों आदि का ब्यौरा अवश्य होता है।

28.2.1 विकास-प्रेरक आयातों को प्राथमिकता- भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता तीव्रतर आधुनिक आर्थिक विकास करना है। जिसका तात्पर्य है कि मूलभूत अवरचनाओं का विकास, कृषि का आधुनिकीकरण तथा खाद्य-पदार्थों व कच्चे माल की पूर्ति में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना। तीव्र गति से औद्योगीकरण करना, पुरातन कौशल, पूँजीगत सज्जा का आधुनिकीकरण करना, सेवा क्षेत्र में द्रुततर विकास, खनिज व निर्माण क्षेत्रों में समानांतर विकास और देश में उत्पन्न निर्यात सामग्री बढ़ाकर आयातों के लिए दुर्लभ मुद्रा अर्जित करना भी भारत का ध्येय है। भारत अपने मानवीय साधनों को कौशलपूर्ण और शिक्षित करना चाहता है जिसके लिए आधुनिकतम जानकारी व कौशल की पूर्ति चाहिए। बिना सिंचाई और उर्वरकों के कृषि-क्रान्ति सम्भव नहीं है। नई टेक्नालॉजी, मशीनों व उपकरणों के बिना उद्योग नहीं बढ़ सकते।

बिना आद्युनिक प्रोद्योगिकी के तरक्की संभव नहीं है। बिना नव प्रवर्तकों, उपक्रम व पूँजी आयात के, विकास दर तेज नहीं हो सकती। बिना पूँजीगत सज्जाओं के विकास अवरुद्ध ही रहेगा। अतएव, भारत को यातायात, प्रतिरक्षा, उड्डयन, कारखानों, आधुनिक शिक्षा-प्रशिक्षण साधनों के जुटाने के लिए आयात करने ही पड़े, जो क्रम आज भी जारी है। इन कारणों से भारत की निर्भरता, विकसित देशों और तेल-निर्यातक देशों पर बढ़ती जाती है। इन सब आयातों के लिए 'दुर्लभ मुद्राओं' के रुप में वैदेशिक विनिमय चाहिए। जो निर्यात-नीति से ही प्राप्त हो सकता है। 'आयात नीति' द्वारा ही भारत वैदेशिक मुद्रा का एकत्रीकरण कर सकता है। यदि ऐसे आयात प्रतिबन्धित हो जो मात्र विलासिता उत्प्रेरणन के साधन हैं। उन्हीं आयातों को प्रोत्साहित किया जाय जिनसे भारत की उत्पादक क्षमताएं बढ़ें और दक्षताएं बढ़ाई जा सके। भारत की कठिनाई यह है कि भारत के निर्यात, आयातों के सापेक्ष बहुत धीमे बढ़ते हैं और व्यापारिक घाटा बढ़ता जाता है।

28.3.2 निर्यात-प्ररक आयात:- निर्यात आबद्ध उद्योगों में कल-पुर्जों के लिए आयात करना मुडालियर कमेटी ने (1962) सही बताया था। पेट्रोलियम व परिवहन सामग्री, निर्यात- मूलक उद्योगों के कच्चेमाल, मशीनरी, स्पेयर पार्टस, संघटक सज्जा, जो निर्यातक उद्योग में लगती है, या वे रसायन, उर्वरक, कीटनाशक, जो निर्यात: उन्मुख फसलों में लगते हैं इत्यादि, आयात की प्राथमिकता पाते हैं। 1975-76 में भारत सरकार ने इसे नीति बना लिया और निर्यात उद्योगों की क्षमता-उपयोगिता बढ़ाने के लिए आयातों की संस्तुति की। इसे परिपोषक आयात कहा गया। इसे स्वचालित आयात लाइसेंस प्रणाली में रखा गया। निर्यातकों को 'आयात का अधिकार अर्जन' (Import Entitlement) योजना का लाभ दिया। 'नकद सहायता' एवं कर की माफी जैसे उपाय निर्यात बढ़ाने के लिए किए गए। 1992-97 में पी. चिदम्बरम ने 'निर्यात-दायित्व' के अन्तर्गत आयात उदारीकरण किया। निजी क्षेत्र की आयात स्वतंत्रता बढ़ा दी गई। 100 प्रतिशत निर्यातक इकाइयों में

आयात-स्वातंत्र्य में वृद्धि कर दी गई और लाइसेंस प्रणाली समाप्त की गई। 894 मदों में निर्बाध आयात अधिकार दे दिया। 2002-07 में मुरासोली मारन ने मात्रात्मक प्रतिबंध, आयातों से हटा दिए। विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) कृषि पदार्थ निर्यात क्षेत्र बनाए गए। टेक्नालॉजी पार्क बनाए गए जो निर्यात-केन्द्रित थे। निर्यात केन्द्रित उत्पादों में ईंधन लागत पर 7 प्रतिशत की छूट गई। निर्यात सम्वर्धन (Export Promotion Zone) क्षेत्र बनाए हैं। गेहूं निर्यात के लिए कदम उठाए जा रहे हैं। आयात शुल्क कटौती ने आभूषण-हीरे आदि का आशातीत निर्यात नहीं बढ़ाया। 2004-09 के दौरान निर्यात विकास केन्द्र बने हैं जो कृषि, हस्तशिल्प, हाथकरघा, रत्न-आभूषण, चमड़ा, फुटवियर, फूल, सब्जी में निर्यात योग्य सामग्री तैयार करेंगे। शुल्क-मुक्त कर्जों की व्यवस्था की गई है जो अर्जित विदेशी मुद्रा के 10 प्रतिशत तक होगा। मुक्त व्यापार एवं भण्डारण क्षेत्र बने हैं जहां अवरचनाएं स्थापित हैं। सेवा निर्यातों की परिषद् बनी है। निर्यात होने वाले उत्पादों की अच्छी पैदाइश के लिए आयात करने की अनुमति है।

28.3.3 राष्ट्रीय पूँजीगत निवेश में सहायक आयात - भारत का पिछड़ापन कई उत्पादन क्षेत्रों में इसलिए है कि उनमें पूँजीगत सज्जा, मशीनें, उपकरण, आधुनिक यंत्र व औजार नहीं हैं। यदि उत्पादन के निर्यात किए जाने की सम्भावना हो तो ऐसे क्षेत्रों में पूँजीगत सज्जा का विदेश से आयात राष्ट्रीय हित में होगा। भारत में आयात-नीति में यह प्रावधान है। इससे उत्पादन क्षेत्र आधुनिकीकृत हो रहे हैं जिसमें नई प्राविधि का उपयोग बढ़ा है।

28.3.4 आयात प्रतिस्थापन के उद्योगों में आयात- कई ऐसे व्यवसाय, उद्योग और शिल्प हैं जिनकी वस्तुएं वर्तमान में आयात होने वाले पदार्थों, वस्तुओं, सेवाओं का सीधे प्रतिस्थापन कर सकते हैं और ऐसा आयात रुक जाने से वैदेशिक मुद्रा की बचत होती है, यदि थोड़ा बहुत आयात ऐसे व्यवसायों-उत्पादों के लिए करना पड़े। दीर्घकाल में निश्चय ही यह लाभकारी होता है।

28.3.5 निर्यात अर्जित आयात की अनुमति- भारतीय वैदेशिक व्यापार नीति में यह प्रावधान है कि यदि कोई उद्योग निर्यात करके दुर्लभ मुद्रा अर्जित करता है तो उसे अपने निर्यात-मूल्य के एक भाग (10 प्रतिशत) को अपने लिए आवश्यक विदेशी सामग्री, उपकरण, मशीनें स्वयं ही आयात करले की अनुमति है।

28.4 दुर्लभ मुद्रा क्षेत्रों को निर्यात - भारतीय व्यापार नीति में यह ध्यान रखा गया है कि निर्यात का अधिकांश भाग अमरीका, यूरोप, तेल निर्यातकों, ओसीनियां देशों में हो क्योंकि हमें डॉलर, पौण्ड, यूरो, दीनार की ज्यादा जरूरत है। हमें तेल मगांना ही है और हमारे निर्यात इन देशों में बढ़ने चाहिए ताकि हम ज्यादा आयात कर सकें। 1987-88 में इन देशों में भारत के निर्यात मात्र 6 प्रतिशत थे जो 2008-9 में बढ़ कर 21 प्रतिशत हुए हैं और इनसे आयात 32 प्रतिशत है। ओसीनियां (जापान, आस्ट्रेलिया) को हमारे निर्यात 1970-71 में 15 प्रतिशत थे जो 2008-09 में 6.3 प्रतिशत

है। जिसमें चीन और हांगकांग ज्यादा महत्वपूर्ण है। तेल निर्यातक देशों में भारत के 32 प्रतिशत आयात केन्द्रित हैं। अरब अमीरात, सउदी अरब और इण्डोनेशिया इनमें ज्यादा महत्व के हैं।

28.4.1 निर्यात संरचना में विविधीकरण - भारत परम्परागत निर्यातों के लिए जाना जाता रहा है। इनमें कृषिगत पदार्थ और कृषि आधारित निर्मित माल महत्वपूर्ण हैं। अब खाद्य-पदार्थों, तम्बाकू में कमी आ गई है। चाय में निर्यात तेजी से नहीं बढ़ रहा है। मछली, मछली उत्पाद, काजू, कॉफी, चावल में वृद्धि है। सब्जियों, फलों, फूलों में निर्यात बढ़ा है। अब इंजीनियरिंग, रसायन, सिले कपड़े, मशीने, पुर्जे, परिवहन, निर्मित धातुएं, हस्तशिल्प उत्पाद, इत्यादि महत्व के हो गए। अब निर्यातों में यह 70 फीसदी है। इलैक्ट्रोनिक्स और सॉफ्टवेयर में निर्यात तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। कच्चे लोहे, इस्पात आदि का निर्यात बढ़ा है। चाय, चमड़े और चमड़े के उत्पाद ज्यादा निर्यात हो रहे हैं। सूत, पटसन, चीनी, फल, खाद्य-पदार्थ में मामूली वृद्धि जारी है।

28.4.२ निर्यात संघटकों का आयात - निर्यातों में जो चीजें व्यय होती हैं यदि उनको आयात न किया जाय तो निर्यात की पूर्ति संभव नहीं पाएगी। भारत की आयात नीति में ऐसे उत्पादों की पहचान की गई है और उन्हें आयात की इजाजत दी जाती है ताकि निर्यात निर्बाध रूप से चलते रहें।

28.4.3 आयात पात्रता परियोजन- निर्यात प्रेरक आयात नीति के अंतर्गत कई नई योजनाएं आई। इसमें आयात अधिकार योजना भी थी। इसके अधीन मशीनरी का आयात सुगम किया गया। इसमें निर्यात उत्पादक आयात प्राधिकार योजना के अधीन सारी निर्यात से प्राप्त आय को अपने उद्योग के आधुनिकीकरण अनुसंधान एवं विकास के लिए लगा सकता है। इसमें निर्यातजन्य आय को आयात पर व्यय करने का लाइसेंस दिया जाता है। यह जर्मनी, जापान में बहुत सफल रही थी। भारत में भी यह सफल रही है।

28.4.4 कर मुक्ति प्रलोभन से निर्यात-सम्वर्धन- मुदालियर समिति (1962) ने यह संस्तुति दी थी कि निर्यातक को उनकी निर्यातजन्य आय पर आयकर से मुक्ति दी जाय। यह योजना अत्यंत लाभकारी हो सकती है।

28.4.5 सार्वजनिक क्षेत्र का आयात-एकाधिकार - आयातों पर यथोचित नियंत्रण रखने और वैदेशिक मुद्रा के दुरुपयोग व फिजूल खर्ची घटाने के लिए यह सुझाव भी दिया गया है कि आयात का एकाधिकार सरकार के हाथ केन्द्रित होना चाहिए। ताकि सार्वजनिक क्षेत्र में ही परमावश्यक मशीनें और पूँजीगत सज्जा मंगाई जाय। यह सुझाव आयात नीति में सम्मिलित नहीं किया गया क्योंकि उदारीकरण के सापेक्ष यह निन्दनीय होता।

28.4.6 100 प्रतिशत निर्यात उन्मुख उत्पादन क्षेत्रों में प्रोत्साहन -यह नीतिगत निर्णय हुआ है कि ऐसे सारे उपक्रम, उद्योग इकाइयां अपनी अर्जित विनिमय (दुर्लभ मुद्रा) को तरक्की के लिए आयात पर व्यय कर सकते हैं। वे आयात के लिए स्वतंत्र हैं।

28.4.7 निर्बाध-व्यापार व विशेष आयात अनुज्ञा -1999-2000 की निर्यात नीति में 894 मदों को आयात की निर्बाध सूची में रखा और साथ ही 414 मदों को विशेष आयात अनुज्ञा के अधीन कर दिया। इससे आयात का उदारीकरण प्रबल हो गया। 1999 में ही मुक्त व्यापार क्षेत्र योजना लागू कर दी गई। निर्यात प्रोन्नति क्षेत्रों को निर्बाध व्यापार क्षेत्र बनाया गया।

28.4.8 स्वतंत्र निर्यात-आयात प्रणाली:- 2002-07 की नीति ने मूल-चूल परिवर्तन और नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। क्योंकि 1992-2002 के बीच निर्यात में 18.5 प्रतिशत और आयातों में 19.1 प्रतिशत वृद्धि रही। भारत के निर्यात क्षेत्र को शुल्क-मुक्ति दी गई। मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाए गए। अफ्रीकी बाजारों में निर्यात-वृद्धि के प्रयास हुए। भारतीय बैंकों की शाखाएं विदेशी बाजार में खुलीं ताकि निर्यातक ऋण-सुविधा पा सकें, वह भी अन्तर्राष्ट्रीय ब्याज-दर पर प्राप्त हों। कृषि उत्पादों के निर्यात वृद्धि को भी प्रोत्साहन दिया गया। प्रौद्योगिकी पार्क योजना प्रभावी बनाई गई। निर्यातों में ईंधन लागत पर अनुदान भी दिया गया।

28.4.9 2002-07 की एक्सपोर्ट हाउस स्कीम- निर्यातकों को 'निर्यात-सितारा' पद से सम्मानित किया गया और सुविधाएं दी गईं। यह घराने 'एक सितारा' से 'पांच सितारा' तक हैं, जो 15 करोड़ रु. के औसत (3 वर्ष) निर्यात (वार्षिक) स्तर के होंगे। यह एक प्रोत्साहन है।

28.4.10 विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) सीमांकन एवं 'टारगेट प्लस' योजना- इन विशेष क्षेत्रों का सीमांकन हुआ और इनमें निर्यातकों को विशेष लाभ प्रदान करने की योजना आई। इसी प्रकार कृषि-निर्यात क्षेत्र भी इंगित हुए। कुटीर, लघु, शिल्प आदि व आभूषणों के लिए विशेष क्षेत्र बनाए गए ताकि इन्हें निर्यात की विशेष सुविधा मिले। चीन में भी यह विधि कार्यरत है। इन क्षेत्रों में अवरचनाएं विकसित की गईं हैं।

28.5 अवरचना निवेश में 100 प्रतिशत विदेशी पूँजी निवेश

यह अत्यन्त उपयोगी प्रयास है कि सड़कों, पुलों, शक्ति आदि अवरचनाओं के सुदृढ़ विकास और आधुनिकीकरण में विदेशी पूँजी को शत-प्रतिशत सहभाजन के अवसर प्रदान किए गए हैं ताकि निर्यात लागतें कम हो जाएं और यातायात, ढुलान आदि सस्ता हो जाय।

अभ्यास प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'नीति' कौन निर्धारित करता है?

अ. नीति निर्धारक सरकार करती है।

आ. नीति व्यक्ति बनाते हैं।

इ. नीति फर्मे व उद्योग बनाते हैं।

ई. 'नीति' प्रत्येक निर्णायक शक्ति की होती है।

2. 'नीति' और 'निर्णय' में क्या सम्बन्ध है?

अ. नीति, निर्णय करने की दिशा-दर्शन की द्योतक है।

आ. निर्णय बदलने से नीति बदलती है।

इ. नीति निर्दिष्ट पथ है जिसमें कई निर्णय होते हैं।

ई. इनमें कोई नहीं।

3. 'आयात नीति' व 'निर्यात नीति' में क्या सम्बन्ध होते हैं?

अ. आयात आवश्यकता प्रेरित होते हैं। निर्यात भुगतान की विवशता है।

आ. आयात से निर्यात की योग्यता बनती है।

इ. निर्यात से ही आयात शक्ति प्राप्त होती है।

ई. दोनों का निर्धारण व्यापार नीति करती है।

4. निर्यात-प्रेरक आयात क्या होते हैं?

अ. ऐसे आयात जिनसे निर्यात सामग्री-सज्जा बनती है।

आ. निर्यातों के कच्चेमाल आयात करना।

इ. वे निर्यात जिनसे आयात जरूरी हो जाए।

ई. उपरोक्त में कोई नहीं।

5. निर्यात वृद्धि से क्या तात्पर्य है?

अ. विदेश को भेजी गई चीजों- सेवाओं की संख्या में बढ़ोत्तरी।

आ. निर्यातित माल का मूल्य अधिक होना।

इ. बड़े आकार-डिजाइन की चीजें निर्यात करना।

ई. महंगी से महंगी वस्तु निर्यात करना।

6. 'व्यापार संरचना' में विविधीकरण क्या है?

अ. जिन वस्तुओं-सेवाओं में आयात-निर्यात होता था उनमें कई नई चीजें सम्मिलित करना।

आ. विविध मंडियों में व्यापार करना।

इ. विविध देशों में आयात-निर्यात विस्तार।

ई. अलग-अलग देशों में भिन्न-भिन्न मूल्य रखना।

7. स्वतंत्र आयात-निर्यात प्रणाली कब प्रस्तावित हुई?

अ. 1984-92

आ. 2002-07

इ. 2004-09

ई. इनमें से कोई नहीं।

8. 'आयात-पात्रता' परियोजना क्या होती है?

अ. यह WTO का प्रावधान है।

आ. इसमें निर्यात द्वारा कमाये गये विदेशी मुद्रा का एक भाग या पूरा भाग आयात के लिए प्रयोग कर सकते हैं।

इ. आयात करने के लिए लाइसेंस प्राप्त करना।

ई. उपरोक्त में कोई नहीं।

9. विशेष आर्थिक-क्षेत्र (SEZ) से क्या प्रयोजन है?

अ. देश भर में पृथक-पृथक उद्योगों के विशिष्टीकृत क्षेत्र विकसित करना जैसे लघु उद्योग, शिल्प आदि, आभूषण निर्यात क्षेत्र, कृषि निर्यात क्षेत्र आदि।

आ. जहां पर सरकारी निर्यातों की व्यवस्था होती है।

इ. यह अबरचना सज्जित उत्पादन केन्द्र होते हैं।

ई. उपरोक्त सभी।

10. क्या नीति, निवेश प्रेरक प्रलोभनों और प्रेरणाओं का ताना-बाना है?

अ. यह प्रेरणाओं-प्रलोभना का ताना-बाना है।

आ. यह मात्र सरकारी आदेश है या घोषणा है।

इ. नीति किसी कार्यक्रम का सैद्धान्तिक आधार है।

ई. नीति और योजना में कोई अन्तर नहीं है।

लघुत्तर प्रश्न

1. भारतीय व्यापार नीति के प्रमुख लक्षण क्या हैं ?
2. निर्यात-वृद्धिक आयात क्या होते हैं ?
3. आयात-प्रतिस्थापन नीति का अर्थ समझाइये ?
4. दुर्लभ-मुद्रा (Hard Currency) कौन सी है ?
5. उदारीकरण से निर्बाध-आयात क्यों होते हैं ?
6. भारत के व्यापारिक साझेदार देशों में मुख्य कौन हैं ?

28.6 सारांश

अ. नीति से तात्पर्य सोचने का दृष्टिकोण और उसके क्रियान्वयन के लिए विविध प्रकार की योजनाएं और कदम, प्रोत्साहन, प्रलोभन का सूत्रजाल लागू करना।

आ. नीति में सुदीर्घकाल के व अल्पकाल के उप-उद्देश्य या अंग होते हैं। भारत को आत्मनिर्भर बनाना यदि उद्देश्य होता तो इसके लिए एक नीतिगत कदमों का क्रमबद्ध कार्यक्रम जरूर होगा।

इ. भारत की व्यापारिक नीति में आयात नीति, निर्यात नीति, दोनों ही, सम्मिलित होंगे। इन दोनों के उपांग भी होंगे।

ई. व्यापारिक नीति का स्वयं भी अन्य नीतियों से समन्वित होना आवश्यक है जैसे संरक्षण वादी औद्योगिक नीति या वैश्विक उदारीकरण नीति की पृष्ठभूमि में ही व्यापारिक नीति बनेगी।

28.7 शब्दावली

प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग: प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग से अभिप्राय किसी विदेशी नागरिक या संगठन द्वारा दूसरे देश में अपनी पूँजी द्वारा उत्पादन इकाई की स्थापना करने या खरीदने से है । ऐसे विनियोजन पर विनियोजक का स्वामित्व प्रबन्ध में नियंत्रण रहता है ।

विशेष आहरण अधिकार) **Special Drawing Right, SDRs** :(SDRs को कागजी सोना भी कहते है । SDR लेखा की अन्तर्राष्ट्रीय इकाई है जो 'अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विशेष आहरण में' विदेशी विनिमय रिजर्व परिसम्पत्ति के पूरक के रूप में रखी जाती है । कोष सामान्य लेखा मे सभी मुद्राओं के कोटों का मूल्य निर्धारण-SDR में किया जाता है । अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि करने के लिए 'कोष' द्वारा SDR का निर्माण 1969 में किया गया था।

28.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नीति निर्दिष्ट पथ है, जिसमें कई निर्णय होते हैं।
2. निर्यातों से ही आयात करने की शक्ति अर्जित होती है।
3. निर्यातों के कच्चेमाल की सामग्री आयात करना।
4. आयातों से अधिक मूल्य का निर्यात करना।
5. जिन चीजों का निर्यात होता है उनमें नई-नई वस्तुएं शामिल करना।
6. 2002-07 के लिए प्रस्तावित।
7. इसमें निर्यात द्वारा कमायी गयी विदेशी मुद्रा, आंशिक या पूरी राशि, आयात के लिए उपयोग में ले सकते हैं।
8. नीति, निवेश प्रेरक प्रलोभनों व प्रेरणाओं का ताना-बाना है जिससे उद्देश्यों की प्राप्ति की जाय।

28.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. दत्त गौरव एवं अश्विनी महाजन, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 48th Edition.

2. मिश्रा, एस.के. एवं वी.के. पुरी; प्राब्लम्स ऑफ इण्डियन इकॉनोमी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2010-2011
3. सरकार, जयगंता; इण्डियन इकानोमी: पालिसीज एण्ड प्रैक्टिसेज, प्रथम संस्करण (2007), पीयरसन एजुकेशन, 2007
4. धीगड़ा, आई.सी, इण्डियन इकॉनोमी, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2009
5. प्रकाश, बी, इण्डियन इकॉनोमी सिन्स 1991, इकानोमिक रिफौर्मस् एण्ड परफौर्मेन्सेज, प्रथम संस्करण, पियरसन एजूकेशन, 2009
6. दत्त रुद्र एण्ड के.पी.एम. सुन्दरम, इण्डियन इकॉनोमी, 60 वां संस्करण, एस. चंद एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 2009

28.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अवरचना विकास' का व्यापार नीति से सम्बन्ध क्या है ?
2. भारत के प्रमुख निर्यात क्या हैं ?

ईकाई- 29 भारत का विदेशी व्यापार व विश्व व्यापार संगठन

29.0 उद्देश्य
29.1 प्रस्तावना
29.2 प्रशुल्क व व्यापार पर सामान्य समझौता
29.3 विश्व व्यापार की परिवर्तन दिशा
29.4 यूरुग्वे दौर में वार्ताएं एवं डंकल प्रस्ताव
29.5 भारतीय विदेशी व्यापार की कठिनाइयां
29.6 युरुग्वे केदौर में समझौते का भारत पर प्रभाव
29.7 निवेश प्रोत्साहनों व उपायों की निरर्थक विषयवस्तु
29.8 वस्त्र व सिले-सिलाए कपड़ों पर व्यापार प्रतिबंध
29.9 प्रतितुल्य प्रशुल्क द्वारा श्रम लागतों का समानीकरण
29.10 'पर्यावरण कण्डिका' द्वारा व्यापार विभेदीकरण
29.11 संरक्षण की छिपी हुई प्रवृत्ति
29.12 आयात उदारीकरण के लिए भारत पर दबाव
29.13 दोहा (2001) मंत्री स्तरीय दौर में पिछड़े देशों का दबाव
29.14 संधियों में अपेक्षित सावधानी
29.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
29.16 सारांश
29.17 शब्दावली
29.18 संदर्भ ग्रन्थ
29.19 निबन्धात्मक प्रश्न

29.0 उद्देश्य

मानवीय आर्थिक समृद्धि में विश्व व्यापार का योगदान विश्व-व्यापी और सर्वाधिक महत्व का रहा है। इस खण्ड में विद्यार्थी विश्व व्यापार के विस्तार के प्रारम्भिक प्रयासों से अवगत होंगे तथा भारत की व्यापार वृद्धि में साझेदारी के स्तर को समझेंगे तथा भारत के वैदेशिक व्यापार के मुख्य लक्षणों तथा चुनौतियों का ज्ञान करेंगे। वैश्विक व्यापार क्षेत्र में मुख्य परिवर्तनों के परिचय के उपरान्त पाठक-गण 'गैट' के अन्तर्गत वार्ताओं तथा, विशेषतया, युरुग्वे दौर की उपलब्धियों से विदित होंगे। तदुपरान्त विश्व-व्यापार संगठन के उद्देश्यों, नीतियों, नियमावलियों और प्रस्तावित विकास पथ से परिचय अर्जित करेंगे। अन्ततः विश्व व्यापार संगठन की व्यवस्थाओं का भारतीय विदेशी व्यापार तथा आन्तरिक आर्थिक प्रगति पर सम्भावित प्रभावों का प्रारम्भिक ज्ञान अर्जितकर सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

विदेशी व्यापार आर्थिक प्रगति का आधार भी है और तद्जनित लाभ के लिए वितरण का यंत्र भी है। यदि वैश्विक-व्यापार को किन्हीं सर्वसम्मत व्यवस्थाओं के माध्यम से नियंत्रित व प्रतिबन्धित किया जाय तो आर्थिक प्रगति की आकांक्षित तीव्र दर प्राप्त की जा सकेगी। ऐसी सर्वसम्मत व्यवस्था को लाने में व्यापारी देशों के प्रतिनिधियों में 'व्यापार व प्रशुल्कों पर सामान्य समझौते' (G.A.T.T.) नामक व्यवस्था ने कई वार्ताओं के दौर हुए और कई विषयों में सर्वमान्य सहमति स्थापित की तथा विविध अन्य सम्बन्धित विषयों में विशद् विवेचन प्रारम्भ किया। 'विश्व-व्यापार संगठन' संस्था इसी पूर्व-प्रयास से उभर कर आई। भारत भी अन्य साझेदारों की भांति समझौतों से लाभान्वयन कर सका है। भारत के विदेशी व्यापार की परिस्थितियों, लक्षणों, मुख्य मुद्दों और चुनौतियों के संदर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों और विश्व व्यापार संगठन की उपादेयता का समझना आवश्यक है।

29.2 प्रशुल्क व व्यापार पर सामान्य समझौता: (GATT)

इस संगठन की स्थापना 1948 में इस मान्यता पर हुई थी कि मानवीय समृद्धि एवं विकास की सर्वाधिक सम्भावना स्वतंत्र-व्यापार नीति के क्रियान्वयन से ही है। वस्तु बाजार में आर्थिक, व्यापारिक स्पर्धा ही उत्पादन लागत घटाने के उपायों को प्रेरित कर सकती है। अतएव, जहां और जिस स्तर पर भी 'स्वतंत्र स्पर्धा अवरोधक' व्यवस्था व नीतियां हैं उन्हें सर्वसम्मति से स्वतंत्र स्पर्धा के हित में हटाया जाय या अति-स्पल्प कर दिया जाय। न केवल प्रशुल्क समाप्त हों अपितु गैर-प्रशुल्क अवरोध भी हटाए जांय तथा सभी प्रकार के सब्सीडी (सहाय्य) समाप्त हों तो उत्पादन दक्षताएं बढ़ेंगी और लागतों में कमी होगी और सभी व्यापारिक साझेदार लाभान्वित होंगे। गैट के आठ वार्ता

दौर इन्हीं उद्देश्यों के लिए कार्यरत रहे। आठवां दौर युरुग्वे-दौर था (1986) इन्हीं वार्ताओं ने विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

29.3 विश्व व्यापार की परिवर्तन दिशा

1948 में गैट की स्थापना हुई। तब कृषि पदार्थों का योगदान विश्व व्यापार में लगभग 46 प्रतिशत था। अब 13 प्रतिशत से भी कम है। गुणात्मक बदलाव भी इंगित होता है जिसमें रोजगार स्तर का परिवर्तन प्रधान है। सेवा-क्षेत्र का योगदान बढ़ता जा रहा है। अमरीका मेंयह 2/3 हो गया है और श्रम शक्ति का 70 फीसदी सेवा क्षेत्र में केन्द्रित है। वस्तु क्षेत्र में जापान सरीखे देश बहुत आगे हो गए। विकासशील व पिछड़े देशों में व्यापार का केन्द्र-बिन्दु, कृषि पदार्थ, खनिज, मछली एवं प्राकृतिक संसाधन ही रह गए। इन क्षेत्रों के उत्पादों में प्रतियोगिता स्तर बहुत ज्यादा है जिस कारण पिछड़े देश से उपजे निर्यात बहुत कम आय अर्जित कर पाते हैं।

29.4 यूरुग्वे दौर की 14 विषयों में वार्ताएं और डंकल प्रस्ताव:

वार्ताओं में प्रशुल्क और गैर-प्रशुल्क उपाय, उष्ण कटिबन्धीय उत्पाद, प्राकृतिक संसाधन आधारित उत्पाद, कपड़ा, कृषि, गैट-नियम, बहुपक्षीय वार्ता संधियां, सब्सीडी स्तर, प्रतितुलन उपाय, विवाद-निर्णय व्यवस्था, बौद्धिक सम्पत्ति, निवेश उपाय ताथा वार्ताओं की कार्य विधियां शामिल की गई। 'राशि पतन' भी इसमें विचारार्थ आया। 4 वर्षों में भी वार्ताएं सम्पन्न न हो पाईं क्योंकि आपसी विरोध सुलझाए नहीं जा सके। इसलिए नया प्रस्ताव डंकेल-प्रस्ताव स्वरूप आया। भारत ने नये समझौते की सदस्यता 1994 में ग्रहण कर ली।इससे सरकार की स्वायत्तता में कुछ बाध्यताएं प्रविष्ट हो गई हैं और समझौते में हम विवश हैं। विश्व व्यापार संगठन का जन्म 1995 में हुआ।

29.5 भारतीय विदेशी व्यापार की कठिनाइयां

विश्व व्यापार में भारत का व्यापारिक हिस्सा कुल वैश्विक व्यापार मूल्य का मात्र 0.7 प्रतिशत होना इसका द्योतक है कि यह कमोवेश बाह्य बाजार से स्वतंत्र है। इसलिए वैश्विक बाजार की मंदी अथवा स्फीति का भारत पर मामूली प्रभाव होता है। पूँजी निर्माण व पूँजीगत सज्जाएं अत्यंत निम्न स्तर पर होने से भारत में आय वृद्धि दर भी जर्मनी, अमरीका, जापान, यू.के. इत्यादि के सापेक्ष बहुत कम है। भारत को प्राथमिक क्षेत्र के कच्चे उत्पादों का निर्यात करके विकासार्थ पूँजीगत सज्जाएं लेनी होती हैं। हाल के दशकों में भारतीय निर्यात में निर्मित वस्तुओं, सेवाओं और प्राविधिक कौशल क्षेत्र के उत्पादों का योगदान बढ़ा है। खनिज अब भी बहुत महत्व के निर्यात हैं। कच्चे माल आयात करके भारत अब निर्मित माल निर्यात करने लगा है। प्रोद्योगिकी आधारित वस्तुएं अब भारत

के निर्यातों में है, भले ही मशीनों का आयात अब भी बड़ा भाग है। भारत ऋण लेकर विकासीय आयात करता है तो ऊंची ब्याज दर देनदारियों को द्विगुणित कर देती हैं। भारत का भुगतान संतुलन सदा प्रतिकूल रहता है। भारत विदशी सहायता प्राप्त करता है। किन्तु भारत की ग्राह्य क्षमता कम है। सहायता बंधनयुक्त होती है और प्राय: इसके उपयोग में जो प्राविधि लगती है उसका भारत में अभाव है। प्राविधि कोई देश हस्तांतरित नहीं करता है। फिर भी भारत परियोजनाबद्ध सहायता लेता है। कृषिगत या खनिजगत उत्पादों में प्रतिस्पर्धा से मूल्य गिर जाते हैं और आय सृजन बहुत धीमा होता है जबकि औद्योगिक देशों के निर्यातों के मूल्य तेजी से बढ़ते हैं। तद्रूरूप आय बढ़ती है। भारत संक्रमण दौर में है। एक ओर यह अमरीका, कनाड़ा, यूरोप को सॉफ्टवेयर निर्यात में अग्रणी है, दूसरी ओर यह गांवों के कुटीर व हस्तशिल्प उत्पादों के बाजार खोजता है। यह अब भी चावल, चाय, फल, मेवे, मसाले, मछली, चमड़ा, कच्चा लौह खनिज आदि निर्यात करता है। यह हवाई जहाज, पनडुब्बियां नहीं बेचता, किन्तु खगोलीय खोज के उपकरण-सेवाएं बेचता है। इस विकासीय सोपान से भारत आगे बढ़ेगा तो भारत की नई आवश्यकताएं होंगी और W.T.O. (विश्व व्यापार संगठन) का भारत पर प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ेगा। भविष्य के दशकों में भारत और चीन विश्व व्यापार के विस्तार के मुख्य केन्द्र होंगे और भारत का विश्व व्यापार में हिस्सा 0.70 प्रतिशत से बढ़कर 2 प्रतिशत तक हो जायेगा।

29.6 यूरुग्वे-दौर के समझौते का भारत पर प्रभाव

यह समझौता भारत के निर्यात-वर्धन में बेहद सहायक होने की आशा सर्वथा भ्रांति सिद्ध हुई। भारत ने बुनियादी प्रशुल्क में 30 प्रतिशत कमी की घोषणा की जो कच्चे माल, अनुवर्ती वस्तुओं और पूँजीगत वस्तुओं के लिए थी। राशिपतन संबंधी कार्यवाही वापस ली गई है यदि यह डम्पिंग लाभ, व्यापार के 20 प्रतिशत से कम हो। जिन देशों की व्यापार आय विश्व व्यापार के 3.25 प्रतिशत से कम है, उन्हें सब्सिडी हटाने को बाध्य नहीं होना पड़ेगा। भारत यहां कुछ लाभ कर सकता है। भारत का भाग चावल में 8.4 प्रतिशत, चाय में 13.9 प्रतिशत, गरम मसाले में 10.3 प्रतिशत, कच्चे लोहे में 3.7 प्रतिशत, चर्म निर्यात में 3.2 प्रतिशत और हीरे-जवाहरात में 11.1 प्रतिशत है। भारत को यहां पर लाभ मिलेगा।

औषधि और कृषि क्षेत्र में यूरुग्वे सन्धि भारत विरोधी प्रभाव की थी। उत्पाद या उसकी प्रक्रिया दोनों में औद्योगिक पेटेण्ट होना आवश्यक होने से भारत को नुकसान पर रहना है। पेटेण्ट संरक्षण का दायरा, सूक्ष्म जीव, गैर जैविक, सूक्ष्म जैविक क्रियाओं व पौधों की किस्मों तक फैला होने से भारतीय घाटे पर रहेंगे। स्वदेश में उत्पादन करने पर भी पेटेण्ट संरक्षण लागू रहना है। सरकार कोई कीमत नियंत्रण नहीं कर सकेगी। औषधि क्षेत्र में भारत ज्यादा हानि उठाता यदि यहां पेटेण्ट एक्ट 1970 न होता। 'पेटेण्ट' से मूल्य असाधारण रूप से बढ़ गए थे। भारत में 'उत्पाद-पेटेण्ट' नहीं, 'प्रक्रिया-पेटेण्ट' होते हैं। अधिकतर दवाएं जातिगत (generic) हो गई हैं। अत: नए पेटेण्ट के अधीन

कम जीवन-रक्षक दवाएं होंगी। फिर भी मूल्य 87 प्रतिशत तक ज्यादा होंगे। औषधि मूल्य नियंत्रण कानून से मूल्य वृद्धि रोकी जाएगी। पौध जनकों व किसानों को बीज की छूट होगी। बाकी को रॉयल्टी देनी होगी। 1991 की संधि में पौध-जनक पेटेण्ट-स्वामी (Right holder) को रॉयल्टी चुकायेंगे। 1994 में पेटेण्ट संशोधन व बीज कानून बनाया गया जिसमें किसानों पर बंदिश लगी। वह बीज उगाकर बेच नहीं सकते। बीज कानून तो निरीक्षकों द्वारा सम्भावित व्यभिचार के उत्तेजक हैं। पुरानी परम्परा में संचित ज्ञान को अपना पेटेण्ट बनाना सरासर व्यभिचार है। अमेरिका में नीम, हल्दी, तुलसी में यही देखा गया। यह स्वाधिकार कानून (Patent law) तो नया उपनिवेशवाद है। दोहा अधिवेशन में यह सारे विरोध स्पष्ट प्रकट हो गए और अमरीका, यूरोपीय यूनियन आदि को इन विरोधों के आगे झुकना पड़ा।

29.7 निवेश प्रोत्साहनों व निवेश वृद्धि उपायों की निरर्थक विषयवस्तु

गैट-संधि के सदस्यों को बहुपक्षीय व्यापार संधि के अधीन किसी भी व्यक्ति, संगठन, कम्पनी या देश को विशेष शर्तें (कन्सेशन) देने से रोकती है। सभी के लिए समान शर्तें व दशाएं आश्वस्त करनी होंगी। कोई चयनात्मक भेद नहीं किया जा सकता। भारत संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए कुछ रियायतें रखता है। वह अब त्यागने पड़ेंगे। पेप्सी कम्पनी को बढ़ावा देने का कारण भारत में यह था कि यह वैदेशिक दुर्लभ मुद्रा को निर्यात द्वारा कमाएगी और भारत के कच्चे माल उपयोग में लेगी और भारतीयों को रोजगार भी मिलेगा। यह सब निरर्थक सिद्ध हुआ। ऐसी शर्तें रखी ही नहीं जा सकती। यह कम्पनियां अब मात्र लाभार्जन कर रही हैं। यह कम्पनी कम्पनीअब 'दुर्लभ मुद्रा' कमाने के लिए बाध्य नहीं रहेगी।

29.8 वस्त्र व सिले-सिलाए कपड़ों के लिए व्यापार प्रतिबंध जारी

'बहुतंतु संधि' तो विभेदात्मक है और बहुपक्षीय व्यापार संधि के सरासर विरुद्ध है। इसमें पिछड़े देशों के निर्यात पर व्यापक प्रतिबंध व कोटा सिस्टम लागू किया गया है जिसमें भारत की हानि होनी ही है। यह 10 वर्षों के बाद हटाए जायेंगे। कई चरणों में यूरोपीय टैक्सटाइल बाजार सबके लिए समान रूप से खुलेगा। उदारीकरण मात्र कुछ चीजों पर ही लागू रहेगा। भारत ने फिर भी वस्त्र निर्यात के द्वारा लाभ कमाया है। यह क्रम जारी भी है।

29.9 प्रतितुल्य प्रशुल्क द्वारा श्रम-लागत को समकक्ष किया जाना

पिछड़े देश प्राय: श्रमिक शोषण, कम मजदूरी, ज्यादा घंटे काम और काम की घटिया दशाओं के जरिए लागत घटा लेते हैं। इसलिए उनके माल पर आयात प्रशुल्क लगाकर लागत को तुलनीय बनाया जाता है। यह प्रावधानों की व्यवस्था है। यह हर वर्ष बाल श्रम के निर्यातों का

चिन्हीकरण करके किया जाना है। भारत के कालीन, हीरे-जवाहरात, कपड़े इत्यादि इस श्रेणी में आते हैं। इस तरह भारत को निर्यात प्रतिबंध व अवरोध झेलने पड़ेंगे। इन प्रावधानों का दोहा अधिवेशन में विरोध हुआ है। बाल-श्रम श्रम तथा कार्य की दशाओं को व्यापार-प्रतिबन्ध बनाना सरासर अन्यायपूर्ण है क्योंकि निर्धन देशों में श्रमिक ज्यादा मजदूरी नहीं पाते हैं।

29.10 पर्यावरण कण्डिका द्वारा व्यापार विभेदीकरण

इस संधि में यह प्रस्ताव है कि पिछड़े देशों ने पर्यावरण हानि करके मानव जाति के लिए खतरा पैदा किया है जिसे ठीक रखने में लागत आएगी। पिछड़े देशों के उत्पादों पर यदि एक पर्यावरण प्रति तुल्य शुल्क लगाया जाय तो मानव जाति का भला होगा। भले ही विकसित देश विविध तरीकों से पिछले 200 वर्षों से पर्यावरण दूषित करते रहे हैं। उन पर यह भार न होगा। इन प्रावधानों से पिछड़े देशों का औद्योगीकरण रोकने का प्रयास है। स्वतंत्र व्यापार का लाभ विकसित देश अपने लिए आरक्षित रखना चाहते हैं। पिछड़े देशों को नहीं देना चाहते हैं।

29.11 संरक्षण की छिपी हुई प्रवृत्ति

वास्तव में विकसित देश पिछड़े देशों के लिए व्यापारिक स्वतंत्रता और पारदर्शी वातावरण नहीं देना चाहते है। उनका नारा तो बहुपक्षीय व्यापार है किन्तु छिपी तौर पर वे अपनी कृषि और अन्य उत्पादों को संरक्षण में रखकर रोजगार व आय का ऊंचा स्तर बनाए रखना चाहते हैं। व्यापार के अधिकाधिक लाभों को विकसित देश हड़पना चाहते हैं। पिछड़े देशों का समस्त वर्ग इस दांव से अवगत है और विरोध करते रहे हैं। 1995 में W.T.O. जन्मा। आशा थी कि 2005 तक इससे 745 अरब अमरीकी डॉलर की वृद्धि वस्तु बाजार में होगी। किन्तु यह न हो सका। W.T.O. उपनिवेशवाद का नया अवतरण सा लगता है। विकसित देश पिछड़े देशों के निर्यात को अपने सुरक्षित बाजार में 'पहुंच' (access) प्रदान करने को तैयार नहीं है। फिर भी भारत को कृषि, मछली, पेय पदार्थों में लाभ मिलेगा। प्रशुल्क हटाने और व्यापार सुविधा तथा पारदर्शी नीति के मामलों में जापान, यूरोपीय यूनियन और अमेरिका में राय की समानता है। फ्रांस कृषि क्षेत्र के सब्सिडी व संरक्षण त्यागने में संकोच करता है। विकसित देशों की असहयोग व चालबाजी प्रवृत्ति से W.T.O. की प्रगति अवरुद्ध है और लाभ का अधिकतर भाग विकसित देश ले रहे हैं। भारत की निर्यातों की पहुंच सीमित बनी हुई है। चीन इन्हीं दशाओं में अपना व्यापार बहुत तेजी से बढ़ा रहा है।

29.12 आयात उदारीकरण के लिए भारत पर दबाव

W.T.O.भारत से मात्रात्मक अवरोध व प्रतिबन्ध, आयातों से हटाने का आग्रह करता है जबकि भारत पहले ही पूँजीगत, अनवर्ती वस्तुओं, कच्चेमाल के आयात से प्रतिबन्ध हटा चुका है,

जो 40 प्रतिशत तक है। यह प्रतिबन्ध 25 प्रतिशत तक कम कर दिये हैं। इससे भारत में विदेशी वस्तुएं घोर स्पर्धा कर रही हैं। भारतीय फर्मों को ऑर्डरों में 5 हजार करोड़ रुपये की हानि हुई है। भारतीय माल को विदेशी मंडियों में प्रशुल्क, बिक्रीकर, चुंगी आदि देनी पड़ती है। भारत में आयात नि:शुल्क आ रहे हैं। भारतीय उद्योग कठिनाई में हो गए हैं। मशीनी औजार क्षेत्र में भारतीय माल पर व्यापारिक घाटा हो रहा है। भारत ने कोटा आयात एवं निर्यात लाइसेंस में 2700 कृषि पदार्थ, कपड़े और अन्य निर्मित माल रखे थे, जहां भारत की यू.एस., ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, स्विटजरलैण्ड, यूरोपीय यूनियन ने कनाडा के साथ विवाद समाधान मशीनरी में शिकायत की और भारत दोषी सिद्ध हुआ। पुरानी कारें भारत में दाखिल हो गई और यहां के ऑटोमोबाइल उद्योग को हानि हुई। चीनी माल ने भारतीय बाजार रौंद डाला। उपभोक्ता की पूँजीगत वस्तुओं में चीन द्वारा राशि पतन किया जा रहा है किन्तु शिकायत इसलिए नहीं हो सकती थी चीन की सूचनाएं हम नहीं पा सकते। चीन एक 'नौन मार्केट इकोनामी' है। उस पर W.T.O. कानून नहीं लग सकते। लघु, कुटीर, शिल्प आदि में प्रत्यक्ष स्पर्द्धा विदेशी वस्तुओं से हो रही है। इनमें भारतीय उद्योग का 33 प्रतिशत रोजगार है और यह कठिनाई में पड़ गया है। विदेशी कंपनियां भारत में पानी बेचकर धनार्जन कर रही हैं। जबकि पानी भारत का है। विदेशी कंपनियों का दबदबा बहुत बड़ गया है। यह नयी टैक्नोलॉजी लाने के बदले मुनाफा बनाने में केन्द्रित है। इन्हें सरकार रोक नहीं पाती। यूरोपीय न्यायालय भी विकासशील देशों से सौतिया व्यवहार करती है। यूरोपीय देश जापान तथा ऑस्ट्रेलिया कृषि को भारी सब्सिडी देते हैं। जिससे अन्न जैसे पदार्थों का मूल्य कम हो जाता है और भारतीय कृषि पदार्थ महंगे पड़ने लगे हैं। W.T.O. में विकसित देशों के दबाव से अब सरकारी खरीद से अन्न भण्डार रखने की नीति का भी विरोध है और यह विदेशी भारतीय कृषकों को निरीह, असहाय देखना चाहते हैं। भारत के व्यापारिक लाभ के पथ पर रोड़े अटकाये जा रहे हैं। जिससे भारत की प्रगति अवरुद्ध है।

29.13 दोहा (2001) के मंत्री स्तरीय वार्ता दौर में पिछड़े देशों का दबाव

जापान तथा विकासशील देशों के प्रतिनिधियों ने अमरीका के सारे W.T.O. विधान को असंगत सिद्ध कर दिया और अमरीकी अदालत ने फैसला यू.एस. के विरुद्ध दिया। यू.एस. में भारी संख्या में बाल मजदूर होने, यू.एस. उद्योगों में इंडोनेशिया में 12 घंटे से अधिक काम कराने और विविध प्रकार के संरक्षण देने आदि बातें अमरीका के विरुद्ध सिद्ध हुई। डंपिंग विरोधी कानून के बारे में भी अमरीका का पक्ष न्यायालय से हार गया। (Berne) बर्ने कन्वेंशन के मामले में भी W.T.O. सिद्धान्तों की अवहेलना पाई गई। W.T.O. कई मामलों में विदेशी सरकारों की स्वायत्तता पर भी आघात करता पाया गया। यूरोपीय यूनियन और यू.एस. दोनों ने विकासशील देशों के द्वारा उठाये गये मुद्दों पर सहमति दे दी। औषधि क्षेत्र में अनिवार्यत: विकसित देशों से लाइसेंस लिये बगैर पिछड़े देश दवाएं बना सकते हैं, यदि उनके पास योग्यता व टैक्नोलॉजी हो। चीन, भारत, ब्राजील, दक्षिण एशिया, अफ्रीका देशों को इससे लाभ मिलेगा। सिंगापुर-मुद्दों अर्थात विनियोग, प्रतिस्पर्धा, श्रम-मानक व पर्यावरण वाले प्रश्नों पर पुन: विचारोपरान्त मतैक्य करना ही पड़ेगा। जहां विकासशील

देशों को तुलनात्मक लागत का लाभ है उनके क्षेत्रों में इनके उत्पादों के लिए, यूरोपीय मंडियां खोलनी ही पड़ेंगी। जहां यू.एस. की लागत ज्यादा है उनको यू.एस., डंपिंग (राशि पतन) कहकर, 'डंपिंग विरोधी यू.एस. कानून' लगाता है। भारतीय स्टील व लोहा ऐसे क्षेत्र हैं। अब अमरीका इसमें ढील दे रहा है। 'ग्रीन हाउस बॉक्स' में W.T.O. कृषि क्षेत्र में प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष सहायता, सब्सिडी, मुआवजा, विकास सहायता आदि को रखता है। यह सबसे ज्यादा यू.एस. व यूरोप में है। इस कारण लागत असमान हुई हैं। यह देश इनको कम करने को राजी हो गए हैं। पिछड़े देशों से पृथक विभेदक व्यवहार को सिद्धान्त: निन्दनीय माना गया है। क्योंकि इसके बिना वह स्पर्धा में नहीं रह पायेंगे। विशेष सम्वेदनशील उत्पादों में स्वतंत्र आयात पर रोक करना अब ठीक माना गया है। इससे भारत को लाभ होगा।

यह प्रश्न खाद्य सुरक्षा, आजीविका सुरक्षा, ग्राम्य विकास पर पृथक अपवाद बनाने के हैं। भारत की जैविक विविधता की रक्षा फसलों के उगाने से सम्बद्ध है और भारत में 250 से अधिक प्रकार की फसलें हैं। यह 'विशेष उत्पाद' माने जाने चाहिए। अमरीका अपने रुई उत्पादकों को प्रति किसान 148000 डॉलर देता है। यह अफ्रीका में क्योंकर अनुचित हो जाएगा। इससे विकसित देशों की निरर्थक दलीलों का ज्ञान होता है।

29.14 संधियों में अपेक्षित सावधानी

भारत के वैदेशिक व्यापार को चुनौती, निर्यात सम्वर्धन की है। वह पूर्णतया निर्मित माल का, पूँजीगत उत्पादन और तकनीकी कौशल सेवाओं का निर्यातक रहना चाहता है किन्तु विकसित देश भारत के माल के लिए अपने बाजार बंद रखना चाहते हैं और अपने उत्पादों के लिए भारतीय बाजार को निर्बाध प्रशुल्क विहीन और उदार आयात नीति के अधीन रखना चाहते हैं। विश्व व्यापार संगठन धनी व विकसित देशों के हितों की रक्षा के लिए ही कार्यरत है। इसके लिए विविध प्रावधान बनाकर W.T.O. संधियों में दाखिल करता है। W.T.O. का चरित्र राजनैतिक है। उदारवाद के भ्रम में भारत ने अपने देश में आयात पर से प्रशुल्क व मात्रात्मक आयात अवरोध समाप्त किए हैं किन्तु विकसित देश अपनी मण्डी में उदारता बरतना नहीं चाहते। उदार आयात नीति ने भारत को हानि पहुंचाई है। यहां 'डम्पिंग' भी बढ़ी है और स्वदेशी उत्पादन इकाइयां हानि उठा रही हैं। निर्यात आशातीत बढ़ नहीं रहे हैं। ऐसी दशा में भारत को अत्यंत सावधानी से अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों को स्वीकारना चाहिए ताकि हानि से बचा जाय और विश्व बाजार का अधिकाधिक लाभ उठाया जा सके। उदारीकरण नीति को धीरे-धीरे चलना चाहिए। एकाएक परिवर्तन हितकारी न होगा। F.D.I. को भी सर्तक संदेह से देखना उचित होगा। विदेशी निवेश के भ्रम में भारत कहीं अपनी आर्थिक स्थिरता और स्वतंत्रता ही न खो बैठे।

29.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. भारत का वैदेशिक व्यापार वैश्विक व्यापार में

अ. 10 प्रतिशत है।

ब. 1 प्रतिशत से कम है।

स. 3 प्रतिशत है।

द. उपरोक्त में कोई नहीं।

2. भारत मुख्यतया आयात करता है

अ. चाय, कॉफी, अनाज, चीनी आदि।

ब. मशीनें, पूँजीगत वस्तु, कच्चेमाल, रसायन, तेल आदि।

स. उपभोक्ता की वस्तुएं, चमड़े की चीजें, कोयला, स्टील आदि।

द. खनिज लौह, अभ्रक, मैगनीज, जस्ता, आभूषण आदि।

3. भारत के मुख्य निर्यात हैं

अ. प्रतिरक्षा की आधुनिक सज्जा और हथियार, जहाज आदि।

ब. कृषि पदार्थ, खनिज, इंजीनियरिंग, सॉफ्टवेयर, पूँजीगत उपकरण, मछली, मसाले, फल, आभूषण, वस्त्र आदि।

स. पेट्रोल, पेट्रोल पदार्थ, उर्वरक, परिवहन के वाहन, पानी के जहाज, पनडुब्बियां आदि।

द. कच्ची-अद्धनिर्मित वस्तुएं, अनाज, दाल, खाद्य तेल, सोना, चांदी आदि।

4. भारत के मुख्य व्यापारिक साझेदार हैं

अ. लैटिन अमरीकी देश, रूस, अफ्रीकी देश, निकारागुआ आदि।

ब. खनिज तेल, उर्वरक उत्पादक देश, यूरोपीय यूनियन, अमरीका, जापान, चीन, इण्डोनेशिया, सिंगापुर, मारीशियस आदि।

स. आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, श्रीलंका, पाकिस्तान, मियान्मार आदि।

द. कनाडा, बांग्लादेश, वियतनाम, कोरिया आदि।

5. विश्व व्यापार संगठन (W.T.O.) का क्या उद्देश्य है ?

अ. विश्व व्यापार विस्तार के लिए द्विपक्षीय व्यापार में अभिवृद्धि।

ब. बहुपक्षीय व्यापार को लोक-व्याप्त करना।

स. लोकतंत्रीय देशों में व्यापारिक सहयोग प्रोत्साहित करना।

द. अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी निवेश पर नियंत्रण करना।

6. विश्व व्यापार संगठन का विधान

अ. विकसित-विकासशील देशों के प्रति विभेदकारी है।

ब. व्यापारिक मुद्दों में तर्क व न्यायपूर्ण नीति रखता है।

स. स्थिति अनुकूल परिवर्तन के लिए गुंजाइस रखता है।

द. उपनिवेशवादी दृष्टिकोण वाला है।

7. विश्व व्यापार संगठन में सामाजिक श्रम सम्बन्धी और पर्यावरण के मुद्दों का विरोध क्यों है ?

अ. यह व्यापार से सीधा सम्बन्ध नहीं रखते।

ब. यह पिछड़े विकासशील देशों में ही नहीं सब में है किन्तु पिछड़े देशों से ही इन्हें जोड़ा जा रहा है।

स. इनके मान्य हो जाने से विकासशील देशों के निर्यात धनी देशों में अस्वीकृत हो जायेंगे या उन पर प्रशुल्क लगेंगे।

द. उपरोक्त में कोई नहीं।

8. क्या W.T.O. भारतीय विदेशी व्यापर में लाभदायक रहा है ?

अ. वृद्धिजनक रहा है।

ब. हानिजनक व लाभजनक दोनों रहा है।

स. यह भविष्य में निर्णित होगा।

द. इसके आंतरिक नीतियों पर प्रभाव घातक रहे।

लघुत्तर प्रश्न

1. भारत के विदेशी व्यापार में W.T.O. का क्या योगदान संभव है ?
2. 'ट्रिप्स' व 'ट्रिम्स' से क्या तात्पर्य है ?
3. परम्परागत ज्ञान को पेटेण्ट कराना अनैतिक क्यों है ?
4. W.T.O. के नियमों का ठीक अनुपालन न करके इनकी अवहेलना विकसित देश क्यों करते हैं ?

उत्तर

1. भारत का व्यापार वैश्विक व्यापार का भाग एक प्रतिशत से कम है।
2. मशीनें, पूँजीगत वस्तु, कच्चे माल, रसायन, खनिज तेल।
3. कृषि पदार्थ, खनिज, इंजीनियरिंग, सॉफ्टवेयर उपकरण, आभूषण, वस्त्र, मछली, आदि।
4. खनिज तेल उत्पादक देश, यूरोपीय यूनियन, अमरीका, जापान, चीन, सिंगापुर आदि।
5. बहुपक्षीय व्यापार को लोक व्याप्त बनाना।
6. विकसित तथा विकासशील देशों के प्रति विभेदकारी है।
7. सामाजिक श्रम संदर्भों व पर्यावरण मुद्दे यदि मान्य हुए तो विकासशील देशों के निर्यातों पर विकसित देशों में प्रशुल्क लगाना वैधानिक हो जाएगा।
8. वृद्धिजनक रहा है।

29.16 सारांश

विदेशी व्यापार की वृद्धि से मानव जाति की समृद्धि का पथ प्रशस्त होता है और इससे व्यापारिक लाभ का वितरण भी होता है। प्रगति की आकांक्षित दर प्राप्ति में व्यापार क्षेत्र का समुचित

प्रबंधन व व्यवस्था स्थापित होने से सभी को लाभ होगा। विश्व भर के आयातक-निर्यातक, विविध व्यापारिक समझौतों को, गैट के अधीन संयोजित वार्ताओं से करते रहे। 1948 के बाद इन विषयों पर चिंतन होता रहा। व्यापार पर सभी नियंत्रण व अवरोध समाप्त करके स्वतंत्र बहुपक्षीय व्यापार समझैते करना गैट का उद्देश्य था। आठवें वार्ता दौर में सर्वसम्मत निष्कर्ष निकाले गए। युरुग्वे दौर में 14 विषय-वार्ताएं होनी थी तब 'डंकल प्रस्ताव' आया जो आज के विश्व व्यापार संगठन का आधार बना।

विश्व व्यापार संगठर (1995) की स्थापना से व्यापार के संचालन के नियम व कार्य सम्पादन विधान बना। इसमें व्यापार संबंधी बौद्धिक सम्पत्ति, व्यापार सम्बन्धी निवेश के उपाय तथा विविध व्यापारिक पेटेण्टों की व्यवस्था व शिकायतों के निपटारे की यांत्रिकी डम्पिंग (राशिपतन क्रिया) पर अंकुश तथा अन्यान्य व्यापारिक मामलों में नियम बनाए गए। विकसित देशों के सापेक्ष विकासशील पिछड़े अर्द्धविकसित देशों की आर्थिक स्थिति दृढ़ करने के भी उपाय सुझाए गए। इस विश्व व्यापार संगठन की सफलता, विकसित देशों के सहज सहयोग पर निर्भर है। पिछड़े देश किसी संगठित सौदेबाजी को करने में अक्षम हैं क्योंकि उनकी निर्भरता आयातों पर है। आपसी स्पर्धा के कारण यह देश लम्बी अवधि तक सौदेबाजी नहीं कर सकते।

29.17 शब्दावली

पेटेंट: - पेटेंट किसी आविष्कार, डिजाईन आदि को प्रोत्साहित एवं सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक निश्चित समयावधि के लिए प्रदान किया जाने वाला कानूनी अधिकार है। पेटेन्ट दो प्रकार के होते हैं - प्रक्रिया पेटेन्ट और उत्पाद पेटनेट। प्रक्रिया पेटेन्ट में वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया के लिए पेटेन्ट प्रदान किया जाता है तथा उत्पाद पेटनेन्ट में उत्पाद के मूलभूत अन्वेषक को पेटेन्ट प्रदान कियजाता है। अर्थात् कोई अन्य निर्माता उसी उत्पाद को निर्मित नहीं कर सकता।

प्रशुल्क:- जब कोई वस्तु राष्ट्रीय सीमा में प्रवेश करती है या राष्ट्रीय सीमा को छोड़ती है तो इन वस्तुओं पर लगाया गया कर या शुल्क को प्रशुल्क कहते हैं। प्रशुल्क आयात शुल्क या सीमा शुल्क का पर्यायवाची है।

राशिपातनन दो बाजारों के बीच कीमत विभेद है। जिसमें निर्यातक फर्म विदेशी बाराशिपात - जार में अपनी उत्पादित वस्तु का एक भाग कम कीमत पर तथा अन्य भाग घरेलू बाजार में अधिक कीमत पर बेचता है।।

विपरीत राशिपातन घरेलू बाजार की -तुलना में विदेशी बाजार में वस्तु की कीमत अधिक होती है। ऐसा घरेलू बाजार से विदेशी प्रतियोगिता को बाहर करने के लिए किया जाता है।

29. 18 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. दत्त गौरव एवं अश्विनी महाजन, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द एण्ड कम्पनी, रामनगर,नई दिल्ली, 48th Edition.
2. मिश्रा, एस.के. एवं वी.के. पुरी; प्राब्लम्स ऑफ इण्डियन इकॉनोमी, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2010-2011
3. सरकार, जयगंता; इण्डियन इकानोमी: पालिसीज एण्ड प्रैक्टिसेज, प्रथम संस्करण (2007), पीयरसन एजुकेशन, 2007
4. धीगड़ा, आई.सी, इण्डियन इकॉनोमी, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2009
5. प्रकाश, बी, इण्डियन इकॉनोमी सिन्स 1991, इकानोमिक रिफौर्मस् एण्ड परफौर्मेन्सेज, प्रथम संस्करण, पियरसन एजूकेशन, 2009
6. दत्त रुद्र एण्ड के.पी.एम. सुन्दरम, इण्डियन इकॉनोमी, 60 वां संस्करण, एस. चंद एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 2009

29.19 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य तथा कार्यों की विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. डब्ल्यूके विभिन्न वार्ता दौरों का वर्णन कीजिए। .ओ.टी.
3. W.T.O. विकासशील देशों को बड़े बाजारों में निर्यात करने की सुविधा देने में क्यों असफल रहा ?